REGISTERED No. [illegible]

॥ चतुर्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीसद्गुरुविरजानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्थसहिता समाप्तिता ॥

अस्यैकोनत्रिंशस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशानां डाकव्यय-
सहितं ।=) गतत् द्वादशमासानां मिलित्वा
वार्षिकं ४॥) प्रतायद्वर्षे ॥=)

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक नंबर का दूसरे भारतवर्ष के भीतर
डाकमाशूल सहित ।=) और वार्षिक मूल्य ४॥)

अस्य ग्रन्थस्य यद्गासंख्या यस्य संवत्सरस्यां लाजरसदर्पन्याख्यस्य
वा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपे वार्षिक मूल्यं
प्रेषयित्वा प्रतिमासमेकं प्राप्नोति
का०

अंक (१) आदि
विषय
हिन्दी

॥ अस्य ग्रन्थस्याधिकारी भाषकर्ता सर्वतोऽनुज्ञानं एव वर्तते ॥

संवत् १९३४ ।

॥ अस्य ग्रन्थस्याधिकारी भाषकर्ता सर्वतोऽनुज्ञानं एव वर्तते ॥

विदित हो कि सं० १९३४ वैशाख महिने में ऐसा पंजाब गुजरात वा अलवर से
स्वामी दयानन्द सरस्वती जी मिलाप करेंगे ।

॥ ओ३म् ॥

॥ अथ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

ओ३म् शन्नो मित्रःशंवरुणःशन्नो भवत्वर्य्यमा॥ शन्न इन्द्रोबृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥ नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि॥ १॥ मैत्रीमद्यमहंवृणे। तन्मामवतु॥ तद्वक्तारमवतु॥ अवतु माम्॥ अवतु वक्तारम्॥

[illegible] ॥ ३ ॥ [illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] ॥ ५ ॥ [illegible] ॥ ६ ॥ [illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] ॥ ८ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(शन्नोमित्रः०) हे सर्वमित्रपरमेश्वर! आप की कृपा दया और सहाय से हम लोग परस्पर एक दूसरे को दया करें (शन्नोइन्द्रः०) और हम सब लोग परम योगि से मिल के सब से उत्तम ऐश्वर्य अर्थात् चक्रवर्त्ति राज्य आदि सामग्री से आनन्द को प्राप्त हो आप की अनुग्रह से सदा भोगें (शन्नोविष्णु०) हे कृपानिधे आप के सहाय से हमलोग एक दूसरे के सामर्थ्य को एकाग्रता से सदा बढ़ाते रहें (नमोब्रह्मणे०) और हे अनन्तस्वरूप! सब विद्या के देने वाले परमेश्वर आप

के सामर्थ्य से ही हमलोगों का पढ़ा और पढ़ाया सब संसार में प्रकाश प्राप्त होय और हमारी विद्या सदा बढ़ती रहै (प्रार्थिवि॰) हे पृथिवि इत्यादिक आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हमलोग परस्पर विरोध कभी करैं किंतु एक दूसरे के मित्र होके सदा रहैं (द्यौ शान्ति॰) हे भगवन् आप कृपा से हमलोगों के तीन ताप एक (आध्यात्मिक) जो कि ज्वरादि रोगों शरीर में पीड़ा होती है दूसरा (आधिभौतिक) जो दूसरे प्राणियों से होता और तीसरा (आधिदैविक) जो कि मन और इंद्रियों के विकार अशुद्धि और चंचलता से क्लेश होता है इन तीनों तापों को आप शांत अर्थात् निवारण कर दीजिये जिससे हमलोग सुख से इस वेदभाष्य को यथावत् बना के सब मनुष्यों का उपकार करैं यही आप से चाहते हैं सो कृपा करके हमलोगों को सब दिनों के लिये सहाय कीजिये ॥ १ ॥

(ब्रह्मानन्द॰) जो ब्रह्म अनंत आदि विशेषणों से युक्त है जिस की वेदविद्या सनातन है उस की अत्यंत प्रेम भक्ति से मैं नमस्कार करके इस वेदभाष्य के बनाने का आरंभ करता हूं ॥ १ ॥ (कालरा॰) विक्रम के संवत् १९३३ भाद्रमास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा रविवार के दिन इस वेद भाष्य का आरंभ मैंने किया है ॥ २ ॥ (दयाया॰) सब सज्जन लोगों को यह बात विदित होय कि जिन का नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती है उन्हों ने इस वेदभाष्य को रचा है ॥ ३ ॥ (मनुष्या॰) ईश्वर की कृपा के सहाय से सब मनुष्यों के हित के लिये इस वेदभाष्य का विधान मैं करता हूं ॥ ४ ॥ (संस्कृत भा॰) सो यह वेदभाष्य दो भाषाओं में किया जाता है एक संस्कृत और दूसरी प्राकृत इन दोनों भाषाओं में वेदमंत्रों के अर्थ का वर्णन मैं करता हूं ॥ ५ ॥ (आर्य्यावर्त्त॰) इस वेदभाष्य में अप्रमाण जैसा कुछ भी नहीं किया जाता है किंतु जो ब्रह्मा से ले के व्यास पर्यंत मुनि और ऋषि हुए हैं उन की जो व्याख्या रीति है उसी युक्त ही यह वेदभाष्य बनाया जायगा ॥ ६ ॥ (येनाधु॰) यह भाष्य ऐसा होगा कि जिससे वेदार्थ से विरुद्ध अब के बने भाष्य और टीकाओं से वेदों में भ्रम से जो मिथ्या दोषों के आरोप हुए हैं वे सब निवृत्त हो जायेंगे ॥ ७ ॥ (सत्यार्थश्च॰) और इस भाष्य से वेदों का जो सत्य अर्थ है सो संसार में प्रसिद्ध होय कि वेदों के सनातन अर्थ को सब लोग यथावत् जान लें इसलिये यह प्रयत्न मैं करता हूं सो परमेश्वर के सहाय से यह काम अच्छी प्रकार से सिद्ध होय यही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है ॥ ८ ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥

यजुर्वेदे । अध्याये ३० मंत्रः १ ॥

॥ भाष्यम् ॥

हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप हे परमात्मन्निति हे अनन्तविद्या विज्ञानप्रद (देव) हे सूर्यादि सर्वजगद्विद्याप्रकाशक हे सर्वैश्वर्यप्रद (सवितः) हे अखिलदुःखादिदूरक (नः) अस्माकम् (विश्वानि) सर्वाणि (दुरितानि) दुःखानि सर्वान्दुष्टगुणांश्च (परासुव) दूरे प्रापय (यद्भद्रं) यत्कल्याणं सर्वदुःखरहितं सत्यविद्या प्राप्तिरूपमुत्तमं निःश्रेयसं सुखं (तन्नः) अस्मभ्यं (आसुव) आसमन्तात्प्रापय कृपया प्रापय । अस्मिन् वेदभाष्यकरणानुष्ठाने ये दुष्टा विघ्नकारकाः पूर्वमेव मानुषं दूरं गमय यतु शरीरबुद्धिसहायकोषान् सत्यविद्याप्रकाशादि भद्रमस्ति तत्स्वकृपया कटाक्षेण हे परमेश्वर नो इदमस्मभ्यं प्रापय अस्मत्कृपाकटाक्षादुद्दीपयात्मा सत्यविद्योज्ज्वलं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धं भवदुक्तानां वेदानां यथार्थं भाष्यं वयं विदधीमहि । तदिदं सर्वैर्मनुष्यैरेकाग्रेण भवत्कृपया श्रवेत् । अस्मिन् वेदभाष्ये सर्वेषां मनुष्याणां परमश्रद्धयात्यन्ता प्रीतिर्भवेत्तस्मात् सर्वैरेव भवता कार्यमित्योऽम् ॥

॥ पदार्थः ॥

हे सत्यस्वरूप हे विज्ञानमय हे सच्चिदानन्दस्वरूप हे अनन्तसामर्थ्ययुक्त हे परमकृपालो हे अनन्तविद्यामय हे विज्ञानविद्याप्रद (देव) हे परमेश्वर आप सूर्यादि सब जगत् का और विद्या का प्रकाश करनेवाले हो सदा सब आनन्दों के देनेहारे हो (सवितः) हे सर्वजगदुत्पादक सर्वैश्वर्ययुक्त आप सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले हो (नः) हमारे (विश्वानि) सब जो (दुरितानि) दुःख हैं उन को और हमारे सब दुष्ट गुणों को कृपा से आप (परासुव) दूर कर दीजिये अर्थात् हम से उन को और भस्म को उन से सदा दूर रखिये (यद्भद्रं) और जो सब दुःखों से रहित कल्याण है जो कि सब सुखों से युक्त भाग है उस को हमारे लिये सब दिनों में प्राप्त कीजिये जो सुख का प्रकार आप है एक जो सत्यविद्या की प्राप्ति से सम्यक् प्रकार उत्तम राज्य धन मित्र धन पुत्र स्त्री और शरीर से अत्यन्त उत्तम सुख का होना और दूसरा जो निःश्रेयस सुख है कि जिस को मोक्ष कहते हैं और जिस में ये दोनों सुख होते हैं वही जो भद्र कहाता है (तन्नआसुव) उस सुख को आप हमारे लिये सब प्रकार से प्राप्त कीजिये और

आप की कृपा के सहाय से सब विघ्न हम से दूर रहैं कि जिस्से इस वेदभा
के करने का हमारा अनुष्ठान सुख से पूरा होय इस अनुष्ठान में हमारे शरी
में आरोग्य बुद्धि सज्जनों का सहाय चतुरता और सत्यविद्या का प्रका
सदा बढ़ता रहै इस भद्रस्वरूप सुख को आप अपनी सामर्थ्य से ही द
कीजिये जिस कृपा के सामर्थ्य से हम लोग सत्यविद्या से युक्त जो चा
के अनादि वेद हैं उन के यथार्थ अर्थ से युक्त भाष्य को सुख से विधान क
सकें यह वेदभाष्य आप की कृपा से संपूर्ण होके सब मनुष्यों का सदा उपक
करने वाला होय और आप अन्तर्यामी की प्रेरणा से सब मनुष्यों का इ
वेदभाष्य में श्रद्धा सहित अत्यन्त उत्साह होय जिस्से वेदभाष्य करने में
हमलोगों का प्रयत्न है सो यथावत् सिद्धि को प्राप्त होय इसी प्रकार से आ
हमारे और सब जगत् के ऊपर कृपादृष्टि करते रहैं जिस्से इस बड़े सत्
काम को हमलोग सहज से सिद्ध करैं ॥ १ ॥

योभूतंचभव्यंचसर्वंयश्चाधितिष्ठति ॥ स्वर्यस्यचकेवलंतस्मैज्ये
ष्ठायब्रह्मणेनमः ॥ १ ॥ यस्यभूमिःप्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ॥ दिवंयश्च
क्रेमूर्द्धानंतस्मैज्येष्ठायब्रह्मणेनमः ॥ २ ॥ यस्यसूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्चपु-
नर्णवः ॥ अग्निंयश्चक्रआस्यंतस्मैज्येष्ठायब्रह्मणेनमः ॥ ३ ॥ यस्य-
वातःप्राणापानौचक्षुरंगिरसोभवन् ॥ दिशोयश्चक्रेप्रज्ञानीस्तस्मै-
ज्येष्ठायब्रह्मणेनमः ॥ ४ ॥ अथर्ववेदसंहितायाम् । काण्डे १० प्रपाठके २३ अनुवाके ४ ॥ मं० १ । ३२ । ३३ । ३४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(यो भूतं च०) यो भूतमविद्यद्वर्त्तमानान्कालान् (सर्वं यश्चाधि०) सर्वं जगच्चाधितिष्ठति सर्वोऽधिष्ठातासन् कालादूर्ध्वे विराजमानोस्ति । (स्वर्यो०) यस्य च केवलं निर्विकारं स्वःसुखस्वरूपमस्ति यस्मिन्दुःखं लेशमात्रमपि नास्ति यदा नन्दनवनं ब्रह्मास्ति (तस्मै ज्ये०) तस्मै ज्येष्ठाय सर्वोत्कृष्टाय ब्रह्मणे महतोत्यन्तं नमोस्तु नः ॥ १ ॥ (यस्य भू०) यस्य भूमिः प्रमा यथार्थज्ञानसाधनं पादावित्रास्ति (अन्तरिक्षमु०) अन्तरिक्षं यस्योदरमुत्यमस्ति यश्च सर्वस्मादूर्ध्वे सूर्यरश्मिप्रकाशमयमाकाशं दिवं मूर्द्धानं शिरोवच्चक्रे कृतवानस्ति तस्मै० ॥ २ ॥ (यस्य सू०) यस्य सूर्यश्चन्द्रमा-

पुनः पुनः जन्मादौ जन्मनि एकमेव अद्वयं ब्रह्मसत्यं । योऽग्निमाश्वं मुखमास्यमुखं वाचरित्त । तस्मै० ॥ २ ॥ (यस्य वातः०) वातः सप्तार्चिषः सप्त यज्ञा विवाहन्ति (सप्तिरयः) सप्तिरिव संगारा अंकना अंचना इति ऋ० ३ अ० १० प्रपाठिकाः शिरआश्चत्वणी इव अक्षरः । योऽग्निः ब्रह्मापिलीर्व्यंकारसाविद्याश्चक्षो तस्मै ह्रस्वन्तश्चित्राय नमस्ये लक्षते तं नमोऽस्तु ॥ ४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(यो भूतं च०) जो परमेश्वर एक भूतकाल जो व्यतीत होगया है (च) तथा वर्त्तमान में दूसरा जो वर्त्तमान है (भव्यं च) और भविष्यत् जो आने वाला है इन तीनों कालों के बीच में जो कुछ होता है उस सब व्यवहारों को यथावत् जानता है (सर्वं यश्चाधितिष्ठति) तथा जो सब जगत् का रचने विज्ञान से ही जानने रचने पालने सब करने और संसार के सब पदार्थों का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है (स्वर्यस्य च केवलं) जिस का सुख ही केवल स्वरूप है जो कि मोक्ष और व्यवहार सुख का भी देनेवाला है (तस्मै वरेण्याय ब्रह्मणे नमः) श्रेष्ठ अर्थात् सब से बड़ा सब सामर्थ्य से युक्त होने जो परमात्मा है उस को अत्यंत प्रेम से हमारा नमस्कार होवे जो कि सब लोकों में आपः विराजमान है जिस को लेशमात्र भी दुःख नहीं होता उस आनन्द घन परमेश्वर को हमारा नमस्कार प्राप्त होवे ॥ १ ॥ (यस्य भूमिः प्रमा०) जिस परमेश्वर के होने और ज्ञान में भूमि जो पृथिवी आदि पदार्थ हैं सो प्रमा अर्थात् यथार्थ ज्ञान की सिद्धि होने का दृष्टान्त है तथा जिस ने अपनी सृष्टि में पृथिवी को पादस्थानी रचा है (अन्तरिक्षमुदरम्) अंतरिक्ष जो पृथिवी और सूर्य के बीच में आकाश है सो जिस ने उदरस्थानी किया है (दिवं यश्चक्रे मूर्द्धानं) और जिस ने अपनी सृष्टि में दिव अर्थात् प्रकाश करनेवाले पदार्थों को सब के ऊपर मस्तकस्थानी किया है अर्थात् जो पृथिवी से लेके सूर्य लोक पर्यन्त सब जगत् को रच के उस में व्यापक होके जगत् के सब पदार्थों में पूर्ण होके सब को धारण और रचा है (तस्मै०) उस परब्रह्म को हमारा सर्वदा नमस्कार होवे ॥ २ ॥ (यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्र०) और जिसने नेत्रस्थानी सूर्य और चन्द्रमा को किया है जो अपने आत्मा से आदि से सूर्य और चन्द्रमादि पदार्थों को बारंबार नये नये रचता है (अग्निं यश्चक्रे वाक्यं) और जिसने मुखस्थानी अग्नि को उत्पन्न किया है (तस्मै०) उसी परब्रह्म को हम लोगों का नमस्कार होवे ॥ ३ ॥ (यस्य वातः प्राणापानौ) जिस ने ब्रह्माण्ड के वायु को प्राण और अपान की नाईं किया है (चक्षुरंगिरसो [भवत्]) तथा

से प्रकाश करनेवाली किरण हैं वे चक्षु की नाईं जिस ने की हैं अर्थात् ः से दो कल्याणयुक्त होना है (दिशो यस्मिन्नाप्रज्ञानीस्त०) और जिस ने द दिशाओं को सब व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली बनाई हैं ऐसा जो अन विद्यायुक्त परमात्मा सब मनुष्यों का इष्टदेव है उस ब्रह्म को निरंतर हम। नमस्कार करें ॥ ४ ॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्यच्छा यामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ५ ॥ यजुः० अ० २५ मं० १३ ॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरो षधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः स र्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ ६ ॥ यतो यः सुशीरꣳसे ततो नो अभयं कुरु । शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥ ७ ॥ यजुः० अ० ३६ मं० १७ । २२ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिꣳश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ ८ ॥ यजुः० अ० ३४ मं० ५ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(य आत्मदाः) य आत्मदा विद्या विज्ञानप्रदः (बलदाः) यः शरीरेन्द्रियप्राणात्ममनसां पुष्ट्युत्साहपराक्रमदृढत्वप्रदः (यस्य०) यं वि- श्वेदेवाः सर्वे विद्वांस उपासते यस्यानुशासनं च मन्यन्ते । (यस्यच्छाया०) यस्याश्रयश्च मोक्षोऽस्ति यस्यच्छाया ऽकृपा ऽनाश्रयो मृत्युश्चैन्मरणकारकोऽ- स्ति (कस्मै०) तस्मै कस्मै प्रजापतये प्रजापतिर्वै कस्तस्मैऽहविषा विधेमेति । शतपथब्राह्मणे । काण्डे ७ अ० ३ । सुखस्वरूपाय ब्रह्मणे देवाय प्रेमभक्तिरूपेण हविषा सर्वं विधेम सततं तस्यैवोपासनं कुर्वीमहि ॥ ५ ॥ (द्यौः शान्तिः०) हे सर्वशक्तिमन्परमेश्वर त्वद्दत्तया त्वत्कृपया च द्यौरन्तरिक्षं पृथिवी जलमो- षधयो वनस्पतयो विश्वेदेवाः सर्वे विद्वांसो ब्रह्मवेदः सर्वं जगद्वास्मदर्थं

[illegible] विद्युदृद्धं सुजकारकं सर्वदास्तु । अनुकूलं भवतु नः । येन वयं वेदमार्गमनुसरेम विद्वांसो भवेम । हे भगवन्नित्यया सर्वज्ञान्यया विद्याबुद्धिविचारेण सर्वे जनसङ्घायेशान्यां सर्वथा सर्वदा तथा सर्वे जगत् ॥ ६ ॥ (प्रतोष०) हे परमेश्वर यतो यतो देशान्वं स्वभीहसे भवतुचनपालनार्थं वेद्यो ओरि तत्तत्तेभ्यो देशेभ्यो अस्मानभयं कुरु । यतः सर्वेभ्यो दिग्देशेभ्यः [illegible] भवत्कृपया वयं भवेम (भवतः कु०) तथा सर्वस्माभ्यः प्रजाभ्यः पशुभ्यश्च नो अस्मानभयं कुरु । वयं सर्वेभ्यो देशेभ्योऽस्मत्सखाभ्यः प्रजाभ्यः पशुभ्यश्चनो अस्मान् यं कुरु धर्मार्थकाममोक्षादि सुखयुक्तान्त्वा-नुकूलेन सदा संपादय ॥ ७ ॥ (यस्मिन्नृ०) हे भगवन् कृपानिधे यस्मिन्नृचि चतस्रः साम्नानि गायत्र्यादीनि च प्रतिष्ठितानि भवन्ति यस्मिन् यथार्थमोक्षविद्या च प्रतिष्ठिता भवति । (यस्मिँश्चित्त०) यस्मिँश्च प्रजानां चित्तं स्वभावात्मकं सर्वमोतमस्ति सूत्रे मणिगणाइवोतमस्ति । कस्यांकाश्च रक्षणेन चराचरं सर्वं मम मनो भवत्कृपया शिवसंकल्पं कल्याणप्रियं सत्यानुष्ठानं चास्तु येन वेदानां सत्यार्थः प्रकाश्येत हे सर्वविद्यामय सर्वाध्यक्षविन्मदुपरिकृपां विधेहि यया निर्विघ्नेन वेदार्थप्राप्यं सत्यार्थं पूर्णं वयं कुर्यामहि । भवदृष्टो वेदानां सत्यार्थो विस्तारयेमहि । यं दुष्टं वयं सर्वे सर्वोत्कृष्टगुणाभवेम । ईदृशीं कृपादृष्टिमस्मासूपरि करोतु भवान् । य तदर्थं प्रार्थ्यते तयया प्रार्थनया अस्मान् सौख्येनानुगृह्णातु । यत्र इदं सर्वं पक्षारकं कृत्वा स्थिरं भवेत् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(य आत्मदा०) जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा का विज्ञान देनेवाला है जो सब विद्या और उत्तम सुखों की प्राप्ति करानेवाला है जिस की उपासना सब विद्वान् लोग करते आये हैं और जिस का सत्योपदेश जो वेदोक्त शिक्षा है उस को अत्यन्त मान्य से सब शिष्ट लोग स्वीकार करते हैं जिस का आश्रय करना ही मोक्ष सुख का कारण है और जिस की भक्ति जो अमरणरूप दुःखों को देनेवाली है अर्थात् ईश्वर और उस का उपदेश जो सत्यविद्या सत्यधर्म और सत्यमोक्ष हैं उन को नहीं मानना और जो वेद से विरुद्ध हो के अपनी कपोलकल्पना अर्थात् तुच्छ इच्छा से बुरे कामों में वर्त्तना है उसपर ईश्वर की वक्रदृष्टि होती है वही सब दुःखों का कारण है और जिस की आज्ञा पालन ही सब सुखों का मूल है (यस्मै०) जो सुखस्व-

रूप और सब प्रजा का पति है उस परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिये सत्यप्रेम भक्तिरूप सामग्री से हमलोग नित्य भजन करें जिससे हमलोगों को किसी प्रकार का दुःख कभी न होय ॥ ५ ॥ (द्यौः शा०) हे सर्वज्ञानिमन् भगवन् आप की भक्ति और कृपा से ही द्यौः जो सूर्यादि लोकों का प्रकाश और विज्ञान है यह सब दिन हमको सुखदायक होय तथा जो आकाश में वृष्टिकर्ता जल ओषधि वनस्पति वट आदि वृक्ष हैं संसार के सब विद्युत् अग्नि जो वेद ए सब पदार्थ और इन में मिल भी जो जगत् है ये सब सुख देनेवाले हमको सब काल में होय कि सब पदार्थ सब दिन हमारे अनुकूल रहें जिससे इस वेदभाष्य के काम को सुखपूर्वक हमलोग सिद्ध करें हे भगवन् इस सब शान्ति से हमको विद्याबुद्धि विज्ञान आरोग्य और सब उत्तम सहाय को कृपा से दीजिये तथा हमलोगों और सब जगत् को उत्तम गुण और सुख के दान से बढ़ाइये ॥ ६ ॥ (यतोयतः) हे परमेश्वर आप जिस २ देश में जगत् के रक्षण और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस २ देश से भय से रहित करिये अर्थात् किसी देश से हम को किंचित् भी भय न होय (शन्नः कुरु०) वैसेही सब दिशाओं में से आप की प्रजा और पशु हैं उन से भी हम को भयरहित करें तथा हमसे उन को सुख होय और उन को भी हमसे भय न होय तथा आप की प्रजा में जो मनुष्य और पशु आदि हैं उन सब से हे धर्म अर्थ काम और मोक्ष पदार्थ हैं उन को आप के अनुग्रह से हमलोग शीघ्र प्राप्त होय जिससे मनुष्य जन्म के धर्मादि जो फल हैं वे सुख से सिद्ध होय ॥ ७ ॥ (यस्मिन्नृचः०) हे भगवन् कृपानिधे (ऋचः) ऋग्वेद (साम) सामवेद (यजूंषि) यजुर्वेद और इन तीनों के अन्तर्गत होने से अथर्ववेद भी ए सब जिस में स्थिर होते हैं तथा जिस में मोक्षविद्या अर्थात् ब्रह्मविद्या और सत्यासत्य का प्रकाश होता है (यस्मिँश्चित्त०) जिस में सब प्रजा का चित्त जो स्मरण करने की वृत्ति है सो सब गंठी भई है जैसे माला के मणिए सूत्र में गंठे भये होते हैं और जैसे रथ के पहिये के नेमि के भाग में आरे लगे होते हैं कि सब काष्ठ में जैसे अन्य काष्ठ लगे रहते हैं ऐसा जो मेरा मन है सो आप की कृपा से शुद्ध होय तथा कल्याण जो मोक्ष और सत्यधर्म का अनुष्ठान तथा असत्य के परित्याग करने का संकल्प जो इच्छा है इससे युक्त सदा होय जिस मन से हमलोगों को आप के किये वेदों के सत्य अर्थ का यथावत् प्रकाश होय हे सर्वविद्यामय सर्वार्थवित् जगदीश्वर हम पर आप कृपा धारण करें जिससे हमलोग विघ्नों से सदा अलग रहें और सत्य अर्थ सहित इस वेदभाष्य को संपूर्ण बना के आप के बनाये वेदों के सत्य अर्थ को विस्ताररूप जो कीर्ति है उस को जगत् में सदा के लिये पसारें और इस भाष्य को देखके वेदों के अनुसार सत्यका अनुष्ठान करके हम सब

कीजिए जिस गुणों से युक्त सबका दोष दूसरियें तुमको आप को आर्यता दिखाने सबका करते हैं इस को आप हमारे से कीजिए पढ़ने को सब का उपकार करनेवाला वेदभाष्य का अनुष्ठान है सो यथावत् सिद्धि को प्राप्त होय ॥

॥ इतीश्वरप्रार्थनाविषयः ॥

॥ अथ वेदोत्पत्तिविषयः ॥

सर्वात्मुक्तात्सर्वेभ्य ऋचः सामानिजज्ञिरे । छन्दांसिजज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ १ ॥ यजुः० अ० ३१ मं० ७ ।

यज्ञात्रांचोऽअपतंन्नुत्र यजुर्यस्मादपाकर्षन् । सामानियज्ञस्तो-मात्थर्वाङ्गिरसोमुखम् । छन्दांसिनूचिक्रत्रुर्क्षेत्रविदेवः ॥ २ ॥ यजुर्वे० कां० १० प्रपा० २३ अनु० ४ मं० २० ॥

॥ भाष्यम् ॥

(सर्वात्सर्वज्ञात्सर्व०) सर्वस्माद्यज्ञात्सर्वस्मिन्सर्वाद्यज्ञात्सर्वस्मात्सर्वेभ्यो-ऽस्मात् सर्वेभ्यस्मात्सर्वैपूज्यात्सर्वोपास्यात्सर्वैश्वर्यशक्तिमतः परब्रह्मणः (ऋचः) ऋग्वेदः (यजुः) यजुर्वेदः (सामानि) सामवेदः (छन्दांसि) अथर्ववेदश्च (जज्ञिरे) ज्ञात्वारो वेदास्तस्मादेव प्रकाशिता इति वेदाः । सर्वेभ्य इति वेदानामपि विशेषणं भवितुमर्हन्ति वेदाः सर्वेभ्यः । यतः सर्वेमनुष्येभ्योनुग्रहादानुं ग्रहीतुं योग्याः सन्त्यतः । जज्ञिरे प्रज्ञायन्तेति क्रियाद्वयं वेदानामनेकविद्याप्रकाशकत्वद्योतनार्थम् । तथा सर्वस्मादिति पदद्वयमीश्वरादेव वेदा ज्ञाता इत्यवधारणार्थम् ॥ वेदानां गायत्र्यादिच्छन्दोन्वितत्वात्पुनश्छन्दांसीतिपदं चतुर्थस्याथर्ववेदस्येत्यनि ज्ञापयतीत्यवधेयम् । यज्ञो वै विष्णुः । श० कां० १ अ० १ ॥ इदं विष्णुर्विचक्रमेत्येवादिवेदेषदस्य यजुर्वेदे । इति सर्वेजगत्कर्तृत्वं विष्णो परमेश्वर एव घटते नान्यस्य । विशेषृ प्रवेशने व्याप्तौ चराचरं जगत् स विष्णुः परमेश्वरः ॥ ५ ॥ (यस्माद्ऋचो०) (यस्मात्सर्वशक्तिमतः सर्वः ऋग्वेदः (अपातक्षन्) अपातक्षत उत्पन्नोस्ति यस्मात् परब्रह्मणः यजुः) यजुर्वेदः अपाकर्षन् प्रादुर्भूतोस्ति । तथैव यस्मात्सामानि सामवेदः

(आंगिरसः) अथर्ववेदश्चोत्पन्नोऽस्तः । एवमेव यस्येश्वरस्यांगिरसोऽथर्ववेदोमुखं मुख्यवत् मुख्योऽस्ति । सामानिलोमानीव सन्ति । यजुर्यस्य हृदयमृषः प्राणश्चेति रूपकालंकारः । यस्मात्चत्वारोवेदा उत्पन्नाः स क्रतमः स्विद्देवोऽस्तितं त्वं पृच्छेति प्रश्नः । अस्योत्तरम् (स्कंभे सं०) स स्कंभ सर्वजगद्धारक परमेश्वरं त्वं जानीहीति तस्मात्स्कंभात्सर्वोत्कृष्टात्परमेश्वरात् पृथक् कश्चिदप्यन्योदेवो वेदकर्त्ता नैवास्तीति मन्तव्यम् ॥ २ ॥

एवं या अरेस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इत्यादि । श० कां० १४ अ० ५ । अस्यायमभिप्रायः । याज्ञवल्क्योऽभिवदति हे मैत्रेयि महत आकाशादपि बृहतः परमेश्वरस्यैव सकाशादृग्वेदादिवेदचतुष्टयं (निःश्वसितं) निःश्वासवत्सहजतया निःसृतमस्तीति वेद्यम् । यथा शरीरात्प्रश्वासो निःसृत्य पुनस्तदेव प्रविशति तथैवेश्वराद्वेदानां प्रादुर्भावतिरोभावौ भवत इति निश्चयः ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्रथम ईश्वर को नमस्कार और प्रार्थना कर के पश्चात् वेदों की उत्पत्ति का विषय लिखा जाता है कि वेद किस ने उत्पन्न किये हैं (तस्माद्यज्ञात्स०) सत् जिस का कभी नाश नहीं होता वित् जो सदा ज्ञानस्वरूप है जिस को अज्ञान का लेश भी कभी नहीं होता आनन्द जो सदा सुखस्वरूप और सब को सुख देनेवाला है इत्यादि लक्षणों से युक्त पुरुष जो सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है जो सब मनुष्यों को उपासना के योग्य इष्टदेव और सब सामर्थ्य से युक्त है उसी परब्रह्म से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद और (छन्दांसि) इस शब्द से अथर्व भी ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि वेदों को यहण करें और वेदोक्त रीति से ही चलें (अक्षरे) और (अजायत) इन दोनों क्रियाओं के अधिक होने से वेद अनेक विद्याओं से युक्त हैं ऐसा जाना जाता है वैसे ही (तस्मात्) इन दोनों पदों के अधिक होने से यह निश्चय जानना चाहिये कि ईश्वर से ही वेद उत्पन्न हुए हैं किसी मनुष्य से नहीं वेदों में सब मंत्र गायत्र्यादिछन्दों से युक्तहीं हैं फिर (छन्दांसि) इस पद के कहने से वेदों का जो अथर्व वेद है उस की उत्पत्ति का प्रकाश होता है शतपथ आदि ब्राह्मण और वेदमंत्रों के प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि यज्ञ शब्द से विष्णु का और विष्णुशब्द से सर्व व्यापक जो परमेश्वर है उसी का यहण होता है क्योंकि सब जगत् की उत्पत्ति करनी परमेश्वर में ही घटती है अन्यत्र नहीं ॥ १ ॥ (यस्माद्वृचो अपा०) जो सर्व शक्तिमान् परमे-

ईश्वर है उसी से (ऋचः) ऋग्वेद (यजुः) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद (छन्दांसि) अथर्ववेद ॥ चारों उत्पन्न हुए हैं इसी प्रकार सृष्टयादिकार से वेदों की उत्पत्ति का प्रकाश ईश्वर करता है कि अथर्ववेद मेरे मुख की सम तुल्य सामवेद नेत्रों के समान यजुर्वेद हृदय के समान और ऋग्वेद प्राण को कहा है (यूयं खलु सर्वे०) कि चारों वेद जिससे उत्पन्न हुए हैं सो कौन सा देव है उस को तुम मुझ से सुनो इस प्रश्न का यह उत्तर है कि (स्वयंभूः) जो स्वयं जगत् का धारण करता परमेश्वर है उस का नाम स्वयंभू है उसी को तुम वेदों का कर्त्ता जानो और यह भी जानो कि उस को छोड़ के मनुष्यों को उपासना करने के योग्य दूसरा कोई देवदेव नहीं है क्योंकि ऐसा अभागी कौन मनुष्य है जो वेदों के कर्त्ता सर्वज्ञतादिगुणान्वित परमेश्वर को छोड़ के दूसरे को परमेश्वर मान के उस सदृश करे ॥ २ ॥ (यदेवा वारेय०) याज्ञवल्क्य महर्षि[1] जो महर्षि हुए हैं वह अपनी पंडिता मैत्रेयी स्त्री को उपदेश करते हैं कि हे मैत्रेयि जो आकाशादि में भी बड़ा सर्वव्यापक परमेश्वर है उस से ही ऋक् यजुः साम और अथर्व ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं जैसे मनुष्य के शरीर से श्वासा बाहर जो चाले फिर भीतर जो जाती है इसी प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाश करता है और प्रलय में संसार में वेद नहीं रहते परन्तु उस के ज्ञान में भीतर ये सदा बने रहते हैं जैसे अङ्कुरस्थ बीज में अङ्कुर प्रथम ही रहता है वही वृक्षरूप हो के फिर भी बीज के भीतर रहता है इसी प्रकार से वेद भी ईश्वर के ज्ञान में सब दिन बने रहते हैं उन का नाश कभी नहीं होता क्योंकि वह ईश्वर की विद्या है इससे इन को नित्य ही जानना ॥

अत्र केचिदाहुः । निरवयवात्परमेश्वराच्छब्दमयो वेदः कथमुत्पद्येतेति । अत्र ब्रूमः । न सर्वशक्तिमतीश्वरे शंकैयमुपपद्यते । कुतः । सुखप्राप्त्यादिसाधनसंसरापि तस्य कार्ये कर्तुं सामर्थ्यस्य सदैव विद्यमानत्वात् । अन्यच्च यथा मनसि विचारणावसरे प्रश्नोत्तरादिशब्दोच्चारणं भवति तथेश्वरेऽपि मन्तव्यम् । योऽस्ति खलु सर्वशक्तिमान् स नैव कस्यापि सहायं कार्ये कर्तुं गृह्णाति । यथाऽन्नादीनां सहायेन विनाकार्ये कर्तुं सामर्थ्यं नास्ति । नचेश्वरमीश्वरे । यदा निरवयवेनेश्वरेण सकलं जगद्विरचितं तदा वेदरचनैकाशंकास्ति (कुतः । वेदस्य सूक्ष्मरचनसज्ञत्वात्यपि सच्चदार्थयुक्तं रचनमीश्वरेण कृतमस्त्यतः ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस विषय में कितने ही पुरुष ऐसा प्रश्न करते हैं कि ईश्वर निराकार

---

[1] महर्षि

है उससे शब्दरूप वेद कैसे उत्पन्न होसक्ते हैं इस का यह उत्तर है कि परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है उस में ऐसी शंका करनी सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि मुख और प्राणादि साधनों के विना भी परमेश्वर में मुख और प्राणादि के काम करने का अनंत सामर्थ्य है कि मुख के विना मुख का काम और प्राणादि के विना प्राणादि का काम वह अपने सामर्थ्य से यथावत् कर सक्ता है यह दोष तो हम जीवनेत्रों में आसक्ता है कि मुखादि के विना मुखादि का कार्य नहीं करसक्ते हैं क्योंकि हमलोग अल्प सामर्थ्य वाले हैं और इस में यह दृष्टान्त भी है कि मनमें मुखादि अवयव नहीं हैं तथापि जैसे उस के भीतर प्रश्नोत्तर आदि शब्दों का उच्चारण मानस व्यापार में होता है वैसे ही परमेश्वर में भी जानना चाहिये और जो संपूर्ण सामर्थ्य वाला है सो किसी कार्य के करने में किसी का सहाय यहण नहीं करता क्योंकि वह अपने सामर्थ्य से ही सब कार्यों को करसक्ता है जैसे हमलोग विना सहाय से कोई काम नहीं करसक्ते वैसा ईश्वर नहीं है जैसे देखो कि जब जगत् उत्पन्न नहीं हुआ था उस समय निराकार ईश्वर ने संपूर्ण जगत् को बनाया तब वेदों के रचने में क्या शंका रही जैसे वेदों में अत्यंत सूक्ष्म विद्या का रचन ईश्वर ने किया है वैसेही जगत् में भी नेत्र आदि पदार्थों का अत्यंत आश्चर्यरूप रचन किया है तो क्या वेदों को रचना निराकार ईश्वर नहीं करसक्ता ॥

नन्वेवं जगद्रचने तु साक्षीश्वरमंतरेण न कस्यापि सामर्थ्यमस्ति वेदरचने त्वन्यस्यान्यग्रन्थरचनवत्सामर्थ्यं स्यादिति । अत्रोच्यते । ईश्वरेण रचितस्य वेदस्याध्ययनानन्तरमेव ग्रन्थरचनैकस्यापि सामर्थ्यं स्याच्चान्यथा । नैव कश्चिदपि पठनश्रवणमन्तरा विद्वान् भवति । यथेदानीम् । किंचिदपि शास्त्रं पठित्वोपदेशं श्रुत्वा व्यवहारं च दृष्ट्वैव मनुष्याणां ज्ञानं भवति । तद्यथा । कस्यचित्संतानमेकान्ते रक्षयित्वा ऽन्नपानादिकं दत्त्वा-दासेन सह भाषणादिव्यवहारं लेशमात्रमपि न कुर्याद्यावत्तस्य मरणं न स्यात् । यथा तस्य किंचिदपि यथार्थं ज्ञानं न भवति । यथा च व्यवहारस्थानां मनुष्याणामुपदेशमंतरा पशुवत्प्रवृत्तिर्भवति । तथैवादिसृष्टिमारभ्याद्यापर्यंतं वेदोपदेशमंतरा सर्वमनुष्याणां प्रवृत्तिर्भवेत् । पुनर्ग्रन्थरचनस्य तु का कथा ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्रश्न जगत् के रचने में तो ईश्वर के विना किसी जीव का सामर्थ्य नहीं है परंतु जैसे व्याकरणादि शास्त्र रचने में मनुष्यों का सामर्थ्य होता है वैसे वेदों के रचने में भी जीव का सामर्थ्य हो सक्ता है उत्तर नहीं किन्तु जब ईश्वर ने प्रथम वेद रचे हैं उन को पढ़ने के पश्चात् ग्रन्थ रचने का सामर्थ्य किसी

मनुष्य को वेद सहाय है उसको पढ़ने और ज्ञान के बिना कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सकता किंतु इस विषय में जिसने आप्त की पढ़ने जिसको का उपदेश सुनने और मनुष्यों से परस्पर व्यवहारों को देख लेता मनुष्यों को ज्ञान होता है अन्यथा कभी नहीं होता और जिसने मनुष्य से कालक्रम को आदि में उत्पत्ति में सबके जन्म को जब और जब सृष्टि से लेके उस के साथ आचार्यादि व्यवहार देखा सुना और जिसने मनुष्य न करे कि जब तक उस को सहाय न होय इत्यादि उस को इसी प्रकार से सहाय होता मनुष्यपने का भी ज्ञान नहीं होता सकता तथा जैसे बड़े वन में मनुष्यों को बिना उपदेश के यथार्थ ज्ञान नहीं होता किंतु पक्षियों को नहीं उन को सहज देखने में आती है वैसे ही वेदों को उपदेश के बिना भी सब मनुष्यों की प्रवृत्ति होजाती फिर शब्द अर्थ के सामर्थ्य की तो कथा क्या कहनी है इसी वेदों को ईश्वर से रचित मानते हैं यही सत्यार्थ है अन्यथा नहीं ॥

तैर्यं साक्षात् । ईश्वरेण मनुष्येभ्यः स्वाभाविकं ज्ञानं दत्तं नतु वेदान्यत्तेभ्य उत्कृष्टमस्ति नैव तेन विना वेदानां शब्दार्थसंबन्धानावपि ज्ञातुं शक्तिमुपपद्यते तदुच्यत्वा यन्त्ररचनापि दर्शयन्त्येव पुनः किमर्थं तत्रते वेदोत्पत्तेरीश्वरेण कृतत्वात्तेषु । यदं प्राप्ते शक्यतेऽहे । नैव पूर्वोक्तायां सिद्धे नापेक्षेति रक्षिताय वास्तवाय साक्षात्कृतधर्मेभ्यो ऋषिभ्योऽपरेभ्यश्च स्वाभाविकं ज्ञानं दत्तं किंतु । कार्यं साक्षात्कृतधर्मेभ्यः सिद्धा प्राप्तिरर्थानरेण वेदाध्ययनेन च विना पण्डितंमन्या मन्यन्ते । तस्मात् सिद्धायते न सिद्धया क्रियाध्ययने न च स्वाभाविकज्ञानमात्रेण सत्यार्थे निर्णेतुं भवितुमर्हति । यथास्मदादिभिरन्येषां विदुषां विदुत्कृतानां ग्रन्थानां च सकाशादनेकविधं ज्ञानं गृहीत्वैव ग्रन्थान्तरं रच्यते । तथेश्वरज्ञानस्य सर्वेषां मनुष्यज्ञानापेक्षयाऽत्यर्थं श्रेष्ठत्वं । किंच सृष्टेरारंभसमये पठनपाठनक्रमो ग्रन्थश्च कश्चिदप्यासीन्नहीत्यक्षरोपदेशपरंपरा न च कस्यापि विद्याभंगोऽभूत् पुनः कथं कश्चिज्जनो ग्रन्थं रचयेत् । मनुष्याणां नैमित्तिकज्ञाने स्वातंत्र्याभावात् । स्वाभाविकज्ञानस्यापेक्षेत विद्याप्राप्त्यनुपपत्तेश्च । यच्चोक्तं स्वकीयं ज्ञानमुत्कृष्टमित्यादि तदप्यसंजसस्य । तस्य साधनकोटौ प्रविष्टत्वात् । चतुर्थत्वात् । यथा चतुर्थस्य साहित्येनाविना ह्यकिंचित्करत्वम् । तथान्येषां विदुषामीश्वरज्ञानस्य च साहित्येनाविना स्वाभाविकज्ञानमप्यकिंचित्करमेव भवतीति ॥

॥ आक्षेप ॥

प्र० ईश्वर ने मनुष्यों को स्वाभाविक ज्ञान दिया है सो सब मनुष्यों में समान है क्योंकि उस के बिना वेदों से शब्द अर्थ और संबन्ध का ज्ञान कभी

नहीं होसक्ता और जब उस ज्ञान की क्रम से वृद्धि होगी तब मनुष्य लोग विद्या पुस्तकों को भी रच लेंगे पुनः वेदों की उत्पत्ति ईश्वर से क्यों मानते हो॰ हां प्रथम दृष्टान्त बालक का एकान्त में रखने का और दूसरा वनवासियों का भी कहा था क्या उन को स्वाभाविक ज्ञान ईश्वरने नहीं दिया है वे स्वाभाविक ज्ञान से विद्वान् क्यों नहीं होते इससे यह बात निश्चित है कि ईश्वर का किया उपदेश जो वेद है उस के विना किसी मनुष्य को यथार्थ ज्ञान नहीं होसक्ता जैसे हमलोग वेदों के पढ़ने विद्वानों की शिक्षा और उन के किये ग्रन्थों को पढ़े विना पंडित नहीं होते वैसेही सृष्टि की आदि में भी परमात्मा जो वेदों का उपदेश नहीं करता तो आज पर्यन्त किसी मनुष्य को धर्मादि पदार्थों की यथार्थ विद्या नहीं होती इससे क्या जाना जाता है कि विद्वानों की शिक्षा और वेद पढ़ने के विना केवल स्वाभाविक ज्ञान से किसी मनुष्य का निर्वाह नहीं होसक्ता जैसे हमलोग अन्य विद्वानों से वेदादि शास्त्रों का अनेक प्रकार के विज्ञान को ग्रहण करके ही पीछे ग्रन्थों को भी रच सके हैं वैसेही ईश्वर के ज्ञान की भी अपेक्षा सब मनुष्यों को अवश्य है क्योंकि सृष्टि के आरंभ में पढ़ने और पढ़ाने की कुछ भी व्यवस्था नहीं थी तथा विद्या का कोई ग्रंथ भी नहीं था उस समय ईश्वर के किये वेदोपदेश के विना विद्या के नहीं होने से कोई मनुष्य ग्रंथ की रचना कैसे करसक्ता क्योंकि सब मनुष्यों को सहायकारी ज्ञान में स्वतंत्रता नहीं है और स्वाभाविक ज्ञानमात्र से विद्या की प्राप्ति किसी को नहीं होसक्ती इसीलिये ईश्वर ने सब मनुष्यों के हितके लिये वेदों की उत्पत्ति की है और जो यह कहा था कि अपना ज्ञान सब वेदादि ग्रन्थों से श्रेष्ठ है सोभी अन्यथा है क्योंकि वह स्वाभाविक जो ज्ञान है सो साधनकोटि में है जैसे मनके संयोग के विना आंख से कुछ भी नहीं देख पड़ता तथा आत्मा के संयोग के विना मनसे भी कुछ नहीं होता वैसे ही जो स्वाभाविक ज्ञान है सो वेद और विद्वानों की शिक्षा के ग्रहण करने में साधनमात्रही है साक्षात् पशुओं के समान व्यवहार का भी साधन है परंतु वह स्वाभाविक ज्ञान धर्म अर्थ काम और मोक्षविद्या का साधन स्वतंत्रता से कभी नहीं होसक्ता ॥

वेदोत्पादनेश्वरस्य किं प्रयोजनमस्तीत्यत्र उच्यताम् । उच्यते वेदानामनुत्पादने खलु तस्य किं प्रयोजनमस्तीति असौतरं तु वयं न ब्रूमः । सत्यमेवमेतत् । तावद्वेदोत्पादने यदस्ति प्रयोजनं तच्छृणुत । ईश्वरे इच्छा विद्यास्ति नवा । अस्ति । सा किमर्थास्ति । स्वार्था । ईश्वरः परोपकारं न करोति किम् । करोति तेन किम् । तेनेदमस्ति विद्या स्वार्था परार्था च भवति तस्मात्तद्विषयत्वात् । यदस्मदर्थमीश्वरो विद्योपदेशं न कुर्यात्तदान्यग्रन्थे सा निष्फला स्यात् । तस्मादीश्वरेण स्वविद्याभूत-

वेदोपदेशेन स्व प्रयोजनता संसाधितम् । परमेश्वरोऽखिलेऽहि परमेश्वरोऽस्ति विद्वत्सु । यथा पिता स्वसन्ततिं प्रतिसदैव कृपां दृधाति । तथेश्वरोऽपि परमकृपया सर्वमनुष्यार्थं वेदोपदेशमुपचक्रे । चान्यथाऽपरंपरया मनुष्या नां धर्मार्थकाममोक्षसिद्धाविना परमानन्दश्च न स्यात् । यथा कृषायमाणेनेश्वरेण प्रजासुखार्थं वृक्षमूलफलतृणादिकं रचितं न तथैव सर्वविद्यामयी वेदविद्यामुपदिशेत् । किंच ब्रह्माऽऽदिभ्योत्कृष्टपर्वदृष्टिप्राप्या यावत्सृष्टे भवति न तावत् विद्याग्रहणम्य सहस्रशतैरपि तुल्ये भवत्यतो वेदोपदेश ईश्वरेण कृत्यवानीति निश्चयः ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० वेदों के उत्पन्न करने में ईश्वर को क्या प्रयोजन था उ० मैं तुमसे पूछता हूं कि वेदों के उत्पन्न नहीं करने में उस को क्या प्रयोजन था जो तुम यह कहो कि इस का उत्तर हम नहीं जान सके तो ठीक है क्योंकि वेद तो ईश्वर की नित्यविद्या है उस की उत्पत्ति वा अनुत्पत्ति होती नहीं परन्तु हम ऐसे लोगों के लिये ईश्वर ने जो वेदों का प्रकाश किया है सो उस की हम पर परम कृपा है जो वेदोत्पत्ति का प्रयोजन है सो आप लोग सुनें प्र० ईश्वर में अनन्त विद्या है वा नहीं उ० है प्र० तो उस को दिया किस प्रयोजन के लिये है उ० अपने ही लिये जिस से सब पदार्थों का रचना और जानना होता है प्र० अच्छा तो मैं आप से पूछता हूं कि ईश्वर परोपकार भी करता है वा नहीं उ० ईश्वर परोपकारी है इस्से क्या आया प्र० इसमें यह बात आती है कि विद्या जो है सो स्वार्थ और परार्थ के लिये होती है क्योंकि विद्या का यही गुण है कि स्वार्थ और परार्थ इन दोनों को सिद्ध करना जो परमेश्वर अपनी विद्या को हमलोगों के लिये उपदेश न करे तो विद्या में जो परोपकार करना गुण है सो उस का नहीं रहे इस्से परमेश्वर ने अपनी वेदविद्या का हमलोगों के लिये उपदेश करके सफलता सिद्ध की है क्योंकि परमेश्वर हमलोगों का माता पिता के समान है हम सब लोग जो उस की प्रजा हैं उन पर नित्य कृपादृष्टि रखता है जैसे अपने सन्तानों के ऊपर पिता और माता सदैव करुणा ही धारण करते हैं कि सब प्रकार से हमारे पुत्र सुख पावें ऐसे ही ईश्वर भी सब मनुष्यादि सृष्टि पर कृपादृष्टि सदैव रखता है इसीही वेदों का उपदेश हमलोगों के लिये किया है । जो परमेश्वर अपनी वेदविद्या का उपदेश मनुष्यों के लिये न करता तो धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि किसी को यथावत् प्राप्त न होती उस के बिना परम पुरुषार्थ की सिद्धि जो नहीं होता जैसे परम कृपालु ईश्वर ने प्रजा के सुख के लिये वृक्षमूल फल और घास आदि छोटे २ भी पदार्थ रचे हैं वैसे ईश्वर

सब सुखों के प्रकाश करनेवाली सब सत्यविद्याओं से युक्त वेदविद्या का उपदेश भी प्रजा के सुख के लिये क्यों न करता क्योंकि जितने ब्रह्माण्ड में उत्तम पदार्थ हैं उनकी प्राप्ति से जितना सुख होता है सो सुख विद्या प्राप्ति होने के सुखके हजार में अंश के भी सम तुल्य नहीं होसक्ता ऐसा सर्वोत्तम विद्या पदार्थ जो वेद है उस का उपदेश परमेश्वर क्यों न करता इससे निश्चय करके यह जानना कि वेद ईश्वर के ही बनाये हैं ॥

ईश्वरेण लेखनीमसीपात्रादिसाधनानि वेदपुस्तकलेखनाय कुतो लब्धानि। अत्रोच्यते। अहहह महतीयं शंका भवता कृता विना हस्तपादादयवैः काष्ठलोष्ठादिसामग्रीसाधनैश्च यथेश्वरेण जगद्विरचितं तथा वेदा अपि रचिताः सर्वशक्तिमतीश्वरे वेदरचनं प्रत्येव माशंकि। किंतु पुस्तकस्थावेदा तेनादौ नोत्पादिताः। किं तर्हि ज्ञानमध्ये प्रेरिताः। केषाम्। अग्निवाय्वादित्यांगिरसाम्। ते तु ज्ञानरहिता जडा मन्ति। मैवं वाच्यं सृष्ट्यादौ मनुष्यदेहधारिणस्तेह्यासन्। कुतः। जडे ज्ञानकार्याऽसम्भवात्। यत्रार्थो संभवोस्ति तत्र लक्षणा भवति। तद्यथा। कश्चिदाप्तः कंचित्प्रति ब्रूते मंचाः क्रोशन्तीति। अत्र मंचस्था मनुष्याः क्रोशन्तीति विज्ञायते। तथेवात्रापि विज्ञायताम्। विद्याप्रकाशसंभवो मनुष्येष्वेव भवितुमर्हतीति। अत्र प्रमाणम्। तेभ्यस्तेभ्यस्तयोवेदा अजायंताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः। श० कां० ११ अ० १। यथा ज्ञानमध्ये प्रेरयित्वा तद्द्वारा वेदाः प्रकाशिताः। सत्यमेवमेतत्। परमेश्वरेण तेभ्यो ज्ञानं दत्तं ज्ञानेन तैर्वेदानां रचनं कृतमिति विज्ञायते। मैवं विज्ञायि। ज्ञानं किं प्रकारकं दत्तम्। वेदप्रकारकं। तदीश्वरस्य वा तेषाम्। ईश्वरस्येति। पुनस्तेनैव प्रणीता वेदा आहोस्वित्तैश्च। यस्य ज्ञानं तेनैव प्रणीताः। पुनः किमर्थो शंका कृता तैरेव रचिता इति। निश्चयकरणार्थो ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० वेदों के रचने और वेदपुस्तक लिखने के लिये ईश्वर ने लेखनी स्याही और दवात आदि साधन कहां से लिये क्योंकि उस समय में कागज आदि पदार्थ तो बनेहीं न थे उ० वाह वाह वाह जी आप ने बड़ी शंका करी आप की बुद्धि की क्या स्तुति करूं अच्छा आप से मैं पूछता हूं कि हाथ पग आदि अंगों से बिना तथा काष्ठ लोष्ठ आदि सामग्री साधनों से बिना ईश्वर ने जगत् को क्यों कर रचा है जैसे हाथ आदि अवयवों से बिना उस ने सब जगत् को रचा है वैसे ही वेदों को भी सब साधनों के बिना

सकता है क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है इससे ऐसी शंका उन में करना ठीक नहीं परन्तु इस के उत्तर में इस बात को जानो कि इन पुरुषों के लिये सृष्टि की आदि में ईश्वर ने प्रकाशित नहीं किये हैं प्र० तो किस प्रकार से किये हैं उ० ज्ञान के बीच में प्र० किन के ज्ञान में उ० अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा के प्र० वे तो जड़ पदार्थ हैं उ० ऐसा मत कहो वे सृष्टि की आदि में मनुष्य देहधारी हुए थे क्योंकि जड़ में ज्ञान के कार्य का असंभव है और जहां २ असंभव होता है वहां २ लक्षणा होती है जैसे किसी सत्यवादी विद्वान् पुरुष ने किसी से कहा कि खेतों में संचान पुकारते हैं इस वाक्य में लक्षणा से यह अर्थ होता है कि संचान के ऊपर मनुष्य पुकार रहे हैं इसी प्रकार से यहां भी जानना कि विद्या के प्रकाश होने का संभव मनुष्यों में ही होसकता है अन्यत्र नहीं इस में (तेभ्य:०) इत्यादि शतपथ ब्राह्मणों का प्रमाण लिखा है उन चार मनुष्यों के ज्ञान के बीच में वेदों का प्रकाश करके उन से ब्रह्मादि के बीच में वेदों का प्रकाश कराया था प्र० सत्य बात है कि ईश्वर ने उन को ज्ञान दिया होगा और उन ने अपने ज्ञान से वेदों का रचन किया होगा उ० ऐसा तुम को कहना उचित नहीं क्योंकि तुम यह भी जानते हो कि ईश्वर ने उन को ज्ञान किस प्रकार का दिया था उ० उन को वेदरूप ज्ञान दिया था प्र० अच्छा तो मैं आप से पूछता हूं कि वह ज्ञान ईश्वर का है वा उन का उ० वह ज्ञान ईश्वर का ही है प्र० फिर आप से मैं पूछता हूं कि वेद ईश्वर के बनाये हैं वा उन के उ० जिस का ज्ञान है उसी ने वेदों को बनाया प्र० फिर उन्हीं ने वेद रचे हैं यह शंका आप ने क्यों की थी उ० निश्चय करने और कराने के लिये ॥

ईश्वरो न्यायकार्य्यस्ति वा पक्षपाती । न्यायकारी । तर्हि चतुर्णामेव हृदयेषु वेदाः प्रकाशिताः कुतो न सर्वेषामिति । अत्राह । अत्र ईश्वरे पक्षपातस्य लेशोऽपि नैवागच्छति किन्त्वनेन तस्य न्यायकारिणः परमात्मनः सत्यन्यायः प्रकाशितो भवति कुतः न्यायस्यैव नामास्ति यो यादृशं कर्म कुर्यात्तस्मै तादृशमेव फलं दद्यात् । अत्रैवं वेदितव्यं तेषामेव पूर्व-पुण्यमासीद्यतः खल्वेतेषां हृदये वेदानां प्रकाशः कर्त्तुं योग्योऽस्ति । किं च ते तु सृष्टेः प्रागुत्पन्नास्तेषां पूर्वपुण्यं कुत आगतम् । अत्र ब्रूमः । सर्वे जीवाः स्वरूपतोऽनादयस्तेषां कर्म्माणि सर्वं कार्य्यं जगच्च प्रवाहेणैवानादीनि सन्तीति । एतेषामनादित्वस्य प्रमाणपूर्वकं प्रतिपादनमग्रे करिष्यते ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० ईश्वर न्यायकारी है वा पक्षपाती उ० न्यायकारी प्र० जब

परमेश्वर न्यायकारी है सो सब के हृदयों में वेदों का प्रकाश क्यों नहीं किया क्योंकि सारों के हृदयों में प्रकाश करने से ईश्वर में पक्षपात आता है उ० इससे ईश्वर में पक्षपात का लेश कदापि नहीं आता किंतु उस न्यायकारी परमात्मा का साक्षात न्याय ही प्रकाशित होता है क्योंकि न्याय उस को कहते हैं कि जो जैसा कर्म करे उस को वैसा ही फल दिया जाय अब जानना चाहिये कि उन्हीं चार पुरुषों का ऐसा पूर्वपुण्य था कि उन के हृदय में वेदों का प्रकाश किया गया प० से चार पुरुष सो सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुए थे उन का पूर्वपुण्य कहां से आया उ० जीव जीवों के कर्म और स्थूल कार्य्य जगत ए तीनों अनादि हैं जीव और कारण जगत स्वरूप से अनादि हैं कर्म और स्थूल कार्य जगत प्रवाह से अनादि हैं इस की व्याख्या प्रमाण पूर्वक आगे लिखी जायगी ॥

किं गायत्र्यादिच्छन्दो रचनमपीश्वरेणैव कृतं । इयं कुतः शंकाभूत् । किमीश्वरस्य गायत्र्यादिच्छन्दो रचनज्ञानं नास्ति । अस्त्येव तस्य सर्वविद्याश्रयत्वात् । अतो निर्मूला सा शंकास्ति । चतुर्मुखेन ब्रह्मणा वेदानि रमा.यैतेत्येतिह्यम् । मैवं वाच्यम् । ऐतिह्यस्य शब्दप्रमाणान्तर्भावात् । आप्तोपदेशः शब्दः ॥ न्यायशास्त्रे अ० १ सू० ८ इति गौतमाचार्येणोक्तत्वात् । शब्द ऐतिह्यमित्यादि च । अस्यैवोपरि । आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा यथा दृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयुक्तउपदेष्टा साक्षात्करणमर्थस्यात्मा स्वया प्रवर्त्तत इत्याप्तः । इति न्यायभाष्ये वात्स्यायनोक्तेः । अतः सत्यस्यैवैतिह्यत्वेन ग्रहणं नानृतस्य । यत्सत्यप्रमाणमाप्तोपदिष्टमैतिह्यं तद् ग्राह्यं नातो विपरीतमिति अनृतस्य प्रमाणगीतत्वात् । एवमेव व्यासेनर्षिभिश्च वेदा रचिता इत्यादिष्वपि मिथ्यैवास्तीति मन्तव्यम् । नवीनपुराणग्रन्थानां संस्थग्रन्थानां च वेदार्थोपनिबन्धेति ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० क्या गायत्र्यादि छन्दों का भी रचन ईश्वरने ही किया है उ० यह शंका आप को कहां से हुई प्र० मैं तुम से पूछता हूं क्या गायत्र्यादि छन्दों के रचने का ज्ञान ईश्वर को नहीं है उ० ईश्वर को सब ज्ञान है अच्छा सो ईश्वर के समस्त विद्यायुक्त होने से आप की यह शंका भी निर्मूल है प्र० चार मुख के ब्रह्माजी ने वेदों को रचा ऐसे इतिहास को हमलोग सुनते हैं उ० ऐसा मत कहो क्योंकि इतिहास को शब्दप्रमाण के भीतर गिना है (आप्तो०) अर्थात् सत्यवादी विद्वानों का जो उपदेश है उस को शब्दप्रमाण में गिनते हैं ऐसा न्यायदर्शन में गौतमाचार्यने लिखा है तथा शब्दप्रमाण

मे जो युक्त है वही इतिहास मानने के योग्य है अन्य नहीं इस सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि ने आप्त का लक्षण कहा है जो कि साक्षात् सब पदार्थ विद्याओं का जाननेवाला कपट आदि दोषों से रहित धर्मात्मा है कि जो सदा सत्यवादी सत्यमानी और सत्यकारी है जिस की पूर्णविद्या से आत्मा में जिस प्रकार का ज्ञान है उस के कहने की इच्छा की प्रेरणा से सब मनुष्यों पर कृपादृष्टि से सब सुख होने के लिये सत्य उपदेश का करनेवाला है और जो पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त सब पदार्थों को यथावत् साक्षात् करना और उसी के अनुसार वर्त्तना इसी का नाम आप्ति है इस आप्ति से जो युक्त होय उस को आप्त कहते हैं उसी के उपदेश का प्रमाण होता है इससे विपरीत मनुष्य का नहीं क्योंकि सत्य वृत्तान्त का ही नाम इतिहास है असत्य का नहीं सत्य प्रमाणयुक्त जो इतिहास है वही सब मनुष्यों को ग्रहण करने के योग्य है इससे विपरीत इतिहास का ग्रहण करना किसी को योग्य नहीं क्योंकि प्रमादी पुरुष के मिथ्या कहने का इतिहास में ग्रहण नहीं होता इसी प्रकार व्यासजी ने चारों वेदों की संहिताओं का संग्रह किया है दक्षादि इतिहासों को भी मिथ्याही जानना चाहिये जो शाक्त कौल के बने ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराण और ब्रह्मयामल आदि ग्रन्थ हैं इनमें कहे इतिहासों का ग्रहण करना किसी मनुष्य को योग्य नहीं क्योंकि इनमें अश्लील और अप्रमाण कपोलकल्पित मिथ्या इतिहास बहुत लिख रक्खे हैं और जो सत्यग्रन्थ आप्तपुरुष ब्राह्मणादि हैं उन के इतिहासों का कभी त्याग नहीं करना चाहिये ॥

यो मंत्रसूक्तानामृषिर्लिखितस्तेनैव तद्दृष्टमिति कुतो न स्यात् । सेवं चादि । ब्रह्मादिभिरपि वेदानामध्ययनप्रश्नयोः कृतत्वात् । यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै० । इति श्वेताश्वतरोपनिषदादिवचनस्य विद्यमानत्वात् । यच्च यदर्षीणामुत्पत्तिरपि नासीत्तदा ब्रह्मादीनां सर्गादौ वेदानां वर्त्तमानत्वात् । तद्यथा । अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्मसनातनम् । दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ १ ॥ अ० १ । अध्यापयामासपितॄन् शिशुरांगिरसः कविः अ० २ । इति मनुवाक्यत्वात् । अग्न्यादीनां साक्षाद् ब्रह्मापि वेदानामध्ययनं चक्रे अन्येषां व्यासादीनां तु का कथा ॥

॥ समाप्तम् ॥

प्र० जो सूक्त और मंत्रों के ऋषि लिखे जाते हैं उन्हीं ने ही वेद रचे होंय ऐसा क्यों नहीं माना जाय उ० ऐसा मत कहो क्योंकि ब्रह्मादिने भी वेदों को पढ़ा है सो श्वेताश्वतर आदि उपनिषदों में यह वचन है कि जिसने ब्रह्मा को उत्पन्न किया और ब्रह्मादि को सृष्टि की आदि में अग्नि आदि

के द्वारा वेदों का भी उपदेश किया है उसी परमेश्वर के शरण को हमलोग प्राप्त होते हैं इसी प्रकार ऋषियोंने भी वेदों को पढ़ा है क्योंकि जब मरीच्यादि ऋषि और व्यासादि मुनियों का जन्म भी नहीं हुआ था उस समय में भी ब्रह्मादि के समीप वेदों का वर्त्तमान था इस में मनु के श्लोकों की भी साक्षी है कि पूर्वोक्त अग्नि वायु रवि और अंगिरा से ब्रह्माजी ने वेदों को पढ़ा था जब ब्रह्माजी ने वेदों को पढ़ा था तो व्यासादि और हमलोगों की तो कथा क्याही कहनीहै ॥

कथं वेदः श्रुतिश्च द्वेनाम्नी ऋक्संहितादीनां जाते इति । अथैवशात् (विद) ज्ञाने (विद) सत्तायाम् । (विदृ) लाभे (विद) विचारणे । एतेभ्यो हलश्चेति सूत्रेण करणाधिकरणकारकयोर्घञ्प्रत्यये कृते वेदशब्दः साध्यते । तथा (श्रु) श्रवणे । ह्रत्यस्माद्धातोः करणकारके क्तिन्प्रत्यये कृते श्रुतिशब्दो व्युत्पद्यते । विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते विन्दते विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सर्वाः सत्यविद्यायैर्येषु वा तथा विदुषश्च भवन्ति ते वेदाः । तथा ऽऽदिसृष्टिमारभ्याद्यपर्यन्तं ब्रह्मादिभिः सर्वाः सत्यविद्याः श्रूयन्ते ऽनया सा श्रुतिः । न कस्य चिद्देहधारिणः सकाशात्कदाचित्कोपि वेदानां रचनं दृष्टवान् । कुतः । निरवयवेश्वरादेषां प्रादुर्भावात् । अग्निवाय्वादित्याङ्गिरसस्तु निमित्तीभूता वेदप्रकाशार्थमीश्वरेण कृता इति विज्ञेयम् । तेषां ज्ञानेन वेदानामनुत्पत्तेः । वेदेषु शब्दार्थसम्बन्धाः परमेश्वरादेव प्रादुर्भूताः तस्य पूर्णविद्यायुक्तत्वात् । अतः किं सिद्धमग्निवाय्वादित्याङ्गिरो मनुष्यदेहधारिजीवद्वारेण परमेश्वरेण श्रुतिर्वेदः प्रकाशीकृत इति बोध्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० वेद और श्रुति ए दो नाम ऋग्वेदादि संहिताओं के क्यों हुए हैं उ० अर्थभेद से क्योंकि एक (विद) धातु ज्ञानार्थ है दूसरा (विद) सत्तार्थ है तीसरे (विदृ) का लाभ अर्थ है चौथे (विद) का अर्थ विचार है इन चार धातुओं से करण और अधिकरणकारक में घञ् प्रत्यय करने से वेदशब्द सिद्ध होता है तथा (श्रु) धातु श्रवण अर्थ में है इससे करण कारक में क्तिन् प्रत्यय के होने से श्रुति शब्द सिद्ध होता है जिन के पढ़ने से यथार्थ विद्या का विज्ञान होता है जिन को पढ़ के विद्वान होते हैं जिन से सब सुखों का लाभ होता है और जिन से ठीक २ सत्यासत्य का विचार मनुष्यों को होता है इससे ऋक् संहितादि का वेद नाम है वैसेही सृष्टि के आरंभ से आज पर्यंत और ब्रह्मादि से लेके हमलोग पर्यंत जिस से सब सत्यविद्याओं को

जानते आते हैं इससे वेदों का अनित्य बहना है क्योंकि किसी देहधारी ने वेदों के बनानेवाले को साक्षात् अथवा नहीं देखा इस कारण से जानपड़ता कि वेद निराकार ईश्वर से नहीं उत्पन्न हुए हैं और उन को हमने सुनानेहारे आज पर्यंत सब लोग चले आते हैं तथा अग्नि वायु आदित्य और अंगिरा इन चारों मनुष्यों को जैसे वाहित को कोई बनावे वा काठ की पुतली को चेष्टा करावे इसी प्रकार ईश्वर ने उन को निर्मितमात्र किया था क्योंकि उन को ज्ञान से वेदों की उत्पत्ति नहीं हुई किंतु इससे यह जानना कि वेदों में जितने शब्द अर्थ और संबंध हैं वे सब ईश्वर ने अपनेही ज्ञान से उनके हृदय प्रकट किये हैं ॥

वेदानामुत्पत्तौ द्विपञ्चाशत् वर्षाणि व्यतीतानि ॥ अथोच्यते गतोऽहन्: एकाश्वीतिः कोट्यो ऽष्टौलक्षाणि द्विपंचाशत्सहस्राणि नवशतानि षट्सप्तितश्चै-काधिकानि १९६०८५३१०५ वर्षाणि व्यतीतानि सप्तसप्तितमोयं संवत्सरो वर्तमानोति वेदितव्यम् । यत्रावन्त्येव वर्षाणि वर्तमानकल्पस्येति । सार्धं विज्ञायते ह्येतावन्त्येव वर्षाणि व्यतीतानीति । अचाद्यायां वर्तमानायां स्वायंभुवस्य सप्तमस्यास्य मन्वन्तरस्येदानीं वर्तमानस्यादाप्रथमं चरणं मन्वन्तराणां व्यतीतत्वाद्वेति । तद्यथा स्वायंभुवः स्वारोचिष औत्तमि-स्तामसोरैवतश्चाक्षुषो वैवस्वतश्चेति सप्तैते मनवस्तथा साध्यविश्वदेव ऋभ-वित्र: सप्तचैते मिलित्वा १४ चतुर्दशैव भवंति । तत्रैकसप्तितिचतुर्युगानि ह्येकैकस्य मनोः परिमाणं भवति । ते चैकस्मिन्ब्राह्मदिने १४ चतुर्दशगुणा भवन्ति । एकसहस्रं १००० चतुर्युगानि ब्राह्मदिनस्य परिमाणं भवति ब्राह्म्या रात्रेपि तावदेव परिमाणं विज्ञेयम् । सृष्टेर्वर्तमानस्य द्विपरार्धान्ति प्रलयस्य च रात्रिमन्वेति । अस्मिन्ब्राह्मदिने षट्पञ्चाशत्चतुर्व्यतीता: सप्तमस्य वैवस्वतस्य वर्तमानस्य मनोरष्टाविंशतितमोयं कलिर्वर्तते । तत्रास्य वर्तमानस्य कलियुगस्यैतावन्ति ४९०९ चत्वारिंशदधिकानि नवश-तानि षट्सप्तितिश्च वर्षाणि तु गतानि सप्तषष्टितमोयं संवत्सरो वर्तते । यस्मायं विक्रमस्यैकोनविंशतिशतं चयस्त्रिंशदमोत्तरं संवत्सरं वदन्ति ॥

अत्र विषये प्रमाणम् ।

ब्राह्मस्य तु क्षपाह्नस्य यत्प्रमाणं समासतः । एकैकशो युगानां तु क्रमशस्तन्निबोधत ॥ १ ॥ चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम् । तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथा विधः ॥ २ ॥ इतरेषु स संध्येषु स संध्यांशेषु च त्रिषु । एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ ३ ॥

यदेतत् परिसंख्यातमादावेव चतुर्युगम् । एतद्द्वादशसाहस्रं देवानां युगमुच्यते ॥ ४ ॥ दैविकानां युगानां तु सहस्रं परिसंख्यया । ब्राह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती रात्रिरेव च ॥ ५ ॥ तद्वैयुगसहस्रान्तं ब्राह्मं पुण्यमहर्विदुः । रात्रिं च तावतीमेव तेऽहोरात्रविदोजनाः ॥ ६ ॥ यत्प्राग्द्वादशसाहस्रमुदितं दैविकं युगम् । तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ ७ ॥ मन्वन्तराण्य संख्यानि सृष्टिसंहारएव च । क्रीडन्निवैतत्कुरुते परमेष्ठी पुनःपुनः ॥ ८ ॥ मनु० अध्याये १ ॥

कालस्य परिमाणार्थं ब्राह्माहोरात्रादयः सुगमबोधार्थाः संज्ञाः क्रियन्ते । यतः सहजतया जगदुत्पत्तिप्रलययोर्वर्षाणां वेदेऽस्यतेश्च परिगणनं भवेत् । मन्वन्तरएव्यावृत्तौ सृष्टेर्नैमित्तिकगुणानामपि पर्य्यावर्तने किंचित् किंचिद्वत्यतो मन्वन्तरसंज्ञा क्रियते । अत्रेदं संख्यातव्यम् । एकं दशशतं चैव सहस्रमयुतं तथा । लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च ॥ १ ॥ वृन्दः खर्वो निखर्वश्च शंखः पद्मं च सागरः । अन्त्यं मध्यं परार्द्धं च दशवृद्ध्या यथा क्रमम् ॥ २ ॥ इति सूर्यसिद्धान्तादिषु संख्यायते । अनया रीत्या वर्षादिगणनाकार्य्येति ॥ सहस्रस्य प्रमासि सहस्रस्य प्रतिमासि ॥ य० अ० १५ मं० ६५ । सर्वं वै सहस्रं सर्वस्य दात्रासि । य० कां० ७ अ० ४ ॥ सर्वस्य जगतः सर्वमिति नामास्ति कालस्य चानेन सहस्रमहायुगसंख्यया परिमितस्य दिनस्य नक्तस्य च ब्रह्माण्डस्य प्रमा परिमाणस्य कर्त्ता परमेश्वरोऽस्ति मंत्रस्यास्य सामान्यार्थं वर्त्तमानत्वात्सर्वमभिवदतीति । एवमेवार्योऽपि योजनीयम् । ज्योतिषशास्त्रे प्रतिदिनचर्योभिहिता ऽऽर्य्यैः जगदारभ्य कल्पकल्पान्तस्य गणितविद्यया स्पष्टं परिगणनं कृतमद्यपर्यंतमपि क्रियते प्रतिदिनमुच्चार्य्यते च्यते चातः कारणादियं व्यवस्थैव सर्वैर्मनुष्यैः स्वीकर्तुं योग्यास्ति नान्येति निश्चयः । कुतो ह्यार्य्यैर्नित्यमेतत् सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वते मन्वन्तरे ऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे ऽमुकसंवत्सराय नतु मास पक्ष दिन नक्षत्र लग्न मुहूर्त्त वेदं कृतं क्रियते चेत्याबालवृद्धैः प्रत्यहं विदितत्वादितिहासस्यास्य सर्वार्य्यावर्त्तदेशे वर्त्तमानत्वात्सार्वैकरसत्वादशक्येयं व्यवस्था केनापि विचालयितुमितिविज्ञायताम् । अन्यद्युगाख्यानमये करिष्यते तत्र द्रष्टव्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० वेदों की उत्पत्ति में कितने वर्ष हो गये हैं उ०, एक वृन्द छानवे

करोड़ आठ लाख बावन हजार नव सौ कहत्तर अर्थात् (१९६०८५२९७६) वर्ष वेदों की और जगत् की उत्पत्ति में होगये हैं और यह संवत् ८७ सतअस्सी का वर्त्त रहा है ॥० यह जैसे निश्चय होय कि इतने ही वर्ष वेद और जगत् की उत्पत्ति में बीत गये हैं ७० यह तो वर्त्तमान सृष्टि है इस में सातवें (७) वैवस्वतमनु का वर्त्तमान है इससे पूर्व छः मन्वन्तर हो चुके हैं स्वायंभव १ स्वारोचिष २ औत्तमि ३ तामस ४ रैवत ५ चाक्षुष ६ ये छः तो बीत गये हैं और ७ सातवां वैवस्वत वर्त्त रहा है और सावर्णि आदि ७ सात मन्वंतर आगे भोगेंगे ये सब मिल के १४ चौदह मन्वंतर होते हैं और एकहत्तर चतुर्युगियों का नाम मन्वंतर धरा गया है सो उस की गणना इस प्रकार से है कि (१७२८०००) सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्षों का नाम सतयुग रक्खा है (१२९६०००) बारह लाख छानवें हजार वर्षों का नाम त्रेता (८६४०००) आठ लाख चौंसठ हजार वर्षों का नाम द्वापर और (४३२०००) चार लाख बत्तीस हजार वर्षों का नाम कलियुग रक्खा है तथा आर्य्यों ने एक क्षण और निमेष से लेके एक वर्ष पर्यंत भी काल की सूक्ष्म और स्थूल संज्ञा बांधी है और इन चारों युगों के (४३२००००) तितालीस लाख बीस हजार वर्ष होते हैं जिन का चतुर्युगी नाम है एकहत्तर (७१) चतुर्युगियों के अर्थात् (३०६७२०००००) तीस करोड़ सरसठ लाख बीस हजार वर्षों की एक मन्वंतर संज्ञा की है और ऐसे १४ छः मन्वन्तर मिलकर अर्थात् (१८४३२०००००) एक अर्ब चौरासी करोड़ तीन लाख बीस हजार वर्ष हुए और सातवें मन्वंतर के भोग में यह (२८) अट्ठाईस वीं चतुर्युगी है इस चतुर्युगी में कलियुग के (५०८६) चार हजार नव सौ छहत्तर वर्षों का तो भोग हो चुका है और बाकी (४२७०२४) चार लाख सत्ताईस हजार चौबीस वर्षों का भोग होनेवाला है जाना चाहिये कि (१९५३२९४९७६) बारह करोड़ पांच लाख बत्तीस हजार नव सौ छहत्तर वर्ष तो वैवस्वतमनु के भोग हो चुके हैं और (५८५१८७०२४) अठारह करोड़ एकसठ लाख सत्तासी हजार चौबीस वर्ष भोगने को बाकी रहे हैं। इन में से यह वर्त्तमान वर्ष (८७) सतअस्सी है जिस को आर्य्य लोग विक्रम का (१९३३) उन्नीस सौ तेंतीसवां संवत् कहते हैं जो पूर्व चतुर्युगी लिख आये हैं उन एकहत्तर चतुर्युगियों की ब्राह्मदिन संज्ञा रक्खी है और उतनीहीं चतुर्युगियों की रात्रि संज्ञा जानना चाहिये सो सृष्टि की उत्पत्ति आदि हजार चतुर्युगी पर्यंत ईश्वर इस को बना रखता है इसी का नाम ब्राह्मदिन रक्खा है और हजार चतुर्युगी पर्यंत सृष्टि को मिटा के प्रलय अर्थात् कारण में लीन रखता है इस का नाम ब्राह्मरात्रि रक्खा है अर्थात् सृष्टि के वर्त्तमान होने का नाम दिन और प्रलय होने का नाम रात्रि है यह जो वर्त्तमान ब्राह्मदिन है इस के (१९६०८५२९७६) एक अर्ब छानवें करोड़ आठ लाख बावन हजार नव सौ छहत्तर वर्ष इस सृष्टि को तथा वेदों की उत्पत्ति में भी व्यतीत हुए हैं

गुरु विरजानन्द दण्डी
सरस्वती पुस्तकालय
173

करोड़ बत्तीस लाख सत्ताईस हजार चौबीस वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाकी रहे हैं इनमें से अब का यह चौबीसवा वर्ष भोग रहा है आगे आने वाले भोग के वर्षों में से एक २ घटाते जाना और गत वर्षों में क्रम से एक २ वर्ष मिलाते जाना चाहिये जैसे आज पर्य्यंत घटाते बढ़ाते आये हैं अहर्दिन और अहरात्रि अर्थात् ब्रह्म जो परमेश्वर उस ने संसार के वर्त्तमान और प्रलय की संज्ञा की है इसीलिये इस का नाम अहर्दिन है इसी प्रकरण में मनुस्मृति के श्लोक मानों के लिये लिख चुके हैं सो देख लेना इन श्लोकों में दिव्य वर्षों को गणना की है अर्थात् चारों युगों के बारह हजार (१२०००) वर्षों की दिव्ययुग संज्ञा की है इसी प्रकार असंख्यात मन्वंतरों में कि जिन की संख्या नहीं हो सकती अनेक वार सृष्टि हो चुकी है और अनेक वार होवगी सो इस सृष्टि को सदा से सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर सहज स्वभाव से रचना पालन और प्रलय करता है और सदा ऐसेही करेगा क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति वर्त्तमान प्रलय और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों को मनुष्यलोग सुख से गिन लें इसी लिये यह अहर्दिन आदि संज्ञा बांधी है और सृष्टि का स्वभाव नया पुराना प्रतिमन्वंतर में बदलता जाता है इसी लिये मन्वंतर संज्ञा बांधी है वर्त्तमान सृष्टि की कल्प संज्ञा और प्रलय की विकल्प संज्ञा की है और इन वर्षों को गणना इस प्रकार से करना चाहिये कि (एक दशशतं वैद्य०) एक (१) दश (१०) शत (१००) हजार (१०००) दशहजार (१००००) लाख (१०००००) नियुत (१०००००) करोड़ (१००००००) अर्बुद (१०००००००) खर्व (१००००००००) निखर्व (१०००००००००) शंख (१००००००००००) पद्म (१०००००००००००) सागर (१००००००००००००) अन्त्य (१०००००००००००००) मध्य (१००००००००००००००) और परार्द्ध (१०००००००००००००००) और दश २ गुणा बढ़ा कर इसी गणित से सूर्य्य-सिद्धान्त आदि ज्योतिष ग्रंथों में गिनती की है * (सहस्रस्य प्र०) सब संसार की सहस्र संज्ञा है तथा पूर्वोक्त अहर्दिन और रात्रि की भी सहस्र संज्ञा की जाती है क्योंकि यह मंत्र सामान्य अर्थ में वर्त्तमान है सो हे परमेश्वर आप एक हजार चतुर्युगी का दिन और रात्रि का प्रमाण अर्थात् निर्माण करनेवाले हो इसी प्रकार ज्योतिषशास्त्र में यथावत् वर्षों की संख्या आर्य्य लोगों ने गिनी है सो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके आज पर्य्यंत दिन २ गिनते और क्षण से लेके कल्पांत की गणित विद्या को प्रसिद्ध करते चले आते हैं अर्थात् परंपरासे सुनते सुनाते लिखते लिखाते और पढ़ते पढ़ाते आज पर्य्यंत हमलोग चले आते हैं यही व्यवस्था सृष्टि

* कहीं २ इसी संख्या को १८ अठारह अंक पर्य्यन्त गिनते हैं सो वहां भी जान लेना।

संख्या ग्राहक	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	संख्या पुस्तक	मोल्य नाट	मोल्य उधार
५८	मुंशी छंतमणि ..	मोहल्ला किदारपुरा । मुरादाबाद ..	१	४॥)	
३७	गंगाधर चिंतामणि ..	हेड क्लिर्क भव्वलपुर रेलवे आफ़िस । आगर भव्वलपुर ..	३५		१५४॥)
७१	पंडित सुंदरलाल ..	पोस्टमास्टर जेनेरेल आफ़िस । .. इलाहाबाद	९७	२३॥)	
८०	कन्हैयालाल अलखधारी	पंजाब । लुधियाना	१	४॥)	
८५	कुँवर ज्वालाप्रसाद ..	अनारस	१		४॥)
८२	सरदार अतरसिंह ..	रूम यू यफ़ चीफ़ आफ़ भटींडा । .. लोधियाना	१	४॥)	
८३	पंडित जेयशंकर ..	सुप्र जेनरल लोवर लखनऊ डीवीज़न मिलिटरी वर्क्स । नज़दीक थाना चौक गंज । लखनऊ	१	४॥)	
८४	बाबू रामाधार बाजपेई	पेंडक्टर सुपरइंटेंडेंस आफ़िस अवध रोहू कंटिनजेंट डिविज़न गवर्मेन्ट टेलिग्राफ़ डिपार्टमेंट । लखनऊ	५	२२॥)	
८५	ठाकुर जैगोविंद ..	हेड मास्टर ज़िला० स्कूल । हमीं	१	४॥)	
८६	पंडित खुशीलालजीलाल	हास्पिटल असिस्टन्ट सेंच डिस्पेन्सरी मारवाड़ा डिस्ट्रीक्ट । भव्वलपुर	१	४॥)	
८७	पंडित जेगयराज ..	फ़र्स्ट असिस्टन्ट मास्टर एंगलोवर नेकूलर । स्कूल मारवाड़ा डिस्ट्रीक्ट । भव्वलपुर ..	१	४॥)	
८८	मुंशी रामानन्द ..	सेकन्ड असिस्टन्ट मास्टर एंगलोवर नेकूलर स्कूल मारवाड़ा डिस्ट्रीक्ट । भव्वलपुर	१	४॥)	
८९	पंडित गैंडनलाल ..	हेड मास्टर गवर्नमेन्ट स्कूल । मेरट	१		४॥)
९०	पंडित शुगियार सिंह ..	महल्ला जोगीवाड़ा । मेरट	१		४॥)
९१	बाबू ज़ालूर सिंह ..	हास्पिटल परसेल १५ नम्बर रजमेन्ट । मेरट	१		४॥)
९२	बाबू छेदीलाल ..	जमादारिघट का गुमास्ता । मेरट ..	१		४॥)
९३	ब.बू शीभुनाथ सेक्रेटरी ..	महाराजे सिंह । मुकाम सिंह ..	१		४॥)
९४	ठाकुर रंजित सिंह ..	अजैरोलवाले । जागीरदार । सवाई जयपुर	१	४॥)	
९६	मेसर्स ए० बी० सारेट	गल्लेवो वुलसेलर । शाहजहांपुर ..	१	१३॥)	
९७	बाबू शिवप्रसाद ..	सदर डानमेंट । मेरठ	१	४॥)	
९८	लाला श्यामसुन्दर ..	रईस कोठीवाला । मुरादाबाद ..	२	९)	
९९	पंडित रामसरूप	मुनसरीम । मोहल्ला नखासगंज मुरादाबाद	१		४॥)
१००	शरणबक्षराय	ब्रेमानपुरि । अलीगढ	१	४॥)	
१०१	बाबू लक्ष्मनरायन बेटा कन्हैयालाल ..	मालिर मुनसिफ़ का पटवालाल । महल्ला कायस्थ मुरादाबाद	१	४॥)	
१०२	बाबू श्रीकृष्ण ज्योतिर्विद	इलदखानी । ग्वाला बरेली	१	४॥)	
१०३	धनसीधरसाहु	कटारगंज मुरादाबाद	१	४॥)	
१०४	परसादी लाल	गांव किरावलपुर प० संभल ज़िला० मुरादाबाद	१	४॥)	

संख्या ग्राहक	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	संख्या पुस्तक	मोल्य नाम	मोल्य उधार
१०५	चंटामनसरूप ..	अरारगंज मुरादाबाद	१	४॥)	
१०६	अक्षयवीराम	रंकाशीराम दिनवारपुर मुरादाबाद ..	१	४०)	
१०७	बाबू रामनारायण ..	जेल जिलकं । बरेली	५		२२६)
१०८	नारायण दास ..	इलाम थैार जिलाब फरीदा । बाजार चैटीसी	१		४॥)
१०९	मुंशी ज्वाला प्रसाद ..	मोतरिर आनरेरीमजिस्ट्रेट । चैटीसी ..	१		४॥)
११०	मीराजानीअकंठअबबाह	५० दलिया जि० खेरी आना मीरा अवध	१		४॥)
१११	बाबू बनवारीलाल रोड़े	जेल जिलकं । बाजारगंज शाहजहानपुर	१	४॥)	
११२	लाला कालीचरण रामशरण	फर्रुखाबाद	१	४॥)	
११३	लाला महानेटराम भोलानाथ	चुर्रीवाला । फर्रुखाबाद	१		४॥)
११४	लाला मदनमोहन लाल ठीनानाथ	अफीमके दरोगा । फर्रुखाबाद	२		९)
११५	लाला राधाकृष्ण माधो राम	चुर्रीवाला फर्रुखाबाद	१		४।)
११६	बाबू बृजभूषणदास ..	बनारस	१०		४५)
११७	पंडित कामतानाथ मुंशीफ	अलीगढ़	१	४॥)	
११८	मुंशी जानकीप्रसाद ..	मछलवा, डा०।पथारा अलीगढ़	१		४॥)
११९	भिखारीदास अजबलाल खिलाड़ी ..	मछलवा मिश्रागंज अलीगढ़	१		४॥)

REGISTERED No. 16.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्थभाषाभ्यां समन्विता ॥

प्रत्येकैकास्यस्य प्रतिभागे मूल्यम् भारतवर्षीयाणां सर्वदेशान्तरवासिनां सूचीतः सहितः ।-) डाकव्ययादिकं मिलित्वा वार्षिकं ४॥) श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनो मिलिष्यति ॥

इस ग्रन्थ के प्रतिभाग एक एक नक्शा का मूल्य भारतवर्ष के भीतर डाकमाशुल सहित ।-) बाहर दूरवर्ती मूल्य ४॥)

अस्य ग्रन्थस्य गृहीतग्राहकैर्नाम प्रतिभागकाणां लाजरसकपत्राध्यक्षस्य श्री दयानन्दसरस्वतीस्वामिन: समीपे वार्षिक मूल्यं प्रेषयित्वा प्रतिभागसंख्यां प्राप्नुयात् ॥

संख्या (२)

॥ अस्य ग्रन्थस्य भाषाभाष्यं लाजरसकपत्रालयस्थे यन्त्रालये मुद्रितम् ॥

सन् १९३४ ॥

॥ सर्वे हक्कास्वाधिकारे आधुनिकैः सर्वथा सर्वदा स्वाधीनं सदा रक्षितम् ॥

विज्ञप्ति: कि कृपालु पाठकों और पत्रिका के ग्राहकों से निवेदन है कि यदि

कल्पायसमिधाश्च । यथा ऽऽप्तोपदेशस्य शब्दस्य प्रामाण्यं भवति । तथा सर्वज्ञेनेश्वरेणोक्तानां वेदानां सर्वैरार्यैः प्रमाणत्वेनाङ्गीकृतत्वाद्वेदाः प्रमाणमिति बोध्यम् । अत ईश्वरविद्यामयत्वेनैतेषां नित्यत्वमेव भवतीति दिक् ॥

॥ भाषार्थ ॥

वेदों में न्यायशास्त्र में गोतम मुनि भी शब्द को नित्य कहते हैं (मंत्राणु०) वेदों को नित्य ही मानना चाहिये क्योंकि सृष्टि के आरंभ से लेके आज पर्यंत ब्रह्मादि जितने आप्त होते आये हैं वे सब वेदों को नित्यही मानते आये हैं उन आप्तों का अवश्यही प्रमाण करना चाहिये क्योंकि आप्त लोग वे होते हैं जो धर्मात्मा कपट छलादि दोषों से रहित सब विद्याओं से युक्त सबके दोषों और सब मनुष्यों के सुख होने के लिये सत्य का उपदेश करनेवाले हैं जिन में लेशमात्र भी पक्षपात वा मिथ्याचार नहीं होता उन्हों ने वेदों का यथावत् नित्य मुखों से प्रमाण किया है जिन्होंने आयुर्वेद को बनाया है जैसे आयुर्वेद वैद्यकशास्त्र के उद्देश में कहे औषध और पथ्य के सेवन करने से रोग की निवृत्ति से सुख प्राप्त होता है जैसे उस के उपदेश के कहे के सत्य होने से उस के दूसरे भाग का भी प्रमाण होता है इसी प्रकार वेदों का भी प्रमाण करना सब मनुष्यों को उचित है क्योंकि वेद के उद्देश में कहे अर्थ का सत्य तथा विद्वान होने से उस्से सिद्ध जो वेदों के भाग हैं कि जिन का अर्थ प्रत्यक्ष न हुआ हो उन का भी नित्य प्रमाण अवश्य करना चाहिये क्यों कि आप्त पुरुष का उपदेश मिथ्या नहीं होसक्ता (मंत्राणु०) इस सूत्र के भाष्य में वात्स्यायन मुनि ने वेदों का नित्य होना स्पष्ट प्रतिपादन किया है कि जो आप्त लोग हैं वे वेदों के अर्थ को देखने दिखाने और जनाने वाले हैं जो २ उन २ मंत्र के अर्थ के कृत्स्न ज्ञाता होते हैं वे ही आयुर्वेद आदि के बनानेवाले हैं जैसे उन का कथन आयुर्वेद में सत्य है वैसे ही वेदों के नित्य मानने का उन का जो व्यवहार है वो भी सत्य ही है ऐसा मानना चाहिये क्योंकि जैसे आप्तों के उपदेश का प्रमाण अवश्य होता है वैसे ही सब आप्तों का भी तो परम आप्त सब का गुरु परमेश्वर है उस के किये वेदों का भी नित्य होने का प्रमाण अवश्य ही करना चाहिये ॥

अत्र विषये योगशास्त्रे एतज्जलिमुनिरप्याह ॥ स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ पातंजलयोगशास्त्रे । अ० १ पा० १ सू० २६ । यः पूर्वेषां सृष्ट्यादावुत्पन्नानामग्निवाय्वादित्यांगिरो ब्रह्मादीनां प्राचीनानामस्मदादीनामिदानीं तनानामपि मध्यानां च सर्वेषामेव ईश्वर एव गुरुरस्ति । गृणाति वेदद्वारोपदिशति सत्यानर्थान्यगुरुः । स च सर्वदा

नित्योस्ति । सर्व कालगतेरप्रचारत्वात् । न स ईश्वरोऽविद्यादिक्लेशैः पापकर्मभिस्तद्वासनया च कदाचिद्युक्तो भवति । यस्मिन्निरतिशयं नित्यं स्वाभाविकं ज्ञानमस्ति तदुक्तत्वाद्वेदानामपि सत्यार्थत्वनित्यत्वे वेद्ये इति ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस विषय में योगशास्त्र के कर्त्ता पतञ्जलि मुनि भी वेदों को नित्य मानते हैं (स एषः) सो कि प्राचीन अग्नि वायु आदित्य अंगिरा और ब्रह्मादि पुरुष सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुए थे इन से लेके हमलोग पर्यन्त और हम से आगे जो होनेवाले हैं इन सब का गुरु परमेश्वरही है क्योंकि वेदद्वारा सत्य अर्थों का उपदेश करने से परमेश्वर का नाम गुरु है सो ईश्वर नित्य ही है क्योंकि ईश्वर में भूतादि काल की गति का प्रचार भी नहीं है और वह अविद्या आदि क्लेशों से और पापकर्म तथा उन की वासनाओं के भोगों से अलग है जिस में अनंतविज्ञान सर्वदा एकरस बना रहता है उसी के रचे वेदों का भी सत्यार्थपना और नित्यपना भी निश्चित है ऐसा ही सब मनुष्यों को जानना चाहिये ॥

एवमेव स्वकीयसांख्यशास्त्रे पंचमाध्याये कपिलाचार्य्योप्याह ॥ निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम् ॥ सू० ५१ ॥ अस्यायमर्थः । वेदानां निजशक्त्यभिव्यक्तेः पुरुषसहचारिप्रधानसामर्थ्यात् प्रकटत्वात्स्वतःप्रामाण्यनित्यत्वे स्वीकार्य्ये इति ॥

॥ भाषार्थ ॥

इसी प्रकार से सांख्यशास्त्र में कपिलाचार्य्य भी कहते हैं (निजः) परमेश्वर की (निज) अर्थात् स्वाभाविक जो विद्याशक्ति है उस से प्रकट होने से वेदों का नित्यत्व और स्वतःप्रमाण सब मनुष्यों को स्वीकार करना चाहिये ॥

अस्मिन् विषये स्वकीयवेदान्तशास्त्रे कृष्णद्वैपायनो व्यासमुनिरप्याह । सू० शास्त्रयोनित्वात् । अ० १ पा० १ सू० ३ । अस्यायमर्थः । ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत्सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म । नह्यीदृशस्य शास्त्रस्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोस्ति । यद्यद्विलक्षणार्थं शास्त्रं यस्मात्पुरुषविशेषात्संभवति । यथा व्याकरणादि पाणिन्यादेर्ज्ञेयैकदेशार्थमपि स नतोप्यधिकतरविज्ञानवति सिद्धे लोके किमुक्तव्यमितीदं वचनं शंकराचार्येणास्य सूत्रस्योपरि स्वकीयव्याख्याने गदितम् अतः किमागतं सर्वज्ञ-

श्वरस्य सार्वज्ञमपि नित्यं सर्वार्थज्ञानयुक्तं च भवितुमर्हति । तथाच । तत्प्रियेत्याद्ये । सू० अतश्च नित्यत्वम् । पा० ३ सू० २९ । अस्यायमर्थः अत ईश्वरोक्तत्वान्नित्यत्वमेवास्माद्वेदानां स्वतः प्रामाण्यं सर्वविद्यायत्वं सर्वेषु कालेष्वव्यभिचारित्वान्नित्यत्वं च सर्वैर्मनुष्यैर्मन्तव्यमिति सिद्धम् । न वेदस्य प्रामाण्यसिद्ध्यर्थमन्यत्प्रमाणं स्वीक्रियते । किं त्वेतत्साक्षिवद्विज्ञेयम् । वेदानां स्वतःप्रमाणत्वात् । सूर्यवत् । यथा सूर्यः स्वप्रकाशःसन् संसारस्थान्महतो दुल्यांश्च पदार्थान् चक्षुरादीन् चक्षुरादिभ्यः प्रकाशयति तथा वेदोपि स्वयं स्वप्रकाशः सन्सर्वविद्याः प्रकाशयतीत्यवधेयम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

इसी प्रकार से वेदान्तशास्त्र में वेदों के नित्य होने के विषय में व्यास जी ने भी लिखा है (शास्त्र०) इस सूत्र के अर्थ में शंकराचार्य्य ने भी वेदों को नित्य मान के व्याख्यान किया है कि ऋग्वेदादि जो चारों वेद हैं वे अनेक विद्याओं से युक्त हैं सूर्य्य के समान सब सत्य अर्थों के प्रकाश करनेवाले हैं उन का बनानेवाला सर्वज्ञादि गुणों से युक्त परमेश्वर है क्योंकि सर्वज्ञ ईश्वर से भिन्न कोई जीव सर्वज्ञ गुणयुक्त इन वेदों को बना सके ऐसा संभव कभी नहीं हो सक्ता किंतु वेदार्थ विस्तार के लिये किसी जीव विशेष पुरुष से अन्य शास्त्र बनाने का संभव होता है जैसे पाणिनि आदि मुनियों ने व्याकरणादि शास्त्रों को बनाया है उन में विद्या के एकदेश का प्रकाश किया है सो भी वेदों के आश्रय से बना सके हैं और जो सब विद्याओं से युक्त वेद हैं उन को सिवाय परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं बना सक्ता क्योंकि परमेश्वर से भिन्न सब विद्याओं में पूर्ण जो कोई भी नहीं है किंतु परमेश्वर के बनाये वेदों के पढ़ने विचारने और इसी के अनुकूल से मनुष्यों को यथावत् विद्या का बोध होता है अन्यथा नहीं ऐसा शंकराचार्य्य ने भी कहा है इससे क्या आया कि वेदों के नित्य होने में सब आर्य्य लोगों की साक्षी है और यह भी कारण है कि जो ईश्वर नित्य और सर्वज्ञ है उस के किये वेद भी नित्य और सर्वज्ञ होने के योग्य हैं अन्य का बनाया ऐसा ग्रंथ कभी नहीं हो सक्ता (अतएव०) इस सूत्र से भी यही आता है कि वेद नित्य हैं और सब सज्जन लोगों को भी ऐसा ही मानना उचित है तथा वेदों के प्रमाण और नित्य होने में अन्य शास्त्रों के प्रमाणों को साक्षी के समान जानना चाहिये क्योंकि वे अपने ही प्रमाण से नित्य सिद्ध हैं जैसे सूर्य के प्रकाश में सूर्य का ही प्रमाण है अन्य का नहीं और जैसे सूर्य्य प्रकाशस्वरूप है चक्षु से लेके जगत् पर्य्यन्त पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे वेद भी स्वयंप्रकाश हैं और सब सत्यविद्याओं का भी प्रकाश कर रहे हैं ॥

अतएव स्वयमीश्वरः स्वप्रकाशितस्य वेदस्य स्वस्य च सिद्धिकरं प्रमाणमाह । सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् ॥ कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ १ ॥ य० अ० ४० मं० ८ ॥ अस्यायमभिप्रायः । यः पूर्वोक्तः सर्वव्यापकादिविशेषणयुक्त ईश्वरोऽस्ति (सपर्य्यगात्) परितः सर्वतः प्रगात् गतवान्व्याप्तवानस्ति । नैवैकः परमाणुरपि । तद्व्याप्त्या विनास्ति (शुक्रं) तद्ब्रह्म सर्वैजगत्कर्तृवीर्य्यवदनन्तबलवदस्ति (अकायं) तत्स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरत्रयसंबन्धरहितम् (अव्रणं) नैषैतासिँश्छिद्रं कर्तुं परमाणुरपि शक्नोति । अतएव छेदरहितत्वादक्षतम् (अस्नाविरं) तन्नाड़ीसंबन्धरहितत्वाद्दृश्यावरणविमुक्तम् (शुद्धं) तद्विद्यादिदोषेभ्यः सर्वदा पृथग्वर्त्तमानम् (अपापविद्धम्) नैव तत्पापयुक्तं पापकारि वा कदाचिद्भवति (कविः) सर्वज्ञः (मनीषी) यः सर्वेषां मनसा मीषी साक्षी ज्ञातास्ति (परिभूः) सर्वेषामुपरि विराजमानः (स्वयम्भूः) यो निमित्तोपादानसाधारणकारणव्यरहितः । स एव सर्वेषां पिता नास्त्यस्य कश्चित् जनकः स्वसामर्थ्येन सहैव सदा वर्त्तमानोऽस्ति । (शाश्वतीभ्यः) य एवंभूतः सच्चिदानन्दस्वरूपः परमात्मा (सः) सर्गादौ स्वकीयाभ्यः शाश्वतीभ्यो निरंतराभ्यः समाभ्यः प्रजाभ्यो याथातथ्यतो यथार्थस्वरूपेण वेदोपदेशेन (अर्थान् व्यदधात्) विधत्तवानर्थात्सदा यदा सृष्टिं करोति तदा तदा प्रजाभ्यो हितायादिसृष्टौ सर्वविद्यासमन्वितं वेदशास्त्रं स एव भगवानुपदिशति । अत एव नैव वेदानामनित्यत्वं केनापि मन्तव्यम् । तस्य विद्यायाः सर्वदैकरसवर्त्तमानत्वात् ॥

॥ भाषार्थ ॥

ऐसे जो परमेश्वर ने अपने और अपने किये वेदों के लिये और स्वतः प्रमाण होने का उपदेश किया है सो आगे लिखते हैं (सपर्य्यगात्) यह मंत्र ईश्वर और उस के किये वेदों का प्रकाश करता है कि जो ईश्वर सर्वव्यापक आदि विशेषणयुक्त है सो सब जगत् में परिपूर्ण हो रहा है उस को आकाश से एक परमाणु भी रहित नहीं है सो ब्रह्म (शुक्रं) सब जगत् का करनेवाला और अनंत विद्यादि बल से युक्त है (अकायं) जो स्थूल सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों के संयोग से रहित है अर्थात् वह कभी जन्म नहीं लेता (अव्रणं) जिस में एक परमाणु भी छिद्र नहीं कर सक्ता इसी से वह सर्वथा छेदरहित है (अस्नाविरं) वह नाड़ियों के बंधन से अलग है जैसा वायु और

धिर नाड़ियों में बंधा रहता है ऐसा बंधन परमेश्वर में नहीं होता, तुच्छ जो अविद्या अज्ञानादि क्लेश और मल दोनों से पृथक् है; अपापविद्धम् जो ईश्वर पापयुक्त था पाप करनेवाला कभी नहीं होता क्योंकि वह स्वभाव से ही धर्मात्मा है (कविः) जो सब का जाननेवाला है; मनीषी जो सब का अन्तर्यामी है और भूत भविष्यत् तथा वर्त्तमान इन तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जानता है (परिभूः) जो सब के ऊपर विराजमान हो रहा है; स्वयंभूः जो कभी उत्पन्न नहीं होता और उस का कारण भी कोई नहीं किन्तु वही सब का कारण अनादि और अनंत है इसी लिये वही सब का माता पिता है और अपने ही सत्यसामर्थ्य से सदा वर्त्तमान रहता है इत्यादि लक्षणों से युक्त जो सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर है (शाश्वतीभ्यः) उस ने सृष्टि की आदि में अपनी प्रजा के लिये (समाभ्यः) जो कि उस के सामर्थ्य में सदा से वर्त्तमान है उस के सब पुत्रों के लिये (अर्थान् व्यदधात्) सत्य अर्थों का उपदेश किया है इसी प्रकार जब २ परमेश्वर सृष्टि को रचता है तब २ प्रजा के हित के लिये सृष्टी की आदि में सब विद्याओं से युक्त वेदों का भी उपदेश करता है और जब २ सृष्टि का प्रलय होता है सब २ वेद उस के ज्ञान में सदा बने रहते हैं इसी से उन को सदैव नित्य मानना चाहिये ॥

यथा शास्त्रप्रमाणेन वेदानित्याः सन्तीति निश्चयोऽस्ति । सत्य युक्त्यापि । तद्यथा । नासतो जन्मलाभो न सतो नाशस्य । योऽस्ति स भविष्यति । इतिन्यायेन वेदानां नित्यत्वं स्वीकार्य्यम् । कुतः । यस्य पुंसो नास्ति नैव तस्य शास्त्रादयः संभवितुमर्हन्ति । वन्ध्यापुत्रविवाहदर्शनवत् पुंसो सर्वज्ञत्वं वन्ध्यात्वं न सिध्येत् स नास्ति चेत्पुनस्तस्य विवाहदर्शने कथं भवतः । एतमेवापि विचारणीयम् । यदीश्वरे विद्यानास्ता न भवेत्कथमुपदिशेत् । स नोपदिशेन्नैव कस्यापि मनुष्यस्य विद्यासंबन्धो दर्शनं च स्यात्तस्य । निर्मूलस्य प्ररोहाभावात् । नह्यस्मिन् जगति निर्मूलमुत्पन्नं किं चिद्दृश्यते । यस्य सर्वेषां मनुष्याणां साक्षादनुभवो ऽस्ति सो ऽत्र प्रकाश्यते । यस्य प्रत्यक्षानुभवस्तस्मिंश्च संस्कारो यस्य संस्कारस्तस्मिंश्च स्मरणं ज्ञानं तेनैव प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्च भवतो नान्यथेति । तद्यथा । येन संस्कृतभाषा पठ्यते तस्या इत्था मत्र संस्कारो भवति नाऽन्यथा । येन देशभाषाधीयते तस्या मत्र संस्कारो भवति नाऽन्यथा । सर्वं सृष्ट्यादावीश्वरोपदेशाध्यापनाभ्यां विना नैव कस्यापि विद्यायाः अनुभवः स्यात् । पुनः कथं संस्कारस्तेन विना कुतः स्मरणं न च स्मरणेन विना विद्याया अपि कस्य चिन्निश्चेतुमर्हति ॥

॥ भाषार्थ ॥

जैसे शास्त्रों के प्रमाणों से वेद नित्य हैं वैसे ही युक्ति से भी उन का नित्यपन सिद्ध होता है क्योंकि असत् में सत् का होना अर्थात् अभाव से भाव का होना कभी नहीं हो सकता तथा सत् का अभाव भी नहीं हो सकता जो सत्य है उसी से आगे प्रवृत्ति भी हो सकती है और जो वस्तु ही नहीं है उससे दूसरी वस्तु किसी प्रकार से नहीं हो सकती इस न्याय से भी वेदों को नित्य ही मानना ठीक है क्योंकि जिस का मूल नहीं होता है उस की डाली पत्र पुष्प और फल आदि भी कभी नहीं हो सकते जैसे कोई कहे कि वंध्या के पुत्र का विवाह मैंने देखा यह उस की बात असंभव है क्योंकि जो उस के पुत्र होता तो वह वंध्या ही क्यों होती और उस पुत्र भी नहीं है तो उस का विवाह और दर्शन कैसे हो सके हैं वैसे ही अज ईश्वर में अनंत विद्या है सभी मनुष्यों को विद्या का उपदेश भी किया है और जो ईश्वर में अनंत विद्या न होती तो वह उपदेश कैसे कर सकता और सब जगत् को भी कैसे रच सका जो मनुष्यों को ईश्वर अपनी विद्या का उपदेश न करता तो किसी मनुष्य को विद्या जो यथार्थ ज्ञान है सो कभी नहीं होता क्योंकि इस जगत् में निर्मूल का होना वा बढ़ना सर्वथा असंभव है इससे यह जानना चाहिये कि परमेश्वर से वेदविद्या मूल को प्राप्त हो के मनुष्यों में विद्यारूप वृक्ष विस्तृत हुआ है इस में और भी युक्ति है कि जिस का यथा मनुष्यों को अनुभव और प्रत्यक्ष ज्ञान होता है उसी का दृष्टान्त देने हैं देखो कि जिस का साक्षात् अनुभव होता है उसी का ज्ञान में संस्कार होता है संस्कार से स्मरण स्मरण से इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट से निवृत्ति होती है अन्यथा नहीं जो संस्कृत भाषा को पढ़ा है उस के मन में उसी का संस्कार होता है अन्यभाषा का नहीं और जो किसी देशभाषा को पढ़ता है उस को देशभाषा का संस्कार होता है अन्य का नहीं इसी प्रकार जो वेदों का उपदेश ईश्वर न करता तो किसी मनुष्य को विद्या का संस्कार नहीं होता जब विद्या का संस्कार न होता तो उस का स्मरण भी नहीं होता स्मरण से विना किसी मनुष्य को विद्या का लेश भी न हो सके इस युक्ति से क्या जाना जाता है कि ईश्वर के उपदेश से वेदों को सुन के पढ़ के और विचार के ही मनुष्यों को विद्या का संस्कार आज पर्यन्त होता चला आया है अन्यथा कभी नहीं हो सकता ॥

किं च भोः । मनुष्याणां स्वाभाविकी वा प्रवृत्तिर्भवति सा च सुखदुःखानुभवश्च तयोस्तरोस्तत्फले क्रमानुक्रमाद्विद्याधृद्भविष्यत्येव पुनः किमर्थमीश्वरादेवोत्पत्तेः स्वीकारस्तत्रापि । यत्र प्रश्नः ' यत्तद्वेदोत्पत्तिनिमित्तं करणं परिकल्पितं तत्रैष निर्णयः । ' यच्चेदानीमन्येभ्यः पठनेन विना कस्यचिदपि

विद्वान् भवति तस्य ज्ञानोन्नतिश्च । तथा नैवेश्वरोपदेशागमेन विना कस्यापि विद्याज्ञानोन्नतिर्भवेत् । अविद्यिमशालक्षणलक्ष्यत्वम् । यद्येतद्वेदशास्त्रकर्तृ स बालकानां शब्दार्थानां च विद्या मनुष्यव्यवहारविज्ञाने अपि अलम् पुनर्विद्योत्पत्तेस्तु का कथा तस्मादीश्वरोपदेश एव या वेदविद्या प्रवर्तिता सा नित्यैवास्ति सार्वत्रिकत्वगुणवत्त्वात् । यन्नित्यं वस्तु भवति तस्य सार्वगुणकर्मादयोऽपि नित्यानि भवन्ति तद्व्यवहारस्य नित्यत्वात् । नैवाधिष्ठानलक्षणा सामयुगकर्मादयोगुणाः स्थितिं लभन्ते तेषां परतन्त्रत्वात् । यन्नित्यं वस्तु न तत्रैवान्यानि नित्यानि भवन्ति । नित्यं चेत्यनित्यगुणाश्रयाविनश्वरद्रव्यविशेषाः । तत्पत्तिर्हि पृथग्भूतानां द्रव्याणां या संयोगविशेषाद्भवति । तेषामुत्पन्नानां कार्यद्रव्याणां सति वियोगे विनाशश्च संघातभावात् । अदर्शनं च विनाशः । ईश्वरस्यैकरसत्वान्नैव तस्य संयोगवियोगाभ्यां संघातोऽपि भवति । अत्र कणादमुनिकृतं सूत्रं प्रमाणमस्ति । सदकारणवन्नित्यम् । १ । इतीयमेके । अ० ४ सू० १ ॥ अस्यायमर्थः । यत्कार्ये कारणाद्भूत्वा विद्यमानं भवति तदनित्यमुच्यते तस्य प्रागुत्पत्तेरभावात् । यत्तु कस्यापि कार्ये नैव भवति किं तु सदैव कारणरूपमेव विद्यति । तन्नित्यं कथ्यते । यद्यत्संयोगजन्यं तत्कर्त्रपेक्षं भवति कर्तापि संयोगजन्यगुणेनास्ति तत्राप्यन्योन्याश्रयदोषो गच्छेत् । एवं पुनः पुनः प्रसंग उत्पद्यते एवम् । यत्तु संयोगेन प्रादुर्भूतं नैव तस्य प्रकृतिपरमाण्वादीनां संयोगकरणे सामर्थ्यं संभवितुमर्हति तस्मात्तेषां सूक्ष्मत्वात् । यदाकाशात्सूक्ष्मं तत्त्वात्सर्वं भवति स्थूले मूर्त्तद्रव्ये प्रवेशार्हत्वात् । यथा । यथा सूक्ष्मत्वादग्निः कठिनं स्थूलमयः प्रविश्य तप्तं कृत्वा पृथग्भावं करोति । तथा जलमपि पृथिव्याः सूक्ष्मत्वात्तत्प्रविश्य संयुक्तमेकं विच्छेदं करोति छिनत्ति च । तथा परमेश्वरः संयोगवियोगाभ्यां पृथग्भूतौ विभुत्वेनस्थितौ नित्यौ च द्वावेव विनाशं च कर्तुमर्हति । न चान्यथा । यथा संयोगवियोगान्तर्गतत्वान्नाकाशादीनां प्रकृतिपरमाण्वादीनां संयोगवियोगकरणे सामर्थ्यमस्ति । तथेश्वरेऽपि भवतु । अन्यच्च । यतः संयोगवियोगारंभो भवति । स तत्त्वान्यपृथग्भूतेष्वस्ति तस्य संयोगवियोगारब्धव्यादिकारणत्वात् । आदिकारणस्याकाशस्यसंयोगवियोगारब्धव्यानुत्पत्तेश्च । एवं भूतस्य सदा निर्विकारस्वरूपस्याकाशादेर्नित्यस्य सत्यस्वरूपस्येश्वरस्य सकाशाद्वेदानां प्रादुर्भावस्य कृते सर्वज्ञत्वादिगुणयुक्तस्य स्वाभाव्यर्थं शब्दं नित्यत्वं चैतेषां वर्त्तीति सिद्धम् ॥

इति वेदानां नित्यत्वविचारः ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० मनुष्यों की स्वभाव से जो चेष्टा है उस में सुख और दुःख का अनुभव भी होता है उससे उत्तर २ काल में क्रमानुसार से विद्या की वृद्धि भी अवश्य होगी तब वेदों को भी मनुष्य लोग रचलेंगे फिर ईश्वर ने वेद रचे ऐसा क्यों मानना उ० इस का समाधान वेदोत्पत्ति के प्रकरण में कर दिया है वहां यहीं निर्णय किया है कि जैसे इस समय में अन्य विद्वानों से पढ़े विना कोई भी विद्यावान् नहीं होता और इसी के विना किसी पुरुष में ज्ञान की वृद्धि भी देखने में नहीं आती वैसेही सृष्टि के आरंभ में ईश्वरोपदेश की प्राप्ति के विना किसी मनुष्य को विद्या और ज्ञान की बढ़ती कभी नहीं हो सकती इस में अशिक्षित बालक और वनवासियों का दृष्टांत दिया था कि जैसे उस बालक और वन में रहने वाले मनुष्य को यथावत् विद्या का ज्ञान नहीं होता तथा अच्छी प्रकार उपदेश के विना उन को लोकव्यवहार का भी ज्ञान नहीं होता फिर विद्या की प्राप्ति तो अत्यंत कठिन है इससे क्या जानना चाहिये कि परमेश्वर के उपदेश वेदविद्या आने के पश्चात् ही मनुष्यों को विद्या और ज्ञान की उन्नति करनी भी सहज हुई है क्योंकि उस के सभी गुण सत्य हैं इसी से उस की विद्या जो वेद है वह भी नित्यही है जो नित्य वस्तु है उस के नाम गुण और कर्म भी नित्य ही होने हैं क्योंकि उन का आधार नित्य है और विना आधार के नाम गुण और कर्मादि स्थिर नहीं हो सकते क्योंकि वे द्रव्यों के आश्रय सदा रहते हैं जो अनित्य वस्तु है उस के नाम गुण और कर्म भी अनित्य होते हैं सो नित्य किस को कहना और उत्पत्ति और विनाश में पृथक् है तथा उत्पत्ति क्या कहाती है कि जो अनेक द्रव्यों के संयोग विशेष से स्थूल पदार्थ का उत्पन्न होना और जब वे पृथक् २ होके उन द्रव्यों के वियोग से जो कारण में उन की परमाणु रूप अवस्था होती है उस को विनाश कहते हैं और जो द्रव्य संयोग से स्थूल होते हैं वे चक्षु आदि इंद्रियों से देखने में आते हैं फिर उन स्थूल द्रव्यों के परमाणुओं का जब वियोग हो जाता है तब सूक्ष्म के होने से वे द्रव्य दीख नहीं पड़ते इस का नाम नाश है क्योंकि अदर्शन को ही नाश कहते हैं जो द्रव्य संयोग और वियोग से उत्पन्न और नष्ट होता है उसी को कार्य्य और अनित्य कहते हैं और जो संयोग वियोग से अलग है उस की न कभी उत्पत्ति और न कभी नाश होता है इस प्रकार का पदार्थ एक परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण है क्योंकि वह सदा अखंड एक रसही बना रहता है इसी से उस को नित्य कहते हैं इस में कणादमुनि के सूत्र का भी प्रमाण है (सत्कार०) जो किसी का कार्य्य है कि कारण से उत्पन्न हो के विद्यमान होता है उस को अनित्य कहते हैं जैसे मट्टी से घड़ा हो के वह नष्ट भी हो जाता है इसी प्रकार परमेश्वर के सामर्थ्य कारण से सब जगत् उत्पन्न हो के

और वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की ठीक है और सब मनुष्यों को इसी को ग्रहण करना योग्य है क्योंकि आर्य लोग नित्य प्रति सोलहवें परमेश्वर से इन तीन नामों का प्रथम उच्चारण करके कामों का आरंभ और परमेश्वर आदि नित्य धन्यवाद करते चले आते हैं कि आनन्द में आज पर्यन्त परमेश्वर ने सृष्टि और हमलोग बने हुए हैं और बहीखाते की नाईं लिखते लिखाते पढ़ते पढ़ते चले आये हैं कि पूर्वोक्त आजदिन के दूसरे प्रहर से आज मध्याह्न के निकट दिन आया है और जितने वर्ष वैवस्वतमनु के भोग होने को बाकी हैं उतनेहीं मध्याह्न में बाकी रहे हैं इसी लिये यह लेख है (सो अष्टाणवे द्वितीये प्रहरार्द्धे०) यह वैवस्वतमनु का वर्त्तमान है इस के भोग में यह (८८) अट्ठाईसवां कलियुग है कलियुग के प्रथम चरण का भोग हो रहा है तथा वर्ष ऋतु अयन मास पक्ष दिन नक्षत्र मुहूर्त्त लग्न और पल आदि समय में हम ने फलाना काम किया था और करते हैं अर्थात् जैसे विक्रम के संवत् १९३३ फाल्गुन मास कृष्ण पक्ष पञ्चमी शनिवार के दिन चतुर्थ प्रहर के आरंभ में यह बात हम ने लिखी है इसी प्रकार से सब व्यवहार आर्य्यलोग बालक से वृद्ध पर्य्यन्त करते और जानते चले आये हैं जैसे बही खाते में मिती डालते हैं जैसे ही महिना और वर्ष बढ़ाते घटाते चले जाते हैं इसी प्रकार आर्य्य लोग त्रियुगयज्ञ से भी वर्ष मास और दिन आदि लिखते चले आते हैं और यही इतिहास काल एक्य एवं आर्य्यावर्त्त देश में प्रसिद्ध वर्त्तमान होता है और सब पुस्तकों में भी इस विषय में एक भी प्रकार का लेख पाया जाता है किसी प्रकार का इस विषय में विरोध नहीं है इसी लिये इस को अन्यथा करने में किसी का सामर्थ्य नहीं हो सका क्योंकि जो सृष्टि की उत्पत्ति से लेके बराबर मितो वार लिखने न आते तो इस गिनती का हिसाब ठीक २ आर्य्य लोगों को भी जानना कठिन होता अन्य मनुष्यों का तो कहा ही कहना है और इसमें यह भी विशेष होता है कि सृष्टि के आरंभ से लेके आज पर्य्यंत आर्य्य लोग ही बड़े २ विद्वान् और सभ्य होते चले आये हैं जब जैन और मुसलमान आदि लोग इस देश के इतिहास और विद्या पुस्तकों का नाश करने लगे तब आर्य्य लोगों ने सृष्टि के गणित का इतिहास कण्ठस्थ कर लिया और जो पुस्तक ज्योतिष शास्त्र के बच गये हैं उन में और उन के अनुसार जो आजकल पत्र बनते जाते हैं इन में भी मिती से मिती बराबर लिखी चली आती है इस को अन्यथा कोई नहीं कर सका यह वृत्तान्त इतिहास का इसलिये है कि पूर्वोक्त ज्ञान का प्रमाण यथावत् सब को विदित रहे और सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय तथा वेदों की उत्पत्ति के वर्षों की गिनती में किसी प्रकार का भ्रम किसी को न हो और यह बड़ा उत्तम काम है इस से सब लोग यथावत् ज्ञान लेवें परंतु इस उत्तम व्यवहार को लोगों ने छोड़ा डालने

के लिये बिगाड़ रक्खा है यह शोक की बात है और टके के लोभ ने भी जो इस के पुस्तक व्यवहार को बना रक्खा नष्ट न होने दिया यह बड़े हर्ष की बात है जो चारों युगों के चार भेद और उनके वर्षों की घट बढ़ संख्या लिखी हुई है इस की व्याख्या आगे करेंगे वहां देख लेना चाहिये यहां इस का प्रसंग नहीं है इसलिये नहीं लिखा।

यत्तावत्। कथनेनैवाध्यापकविलसन मोक्षमूलरादिभिर्यूरोपाख्यखण्डस्थैर्मनुष्यैरुक्तो वेदोऽस्ति श्रुतिर्नास्तीति यदुक्तं तन्नोक्तं यतो द्विशतत्रिसप्तशतैकत्रिंशद्वर्षेषु वेदोत्पत्तौ व्यतीतायामिति तस्यैव भ्रममूलमस्तीति वेद्यम्। तथैव प्राकृतभाषया व्याख्यानकारिभिरप्येयमुक्तं तदपि भ्रान्तमेवास्तीति च॥

॥ इति वेदोत्पत्तिविचारः॥

॥ भाषार्थ ॥

इसमें जो अध्यापक विलसन साहेब और अध्यापक मोक्षमूलर साहेब आदि यूरोपखंड वासी विद्वानों ने बात कही है कि वेद मनुष्य के रचे हैं किंतु श्रुति नहीं है उन की यह बात ठीक नहीं है और दूसरी यह है कोई कहता है (१९००) नौवौंस सौ वर्ष वेदों की उत्पत्ति को हुए कोई (१८००) उनतीस सौ वर्ष कोई (३०००) तीस हजार वर्ष और कोई कहता है (५५००) एकतीस सौ वर्ष वेदों को उत्पन्न हुए बीते हैं उन की यह भी बात झूठी है क्योंकि उन लोगों ने इस आर्य्य लोगों की नित्य प्रति की दिनचर्या का लेख और संकल्प पठन विद्या को भी यथावत् न सुना और न विचारा है नहीं तो इतने ही विचार से यह भ्रम उन को नहीं होता इस से यह जानना अवश्य चाहिये कि वेदों की उत्पत्ति परमेश्वर से हुई है और जितने वर्ष अभी ऊपर गिन आये हैं उतने ही वर्ष वेदों और जगत् की उत्पत्ति में भी हो चुके हैं इसमें क्या सिद्ध हुआ कि जिन २ ने अपनी २ देश भाषाओं में अन्यथा व्याख्यान वेदों के विषय में किया है उन २ का भी व्याख्यान मिथ्या है क्योंकि जैसा प्रथम लिख आये हैं अब पर्य्यंत हजार चतुर्युगी व्यतीत न हो चुकेंगी तब पर्य्यंत ईश्वरोक्त वेद का पुस्तक यह जगत् और हम सब मनुष्य लोग भी ईश्वर के अनुग्रह से सदा वर्त्तमान रहेंगे॥

॥ इति वेदोत्पत्तिविचारः॥

॥ अथ वेदानां नित्यत्वविचारः ॥

ईश्वरस्य सकाशाद्वेदानामुत्पत्तेः सत्यां स्वतो नित्यत्वमेव प्रसक्तमस्य कर्तृप्रमाणाभावेन नित्यत्वात् ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब वेदों के नित्यत्व का विचार किया जाता है यों तो वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं इसलिये वे स्वतः नित्यस्वरूपवाले नहीं हैं क्योंकि ईश्वर का सब सामर्थ्य नित्यरूप है ॥

अत्र केचिदाहुः । न वेदानां शब्दमयत्वान्नित्यत्वं संभवति । शब्दो ऽनित्यः कार्य्यत्वात् । घटवत् । यथा घटः कृतोऽस्ति तथा शब्दोऽपि । तस्माच्छब्दानित्यत्वे वेदानामप्यनित्यत्वं स्वीकार्य्यम् । मैवं मन्यताम् । शब्दो द्विविधो नित्यकार्यभेदात् । ये परमात्मज्ञानस्थाः शब्दाक्षरसंबन्धाः सन्ति ते नित्या भवितुमर्हन्ति । ये ऽस्मदादीनां वर्णेषु ते तु कार्य्यरूपत्वात् । यस्य ज्ञानक्रिये नित्ये स्वभावसिद्धे अनादीस्तस्यैव सर्वे सामर्थ्यमपि नित्यमेव भवितुमर्हति । तद्विद्यामयत्वाद्वेदानामपि नित्यत्वं चैव घटते ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० इस विषय में कितने ही पुरुष ऐसी शंका करते हैं कि वेदों में शब्द क्रम पद और वाक्यों के योग होते से नित्य नहीं हो सकते कैसे कि घट बनाने से पहले नहीं होता इसी प्रकार से वेदों को भी किसी ने बनाए होगा क्योंकि बनाने के पहिले नहीं थे और प्रलय के बाद में भी न रहेंगे इसलिये वेदों को नित्य मानना ठीक नहीं है उ० ऐसा आप को कहना उचित नहीं क्योंकि शब्द दो प्रकार का होता है एक नित्य और दूसरा कार्य्य इन में से जो शब्द अर्थ और संबन्ध परमेश्वर के ज्ञान में हैं वे सब नित्यरूप होते हैं और जो हमलोगों की इच्छा से उत्पन्न होते हैं वे कार्य्य होते हैं क्योंकि जिस का ज्ञान और क्रिया स्वभाव से सिद्ध और अनादी है उस का सब सामर्थ्य भी नित्यरूप होता है इसलिये ईश्वर की विद्या स्वरूप होने से नित्यरूप है क्योंकि ईश्वर की विद्या कभी अनित्य रूपी नहीं होसकती ॥

किं च योगः सर्वेषामेव जगतो हितायैव प्रवृत्तस्य कारणरूपस्यैतस्य सर्वस्यैव कार्य्यमात्रे पठनपाठनपुस्तकादिप्रवृत्तिरूपे वेदानां नित्यत्वं सर्वहितैव । करिष्यति । इदं तु पुरुषप्रयत्नसाध्येषूद्देश्येषु घटते तथा प्रत्यक्षविरुद्धत्वं च नेत्यलम् । यस्य कारणादीश्वरविद्यामयत्वेन वेदानां

नित्यत्वं सर्वं मन्यामहे । किं च न पठनपाठनपुस्तकानित्यत्वे वेदा नित्यत्वं लभन्ते । तेषामीश्वरज्ञानेन सह सदैव विद्यमानत्वात् । यथास्मिन्कल्पे वेदेषु शब्दार्थसंबंधाः सन्ति तथैव पूर्वमासन्नग्रे भविष्यन्ति च । कुतः । ईश्वरविद्याया नित्यत्वाद्व्यभिचारित्वाच्च । अतएवेदमुक्तमृग्वेदे . सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयदिति । अस्यायमर्थः । सूर्यचन्द्रग्रहणमुपलक्षणार्थं यथा पूर्वकल्पे सूर्यचन्द्रादिरचनं तस्य ज्ञानमध्ये ह्यासीत्तथैव तेनास्मिन्कल्पेऽपि रचनं कृतमस्तीति विज्ञायते । कुतः । ईश्वरज्ञानस्य वृद्धिक्षयविपर्ययाभावात् । सर्वं वेदेष्वपि स्वीकार्यं वेदानां तेनैव स्वविद्यासृष्टत्वात् ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० जब सब जगत् के परमाणु अलग २ होके कारणरूप होजाते हैं तब तो कार्य रूप सब स्थूल जगत् है उस का अभाव हो जाता है उस समय वेदों के पुस्तकों का भी अभाव होजाता है फिर वेदों को नित्य क्यों मानते हो उ० यह ज्ञान पुस्तक पत्र मसी और अक्षरों की बनावट आदि पक्ष में घटती है तथा हमलोगों के क्रिया पक्ष में भी बन सकती है वेद पक्ष में नहीं घटती क्योंकि वेद तो शब्द अर्थ और संबन्ध स्वरूप हैं मसी कागज पत्र पुस्तक और अक्षरों की बनावट रूप नहीं है यह तो मसी लेखनादि क्रिया है सो मनुष्यों की बनाई है उससे यह अनित्य है और ईश्वर के ज्ञान में सदा बने रहने से वेदों को हमलोग नित्य मानते हैं इससे क्या सिद्ध हुआ कि पढ़ना पढ़ाना और पुस्तक के अनित्य होने से वेद अनित्य नहीं हो सकते क्योंकि वे बीजांकुरन्याय से ईश्वर के ज्ञान में नित्य वर्त्तमान रहते हैं सृष्टि की आदि में ईश्वर में वेदों की प्रसिद्धि होती है और प्रलय में जगत् के नहीं रहने से उन की अप्रसिद्धि होती है इस कारण से वेद नित्यस्वरूप ही बने रहते हैं जैसे इस कल्प की सृष्टि में शब्द अर्थ और संबन्ध वेदों में हैं इसी प्रकार से पूर्व कल्प में थे और आगे भी होंगे क्योंकि जो ईश्वर की विद्या है सो नित्य एकही रस बनी रहती है उन के एक अक्षर का भी विपरीत भाव कभी नहीं होता सो ऋग्वेद से लेके चारों वेदों की संहिता अब जिस प्रकार की हैं कि इन में शब्द अर्थ संबंध पद और अक्षरों का जिस क्रम से वर्त्तमान है इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है क्योंकि ईश्वर का ज्ञान नित्य है उस की सृष्टि तथा और विपरीतता कभी नहीं होती इस कारण से वेदों को नित्यस्वरूप ही मानना चाहिये ॥

अथ वेदानां नित्यत्वे व्याकरणशास्त्रादीनां साध्यर्थं प्रमाणानि लिख्यंते । तत्रादौ महाभाष्यकारः पतंजलिमुनिः ॥ नित्याः शब्दानित्येषु दृश्यंते कूटस्थैरविचालिभिर्वर्णैर्वर्धितव्ययनपायोपजनविकारैरिमिरिति । इदं वचनं प्रथमान्हिकमारभ्य बहुषु स्थलेषु व्याकरणमहाभाष्येऽस्ति । तथा योगेश्वरैर्यास्कमुनिभिरुक्तं । अथापि बाह्येभ्यो निरुक्तसमयः । उपजन आगमः । विकारादेशः । यते न विद्यन्ते येषु शब्देषु तत्सदृशा नित्याः शब्दाः ॥

॥ भाषार्थ ॥

यह जो वेदों के नित्य होने का विषय है इस में व्याकरणादि शास्त्रों की प्रमाण साक्षी के लिये लिखते हैं इन में से जो व्याकरण शास्त्र है वह संस्कृत और भाषाओं के सब शब्द विद्या का मुख्य मूल प्रमाण है उस के बनाने वाले महामुनि पाणिनि और पतंजलि हैं उन का ऐसा मत है कि सब शब्द नित्य हैं क्योंकि इन शब्दों में जितने अक्षरादि अवयव हैं वे सब कूटस्थ अर्थात् विनाश रहित हैं और वे पूर्वापर विचलते भी नहीं उन का आगम का अगम कभी नहीं होता तथा आने से आने के जिन का ग्रहण होता है सु इ में जो आने जाने हैं जो बाह्य दृष्टि से उच्चारण करने से प्रकाशित होते हैं और जिन का निवास का स्थान आकाश है उन को शब्द कहते हैं इसी वैदिक अर्थात् जो वेद में शब्द और वेदों में जो शब्द लोक में आये हैं वे लौकिक कहाते हैं वे भी सब नित्यही होते हैं क्योंकि उन शब्दों के मध्य में सब वर्ण अविनाशी और अचल हैं तथा उन में लोप आगम और विकार नहीं बनसके इस कारण से पूर्वोक्त शब्द नित्य हैं ॥

ननु गणपाठादृग्यजुर्मन्त्रब्राह्मणादयो विधीयन्ते पुनरेतत्कथं संगच्छते । इत्येवं प्राप्ते ब्रूते महाभाष्यकारः । सर्वे सर्वपदादेशादार्धधातुकस्य वालिनः ॥ एकदेशविकारे हि नित्यत्वं नोपपद्यते ॥ १ ॥ द्वाभ्यां व्यञ्जनाभ्यां परस्योपरि महाभाष्यवचनम् । अस्यायमर्थः सर्वे संघाताः सर्वेषां पदानां स्थानआदेशा भवन्ति । अर्थाच्छब्दसंघातान्तराणां स्थानेऽन्ये शब्दसंघाताः प्रयुज्यन्ते । तद्यथा । वेदपारगः । गम् । ड । मुँ । म् । शए । शिए । इत्येतस्य शब्दसमुदायस्य स्थाने वेदपारगो ऽभवदित्यादि समुदायाः प्रयुज्यते । अस्मिन्प्रयुक्तसमुदाये गम् ड मुँ म् शए शिए इत्येतेषाम् आम्

ङ् उँ श् ए ङ् ए इत्येते ऽपयन्तीति केषांचिद्बुद्धिर्भवति सा भ्रममूलैवास्ति । कुतः । शब्दानामेकदेशविकारे चेत्युपलक्षणात् । नैव शब्दस्यैकदेशापाय एक देशोपजन एकदेशविकारिणि सति दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेराचार्य्यस्य मते शब्दानां नित्यत्वमुपपन्नं भवत्यतः । सर्वेवाडागमो भू इत्यस्य स्थाने भो इति विकारे चैवं संज्ञाः कार्य्याः । (श्रोत्रोपलब्धिरिति) श्रोत्रेंद्रियेण ज्ञानं यस्य बुद्धेः नितरां गृहीतुं योग्य उच्चारणेनाभिव्यक्तियोग्यो यो यस्याकाशो देशो ऽधिकरणं वर्त्तते स शब्दो भवतीति बोध्यम् । अनेन शब्दलक्षणेनापि शब्दो नित्यश्चास्तीत्यवगम्यते । कथम् । उच्चारणश्रवणादिप्रयत्नक्रियायाः क्षणप्रध्वंसित्वात् । एकैकवर्णवर्त्तिनी वाक् इति महाभाष्यप्रामाण्यात् । प्रति-वर्णं वाक् क्रियापरिणामते अतस्तस्या एवानित्यत्वं गम्यते न च शब्दस्येति ।

॥ भाषार्थ ॥

प्र० गणपाठ अष्टाध्यायी और महाभाष्य में अक्षरों के लोप आगम और विकार आदि कहे हैं फिर शब्दों का नित्यत्व कैसे हो सकता है इस प्रश्न का उत्तर महाभाष्यकार पतंजलि मुनि देते हैं कि शब्दों के समुदायों के स्थानों में अन्य शब्दों के समुदायों का प्रयोग मात्र होता है जैसे वेदपार-गम् इ सुँ भू शप् तिप् इस पदसमुदाय वाक्य के स्थान में वेदपारगो ऽभवत् इस पदसमुदायांतर का प्रयोग किया जाता है इस में किसी पुरुष को ऐसी बुद्धि होती है कि अम् इ उँ श् ए ङ् ए इन की निवृत्ति होजाती है सो इस की बुद्धि में भ्रम मात्र है क्योंकि शब्दों के समुदाय के स्थानों में दूसरे शब्दों के समुदायों के प्रयोग किये जाते हैं सो यह मत दाक्षी के पुत्र पाणिनि मुनिजी का है जिसने अष्टाध्यायी आदि व्याकरण के ग्रंथ किये हैं सो मत इस प्रकार से है कि शब्द नित्य ही होते हैं क्योंकि जो उच्चारण और श्रवणादि इन लोगों की क्रिया है उस के क्षणभंग होने से अनित्य गिनी जाती है इससे शब्द अनित्य नहीं होते क्योंकि यह तो इनलोगों की वाणी है वह्नी वर्ण २ की प्रति अन्य २ होती जाती है परंतु शब्द तो सदा अखंड एक रसही बने रहते हैं ॥

ननु च भोः शब्देऽप्युपरक्तागतो भवति । उच्चारित उपागच्छति । अनुच्चारितो ऽनागतो भवति । वाक् क्रियावत् । पुनस्तस्य कथं नित्यत्वं भवेत् । अत्रोच्यते । नाकाशवत् पूर्वस्थितस्य शब्दस्य साधनाभावादभिव्य-क्तिर्भवति । किन्तु तस्य प्राग्वाक् क्रियया अभिव्यक्तिश्च । तद्यथा । गौरित्यत्र यावद्वाग्व्यापारोस्ति न तावद्गौकारे यावद्गौकारे न तावद्विसर्जनीये । एवं वाक् क्रियोच्चारणस्यापायोपजनौ भवतः न च शब्दस्याखंडैकरसस्य तस्य

सर्वेषामेवाऽऽकाशात् । यत्र खलु वायुवाक्छ्रोत्रेण श्रवणसम्बन्धेनोपलभ्यते तत्रैव श्रोत्रेण । अतः शब्दस्याऽऽकाशगुणत्वेन सदा नित्यत्वादस्ति विद्युत्प्रभृतीनां शब्दानां नित्यत्वमिति ।

॥ भाषार्थ ॥

प्र० शब्द भी उच्चारण किये से पश्चात् नष्ट हो जाता है और उच्चारण से पूर्व सुना नहीं जाता है जैसे उच्चारण क्रिया अनित्य है वैसे ही शब्द भी अनित्य होसक्ता है फिर शब्दों को नित्य क्यों मानते हो उ० शब्द तो आकाश की नाईं सर्वत्र एक रस भर रहे हैं परंतु जब उच्चारण क्रिया नहीं होती तब प्रतिदिन सुनने में नहीं आते जब प्राण और वायु की क्रिया से उच्चारण किये जाते हैं तब शब्द प्रतिदिन होते हैं जैसे मुंह से उच्चारण में जब पर्यंत उच्चारण क्रिया यकार में रहती है तब पर्यंत यकार में नहीं जब यौकार में है तब यकार और विसर्जनीय में नहीं रहती इसी प्रकार वायु की क्रिया की उत्पत्ति और नाश होता है शब्दों का नहीं किंतु आकाश में शब्द की प्राप्ति होने से शब्द तो अखंड एकरस सर्वत्र भर रहे हैं परंतु जब पर्यंत वायु और वाक् इंद्रिय की क्रिया नहीं होती तब पर्यंत शब्दों का उच्चारण और श्रवण भी नहीं होता इससे यह सिद्ध हुआ कि शब्द आकाश की नाईं नित्य ही हैं जब व्याकरणशास्त्र से सब ही शब्द नित्य होते हैं तो ऐसों के शब्दों की क्या ही कहनी है क्योंकि ऐसे शब्द तो एक प्रकार से नित्य ही भी कहते हैं ॥

एवं जैमिनिमुनिनापि शब्दस्य नित्यत्वं प्रतिपादितम् । नित्यत्वेनाऽनुच्चार्यत्वस्य परत्वात् । पूर्वमीमांसा । अ० १ पा० १ सू० १८ भाष्यम् । (नु) शब्देनानित्यशंका निवार्य्यते । विनाशरहितत्वाद्धि नित्योऽस्ति तस्माद्गुणस्य परार्थत्वात् । दर्शनस्योच्चारणस्य परस्यार्थस्य ज्ञापनार्थत्वात् । शब्दस्यानित्यत्वं नैव भवति । अन्यथा ह्ययं गौरुच्चारितः प्रतीत्यभिज्ञा प्रत्यक्षेण शब्देन भवितुमर्हतीति । नित्यत्वे सति ज्ञाप्यज्ञापकयोर्विद्यमानत्वात् सर्वमेतत्संगतं स्यात् । अनश्चैकमेव गौरयं शब्दं बहुष्वनेकेषु स्थलेष्वनेकउच्चारकाः उच्चारयन्ते पुनः पुनस्तमेव शब्दमिति । अत्र जैमिनिना शब्दनित्यत्वे प्रत्यक्षे हेतवः प्रदर्शिताः ॥

॥ भाषार्थ ॥

इसी प्रकार जैमिनि मुनि ने भी शब्द को नित्य माना है शब्द में जो अनित्य होने की शंका आती है उस को (नु) शब्द से निवारण किया है शब्द नित्य ही है अर्थात् नाशरहित है क्योंकि उच्चारण क्रिया से

जो शब्द का श्रवण होता है सो अर्थ के जनाने ही के लिये है इससे शब्द अनित्य नहीं होसक्ता जो शब्द का उच्चारण किया जाता है उस की ही प्रत्यभिज्ञा होती है कि गोशब्दद्वारा आदि के बीच में यही शब्द स्थिर रहता है फिर उसी शब्द से अर्थ की प्रतीति होती है जो शब्द अनित्य होता तो अर्थ का ज्ञान कौन कराता क्योंकि जब शब्द ही नहीं रहा फिर अर्थ को कौन जानता और जैसे अनेक देशों में अनेक पुरुष एक काल में ही एक गो शब्द का उच्चारण करते हैं इसी प्रकार उसी शब्द का उच्चारण बारंबार भी होता है इस कारण से भी शब्द नित्य है जो शब्द अनित्य होता तो यह व्यवहार कभी नहीं बन सक्ती सो जैमिनि मुनि ने इस प्रकार के अनेक हेतुओं से पूर्वमीमांसा शास्त्र में शब्द को नित्य सिद्ध किया है ॥

अन्यच्च वैशेषिकसूत्रकारः कणादमुनिरप्याह । तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् । वैशेषिके । अ० १ सू० ३ अस्यायमर्थः तद्वचनात्योर्धर्मस्यैवेश्वरोक्तत्वाद्वेदस्यैव फलव्यवस्था प्रतिपादनादीश्वरोक्तत्वाच्चाम्नायस्य वेदचतुष्टयस्य प्रामाण्यं सर्वैर्नित्यत्वेन स्वीकार्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

इसी प्रकार वैशेषिकशास्त्र में कणाद मुनि ने भी कहा है (तद्वचना०) वेद ईश्वरोक्त हैं इन में सत्यविद्या और यथार्थ ज्ञान सहित धर्मका ही प्रतिपादन है इससे चारों वेद नित्य हैं इसलिये सब मनुष्यों को मानना उचित है क्योंकि ईश्वर नित्य है इससे उस की विद्या भी नित्य है ॥

तथा स्वकीयन्यायशास्त्रे गोतममुनिरप्याह ॥ मंत्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् । अ० २ आह्निके १ सू० ६८ अस्यायमर्थः । तेषां वेदानां नित्यानामीश्वरोक्तानां प्रामाण्यं सर्वैः स्वीकार्यम् । कुतः । आप्तप्रामाण्यात् धर्मात्मभिः कपटकलादिदोषरहितैर्दयालुभिः सत्योपदेष्टृभिर्विद्यापारगैर्महायोगिभिः सर्वैर्ब्रह्मादिभिराप्तैर्वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमतः किंवत् । मंत्रायुर्वेदप्रामाण्यवत् । यथा सत्यपदार्थविद्याप्रकाशकानां मंत्राणां विचारणां सत्यत्वेन प्रामाण्यं भवति । यथा चायुर्वेदोक्तस्यैकदेशोक्तौषधसेवनेन रोगनिवृत्त्या तद्विरुद्धस्यापि भागस्य तादृशस्य प्रामाण्यं भवति । तथा वेदोक्तार्थस्यैकदेशप्रत्यक्षेणेश्वरस्यादृष्टार्थविषयस्य वेदभागस्यापि प्रामाण्यमंगीकार्यम् । अस्मत्सूत्रस्थे परि भाष्यकारेण वात्स्यायनमुनिनाप्येवं प्रतिपादितम् । दृष्टश्चैवकृसामान्याच्चानुमानम् । यथायुर्वेदाप्तानां दृष्टार्थानां दृष्टारः प्रवक्तारश्च तथायुर्वेदभूतीनामित्यायुर्वेदप्रामाण्यवद्वेदप्रामाण्यमनुमातव्यमिति । नित्यत्वाद्वेदवाक्यानां प्रमाणत्वे तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यादित्युक्तम् ॥

विद्यमान होता है फिर प्रलय में स्थूलाकार नहीं रहता किन्तु सूक्ष्म कारणरूप हो सदा ही बना रहता है इससे क्या आया कि जो विद्यमान हो और जिस का कारण कोई भी न हो अर्थात् स्वयं कारणरूप ही हो उस को नित्य कहते हैं क्योंकि जो २ संयोग से उत्पन्न होता है सो २ बनाने वाले की अपेक्षा अवश्य रखता है जैसे कर्म नियम और आत्मे ये सब कर्ता विधाता और कारण को ही सदा जनाते हैं और जो कोई ऐसा कहे कि कर्ता को भी किसी ने बनाया होगा तो उसे पूछना चाहिये उस कर्ता के कर्ता को किस ने बनाया है इसी प्रकार यह अनवस्था अर्थात् मर्यादा खंडित होता है जिस की मर्यादा नहीं है वह व्यवस्था से नियम नहीं ठहर सकता और जो संयोग से उत्पन्न होता है वह प्रकृति और परमाणु आदि के संयोग करने में समर्थ नहीं हो सक्ता इससे क्या आया कि जो जिससे छूटा होता है वही उस का बनाने होता है अर्थात् स्थूल में सूक्ष्म व्यापक होता है जैसे लोहे में अग्नि प्रविष्ट हो के उस के सब अवयवों में व्याप्त होता है और जैसे जल पृथ्वी में प्रविष्ट हो के उस के कणों के संयोग से पिंड करने में हेतु होता है तथा उस का छेदन भी करता है वैसेही परमेश्वर सब संयोग और वियोग से पृथक् सब में व्यापक प्रकृति और परमाणु आदि में भी अत्यंत सूक्ष्म और चेतन है इसी कारण से प्रकृति और परमाणु आदि सूक्ष्मों के संयोग करने आदि हो सक्ता है जो ईश्वर उन में सूक्ष्म होता तो उन को पकड़ और रचन कभी नहीं कर सक्ता क्योंकि जो स्थूल पदार्थ होते हैं वे सूक्ष्म पदार्थों के नियम करने में समर्थ नहीं होते जैसे हम लोग प्रकृति और परमाणु आदि के संयोग और वियोग करने में समर्थ नहीं हैं क्योंकि जो संयोग वियोग से भीतर है उस उस के संयोग वियोग करने में समर्थ नहीं हो सक्ता तथा जिस वस्तु से संयोग वियोग का आरंभ होता है वह वस्तु संयोग और वियोग में कारण ही होता है क्योंकि वह संयोग और वियोग के आरंभ को नियमों का करता और आदिकारण होता है तथा आदिकारण के अभाव से संयोग और वियोग का होना ही असंभव है इससे क्या जानना चाहिये कि जो सदा निर्विकार-स्वरूप सदा अनादि नित्य सत्य सामर्थ्य से युक्त और अनंत विद्यावाला ईश्वर है उस की विद्या से वेदों के मंत्र होने और उस के ज्ञान में वेदों के उपदेश वर्त्तमान रहने से वेदों को सत्यार्थ युक्त और नित्य सब मनुष्यों को मानना योग्य है यह संक्षेप से वेदों के नित्य होने का विचार किया ॥

॥ इति वेदानां नित्यत्वविचारः ॥

अथ वेदविषयविचारः ।

अब चत्वारो वेदविषयाः सन्ति । किन्त्वत्रौपयोगिकः कार्यकाण्ड वेदान् । अत्रादिमो विज्ञानविषयोऽस्ति सोऽपेक्षितः । तत्र यदेतत्क-

राद्यारभ्य तृणपर्य्यंतपदार्थेषु साक्षाद्बोधान्वयत्वात् । तत्राऽीश्वरानुभवो मुख्योऽस्ति । कुतः । अत्रैव सर्वेषां वेदानां तात्पर्यमस्तीश्वरस्य खलु सर्वेभ्यः पदार्थेभ्यः प्रधानत्वात् । अथ प्रमाणानि । सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ कठोपनि० वल्ली २ मं० १५ ॥ तस्य वाचकः प्रणवः । योगशास्त्रे । अ० १ पा० १ सू० २७ । ओ३म् खं ब्रह्म । यजुः० । अ० ४० । ओमितिब्रह्म । तैत्तिरीयारण्यके । प्र० २ अनु० ८ ॥ तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पोव्याकरणं निरुक्तं छन्दोज्योतिषमिति । अथ परायायातदक्षरमधिगम्यते ॥ १ ॥ यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥ २ ॥ मुण्डके १ खंडे १ मं० ५ । ६ ॥ व्याख्या । (सर्वेवेदाः०) यत्परमं पदंमोक्षाख्यं परब्रह्मप्राप्तिलक्षणं सर्वानन्दमयं सर्वदुःखेतरदस्ति तदेवौंकार वाच्यमस्ति (तस्य०) तस्येश्वरस्य प्रणव ओंकारो वाचकोऽस्ति वाच्यश्चेश्वरः (ओम्०) ओमितिपरमेश्वरस्य नामास्ति तदेव परं ब्रह्म सर्वे वेदा आमनन्ति । आमनन्तादभ्यस्यन्ति मुख्यतया प्रतिपादयन्ति (तपांसि) सत्यधर्मानुष्ठानानिसर्वेऽपि तदभ्यासपरायणेव सन्ति (यदिच्छन्तो०) ब्रह्मचर्य्यंयद्ब्रह्मोपलब्धार्थं ब्रह्मचर्यं-गृहस्थवानप्रस्थसन्यासाश्रमाचरणानि सर्वाणि । तदेवामनन्ति । ब्रह्मप्राप्त्यभ्यासपराणि सन्ति । यद्ब्रह्मेच्छन्तो विद्वांसस्तस्मिन्नध्या समाना यदन्त्युपयन्ति च । हे नचिकेतः अहं यमो यदीदृशं पदमस्ति तदेतत्ते तुभ्यं संग्रहेण संक्षेपेण ब्रवीमि ॥ १५ (तत्रापरा०) वेदेषु द्वे विद्ये वर्त्तेते अपरापरा चेति । तत्र यया पृथिव्यां तृणमारभ्य प्रकृतिपर्य्यन्तानां पदार्थानां ज्ञानेन यथावदुपकारग्रहणं क्रियते सा अपरोच्यते । यया चादृश्यादिविशेषणयुक्तं सर्वशक्तिमद्ब्रह्म विज्ञायते सा परा ऽथोऽपरायाः सकाशादत्युत्कृष्टास्तीति वेदितव्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब वेदों के नित्यत्वविचार के उपरान्त वेदों में कौन २ विषय किस २ प्रकार के हैं इस का विचार किया जाता है वेदों में अवयवरूप विषय तो अनेक हैं परंतु उन में से चार मुख्य हैं (१) एक विज्ञान अर्थात् सब पदार्थों को यथार्थ जानना (२) दूसरा कर्म (३) तीसरा उपासना और (४) चौथा ज्ञान है विज्ञान उस को कहते हैं कि जो कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों

से यथावत् उपयोग लेना और परमेश्वर से लेके तृण पर्य्यन्त पदार्थों का साक्षात्बोध का होना उस में यथावत् उपयोग का करना इससे यह विषय इन चारों में भी प्रधान है क्योंकि इसी में वेदों का मुख्य तात्पर्य्य है सो भी दो प्रकार का है एक तो परमेश्वर का यथावत् ज्ञान और उस की आज्ञा का बराबर पालन करना और दूसरा यह है कि उस के रचे हुए सब पदार्थों के गुणों को यथावत् विचार के उन से कार्य्य सिद्ध करना अर्थात् ईश्वर ने कौन २ पदार्थ किस २ प्रयोजन के लिये रचे हैं और इन दोनों में से भी ईश्वर का जो प्रतिपादन है सोही प्रधान है इस में आगे आठवलली आदि के प्रमाण लिखते हैं (सर्वे वेदाः०) परम पद अर्थात् जिस का नाम मोक्ष है जिस में परब्रह्म को प्राप्त होके सदा सुख में ही रहना जो सब आनन्दों से युक्त सब दुःखों से रहित और अनन्तशक्तिमान् परब्रह्म है जिस के नाम (ओं) आदि हैं उसी में सब वेदों का मुख्य तात्पर्य्य है इस में योग-भूत का भी प्रमाण है (तस्य०) परमेश्वर का जो ओंकार नाम है (ओं खं०) तथा (ओमिति०) ओं और खं ये दोनों ब्रह्म के नाम हैं और उसी की प्राप्ति कराने में सब वेद प्रवृत्त हो रहे हैं उस की प्राप्ति से आगे किसी पदार्थ की प्राप्ति उत्तम नहीं है क्योंकि जगत् का वर्णन दृष्टान्त और उपयोगादि का करना ये सब परब्रह्म को ही प्रकाशित करते हैं तथा सत्यधर्म के अनुष्ठान जिन को तप कहते हैं वे भी परमेश्वर की ही प्राप्ति के लिये हैं तथा ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के सत्याचरणरूप के कर्म्म हैं वे भी परमेश्वर की ही प्राप्ति कराने के लिये हैं जिस परब्रह्म की प्राप्ति की इच्छा करके विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य और उसी का उपदेश भी करते हैं नचिकेता और यम इन दोनों का परस्पर यह संवाद है कि हे नचिकेतः जो अवश्य प्राप्ति करने के योग्य परब्रह्म है उसी का मैं तेरे लिये संक्षेप से उपदेश करता हूं और यहां यह भी जानना उचित है कि अलंकार रूप कथा से नचिकेता नाम से जीव और यम से अन्तर्यामी परमात्मा को समझना चाहिये (तदपरा०) वेदों में दो विद्या हैं एक अपरा दूसरी परा इन में से अपरा यह है कि जिससे पृथिवी और तृण से ले के अखिलपर्य्यन्त पदार्थों के गुणों के ज्ञान से ठीक २ कार्य्य सिद्ध करना होता है और दूसरी परा कि जिससे सर्वशक्तिमान् ब्रह्म की यथावत् प्राप्ति होती है यह परा विद्या अपरा विद्या से अत्यन्त उत्तम है क्योंकि अपरा का भी उत्तम फल परा विद्या है ॥

अन्यच्च । तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥ त्रिर्वा अरे-अयमात्मेत्यस्य ॥ १ ॥ ऋग्वेदे । अष्टके १ अध्याये २ वर्गे ३ मंत्रः ५ ॥ व्याख्यास्यामः । यत् (विष्णोः) व्यापकस्य परमेश्वरस्य (परमं) प्रकृष्ट-मनन्तस्वरूपं (पदं) पदनीयं सर्वोत्तमैरार्यैर्मनुष्यैः प्राप्तुमीयं योगाभ्यासिनः

तत् (सूरयः) विद्वांसः सदा सर्वेषु कालेषु पश्यन्ति कीदृशं तत् (आप्तम्) आसमन्तात्तं विस्तृतं यद्देशकालवस्तुपरिच्छेदरहितमस्ति । अतः सर्वैः सर्वत्र सदुपलभ्यते तस्य ब्रह्मस्वरूपस्य विभुत्वात् । कस्यां किमिव (दिवीवचक्षुराततम्) दिवि मार्त्तण्डप्रकाशे नेत्रदृष्टेर्व्याप्तिर्यथा भवति । तथैव तत्पदं ब्रह्मापि वर्त्तते मोक्षस्य च सर्वस्मादधिकोत्कृष्टत्वात् । तदेव द्रष्टुं प्राप्तुमिच्छन्ति । अतो वेदादिशास्त्रेण तस्यैव प्रतिपादनं कुर्वंति यतद्विषयकं वेदान्तसूत्रं व्याख्याह । तत्तु समन्वयात् । अ० १ पा० १ सू० ४ अस्यायमर्थः । तदेव ब्रह्म सर्वत्र वेदवाक्येषु समन्वितं प्रतिपादितमस्ति । क्वचित्साक्षात्क्वचित्परंपरया च । अतः परमेशो वेदानां ब्रह्मैवास्ति । तथा यजुर्वेदे प्रमाणम् । यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा ॥ प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणास्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी ॥ य० अ० ८ मं० ३६ अस्यार्थः (यस्मात्) नैव परब्रह्मणः सकाशात् (परः) उत्तमः पदार्थः (जातः) प्रादुर्भूतः प्रकटः (अन्यः) भिन्नः कश्चिदप्यस्ति (प्रजापतिः) प्रजापतिरिति ब्रह्मणो नामास्ति प्रजापालकत्वात् (य आविवेश भु०) यः परमेश्वरः (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (भुवनानि) सर्वलोकान् (आविवेश) व्याप्यानास्ति (सꣳरराणः) सर्वप्राणिभ्यो ऽत्यंतं सुखं दत्तवान्सन् (त्रीणि ज्योतीꣳषि) त्रीण्यग्निसूर्यविद्युदाख्यानि सर्वजगत्प्रकाशकानि (प्रजया) ज्योतिषो ऽन्यया सृष्ट्या सह तानि (सचते) समवेतानि करोति कृतवानस्ति(सः)अतः स सर्वेश्वरः(षोडशी)येन षोडशकला जगति रचिताला विद्यन्ते यस्मिन्नस्य वा तस्मात्स षोडशीत्युच्यते । अतो ऽयमेव परमेशो वेदितव्यः ॥ ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम् ॥ इदं माण्डूक्योपनिषद्वचनमस्ति । अस्यायमर्थः । ओमित्येतदस्य नामास्ति तदक्षरम् । यन्न क्षीयते कदाचिदप्यक्षरं जगदश्नुते व्याप्नोति तद्ब्रह्मैवास्तीति वित्तेयम् । अस्यैव सर्ववेदादिभिः शास्त्रैः सकलेन जगतोपगमं व्याख्यानं मुख्यतया क्रियते ऽतोयं प्रधानविषयेस्तीत्यवधार्य्यम् । किं च नैव प्रधानस्यायं ऽप्रधानस्य ग्रहणं भवितुमर्हति । प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्य्यसंप्रत्ययइति व्याकरणमहाभाष्यवचनप्रामाण्यात् । यत्रैव सर्वेषां वेदानामीश्वरे मुख्येर्थे मुख्यतात्पर्य्यमस्ति । तत्प्राप्तिप्रयोजनायैव सर्वेऽप्युपदेशाः सन्ति । अतस्तदुपदेशपुरःसरेणैव चयाणां कर्मोपासनाज्ञानकाण्डानां पारमार्थिकव्यावहारिकफलसिद्धये यथा योग्योपकाराय चानुष्ठानं सर्वैर्मनुष्यैर्यथावत्कर्त्तव्यमिति ॥

॥ भाषार्थ ॥

और भी इस विषय में ऋग्वेद का प्रमाण है कि (तद्विष्णोः) (विष्णुः) अर्थात् व्यापक जो परमेश्वर है उस का (परमं) अत्यंत उत्तम आनंद स्वरूप (पदं) जो प्राप्ति होने के योग्य अर्थात् जिस का नाम मोक्ष है उस को (सूरयः) विद्वान् लोग (सदा पश्यन्ति) सब काल में देखते हैं वह कैसा है कि सब में व्याप्त हो रहा है और उस में देश काल और वस्तु का भेद नहीं है अर्थात् उस देश में है और इस देश में नहीं तथा उस काल में था और इस काल में नहीं उस वस्तु में है और इस वस्तु में नहीं इसी कारण से वह पद सब जगह में सब को प्राप्त होता है क्योंकि वह ब्रह्म सब ठिकाने परिपूर्ण है इस में यह दृष्टांत है कि (दिवीवचक्षुराततम्) जैसे सूर्य का प्रकाश आवर्ण रहित आकाश में व्याप्त होता है और जैसे उस प्रकाश में नेत्र की दृष्टि व्याप्त होती है इसी प्रकार परब्रह्म पद भी स्वयंप्रकाश सर्वत्र व्याप्तस्वरूप हो रहा है उस पद की प्राप्ति से कोई भी प्राप्य उत्तम नहीं है इस लिये चारों वेद उसी की प्राप्ति कराने के लिये विशेष करके प्रतिपादन कर रहे हैं इस विषय में वेदांतशास्त्र में व्यासमुनि के सूत्र का भी प्रमाण है (तत्तुसमन्वयात्) सब वेद वाक्यों में ब्रह्म का ही विशेष करके प्रतिपादन है कहीं २ साक्षात् रूप और कहीं २ परंपरा से इसी कारण से वह परब्रह्म वेदों का परम अर्थ है तथा इस विषय में यजुर्वेद का भी प्रमाण है कि (यस्मात्परं०) जिस परब्रह्म से (अन्यः) दूसरा कोई भी (परः) उत्तम पदार्थ (नासः) प्रगट (नास्ति) अर्थात् नहीं है (य आविवेश भु०) जो सब विश्व अर्थात् सब जगह में व्याप्त हो रहा है (प्रजापतिः प्र०) वही सब जगत् का पालनकर्त्ता और सर्वज्ञ है जिस ने (द्यौश्च पृथिवी च) द्यौ सूर्य और बिजुली इन तीन ज्योतियों को प्रजा के प्रकाश होने के लिये (सन्ततं) रच के संयुक्त किया है और जिस का नाम (षोडशी) है अर्थात् (१) दर्शन जो यथार्थ विचार (२) प्राण जो कि सब विश्व का धारण करने वाला (३) श्रद्धा सत्य में विश्वास (४) आकाश (५) वायु (६) अग्नि (७) जल (८) पृथिवी (९) इंद्रिय (१०) मन अर्थात् ज्ञान (११) अन्न (१२) वीर्य अर्थात् बल और पराक्रम (१३) तप अर्थात् धर्मानुष्ठान सत्याचार (१४) मंत्र अर्थात् वेद विद्या (१५) कर्म अर्थात् सब चेष्टा (१६) नाम अर्थात् दृश्य और अदृश्य पदार्थों की संज्ञा येही सोलह कला कहाती हैं ये सब ईश्वरकृत के बीच में हैं इसी उस को षोडशी कहते हैं इन षोडश कलाओं का प्रतिपादन प्रश्नोपनिषद् के ६ छठे प्रश्न में लिखा है इससे परमेश्वरही वेदों का मुख्य अर्थ है और उस से पृथक् जो यह जगत् है सो वेदों का गौण अर्थ है और इन दोनों में से प्रधान का ही ग्रहण होता है इससे क्या आया कि वेदों का मुख्य तात्पर्य परमेश्वरही की प्राप्ति करने और प्रतिपादन करने में है उस परमे-

ईश्वर के उपदेशरूप वेदों में कर्म उपासना और ज्ञान इन तीनों काण्डों का इस लोक और परलोक के व्यवहारों के फलों की सिद्धि और यथावत् उपकार करने के लिये सब मनुष्य इन चार विषयों के अनुष्ठानों में पुरुषार्थ करें यही मनुष्य देहधारण करने के फल हैं ॥

तत्र द्वितीयोविषयः कर्मकाण्डाख्यः स सर्वः क्रियामयोस्ति । नैतेन विना विद्याभ्यासज्ञाने चापि पूर्णे भवतः । कुतः । बाह्यमानसव्यवहारयोर्बाह्याभ्यन्तरे युक्तत्वात् । स चानेकविधोस्ति । परं तु तस्यापि खलु द्वौ भेदौ मुख्यौस्तः । एकः परमपुरुषार्थसिद्धयर्थो ऽर्थाद् ईश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाज्ञापालनधर्मानुष्ठानज्ञानेन मोक्षमेव साधयितुं प्रवर्त्तते । अपरो लोकव्यवहारसिद्धये यो धर्मेणार्थकामौ निर्वर्तयितुं संयोज्यते । स यदा परमेश्वरस्य प्राप्तिमेव फलमुद्दिश्य क्रियते तदा ऽयं श्रेष्ठफलापन्नो निष्कामसंज्ञां लभते । अस्य खल्वनन्तसुखेन योगात् । यदा चार्थैकामफलसिद्धयवसानो लौकिकसुखाय योज्यते तदा सो ऽपरः सकाम्यश्च भवति । अस्य जन्ममरणफलभोगेन युक्तत्वात् । स चाग्निहोत्रमारभ्याश्वमेधपर्य्यन्तेषु यज्ञेषु सुगंधिमिष्टपुष्टरोगनाशकगुणैर्युक्तस्य सम्यक् संस्कारेण शोधितस्य द्रव्यस्य वायुवृष्टिजलशुद्धिकरणार्थमग्नौ होमः क्रियते स तद्द्वारा सर्वजगत्सुखकार्य्यैव भवति । यं च भोजनच्छादनयानकलाकौशल्यंचसामाजिकनियमप्रयोजनसिद्धयर्थं विधत्ते सोधिकतया स्वसुखायैव भवति ॥

॥ भाषार्थ ॥

उन में से दूसरा कर्मकाण्ड विषय है सो सब क्रिया प्रधान ही होता है जिस के विना विद्याभ्यास और ज्ञान पूर्ण नहीं हो सके क्योंकि मन का योग बाहर की क्रिया और भीतर के व्यवहार में सदा रहता है सो अनेक प्रकार का है परंतु उस के दो भेद मुख्य हैं एक परमार्थ दूसरा लोकव्यवहार अर्थात् पहिले से परमार्थ और दूसरे से लोकव्यवहार की सिद्धि करनी होती है प्रथम जो परम पुरुषार्थरूप कहा उस में परमेश्वर की (स्तुति) अर्थात् उस के सर्वशक्तिमत्त्वादिगुणों का कीर्त्तन उपदेश और श्रवण करना (प्रार्थना) अर्थात् जिस करके ईश्वर से सहायता की इच्छा करनी (उपासना) अर्थात् ईश्वर के स्वरूप में मग्न होके उस की सत्यभाषणादि आज्ञा का यथावत् पालन करना सो उपासना वेद और पातंजल योगशास्त्र की रीति से ही करनी चाहिये तथा धर्म का स्वरूप न्याचरण है न्याचरण उस को कहते हैं जो पक्षपात को छोड़ के सब प्रकार से सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करना इसी धर्म

का जो ज्ञान और अनुष्ठान का यथावत् करना है सो ही कर्मकाण्ड का प्रधान भाग है और दूसरा यह है कि जिससे पूर्वोक्त अर्थ काम और उन की सिद्धि करनेवाले साधनों की प्राप्ति होती है सो इस भेद को इस प्रकार से जानना कि जब मोक्ष अर्थात् सब दुःखों से छूट के केवल परमेश्वर की ही प्राप्ति के लिये धर्म से युक्त सब कर्मों का यथावत् करना यही विद्याय मार्ग कहाता है क्योंकि इस में संसार के भोगों की आशा नहीं की जाती इसी कारण से इस का फल अक्षय है और जिस में संसार के भोगों की इच्छा से धर्मयुक्त काम किये जाते हैं उन को सकाम कहते हैं इस हेतु से इस का फल नाशवान् होता है क्योंकि सब कर्मों करते इंद्रिय प्रीतियों को प्राप्त हो के फल भोग से नहीं छूट सकता सो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्य्यन्त जो कर्मकाण्ड है उस में चार प्रकार के द्रव्यों का होम करना होता है एक सुगंध गुणयुक्त जो कस्तूरी केशरादि हैं दूसरा मिष्टगुणयुक्त जो कि गुड़ और सक्कर आदि कहाते हैं तीसरा पुष्टिकारक गुणयुक्त जो घृत दुग्ध और अन्न आदि हैं और चौथा रोगनाशक गुणयुक्त जो कि सोमलतादि ओषधि आदि हैं इन चारों का परस्पर शोधन संस्कार और यथायोग्य मिला के अग्नि में युक्ति पूर्वक जो होम किया जाता है वह वायु और वृष्टि जल की शुद्धि करनेवाला होता है इससे सब जगत् को सुख होता है और जिस को प्रत्यक्ष देखने विमानादि यान आना जाना खेती और व्यापार सिद्ध होने के लिये करते हैं वह शब्दांश से अर्थों को ही सुख देनेवाला होता है ॥

अथ पूर्वमीमांसायाः प्रमाणम् । द्रव्यसंस्कार कर्मसु परार्थत्वात्तत्स्मृतिरर्थवादः स्यात् ॥ अ० ४ पा० ३ सू० १ । द्रव्याणां तु क्रियार्थानां संस्कारः क्रतुधर्मः स्यात् ॥ अ० ४ पा० ३ सू० ८ । अनयोरर्थः । द्रव्यं संस्कारः कर्मचैतन्नयं यच्चकर्त्रा कर्तव्यम् । द्रव्याणि पूर्वोक्तानि खलु संस्कारकानि सुगंधादिगुणयुक्तान्येव गृहीत्वा तेषां परस्परसुनयोत्तमगुणसंपादनार्थे संस्कारः कर्तव्यः । यथा घृतादीनां संस्कारार्थं सुगंधयुक्ते घृते घृते संस्थाप्याग्नौ हुतप्य स धूमे जाते सति तं घृतपात्रे प्रवेश्य तन्मुखं बद्ध्वा प्रचालयेच्च तदा यः पूर्वं धूमबद्धाव्यवस्थितः स सर्वः सुगंधो हि जलं भूत्वा प्रविष्टः सन्सर्वं घृतं सुगंधमेव करोति तेन पुष्टिरुचिकारकश्च भवति । तथैव यज्ञादोषाधो जायते स वायुं वृष्टिजलं च निर्दोषं कृत्वा सर्वजगते सुखायैव भवति । अतश्चैतास्य । यज्ञोपि तस्यै जनतायै कल्पते यथैवं विद्वान् होता भवति । ऋ० भा० मं० १ अ० २ । जनानां समूहो जनता तत्सुखायैव यज्ञो भवति यस्मिन्यज्ञे उक्तेन प्रकारेण विद्वान् संस्कृ-

तद्द्रव्याणामग्नौ होमं करोति । क्रतुः । तस्य परार्थत्वात् । यज्ञः परोपकारायैव भवति । अतएव फलस्य श्रुतिः श्रवणमर्थवादो ऽनर्थवारणाय भवति । तथैव होमक्रियार्थानां द्रव्याणां पुरुषाणां च यः संस्कारो भवति स एव क्रतुधर्मो बोध्यः । एवं क्रतुना यज्ञेन धर्मो जायते नान्यथेति ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस में पूर्वमीमांसा धर्मशास्त्र की भी संमति है (द्रव्य०) एक तो द्रव्य दूसरा संस्कार और तीसरा उन का यथावत् उपयोग करना ये तीनों बातें यज्ञ के करता को अवश्य करनी चाहियें सो पूर्वोक्त सुगंधादि युक्त चार प्रकार के द्रव्यों का अच्छी प्रकार संस्कार करके अग्नि में होम करने से जगत् का अत्यंत उपकार होता है जैसे दाल और शाक आदि में सुगंध द्रव्य और घी इन दोनों को चमचे में अग्नि पर तपा के उन में छोंक देने से वे सुगंधित हो जाते हैं क्योंकि उस सुगंध द्रव्य और घी के अणु उन को सुगंधित करके दाल आदि पदार्थों को पुष्टि और रुचि बढ़ाने वाले कर देते हैं वैसे ही यज्ञ से जो भाफ उठता है वह भी वायु और वृष्टि जल को निर्दोष और सुगंधित करके सब जगत् को सुख करता है इससे वह यज्ञ परोपकार के लिये ही होता है इस में ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि (यज्ञोवित०) अर्थात् जगत का नाम जो मनुष्यों का समूह है उसी के सुख के लिये यज्ञ होता है और संस्कार किये द्रव्यों का होम करने वाला जो विद्वान् मनुष्य है वह भी आनंद को प्राप्त होता है क्योंकि जो मनुष्य जगत् का जितना उपकार करेगा उस को उतनाही ईश्वर की व्यवस्था से सुख प्राप्त होगा इसलिये यज्ञ का अर्थ वायु * यह है कि अनर्थ दोषों को हटा के जगत् में आनंद को बढ़ाना है परंतु होम के द्रव्यों का उत्तम संस्कार और होम के करने वाले मनुष्यों को होम करने की श्रेष्ठ विद्या अवश्य होनी चाहिये सो इसी प्रकार के यज्ञ करने से सब को उत्तम फल प्राप्त होता है विशेष करके यज्ञ करता को अन्यथा नहीं ॥

अत्र प्रमाणम् । अग्नेर्वै धूमो जायते धूमादभ्रमभ्रादृष्टिरग्नेर्वा एता जायन्ते तस्मादाहुतयोजा इति । श० कां० ५ अ० ३ । अस्यायमभिप्रायः अग्नेः सकाशाद्धूमबाष्पौ जायेते यदा यमग्निर्वृक्षौषधिवनस्पतिजलादिपदार्थान्प्रविश्यैतान्संहतान् विभिद्य तेभ्यो रसं च पृथक् करोति । पुनस्ते लघुत्वमापन्ना घट्याधारेणोपर्य्याकाशं गच्छंति । तत्र बाष्पान् जलरसांशस्तावतो बाष्पसंज्ञास्ति । यश्च निःस्नेहभागः स पृथिव्यंशोस्ति । अत एवोभयभागयुक्ता धूमदत्युपचर्य्यते । पुनर्धूमगमनानन्तरमाकाशे जलसंचयो

* इस शब्द का अर्थ आगे वेद संज्ञा प्रकरण में लिखा जायगा ।

॥ धर्माय हरये ॥

१ बाबू प्रभुदयालजी -- जैन मित्रमंडल । रोहतकनगर । -- -- -- -- १)*०

क्रमांक	नाम पतादेने	पता लिखने	संख्या	नाम	संख्या अंकोंमें
३४	पंडित उमरावसिंहजी निर्मल पाक -- --	हेडिंग मुंशी व जनरलआर्डर सिंध मीरपुर	१		१)
३५	बाबू पार्वतीचरण --	मास्टर एंट्रेंसक्लास हाईस्कूल । मालदह	१		१)*
३६	पंडित मुकुंदलाल --	प्रेमसमाज। बलोदा जयसिंघ । उमाचाकाट -- -- --	१०		२॥)*
३८	बाबू रामाधार वकील	गर्ट्स स्कूल सुपरवाइजर ऑफिस अफसर ऐंड कमिश्नर कि दिवान एडमिनिस्ट्रेशन । होशियारपुर डिपार्टमेंट । लखनौ ।	१२		३)*
३७	पंडित मुरलीधर मिश्र --	मोजक्का डिगोपारा । मारट -- --	१		४)
३९	बाबू कपूर सिंह --	कानूनगो कलेक्टरी । लखनऊ लखनऊ । मेरठ -- -- -- --	१		४)
४२	बाबू छेदीलाल --	लाजपतराय एसोसियेशन । मेरठ -- --	१		४)
४५	बैजनाथ पलैसमें --	त्रिमोहान मैजेस्ट्रेटीज ब्रां० शिक्षा । नरसिंहपुर मालवा एजेंसी । सी० सेंट्रलप्रो०	१		४॥)*
४८८	मुंशी जालिम प्रसाद --	सरकारी कानूनगो अलीगढ़ -- --	१		४॥)*
४८९	[illegible] गोदारा --	कलक्टर ऐंड डी० कमि । डेरागाजीखां --	१		४॥)*
४९०	पंडित शालिग्राम म --	हेड पंडित गवर्नमेंट कालेज । अजमेर	१		४॥)*
४९१	मुंशी देवीसहाय --	सी० ए० अफसर आफ मुंशी देवीसहाय तहसीलदार । नरसिंहपुर सी० पी०	१		५)*
४९६	पंडित जगन्नाथ --	हेड पंडित गवर्नमेंट कालेज । अजमेर	१		४॥)*
४९७	बाबू रामनाथ -- --	हेडपंडित ऐंग्लो वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल । कानपुर	१		४॥)*
४९९	मुंशी गिरधारीलाल --	हेडपंडित गवर्नमेंट हाई स्कूल । अजमेर -- -- --	१		४॥)*
५००	पंडित भवानीराम --	डिप्टी पंडित ऐंग्लो वर्नाक्युलर मिडिल । अजमेर -- --	१		४॥)*
५०१	मुंशी विशुनलाल --	फारेस्ट रेंजर कालेज क्लास गवर्नमेंट का लेज । तेरह साल से ये नाम हैं क्लास सर्विस करते आए हैं ऐसे । अजमेर -- -- --	१		५)*
५०२	पंडित रामरत्न --	हेडपंडित मिडिल क्लास गवर्नमेंट बालिका । अजमेर -- -- --	१		४॥)*
५०३	पंडित रामसहाय --	पीरके अजमेर कालिज । अजमेर --	१		४॥)*
५०४	पंडित मंगलराम --	एजुकेशन ऐंड सर्वेयर ऐजमेर । अजमेर	१		४॥)*
५०५	पंडित शिवनरायण --	ऐंड पंडित ऐंग्लोवर्नाक्युलर । अजमेर --	१		४॥)*
५०६	बाबू मोहनलाल ए ई	मदरसा गोरियारा । मथुरा -- --	१		४॥)*
५०९	बाबू बंशीधरलाल --	कानूम ईकाक ऐंग्लोवर्नाक्युलर । अजमेर	१		४॥)*
५१०	बाबू शिवनरायण --	मथुरा । सहारिया -- -- --	१		४॥)*
५१८	पंडित सच्चेलालजोशिपुरा	हेडपंडित मीडिल ऐंग्लोवर्नाक्युलर स्कूल । पलवल मुरादाबाद । सहारनपुर --	१		४॥)*

संख्या क्रमांक	भाई बालक	पता ठिकाना	पुस्तक संख्या	मान्य नगद	मान्य उधार
१२६	बालमुकुन्द गोयल	नजदीक पंचोली अमरनाथ की धर्मशाला	१	२=)।)	
१२७	रामा डाक्टरखाना	मालवा पुरी वाया टोंगरी जिला झालावाड़	२		८)
१२८	लक्ष्मण पंचोली	पुरुषोत्तमलाल बेगार जमादेवरी जिला मोरवी	१	१।=)	
१२९	लाला बादमल्ल	दुकानदारी लुधियाना	१	।=)	
१३०	पंडित शिवदत्त	मिल्स दुकान दुकान लुधियाना	१		१।)

We beg to acknowledge following receipts received through Babu Thakur Dhanraj Singh Bedi

	Rs. A.		Rs. A.
Govardhandas Mooljee, Esq.	4-2	Babu Akhoya Kumar Mitra	—2
Seth Bhawan Lalla, Esq.	—4	Pandit Hari Krishna, Esq.	2
Lala Ram Narayan, Esq.	—4	Narayan Das Bedi, Esq.	1-8
Sardar Jai Dhanwant, Esq.	4-2	Purohit Shiv Datt, Esq.	1-8
Mahomed Ismail Engineer, Esq.	—2	Mukund Ambaram, Esq.	1-8
Pandit Ram Lal, Esq.	—2	Pandit Ram Sanjeevan, Esq.	1-8

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के छपाये पुस्तकों की सूचना ॥

	पुस्तक संख्या	मूल्य प्रति पुस्तक	मजदूरी
१	सत्यार्थप्रकाश जी	५)	।=)
२	संस्कारविधि जी	०।=)	।)
३	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका जी	।)	।)

इसमें से सत्यार्थप्रकाश की पुस्तक थोड़ा और शेषतीन जी से ले सकते हैं। दयानन्द सरस्वती जी के पास जोधा मुहल्ले दादूपीर कालेला देवी के सड़क पर लाला के सामने केशवलाल त्रिभोवन जी के पास भी मिलता है।

संस्कारविधि—स्वामी दया जी के हाथ तीन पंडित मुन्नालाल जी के पास दयानन्दकोट में दोस्तिकलर अमरनाथ की पंचोली की दुकान में जोधा रहते हैं पुस्तकविक्रेता महाशय के ठिकाने से मिलता है।

ऋग्वेदादिभाष्य—स्वामी दया जी के हाथ तीन पुरोहित पंडित मुन्नालाल जी के ठिकाने से मिलता है॥

टिप्पणी—जो सज्जन मनुष्य पुस्तक मंगाते हैंवे मूल्य पुस्तक प्राप्ति के मान्य एक सप्ताह के भीतर मनीआर्डर कर देने चाहिये, क्योंकि पत्रव्यवहार में बड़ा खर्च पड़ता है॥

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विता ॥

अस्यैकैकाङ्कस्य मूल्यम् भारतवर्षीयसङ्केतानुसारेण
मूल्येन सहितं ।≈) परतन्त्र डाकशुल्कसहितं सिंहलद्वीपे
वार्षिकं ४॥) मशाद्वयम् ॥

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक फर्मे का मूल्य भारतवर्ष के मोल
डाकमाशुल सहित ।≈) और वार्षिक मूल्य ४॥)

अस्य ग्रन्थस्य मुद्रणार्थेऽहं यस्य भवेदुद्धारो लाभसंबन्धस्तस्य
वा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपे वार्षिक मूल्यं
प्रेषयिष्यामि प्रतिमासमङ्के प्राप्स्यति ॥

अङ्क (३)

॥ अथ यजु: काण्वा वाजसनेयसंहितायाः पञ्चमोऽध्यायः मुद्रितः ॥

संवत् १९३४ ।

॥ अस्य ग्रन्थस्याधिकारो भाष्यकर्त्रा स्वयं मयैव स्वाधीनः कृत इति ॥

विज्ञाप्यते यो कि [illegible] मासान्तरे [illegible] मासान्तरे [illegible]

जो धन वेङ्कमाम्ब अन्नदान और ब्राह्मणों के सङ्कल्प में समर्पण किया गया वर्णित होता है ।

क्रमांक	नाम वर्णित	ग्रहण कर्त्ता	धनराशि
१	पट्टाभि सीतारामी गोपालराव दीक्षित	सपत्नीक तथा दौहित्र नागेश्वर शर्मा	(illegible)
२	[illegible]	वेदे श्री फणिराजाद्रि कालहस्ति	(illegible)
३	नाना नरहर भ	नरसिंहाद्रि गो ब्राह्मण और वेदों का पालनकर्ता अनन्त नरहरि मन्त्री पूर्व दिशा कलेक्टरी निवास नलोर	५०)
४	नारायण विनायक [illegible]	[illegible]	२०)
५	मुन्नी सर्वेण्ट ऑफ [illegible]	पलार [illegible]	३)
६	नागु पेशोर आनरी [illegible]	[illegible]	२)
७	[illegible]	[illegible]	३)

क्रमांक	नाम वर्णित	ग्रहण कर्त्ता	ग्रहण कर्त्ता	मोल्य नगद	मोल्य उधार
२८	[illegible]	[illegible]	५	४॥)	
२९	[illegible]	[illegible]	३	३)	
३९	मुन्नी सर्वेण्ट	सोमले गुण्टूर । सर्वेण्ट	५	४॥)	
१४०	नाग कृष्णकुमार	[illegible] । पुत्र [illegible]	३	२॥)	
१४१	[illegible]	[illegible] । [illegible] । [illegible]	५	४॥)	
१४२	मुन्नी सुब्बारेड्डी	[illegible] । [illegible]	५	४॥)	
१४३	नाग कृष्णमाम	[illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible]	५	४॥)	
१४४	मुन्नी रामकृष्ण	[illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible]	५	४॥)	
१४५	वेङ्कटाचल मुदलियार	[illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible]	५	४॥)	
१४६	[illegible]	[illegible]	५	४॥)	
१४७	[illegible]	[illegible] । [illegible]	५	४॥)	
१४८	[illegible]	[illegible] । [illegible] । [illegible]	५	४॥)	

भवन्ति । तस्मादभ्रं घना जायन्ते । तेभ्यो वायुदलेभ्यो वृष्टिर्जायते । अतोऽग्नेरैक्यादापश्चाद्य ओषधयो जायन्ते ताभ्यो ऽन्नमन्नाद्वीर्य्यं वीर्य्याच्छरीराणि भवन्तीति ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस में शतपथ ब्राह्मण का भी प्रमाण है कि (अग्नेः०) जो होम करने के द्रव्य अग्नि में डाले जाते हैं उन से धुंआ और भाफ उत्पन्न होते हैं क्योंकि अग्नि का यही स्वभाव है कि पदार्थों में प्रवेश करके उन को भिन्न २ कर देता है फिर वे हलके हो के वायु के साथ ऊपर आकाश में चढ़ जाते हैं उन में, जितना जलका अंश है वह भाफ कहाता है और जो शुष्क है वह पृथ्वी का भाग है इन दोनों के योग का नाम धूम है जब ये परमाणु मेघमण्डल में वायु के आधार में रहते हैं फिर वे परस्पर मिलके बादल होके उन से वृष्टि वृष्टि से ओषधि ओषधियों से अन्न अन्न से धातु धातुओं से शरीर और शरीर से कर्म बनता है ॥

अत्र विषये तैत्तिरीयोपनिषदप्युक्तम् । तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्यो ऽन्नं अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः स वा अयं पुरुषो ऽन्नरसमयः । आनन्दवल्ल्यां प्रथमेनुवाके ॥ स तपो तप्यतेतपस्तप्त्वा अन्नं ब्रह्मेति विजानात् । अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते अन्नेन जातानि जीवन्ति अन्नं प्रयत्यभिसंविशन्तीति भृगुवल्ल्यां द्वितीयेनुवाके । अन्नं ब्रह्मेत्युच्यते जीवनस्य बृंहद्धेतुत्वात् शुद्धान्नजलाभ्यादिद्वारैव प्राणिनां सुखं प्रवर्द्धति नासोन्यथेति ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस विषय में तैत्तिरीय उपनिषद् का भी प्रमाण है कि (तस्माद्वा०) परमात्मा के सनत सामर्थ्य से आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी आदि तत्त्व उत्पन्न हुए हैं और उन में ही पूर्वोक्त क्रम के अनुसार शरीर आदि उत्पन्न जीवन और प्रलय को प्राप्त होते हैं यहां ब्रह्म का नाम अन्न और अन्न का नाम ब्रह्म भी है क्योंकि जिस का जो कार्य है वह उसी में मिलता है वैसे ही ईश्वर के सामर्थ्य से जगत् की सीनों अवस्था होती हैं और सब जीवों के जीवन का मुख्य साधन है इससे अन्न को ब्रह्म कहते हैं जब ठीक २ वायु जल और ओषधि आदि शुद्ध होते हैं तब सब प्राणी को सुख और अशुद्ध होने से सब को दुःख होता है इससे इन की शुद्धि अवश्य करनी चाहिये ॥

तत्र द्विविधः प्रयत्नोऽस्तीश्वरकृतो जीवकृतश्च । ईश्वरेण खल्वग्निमयः सूर्य्यो निर्मितः सुगंधपुष्पादिश्च स निरंतरं सर्वस्माज्जगतो रसानाकर्षति । तस्य सुगंधदुर्गंधाणुसंयोगत्वेन तज्जलवायूअपीष्टानिष्टगुणयोगान्मध्यगुणौ भवतस्तयोः सुगंधदुर्गंधमिश्रितत्वात् । तज्जलवृष्ट्यौषध्यन्नरेतः शरीराण्यपि मध्यमान्येव भवन्ति । तन्मध्यमत्वाद्बलबुद्धिवीर्य्यपराक्रमधैर्य्यशौर्य्यादयोऽपि गुणा मध्यमा एव जायन्ते । कुतः ? यस्य यादृशं कारणमस्ति तस्य तादृशमेव कार्य्यं भवतीति दर्शनात् । अयं खल्वीश्वरसृष्टेर्दोषो नास्ति । कुतः । दुर्गंधादिविकारस्य मनुष्य सृष्त्यन्तर्भावात् । यतो दुर्गंधादिविकारस्योत्पत्तिर्मनुष्यादिभ्य एव भवति तस्मादस्य निवारणमपि मनुष्यैरेव कर्त्तव्यमिति । यथेश्वरेणाज्ञा दत्ता सत्यभाषणमेव कर्त्तव्यं नानृतमिति यस्तामुल्लंघ्य प्रवर्त्तते स पापीयान्भूत्वा क्लेशं चेश्वरव्यवस्थया प्राप्नोति । तथा यज्ञः कर्त्तव्य इतीयमप्याज्ञातिनैव दत्तास्ति तामपि य उल्लंघयति सोऽपि पापीयान्सन् क्लेशवांश्च भवति ॥

॥ भाषार्थ ॥

सो उन की शुद्धि करने में दो प्रकार का प्रयत्न है एक तो ईश्वर का किया हुआ और दूसरा जीव का उन में से ईश्वर का किया यह है कि उस ने अग्नि रूप सूर्य और सुगंध रूप पुष्पादि पदार्थों को उत्पन्न किया है वह सूर्य्य निरंतर सब जगत् के रसों को पूर्वोक्त प्रकार से ऊपर खैंचता है और जो पुष्पादि का सुगंध है वह भी दुर्गंध को निवारण करता रहता है परंतु वे परमाणु सुगंध और दुर्गंध युक्त होने से जल और वायु को भी मध्यम करदेते हैं उस जल की वृष्टि से ओषधि अन्न वीर्य्य और शरीर आदि भी मध्यम गुणवाले हो जाते हैं और उन के योग से बुद्धि बल पराक्रम धैर्य और शूर वीरतादि गुण भी निकृष्ट ही होते हैं क्योंकि जिस का जैसा कारण होता है उस का वैसा ही कार्य्य होता है यह दुर्गंध से वायु और वृष्टि जल का दोषयुक्त होना सर्वत्र देखने में आता है सो यह दोष ईश्वर की सृष्टि से नहीं किंतु मनुष्यों ही की सृष्टि से होता है इस कारण से उस का निवारण करना भी मनुष्यों ही को उचित है जैसे ईश्वर ने सत्यभाषणादि धर्मव्यवहार करने की आज्ञा दी है मिथ्या भाषणादि की नहीं, जो इस आज्ञा से उलटा काम करता है वह अत्यंत पापी होता है और ईश्वर की न्याय व्यवस्था से उस को क्लेश भी होता है वैसे ही ईश्वर ने मनुष्यों को यज्ञ करने की आज्ञा दी है इस को जो नहीं करता वह भी पापी हो के दुःख का भागी होता है ॥

क्षुतः । सर्वोपकारकरणात् । यत्र खलु यावान्मनुष्यादिप्राणिसमुदायो भवति तत्र तावानेव दुर्गन्धसमुदायो जायते न चैतावन्मीश्वरसृष्टि-निमित्तो भवितुमर्हति । कुतः । तत्र मनुष्यादिप्राणिसमुदायनिमित्तोत्पत्तेः स्वात् । यत्तु खलु मनुष्याः स्वसुखार्थं हस्त्यादिप्राणिनामेतावत्सुखं दुर्बुद्ध्या । अतस्तज्जन्योऽधिको दुर्गन्धो मनुष्यसुखेच्छानिमित्तक जायते । यत्र वायुवृष्टिजलदूषकः सर्वो दुर्गन्धो मनुष्यनिमित्तादेवोत्पद्यते तत्तस्य निवारणमपि मनुष्यायैव कर्तुमर्हन्ति ॥

॥ भावार्थ ॥

क्योंकि यज्ञ से उपकार करने वाले यज्ञ को नहीं करने से मनुष्यों को दोष लगता है जहां जितने मनुष्य आदि के समुदाय अधिक होते हैं वहां उतनाही दुर्गंध भी अधिक होता है वह ईश्वर की सृष्टि से नहीं किंतु मनुष्यादि प्राणियों के निमित्त से ही उत्पन्न होता है क्योंकि इस्त्रि आदि के समुदायों को मनुष्य अपने ही सुख के लिये इकट्ठा करते हैं इससे उन पशुओं से भी जो अधिक दुर्गंध उत्पन्न होता है सो मनुष्यों के ही सुख की इच्छा से होता है इससे क्या आया कि जब वायु और वृष्टि जल को बिगाड़नेवाला यह दुर्गंध मनुष्यों से ही निमित्त से उत्पन्न होता है तो यह भी निवारण करना भी उन को ही योग्य है ॥

तेषां मध्यान्मनुष्या सर्वोपकारानुपकारौ वेदितुमर्हन्ति । अतस्तं विचारस्तत्रोपादेय मनुष्यत्वं जायते । परमेश्वरेण हि सर्वदेहधारि-प्राणिनां मध्ये मनस्विनो विज्ञानं कर्तुं योग्या मनुष्या एव सृष्ट्युत्पत्तिहेषु परमाणुधर्मयोगविशेषेण विज्ञानसकलानुकूलानामवयवानामुत्पादितत्वात् । अतस्त एव धर्माधर्मयोर्ज्ञानमनुष्ठानमनुष्ठाने च कर्तुमर्हन्ति न चान्ये । अतस्तत्कारणात्सर्वोपकाराय सर्वैर्मनुष्यैर्यज्ञः कर्तव्य एव ॥

॥ भाषार्थ ॥

क्योंकि जितने प्राणी देहधारी जगत् में हैं उन में से मनुष्य ही उत्तम हैं इससे वेही उपकार और अनुपकार को जानने को योग्य हैं अन्य नहीं विचार का है जिस के होने से ही मनुष्य नाम होता है अन्यथा नहीं क्योंकि ईश्वर ने मनुष्य के शरीर में परमाणु आदि से संयोग विशेष इस प्रकार के रचे हैं कि जिन से उन को ज्ञान की उन्नति होती है इसी कारण से धर्म का अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करने को भी इन्हीं योग्य होते हैं अन्य नहीं इससे सब के उपकार के लिये यज्ञ का अनुष्ठान भी इन्हीं को करना उचित है ॥

किंच भोः कस्तूर्य्यादीनां सुरभियुक्तानां द्रव्याणामग्नौ प्रक्षेपणेन विनाशात्कथमुपकाराय यज्ञो भवितुमर्हतीति । किं त्वीदृशेभ्यः पदार्थेभ्यो मनुष्यादिभ्यो भोजनादिदानेनोपकारे कृते होमादप्युत्तमं फलं जायते पुनः किमर्थं यज्ञकरणमिति । अत्रोच्यते । नास्त्येतो विनाशः कस्यापि संभवति । विनाशो हि यद्दृश्यं भूत्वा पुनर्न दृश्येतेति विज्ञायते । परंतु दर्शनं त्रयाणां कतिविधं स्वीक्रियते । अष्टविधं चेति । किंच तत् । अक्षपादगौतमाचार्य्या न्यायशास्त्रे । इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥ १ ॥ अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्टं च ॥ २ ॥ प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम् ॥ ३ ॥ आप्तोपदेशः शब्दः ॥ ४ ॥ अ० १ आह्निकम् । १ । सू० ४ । १ । ६ । ७ । प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्देतिह्यार्थापत्तिसंभवाभावसाधनभेदादष्टधाप्रमाणं मया मन्यत इति । तत्र यदिन्द्रियार्थसंबन्धात्सत्यमव्यभिचारिज्ञानमुत्पद्यते तत्प्रत्यक्षम् । सन्निकटे दर्शनान्मनुष्योयं मान्य इत्यादुदाहरणम् ॥ १ ॥ यत्र लिङ्गज्ञानेन लिङ्गिनो ज्ञानं जायते तदनुमानम् । पुत्रं दृष्ट्वा ऽऽसोदस्य पितेत्यादुदाहरणम् । २ । उपमानं सादृश्यज्ञानं यथा देवदत्तोस्ति तथैव यज्ञदत्तोप्यस्तीति साधर्म्यादुपदिशतीत्यादुदाहरणम् । ३ । शब्द्यते प्रत्याय्यते दृष्टो ऽदृष्टश्चार्थो येन स शब्दः । ज्ञानेन मोक्षो भवतीत्यादुदाहरणम् ॥ ४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० सुगंधयुक्त जो कस्तूरी आदि पदार्थ हैं उन को अन्य द्रव्यों में मिलाके अग्नि में डालने से उन का नाश हो जाता है फिर यज्ञ से किसी प्रकार का उपकार नहीं हो सकता किंतु ऐसे उत्तम २ पदार्थ मनुष्यों को भोजनादि के लिये देने से होम से भी अधिक उपकार हो सकता है फिर यज्ञ करना किस लिये चाहिये उ० किसी पदार्थ का विनाश नहीं होता केवल वियोग मात्र होता है परंतु यह तो कहिये कि आप विनाश किस को कहते हैं उ० जो स्थूल हो के प्रथम देखने में आकर फिर न देख पड़े उस को हम विनाश कहते हैं प्र० आप कितने प्रकार का दर्शन मानते हैं उ० आठ प्रकार का प्र० कौन २ से उ० प्रत्यक्ष १ अनुमान २ उपमान ३ शब्द ४ ऐतिह्य ५ अर्थापत्ति ६ संभव ७ और अभाव ८ इस भेद से हम आठ प्रकार का दर्शन मानते हैं (इंद्रियार्थ०) इन में से प्रत्यक्ष उस को कहते हैं कि जो चक्षु आदि इंद्रिय और रूप आदि विषयों के संबंध से सत्यज्ञान उत्पन्न हो जैसे दूर से देखने में संदेह हुआ कि वह मनुष्य है वा ठूंठ और फिर उस के समीप होने से निश्चय होता है कि यह मनुष्य ही है अन्य नहीं

इत्यादि प्रत्यक्ष के उदाहरण हैं । १ । (अथतत्पू०) और जो किसी पदार्थ के चिन्ह देखने से उसी पदार्थ का यथावत् ज्ञान हो उस अनुमान कहाता है जैसे किसी के पुत्र को देखने से ज्ञान होता है कि इस के माता पिता अवश्य हैं वा अवश्य थे इत्यादि उस के उदाहरण हैं । २ । (प्रसिद्ध०) तीसरा उपमान कि जिस से किसी का तुल्य धर्म देख के समान धर्मवाले का ज्ञान हो जैसे किसी ने किसी से कहा कि जिस प्रकार का यह देवदत्त है उसी प्रकार का वह यज्ञदत्त भी है उस के पास जा के इस काम को कर ला इस प्रकार के तुल्य धर्म से जो ज्ञान होता है उस को उपमान कहते हैं ॥ ३ ॥ (आप्तोप०) चौथा शब्द प्रमाण है कि जो प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अर्थ का निश्चय कराने-वाला है जैसे ज्ञान से मोक्ष होता है यह आप्तों के उपदेश शब्द प्रमाण का उदाहरण है ॥ ४ ॥

न च तुष्टुवैत्तिह्यार्थापत्तिसंभवाभावप्रामाण्यात् ॥ ५ ॥ शब्द येति-ह्यानर्थान्तरभावादनुमानेनार्थापत्तिसंभवाभावानर्थान्तरभावाच्चाप्रतिषेधः ॥ ६ ॥ अ० २ आ० २ । सू० १ । २ । न च तुष्टुमिति सूत्रद्वयस्य संक्षिप्तोऽर्थः क्रियते । (ऐतिह्यं) शब्देऽपगतसंशयेऽपदिष्टं याह्यम् । देवासुरासंयत्ता आसन्नित्यादि, ॥ ५ ॥ (अर्थापत्तिः) चर्यादावदृष्टे सार्थापत्तिः केनचिदुक्तं सत्सु घनेषु वृष्टि-र्भवतीति किमत्र प्रसज्यते असत्सु घनेषु न भवतीत्यादुदाहरणम् ॥ ६ ॥ (संभवः) संभवति येन यस्मिन्सति यत्संभवः केन चिदुक्तं मातापितृभ्यां संतानं जायते संभवोऽस्तीति शक्यम् । परंतु कश्चिद्ब्रूयात्कुंभकरणस्य शोणपत्रशतसहस्रपर्य्यन्तं भक्षणम् कैश्च ह्रदे स्थिता आसन् षोडशशोणसहस्रे नाविका चासंभवत्वान्मिथ्येत्युक्तीति विज्ञायते । इत्यादुदाहरणम् ॥ ७ ॥ (अभावः) कोऽपि ब्रूयाद् घटमाप्येति स तत्र घटमपश्यन्नत्र घटो नास्तीत्य-भावलक्षणेन यत्र घटो वर्त्तमानस्तस्मादानीयते ॥ ८ ॥ इति प्रत्यक्षादीनां संक्षे-पतोऽर्थः । इयमबुद्धिर्न दर्शनमर्थाज्ज्ञानं मया मन्यते सत्यमेवमेतत् । नैवमंगीकारेण विना समयो व्यवहारपरमार्थौ कस्यापि सिध्येताम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(ऐतिह्यं) सत्यवादी विद्वानों के कहे वा लिखे उपदेश का नाम इतिहास है जैसा देव और असुर युद्ध करने के लिये सन्नद्ध हुए थे जो यह इतिहास ऐतरेय शतपथ ब्राह्मणादि सत्य ग्रंथों में लिखा है उसी का ग्रहण होता है अन्य का नहीं यह पांचवा प्रमाण है । ५ । और छठा (अर्थो-पत्तिः) जो एक बात किसी ने कही हो उस से विरुद्ध दूसरी बात समझी जावे जैसे किसी ने कहा कि बादलों के होने से वृष्टि होती है दूसरे ने

इसने ही कहने से जान लिया कि बादलों के विना वृष्टि कभी नहीं हो सकती इस प्रकार के प्रमाण से जो ज्ञान होता है उस को अर्थापत्ति कहते हैं ॥ ६ ॥ सातवां (संभवः) जैसे किसी ने किसी से कहा कि माता पिता से संतानों की उत्पत्ति होती है तो दूसरा मान ले कि इस बात का होना संभव है परंतु जो कोई ऐसा कहे कि रावण के भाई कुंभकरण की मूंछ चार कोश तक आकाश में ऊपर खड़ी रहती थी और उस की नाक (१६) सोलह कोश पर्य्यंत लंबी चौड़ी थी उस की यह बात मिथ्या समझी जायगी क्योंकि ऐसी बात का संभव कभी नहीं हो सकता ॥ ७ ॥ और आठवां (अभावः) जैसे किसी ने किसी से कहा कि तुम घड़ा ले आओ और जब उस ने वहां नहीं पाया तब वह वहां पर घड़ा था वहां से ले आया ॥ ८ ॥ इन आठ प्रकार के प्रमाणों को मैं मानता हूं यहां इन आठों का अर्थ संक्षेप से किया है* ॰ यह बात सत्य है कि इन के विना माने संपूर्ण व्यवहार और परमार्थ किसी का सिद्ध नहीं हो सकता । इसी से इन आठों को हम लोग भी मानते हैं ॥

यथा कश्चिदेकं मृत्पिण्डं विश्लेषयंश्चूर्णीकृत्य वेगयुक्ते वायौ बाह्येनेन्द्रियेणाग्रहणं प्रतिनियतस्य नाशो भवतीत्युपचर्य्यते । चक्षुषा दर्शनाभावात् (नश) अदर्शने अस्माद् घञ्प्रत्यये कृते नाश इति शब्दः सिध्यति । अतो नाशो बाह्येन्द्रिया ऽदर्शनमेव भवितुमर्हति । किंच यदा परमाणवः पृथक् २ भवन्ति तदा ते चक्षुषा नैव दृश्यन्ते तेषामतीन्द्रियत्वात् । यदा चैते मिलित्वा स्थूलभावमापद्यते तदैव तद्द्रव्यं दृष्टिपथमागच्छति स्थूलस्येन्द्रियकत्वात् । यद्द्रव्यं विभक्तं विभक्तमन्तं विभागानर्हं भवति तस्य परमाणुसंज्ञा चेति व्यवहारः तेहि विभक्ता अतीन्द्रियाः सन्त आकाशे वर्तन्त एव ॥

॥ भाषार्थ ॥

नाश को समझने के लिये यह दृष्टांत है कि कोई मनुष्य मट्टी के ढेले को पीस के वायु के बीच में बलसे फेंक दे फिर जैसे वे छोटे २ कण आंख से नहीं दीखते क्योंकि (नश) धातु का अदर्शन ही अर्थ है जब अणु अलग २ हो जाते हैं तब वे देखने में नहीं आते इसी का नाम नाश है और जब परमाणु के संयोग से स्थूल द्रव्य अर्थात् बड़ा होता है तब वह देखने में आता है और परमाणु उस को कहते हैं कि जिस का विभाग फिर कभी न हो सके परंतु यह बात केवल एकदेशी है क्योंकि उस का भी ज्ञान से विभाग हो सकता है जिस की परिधि और व्यास बन सकता है उस का

* कहीं २ शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति संभव और अभाव को मानने से (४) चार प्रमाण रहते हैं ॥

भी टुकड़ा हो सकता है यहां तक कि जब पर्यन्त वह शुद्ध रूप न हो जाय तब पर्यन्त ज्ञान से बराबर कटता ही चला जायगा ॥

तथैवाग्नौ यद्द्रव्यं प्रक्षिप्यते तद्विभागं प्राप्य देशान्तरे प्रसरति एव न हि तस्याभावः कदाचिद्भवति । यच्च यद्दुर्गन्धादिदोषनिवारकं सुगन्धादि द्रव्यमस्ति तच्चाग्नौ हुतं सद्वायोर्वृष्टिजलस्य शुद्धिकरं भवति ॥ तस्मिन्विद्वांसे सति सुखे महान्नुपकारो भवति सुखं चात्यन्तमारोग्यादयः सम्भवन्ति एवेति । किंच भोः । वायुवृष्टिजलशुद्धिकरणमेव यज्ञस्य प्रयोजनमस्ति चेत्तर्हि गृहावयवेषु सुगन्धद्रव्यरचनयैतत्सेत्स्यति पुनः किमर्थमेतावान्डम्बरः । नैवं यस्मात् । नैव तेनावशुद्धो वायुः सूक्ष्मो भूत्वा ऽऽकाशं गच्छति तस्य पृथङ्नलचुल्लकादेः । तच्च तस्य स्थितौ सत्यां नैव बाह्यो वायुरागन्तुं शक्नोत्यवकाशाभावात् । तच्च पुनः सुगन्धदुर्गन्धयुक्तस्य वायोर्वर्त्तमानत्वादारोग्यादिकं फलमपि प्रक्षिप्तद्रव्यसदृशमेवास्ति ॥

॥ भाषार्थ ॥

वैसे ही जो सुगंध आदि युक्त द्रव्य अग्नि में डाला जाता है वह वे अणु अलग २ होके आकाश में रहते ही हैं क्योंकि किसी द्रव्य का वस्तुता से अभाव नहीं होता इसी वह द्रव्य दुर्गंधादि दोषों का निवारण करने वाला अवश्य होता है फिर उससे वायु और वृष्टि जल की शुद्धि के होने से जगत् का बड़ा उपकार और सुख अवश्य होता है इस कारण से यज्ञ को करना भी चाहिये प० जो यज्ञ से वायु और वृष्टि जल की शुद्धि करना मात्र ही प्रयोजन है तो इस की सिद्धि अत्तर और पुष्पादि के घरों में रखने से भी हो सकती है फिर इतना बड़ा परिश्रम यज्ञ में क्यों करना उ० यह कार्य्य अन्य किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि अत्तर और पुष्पादि का सुगंध तो उसी दुर्गंध वायु में मिल के रहता है उस को छेदन करके बाहर नहीं निकाल सकता और न वह ऊपर चढ़ सकता है क्योंकि उस में हलकापन नहीं होता उस के उसी अवकाश में रहने से बाहर का शुद्ध वायु उस ठिकाने में जा भी नहीं सकता क्योंकि खाली जगह के विना दूसरे का प्रवेश नहीं हो सकता फिर सुगंध और दुर्गंधयुक्त वायु के वहीं रहने से रोग नाशादि फल भी नहीं होते ॥

यदा तु खलु तस्मिन्गृहेऽग्निमध्ये सुगंध्यादिद्रव्यस्य होमः क्रियते तदा ऽग्निना छिन्नो वायुर्मेघं प्राप्य लघुत्वमापन्न-उपर्य्याकाशं गच्छति । तस्मिन्गते सति तच्चावकाशत्वाच्चुल्लकस्थो दिव्यः शुद्धो वायुरादत्ते तेन गृहावयवस्थ पूर्वोक्तादारोग्यादिकं फलमपि जायते ॥

॥ भाषार्थ ॥

और जब अग्नि उस वायु को वहां से हलका करके निकाल देता है तब वहां शुद्ध वायु भी प्रवेश कर सकता है इसी कारण यह फल यज्ञ से ही हो सकता है अन्य प्रकार से नहीं क्योंकि जो होम के परमाणु युक्त शुद्ध वायु है सो पूर्वस्थित दुर्गंधवायु को निकाल के उस देशस्थ वायु को शुद्ध करके रोगों का नाश करने वाला होता और मनुष्यादि सृष्टि को उत्तम सुख को प्राप्त करता है ॥

यो होमेन सुगंधयुक्तद्रव्यपरमाणुयुक्त उपरिगतो वायुर्भवति स वृष्टिजलं शुद्धं कृत्वा वृष्ट्यधिक्यमपि करोति तद्वारौषध्यादीनां शुद्धेरुत्तरोत्तरं जगति महत्सुखं वर्धत इति निश्चीयते । यतस्वल्पाग्निसंयोगरहितसुगंधेन वायुना भवितुमशक्यमस्ति तस्माद्धोमकरणमुत्तममेव भवतीति निश्चेतव्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

जो वायु सुगंधादि द्रव्य के परमाणुओं से युक्त होमद्वारा आकाश में चढ़ के वृष्टि जल को शुद्ध कर देता और उससे वृष्टि भी अधिक होती है क्योंकि होम करके नीचे गर्मी अधिक होने से जल भी ऊपर अधिक चढ़ता है शुद्ध जल और वायु के द्वारा अन्नादि ओषधि भी अत्यंत शुद्ध होती हैं ऐसे प्रतिदिन सुगंध के अधिक होने से जगत् में नित्यप्रति अधिकर सुख बढ़ता है यह फल अग्नि में होम करने के बिना दूसरे प्रकार से होना असंभव है इससे होम का करना अवश्य है ॥

अन्यच्च दूरस्थले केनचित्पुरुषेणाग्नौ सुगंधद्रव्यस्य होमः क्रियते तद्युक्तो वायुर्दूरस्थमनुष्यस्य घ्राणेन्द्रियेण संयुक्तो भवति । सोऽयं सुगंधो वायुरस्तीति जानात्येव । अनेन विज्ञायते वायुना सह सुगंधं दुर्गंधं च द्रव्यं गच्छतीति । तदाऽसौ दूरं गच्छति तदा तस्य घ्राणेन्द्रियसंयोगो न भवति पुनर्बालबुद्धीनां भ्रमो भवति स सुगंधो नास्तीति परंतु तस्य हुतस्य पृथग्भूतस्य वायुस्थस्य सुगंधयुक्तस्य द्रव्यस्य देशान्तरे वर्तमानत्वात्तेन विज्ञा यते । अन्यदपि खलु होमकरणस्य बहुविधमुत्तमं फलमस्ति तद्विचारेण बुधैर्विज्ञेयमिति ॥

॥ भाषार्थ ॥

और भी सुगंध के नाश नहीं होने में कारण है कि किसी पुरुष ने दूर देश में सुगंध चीजों का अग्नि में होम किया हो । उस सुगंध से युक्त जो वायु है सो होम के स्थान से दूर देश में स्थित हुए मनुष्य के नाक

इंद्रिय के साथ संयुक्त होने से उस को यह ज्ञान होता है कि यहां सुगंध-वायु है इससे जाना जाता है कि द्रव्य के अलग होने में भी द्रव्य का गुण द्रव्य के साथही बना रहता है और वह वायु के साथ सुगंध और दुर्गंधयुक्त होके जाता आता है परंतु जब वह द्रव्य दूर चला जाता है तब उस के नाक इन्द्रिय से संयोग भी छूट जाता है फिर बालबुद्धि मनुष्यों को ऐसा भ्रम होता है कि वह सुगंधित द्रव्य नहीं रहा परंतु यह उन की अशुद्ध जानना चाहिये कि वह सुगंध द्रव्य आकाश में वायु के साथ बराबर रहता है इन से अन्य भी होम करने के बहुत से उत्तम फल हैं उन को बुद्धिमान लोग विचार से जान लेंगे ॥

यदि होमकरणस्यैतत्फलमस्ति तर्हि होमकरणमात्रेणैव सिध्यति पुनस्तत्र वेदमंत्राणां पाठः किमर्थः क्रियते । अत्र ब्रूमः । एतस्यान्यदेव फलमस्ति । किम् । यथा हस्तेन होमो नेत्रेण दर्शनं त्वचास्पर्शनं च क्रियते तथा वाचा वेदमंत्रा अपि पठ्यन्ते । तत्पाठेनेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाः क्रियन्ते । होमेन किं फलं भवतीत्यस्य ज्ञानं तत्पाठानुवृत्त्या वेदमंत्राणां स्मरणमीश्वरस्यास्ति त्वमित्यादिश्च । अन्यच्च सर्वेऽर्मादावीश्वरस्य प्रार्थना कार्येत्युपदेशः । यज्ञे तु वेदमंत्रोच्चारणात्सर्वत्रैव तत्प्रार्थना भवतीति वेदितव्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० होम करने का जो प्रयोजन है सो तो केवल होमसे ही सिद्ध होता है फिर वहां वेदमंत्रों के पढ़ने का क्या काम है उ० उन के पढ़ने का प्रयोजन कुछ और ही है प्र० वह क्या है उ० जैसे हाथ से होम करते आंख से देखते और त्वचा से स्पर्श करते हैं वैसे ही वाणीसे वेदमंत्रों को भी पढ़ते हैं क्योंकि उनके पढ़ने से वेदों की रक्षा ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना होती है तथा होमसे जो २ फल होते हैं उन का स्मरण भी होता है वेदमंत्रों के बारंबार पाठ करने से वे कंठस्थ भी रहते हैं और ईश्वर का होना भी सिद्ध होता है कि कोई नास्तिक न हो जाय क्योंकि ईश्वर की प्रार्थना-पूर्वक ही सब कर्मों का आरंभ करना होता है सो वेदमंत्रों के उच्चारण से यज्ञ में तो उस की प्रार्थना सर्वत्र होती है इस लिये सब उत्तम काम वेद-मंत्रों से ही करना उचित है ॥

कश्चिदाह वेदमंत्रोच्चारणं विहायान्यस्य कस्यचित्पाठस्तत्र क्रियेत तदा किं दूषणमस्तीति । अत्रोच्यते । नान्यस्य पाठे कृते सत्येतत्प्रयोजनं सिध्यति । कुतः । ईश्वरोक्तत्वाच्चतुर्णामतिशयसत्यविद्यत्वाच्च ।

यद्यद्विद्यच क्वचित्सत्यं प्रसिद्धमस्ति. तत्तत्सर्वं वेदादेव प्रसृतमिति विज्ञेयम् । यदत्यल्पवृतं तत्तदनीश्वरोक्तं वेदाद्बहिरिति च । अत्रार्थे मनुराह त्वमेकोऽस्य सर्वस्य विधानस्य स्वयंभुवः ॥ अचिन्त्यस्याप्रमेयस्य कार्य्यतत्त्वार्थवित्प्रभो ॥ १ ॥ अ० १ श्लो० २ । चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् । भूतं भव्यं भविष्यच्च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥ २ ॥ बिभर्त्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ॥ तस्माद्वेदत्परं मन्येयज्जन्तोरस्य साधनम् ॥ ३ ॥ अ०१२ श्लो० ९७ । ९९ ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० यज्ञ में वेदमंत्रों को छोड़ के दूसरे का पाठ करें तो क्या दोष है उ० अन्य के पाठ में यह प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता ईश्वर के वचन से जो सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है सो अन्य के वचन से कभी नहीं हो सकता क्योंकि जैसा ईश्वर का वचन सर्वथा भ्रांति रहित सत्य होता है वैसा अन्य का नहीं और जो कोई वेदों के अनुकूल अर्थात् आत्मा की शुद्धि आप्त पुरुषों के ग्रंथों का बोध और उनकी शिक्षा से वेदों को यथावत् जान के कहता है उस का भी वचन सत्यही होता है और जो केवल अपनी बुद्धि से कहता है वह ठीक २ नहीं हो सकता इस्से यह निश्चय है कि जहां २ सत्य दीखता और सुनने में आता है वहां २ वेदों में से ही फैला है और जो २ मिथ्या है सो २ वेद से नहीं किंतु वह जीवों ही की कल्पना से प्रसिद्ध हुआ है क्योंकि जो ईश्वरोक्त ग्रंथ से सत्य प्रयोजन सिद्ध होता है सो दूसरे से कभी नहीं हो सकता इस विषय में मनु का प्रमाण है कि (त्वमे०) मनुजी से ऋषि लोग कहते हैं कि स्वयंभू जो सनातन वेद हैं जिन में असत्य कुछ भी नहीं और जिन में सब सत्यविद्याओं का विधान है उन के अर्थ को जानने वाले केवल आपही हैं ॥ १ ॥ (चातु०) चार वर्ण । चार आश्रम । भूत भविष्यत् और वर्त्तमान आदि की सब विद्या वेदों से ही प्रसिद्ध होती हैं ॥ २ ॥ क्योंकि (बिभर्त्ति०) यह जो सनातन वेद शास्त्र है सो सब विद्याओंके दान से संपूर्ण प्राणियों का धारण और सब सुखों को प्राप्त करता है इस कारण से हम लोग उस को ईश्वर का उत्तम मानते हैं और इसी प्रकार मानना भी चाहिये क्योंकि सब जीवों के लिये सब सुखों का साधन यही है ॥

किं यज्ञानुष्ठानार्थे भूमिं खनित्वा वेदिः प्रणीतादीनि पात्राणि कुशतृणं यज्ञशाला ऋत्विजश्चैतत्सर्वं करणीयमस्ति । अत्र ब्रूमः । यदादावश्यकं युक्तिमिदं तत्तत्कर्त्तव्यं नेतरत् । तद्यथा । भूमिं खनित्वा वेदी रचनीया तस्यां होमे कृते प्रत्नेस्तीव्रत्वाद्धुतं द्रव्यं सद्यो विभेद प्राप्याकाशं गच्छति । तथा वेदि दृष्टान्तेन त्रिकोणचतुष्कोणगोलरूपेणाद्याकारयत्क-

रणादेरप्यभिलषितमपि साध्यते । सर्वे चेश्वरज्ञानां परिभाषितत्वादनया गणितसिद्धयापि गृह्यते । एवमेवोत्तरेऽपि पदार्थाः सप्रयोजनाः सन्त्येव परन्त्वेवं प्रणीतायां रचितायां पुण्यं स्यादेवं पापमिति यदुच्यते । तत्र पापनिमित्ताभावात्सा कल्पना मिथ्यैवास्ति किंतु खलु यज्ञसिद्ध्यर्थं यद्यद्दाहश्छेदो मुक्तिर्विद्युदस्ति ततदेव ग्राह्यम् । कुतः । तत्रैवेषां तदर्थित्वेः ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० क्या यज्ञ करने के लिये पृथिवी खोद के वेदि रचन, दर्भासन प्रोक्षणी और चमसादि पात्रों का स्थापन, दर्भ का रखना, यज्ञशाला का बनाना, और ऋत्विजों का करना यह सब करना ही चाहिये, ड० करना तो चाहिये परंतु जो २ युक्ति सिद्ध हैं सो २ ही करने के योग्य हैं क्योंकि जैसे वेदि बनाके उस में होम करने से वह द्रव्य और घृत भिन्न २ परमाणुरूप होके वायु और अग्नि के साथ आकाश में फैल जाता है ऐसेही वेदि में भी अग्नि तिक्त होने और होम का सामर्थ्य इधर उधर बिखरने से रोकने के लिये वेदि अवश्य रचनी चाहिये, और वेदि के त्रिकोण, चतुष्कोण, गोल, तथा एक पक्षी आदि के तुल्य बनाने के दृष्टांत से रेखागणित विद्या भी जानी जानी है, कि जिससे त्रिभुज आदि रेखाओं का भी मनुष्यों को यथावत् बोध हो, तथा उस में जो ईंटों की संख्या की है उससे गणितविद्या भी समझी जाती है इस प्रकार से कि अमुक इतनी लंबी चौड़ी और गहरी वेदि हो तो उस में इतनी बड़ी ईंटें इतनी लगेंगी इत्यादि वेदि के बनाने में बहुत प्रयोजन हैं, तथा सुवर्ण चांदी वा काष्ठ के पात्र इस कारण से बनाते हैं कि उन में जो घृतादि पदार्थ रक्खे जाते हैं वे बिगड़ने नहीं और शुद्ध बने रहें लिये रक्खे हैं कि जिससे यज्ञशाला का मार्जन हो और मिट्टी आदि कोई वस्तु वेदि की ओर अग्नि में न गिरने पावे, ऐसे ही यज्ञशाला बनाने का यह प्रयोजन है कि जिससे अग्नि की ज्वाला में वायु अत्यंत न लगे और वेदि में कोई पक्षी किंवा उन की बीठ भी न गिरे, इसी प्रकार ऋत्विजों के बिना यज्ञ का काम भली नहीं हो सकता इत्यादि प्रयोजन के लिये यह सब विधान यज्ञ में अवश्य करना चाहिये इन से भिन्न द्रव्य की शुद्धि और संस्कार आदि भी अवश्य करने चाहियें परंतु इस प्रकार से प्रणीता पात्र रखने से पुण्य और इस प्रकार रखने से पाप होता है इत्यादि कल्पना मिथ्या ही है किंतु जिस प्रकार करने में यज्ञ का कार्य अच्छा बने वही करना अवश्य है अन्य नहीं ॥

यज्ञे देवताशब्देन किं गृह्यते । यास्च वेदोक्ताः । अत्र प्रमाणानि । अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवता आदित्या देवता मरुतो देवता विश्वे देवा देवता बृहस्पतिर्देवता इन्द्रो देवता वरुणो-

देवता ॥ १ ॥ यजुः० अ० १४ मं० २० अत्र कर्मकाण्डे देवताशब्देन वेदमन्त्राणां ग्रहणम् । गायत्र्यादीनि छन्दांसि ह्यग्न्यादिदेवताख्यान्येव गृह्यन्ते । तेषां कर्मकाण्डादिविधेर्द्योतकत्वात् । यस्मिन्मंत्रे चाग्निशब्दार्थप्रतिपादनं वर्त्तते स एव मंत्रोऽग्निदेवतो गृह्यते । एवमेव वायुः सूर्य्यश्चन्द्रमा वसवो रुद्रा आदित्या मरुतो विश्वेदेवा बृहस्पतिरिन्द्रो वरुणश्चेत्येतच्छब्दयुक्ता मंत्रा देवताशब्देन गृह्यन्ते तेषामपि तत्तदर्थस्य द्योतकत्वात्परमात्मेश्वरेण कृतसंकेतत्वात्तु ।

॥ भाषार्थ ॥

प्र० यज्ञ में देवता शब्द से किस का ग्रहण होता है उ० जो २ वेद में कहे हैं उन्हीं का ग्रहण होता है इस में यह यजुर्वेद का प्रमाण है कि (अग्निर्देव०) कर्मकांड अर्थात् यज्ञक्रिया में मुख्य करके देवताशब्द से वेद मंत्रों का ही ग्रहण करते हैं क्योंकि जो गायत्र्यादिछन्द हैं वेही देवता कहाते हैं और इन वेदमंत्रों से ही सब विद्याओं का प्रकाश भी होता है इस में यह कारण है कि जिन २ मंत्रों में अग्नि आदि शब्द हैं उन २ मंत्रों का और उन २ शब्दों के अर्थों का अग्नि आदि देवता नामों से ग्रहण होता है मंत्रों का देवता नाम इस लिये है कि उन्हीं से सब अर्थों का यथावत् प्रकाश होता है ॥

अथाह यास्काचार्य्यो निरुक्ते । कर्मसंपत्तिमेवो वेदे निः० अ०१ खं०२ अथातोदैवतं तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद्दैवतमित्याचक्षते सैषा देवतोपपरीक्षा यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुंक्ते तद्दैवतः समंत्रो भवति तास्त्रिविधा ऋचः परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिकयश्च । निः० अ०७ खं०१ । अस्यार्थः । (कर्मसं०) कर्मणामग्निहोत्रादारभ्याश्वमेधान्तानां शिल्पविद्यासाधनानां च संपत्तिः संपन्नता संयोगो भवति येन समंत्रो वेदे देवताशब्देन गृह्यते तथा च कर्मणां संपत्तिर्मोक्षो भवति येन परमेश्वरप्राप्तिश्च सोपि मंत्रो मंत्रार्थज्ञानीकार्य्यः । अथेत्यनन्तरं दैवतं किमुच्यते यत्प्राधान्येन स्तुतिर्यासां देवतानां क्रियते तद्दैवतमिति विज्ञायते । यानि नामानि मंत्रोक्तानि येषामर्थानां मंत्रेषु विद्यन्ते तानि सर्वाणि देवतालिङ्गानि भवन्ति । तद्यथा । अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे । देवाँ २ आसादयादिह ॥ १ ॥ यजुः० अ० २२ मं० १७ ॥ अत्राग्निशब्दो लिङ्गमस्ति । अतः किं विशेषं यत्र यत्र देवतोच्यते तत्र तत्र तल्लिङ्गो मंत्रो गृह्यते । यस्य द्रव्यस्य नामास्ति यच्छन्दोस्ति । तदेव देवतमिति

वेद्यम् । सा यथा देवतोपरीक्षा इतीमा आगामिनी चास्ति । अथोच्यते । ऋषिरीश्वरः । सर्वेदृश्यत्कामोर्थं कामयमानं इममर्थमुपदिशेयमिति स तत्कामः । यस्यां देवताभागार्थेऽन्यमर्थमस्य स्वामित्वमुपदेष्टुमिच्छन्सन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तदर्थमुपकीर्तनं प्रयुक्तवानिति स यत्र मंत्रस्तद्देवता भवति । किंच यदेवार्थप्रतीतिकरणं देवतं प्रकाश्यं येन भवति स मंत्रो देवता शब्दवाच्योस्तीति विज्ञायते । देवताभिधायका ऋचो यामिर्विद्वांसः सर्वाः सत्यविद्याः स्तुवन्ति प्रकाशयन्ति ऋचस्तुत्यादिति धात्वर्थयोगात् । ताः श्रुतयस्त्रिविधास्तिस्रप्रकारकाः सन्ति परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिकश्चेति । यासां देवतानामृषयः परोक्षकृतो ऽर्थोस्तिताः परोक्षकृताः । यासां प्रत्यक्षमर्थो दृश्यते ताः प्रत्यक्षकृता ऋचो देवताः ॥ आध्यात्मिकश्चेद्यासामध्यात्मं जीवात्मानं तदन्तर्यामिणं परमेश्वरं च प्रतिपादितुमर्हो या ऋचो मंत्रास्ता आध्यात्मिकश्चेति यत्र यत्र कर्मकाण्डे देवताशब्दार्थाः सन्तीति विज्ञेयम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(अर्थसं०) वेदमंत्रों ऋषके अग्निहोत्र से लेके अश्वमेधपर्यन्त सब यज्ञों की सिद्धविद्या और उन के साधनों की संपत्ति अर्थात् प्राप्ति होती और कर्मकाण्ड को लेके मोक्षपर्यन्त सुख मिलता है इसी हेतु से उन का नाम देवता है (अथातो०) देवत उन को कहते हैं कि जिन के गुणों का कथन किया जाय अर्थात् जो २ संज्ञा जिन २ मंत्रों में जिस २ अर्थ की होती है उन २ मंत्रों का नाम वही देवता होता है जैसे (अग्निमीळे०) इस मंत्र में अग्निशब्द जिस है यहां इसी मंत्र को अग्नि देवता जानना चाहिये ऐसे ही जहां २ मंत्रों में जिस २ शब्द का लेख है वहां २ उस २ मंत्र को वही देवता समझना होता है इसी प्रकार अर्थज्ञ समझ लेना चाहिये सो देवताशब्द से जिस २ गुण से जो २ अर्थ लिये जाते हैं सो २ निरुक्त और ब्राह्मणादि ग्रंथों में अच्छी प्रकार लिखा है इस में यह कारण है कि ईश्वर ने जिस २ अर्थ को जिस २ नाम से वेदों में उपदेश किया है उस २ नाम वाले मंत्रों से उन्हीं अर्थों को जानना होता है सो वे मंत्र तीन प्रकार के हैं उन में से एक एक परोक्ष अर्थात् अप्रत्यक्ष अर्थ के और एक एक आध्यात्मिक अर्थात् जीव परमेश्वर और सब पदार्थों के कार्य्य कारण के प्रतिपादन करने वाले हैं इससे क्या आया कि त्रिकालस्थ जितने पदार्थ और विद्या हैं उन के विधान करने वाले मंत्रही हैं इसी कारण से इन का नाम देवता है ॥

तत्रेमादिष्टदेवताकमंत्रेषु देवतोपरीक्षा यद्देवतः स यज्ञो वा अग्निर्वै वा तद्देवता भवत्यग्न्यर्थत्वाद्यज्ञस्य यज्ञात्प्रजापतेर्वा इति यास्किना मारायणेन

इति नैरुक्ता अपि वा सा कामदेवता स्यात्तत्रायं देवता वीप्तिह्याचारो बहुलं लोके देवदेवत्यमतिथिदेवत्यं पितृदेवत्यं याज्ञदैवतेमंत्र इति ॥ नि० अ० ८ खं० ४ (तद्योनादि०) तत्तस्माद्योऽल्पमादिष्ट देवतामंत्रः अर्थात् विशेषतो देवतादर्शनं नामार्थो वा येषु दृश्यते तेषु देवतोपपरीक्षा कास्तीत्युच्यते । यत्र विशेषो न दृश्यते तत्रैवं यज्ञो देवतायज्ञाङ्गं वेत्येतद्देवताख्यमिति विज्ञायते । ये खलु यज्ञादन्यत्र प्रयुज्यन्ते ते वै प्राजापत्याः परमेश्वरदेवता का मंत्रा भवन्तीत्येवं याज्ञिका मन्यन्ते । अत्रैव विकल्पोऽस्ति नारार्थसा मनुष्यविषयाइति नैरुक्ता ब्रुवन्ति । तथा या कामनासा कामदेवता भवतीति स कामा लौकिका जना जानन्ति । एवं देवताविकल्पस्य प्रायेण लोके बहुलमाचारोऽस्ति । क्वचिद्देवदेवत्यं कर्ममातृदेवत्यं विद्वद्दैवत्यमतिथिदेवत्यं पितृदेवत्यं चेत्येते पूज्याः सत्कर्तव्याः सन्त्यतस्तेषामुपकारकर्तृत्वमाचमेव देवतात्वमस्तीति विज्ञायते । मंत्रास्तु खलु यज्ञसिद्धये मुख्यहेतुत्वाद्याज्ञदेवता एव सन्तीति निश्चीयते ॥

॥ भाषार्थ ॥

जिस २ मंत्रों में सामान्य अर्थात् जहां २ किसी विशेष अर्थ का नाम प्रसिद्ध नहीं होता वहां २ यज्ञ आदि की देवता जानना होता है (अग्निमीळे०) इस मंत्र के भाष्य में जो तीन प्रकार का यज्ञ लिखा है अर्थात् एक तो अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यंत दूसरा प्रकृति से लेके पृथिवी पर्यंत जगत् का रचन रूप तथा शिल्पविद्या और तीसरा सत्संग आदि से जो विज्ञान और योगरूप यज्ञ है यहां उन मंत्रों के देवता जानना चाहिये तथा जिन से यह यज्ञ सिद्ध होता है वे भी उन यज्ञों के देवता हैं और जो इन से भिन्न मंत्र हैं उन का प्राजापत्य अर्थात् परमेश्वर ही देवता है तथा जो मंत्र मनुष्यों अर्थ का प्रतिपादन करते हैं उन के मनुष्य देवता हैं इस में बहुत प्रकार के विकल्प हैं कि कहीं पूर्वोक्त देवता कहाते हैं, कहीं यज्ञादि कर्म, कहीं माता, कहीं पिता कहीं विद्वान् कहीं अतिथि और कहीं आचार्य्यदेव कहाते हैं परंतु इस में इतना भेद है कि यज्ञ में मंत्र और परमेश्वर को ही देव मानते हैं ॥

अत्र परिगणनं गायत्र्यादिच्छन्दोन्वितामंत्रा ईश्वराज्ञा यज्ञः यज्ञाङ्गं प्रजापतिः परमेश्वरः नराः कामः विद्वान् अतिथिः माता पिता आचार्य्यश्चेति कर्मकाण्डादीन्यन्येषा देवताः सन्ति । परंतु मंत्रेश्वरावेव याज्ञदैवते भवतइति निश्चयः ॥

॥ भाषार्थ ॥

जो २ गायत्र्यादि छन्दों से युक्त वेदों के मंत्र, उन्हीं में ईश्वर की आज्ञा,

यज्ञ, और जल के अन्न अर्थात् साधक, प्रजापति जो परमेश्वर, मन जो मनुष्य, आप्त, विद्वान्, अतिथि, माता, पिता, और आचार्य, ये अपने २ विषयों में जो देवता कहाते हैं परन्तु यज्ञ में तो देवों के मेल और ईश्वर को भी देवता माना है ॥

अन्यच्च । देवोदानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा । नि० अ०७ खं० १५ । मेघो यजनाच्छन्दांसि छादनात् नि० अ० ७ खं०१५ । अस्यार्थः । (देवोदानात्०) यस्यस्वस्वविषयेभ्यो दानपूर्वकं परस्वत्वोत्पादकं तद्दानं भवति (दीपनात्) दीपनं प्रकाशनं द्योतनमुपदेशादिकं च । अत्र दानशब्देनेश्वरो विद्वांसो मनुष्याश्च देवता संज्ञाः सन्ति । दीपनाद्युत्पत्तयो द्योतनान्मातृ पितृाचार्यातिथयश्च । यथादौः स्थिरा चादित्यरश्मयः प्राणसूर्यादयो वा स्थानं स्थित्यर्थं यस्य सद्द्युस्थानः प्रकाशकानामपि प्रकाशकत्वान्परमेश्वरवच्च देवोस्तीति विज्ञेयम् । अत्र प्रमाणम् । न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ॥ तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति । इति कठ० वल्ली ५ मं० १५ ॥ तत्र नैव परमेश्वरे सूर्यादयो भान्ति प्रकाशं कुर्वन्ति । किंतु तमेव भान्तं प्रकाशयन्तमनुपश्चात्तेऽपि प्रकाशयन्ति । नैव खल्वेतेषु कश्चित्स्वातंत्र्येण प्रकाशोस्तीति । अतो मुख्यो देव एकः परमेश्वर एवोपास्योस्तीति मन्तव्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(देवोदानात्०) दान देने से देव नाम पड़ता है, और दान कहते हैं अपनी चीज़ दूसरे के अर्थ दे देना, दीपन कहते हैं प्रकाश करने को, द्योतन कहते हैं सत्योपदेश को. इनमें से दान का दाता मुख्य एक ईश्वर ही है कि जिसने आप्त को सब पदार्थ दे रक्खे हैं, तथा विद्वान् मनुष्य भी विद्यादि पदार्थों के देने वाले होने से देव कहाते हैं, (दीपन) अर्थात् सब मूर्तिमान् द्रव्यों का प्रकाश करने से सूर्यादिलोकों का नाम भी देव है, तथा माता, पिता, आचार्य और अतिथि भी पालनशिक्षा और सत्योपदेशादि से करके देव कहाते हैं, वैसेही सूर्यादिलोकों का भी जो प्रकाश करने वाला है सो भी ईश्वर सब मनुष्यों को उपासना करने के योग्य इष्टदेव है जड़ और नहीं इस में कठोपनिषद् का भी प्रमाण है कि सूर्य चन्द्रमा तारे बिजुली और अग्नि से तब परमेश्वर में प्रकाश नहीं कर सकते किंतु इन सब का प्रकाश करने वाला एक वही है क्योंकि परमेश्वर ही के प्रकाश से ही सूर्य आदि सब जगत् प्रकाशित हो रहा है इस में यह जानना चाहिये कि ईश्वर से भिन्न कोई पदार्थ स्वतंत्र प्रकाश करनेवाला नहीं है इसलिये एक परमेश्वर ही मुख्य देव है ॥

नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत् । यजु० अ०४० मं०४ । अत्र देवशब्देन मनः षष्ठानि श्रोत्रादीनीन्द्रियाणि गृह्यन्ते । तेषां शब्दस्पर्शरूपरसगन्धानां सत्यासत्ययोश्चार्थानां द्योतकत्वात्तान्यपि देवाः । यो देवः सा देवता देवतालित्यनेन सूत्रेण स्वार्थे तल्विधानात् । स्तुतिर्हि गुणदोषकीर्तनं भवति यस्य पदार्थस्य मध्ये यादृशा गुणा वा दोषाः सन्ति तादृशानामेवोपदेशः स्तुतिर्विज्ञायते । तद्यथा । अयमसिः प्रहृतः सन्नतीवच्छेदनं करोति । तीक्ष्णधारः स्वच्छो धनुर्वन्नाम्य मानोपि न त्रुट्यतीत्यादि गुणकथनमतो विपरीतोऽसिर्नैव तत् कर्तुं समर्थो भवतीत्यसेः स्तुतिर्विज्ञेया ॥

॥ भाषार्थ ॥

(नैनद्देवा०) इस वचन में देव शब्द से इन्द्रियों का ग्रहण होता है जो कि श्रोत्र त्वचा नेत्र जीभ नाक और मन ये छः देव कहाते हैं क्योंकि शब्द स्पर्श रूप रस गंध सत्य और असत्य इत्यादि अर्थों का इन से प्रकाश होता है और देवशब्द से स्वार्थ में तल् प्रत्यय करने से देवता शब्द सिद्ध होता है जो २ गुण जिस २ पदार्थ में ईश्वर ने रखे हैं उन २ गुणों का लेख, उपदेश, श्रवण, और विज्ञान करना तथा मनुष्य सृष्टि के गुण दोषों का भी लेख आदि करना इस को स्तुति कहते हैं क्योंकि जितना २ जिस २ में गुण है उतना २ उस २ में देवपन है इससे वे किसी के इष्टदेव नहीं हो सकते जैसे किसी ने किसी से कहा कि यह तलवार काट करने में बहुत अच्छी और निर्मल है इस की धार बहुत तेज है और यह धनुष के समान नमाने से भी नहीं टूटती इत्यादि तलवार के गुण कथन को स्तुति कहते हैं ॥

तद्वदन्यत्रापि विज्ञेयम् । परंत्वयं नियमः कर्म्मकाण्डे प्रत्यस्ति । उपासना ज्ञानकाण्डयोः कर्म्मकाण्डस्य निष्कामभागेपि च परमेश्वरएवेष्टदेवोस्ति । कस्मात् । तत्र तस्यैव प्राप्तिः प्रार्थ्यते । यश्च तस्य सकामो भागोस्ति तच्छुविषयभोगप्राप्तये परमेश्वरः प्रार्थ्यते । अतःकारणाद्भेदो भवति । परंतु नैवेश्वरार्थत्यागः क्वापि भवतीति वेदाभिप्रायोस्ति ॥

॥ भाषार्थ ॥

इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना इस नियम के साथ कि केवल परमेश्वर ही कर्म उपासना और ज्ञानकाण्ड में सब का इष्टदेव स्तुति, प्रार्थना, पूजा, और उपासना करने के योग्य है क्योंकि गुण वे कहाते हैं जिनमें कर्मकाण्डादि में उपकार लेना होता है परंतु सर्वत्र कर्मकाण्ड में भी इष्टभोग की प्राप्ति के लिये परमेश्वर का त्याग नहीं होता क्योंकि कार्य्य कारण संबंध से ईश्वर ही सर्वत्र स्तुति प्रार्थना उपासना से पूजा करने के योग्य होता है ॥

अत्र प्रमाणम् । माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति । कर्मजन्मान आत्मजन्मान आत्मैषां रथो भवत्यात्मेषा आयुधमात्मेषव आत्मा सर्वे देवस्य । निरु० अ० ७ खं० ४ । (माहाभाग्याद्देव०) सर्वेषां व्यवहारोपयोगिदेवतानां मध्य आत्मनश्च मुख्यं देवतात्वमस्ति । कुतः । आत्मनो माहाभाग्यादर्थात्सर्वशक्तिमत्त्वादिविशेषणत्वात् । न तस्मादन्यस्य कस्यापि देवतात्वं गणयं भवितुमर्हति । कुतः । सर्वेषु वेदेष्वेकस्याद्वितीयस्यासहायस्य सर्वव्यापिनस्यात्मन एव बहुधा बहुप्रकारैरुपासना विहितास्ति । अस्मादन्ये ये देवा उक्ता वक्ष्यन्ते च ते सर्वे एकस्यात्मनः परमेश्वरस्य प्रत्यङ्गान्येव भवन्ति । अङ्गमङ्गं प्रत्यङ्गमिति निरुक्त्या तस्यैव सामर्थ्यस्यैकैकस्मिन्देवे प्रकाशिताः सन्ति ते च (कर्मजन्म०) यतः कर्मणा जायन्ते तस्मात्कर्मजन्मानो यस्य आत्मन ईश्वरस्य सामर्थ्याज्जातास्तस्मादात्मजन्मानश्च सन्ति । अथैषां देवानामात्मा परमेश्वर एव रथोरमणाधिकरणम् । स एवास्यागमनहेतवः स आयुधं शिक्षयाबह्वमिषवोबाणादुःखनाशकाः स इषवश्च । तथा चात्मैव देवस्य देवस्य सर्वस्वमस्ति । अर्थात्सर्वेषां देवानां स एवोत्पादको धाताधिष्ठाता मङ्गलकारी वर्तते । नातःपरं किंचिदुत्तमं वस्तुविद्यतइति बोध्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस में निरुक्त का भी प्रमाण है कि व्यवहार से देवताओं की उपासना कभी नहीं करनी चाहिये किंतु एक परमेश्वर ही की करनी उचित है इस का निश्चय वेदों में अनेक प्रकार से किया है कि एक अद्वितीय परमेश्वर के ही प्रकाश, धारण, उत्पादन करने से ये सब व्यवहार के देव प्रकाशित हो रहे हैं इन का जन्म, कर्म और ईश्वर ही सामर्थ्य से होता है और इन का रथ अर्थात् जो रमण का स्थान अच्छा अर्थात् शीघ्र सुख प्राप्ति का कारण आयुध अर्थात् सब शत्रुओं के नाश करने का हेतु और इषु अर्थात् जो बाण के समान सब दुष्ट गुणों का छेदन करनेवाला शस्त्र है सो एक परमेश्वर ही है क्योंकि परमेश्वर ने जिस २ में जितना २ दिव्यगुण रक्खा है उतना २ ही उन द्रव्यों में देवपन है अधिक नहीं इससे क्या सिद्ध हुआ कि केवल परमेश्वर ही उन सब का उत्पादन धारण और मुक्ति का देनेवाला है ॥

अथान्यदपि प्रमाणम् । ये चिंशति चर्यस्परोदेवासो ब्रह्मणस्पतम् । विष्टम्भेदिष्टिमानसम् ॥ १ ॥ ऋ० अ० ६ अ० २ व० ३५ मं० १ । चर्यस्त्रिंशता-

स्तुवत भूतान्यंशाम्यन्प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ २ ॥ य० अ० १४ मं० ३१ ॥ यस्य चर्यस्त्रिंशद्देवाःनिधिं रक्षन्ति सर्वदा । निधिं तमद्यकोवेदयं देवा अभिरक्षेथ ॥ ३ ॥ यस्य चर्यस्त्रिंशद्देवा अङ्गेगात्रा विमेकिरे । तान्वै चर्यस्त्रिंशदित्येके ब्रह्मविदो विदुः ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० १० प्रपा० २३ अनु० ४ मं० २३ । २४ ॥ महोवाच मीढ्वान ब्राह्मणायेमे ते चयस्त्रिंशन्वै देवाइति । कतमे ते चयस्त्रिंशदित्यष्टौवसव एकादशरुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च चयस्त्रिंशाविति ॥ ३ ॥ कतमे वसव इति । अग्निश्च पृथिवी च वायुश्चान्तरिक्षं चादित्यश्च द्यौश्च चन्द्रमाश्च नक्षत्राणि चैते वसव एतेषु हीदꣳ सर्वं वसुहितमेतेहीदꣳसर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳसर्वं वासयन्ते तस्माद्वसवइति ॥ ४ ॥ कतमे रुद्रा इति । दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्मान्मर्त्यादुच्छरीरादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥ ५ ॥ कतम आदित्याइति द्वादशमासाः संवत्सरस्यैत आदित्याएतेहीदꣳ सर्वमाददानायन्ति तद्यदिदꣳसर्वमाददानायन्ति तस्मादादित्या इति ॥ ६ ॥ कतमश्चन्द्रः कतमः प्रजापतिरिति । स्तनयित्नुरेवेन्द्रो यज्ञः प्रजापतिरिति कतममत्तनयित्नुरित्यशनिरिति कतमो यज्ञइति पशवइति ॥ ७ ॥ कतमेतेचयोदेवाइतीमे यत्र चयोलोका एषुहीमे सर्वे देवा इति कतमौ द्वौ देवा इत्यन्नं चैव प्राणश्चेति कतमो ऽध्यर्धइति योयंपवतइति ॥ ९ ॥ तदाहुः । यदयमेकएव पवतेऽथकथमध्यर्धइति यदस्मिन्निदꣳसर्वमध्यार्ध्नोतीत्यध्यर्धइति । कतम एको देवइति स ब्रह्मत्यित्याचक्षते ॥ १० ॥ श० कां० १४ । प्रपा० १६ ॥ अस्यैषामर्थः । वेदमन्त्राणामेवार्थो ब्राह्मणग्रन्थेषु प्रकाशित इति दृष्टव्यम् । शाकल्यं प्रतियाज्ञवल्क्योक्तिः । चयस्त्रिंशद्देवदेवाः सन्ति । अष्टौवसवः । एकादशरुद्राः । द्वादशादित्याः । इन्द्रः प्रजापतिश्चेति । तत्र (वसवः) अग्निः । पृथिवी । वायुः । अन्तरिक्षम् । आदित्यः । द्यौः । चन्द्रमाः । नक्षत्राणि च । एतेषामष्टानां वसुसंज्ञा कृतास्ति । आदित्यः सूर्यलोकस्तस्य प्रकाशोस्ति द्यौः सूर्यसन्निधौ पृथिव्यादिषु वा । अग्निर्लोकोस्त्यग्निरेव (कुत एते वसव इति) यद्यस्मादेतेष्वृष्वे वेदं सर्वं संपूर्णं वसु वस्तु जातं हितं धृतमस्ति । किंच सर्वेषां वासाधिकरणानीम एव लोकाः सन्ति । हियतश्चेदं वासयन्ते सर्वस्यास्य जगतो वासहेतवस्तस्मात्कारणादन्यादयो वसुसंज्ञकाः सन्तीति बोद्धव्यम् । (एकाद-

लक्षणाः) ये पुरुषेऽभिदेहे । प्राणाः । अपानः । व्यानः । समानः । उदानः । नागः । कूर्मः । कृकलः । देवदत्तः । धनंजयश्च । इमे दशप्राणा यत्कादशमं मनश्चैतत्सर्वं मिलित्वैकादशरुद्राः भवन्ति । शुभं यते रुद्रा इत्यादि । एतदा यस्मिन्काले इमान्मरणधर्मकाच्छरीरादुत्क्रामन्तो निःसरन्तः यन्तो इष्टेत्यनर्थं दुःखसंबन्धिनो जनयन्ते रोदयन्ति यतो जना रुदन्ति । तस्मात्तत्काले रुद्राः सन्तीति विज्ञेयम् । (द्वादशादित्याः) चैत्रादयः फाल्गुनान्ता द्वादशमासा आदित्या विज्ञेयाः । शुभं द्रियन्ते यते सर्वं जगदादत्ते अर्थादायमन्तानुकूलान्प्रतिक्षणमुत्पद्यत्य वस्तु न आयुषः प्रलयं निरुद्धायन्तो यन्ति गच्छन्ति चक्रवद् भ्रमणो नोत्तरोत्तरं ज्ञातव्य वस्तुनो विषयस्थिरत्वं परिणामेन प्रापयन्ति तस्मात्कारणान्मासानामादित्यसंज्ञा कृतास्ति । इन्द्रः परमैश्वर्ययोगात्सज्जनरक्षणान्निर्विघ्नादिति । प्रजापतिर्यज्ञः यज्ञ इति । प्रजायाः पालनहेतुत्वान्मनुष्याणां यज्ञस्य च प्रजापतिरिति मौलिक्यसंज्ञा कृतास्ति । यते सर्वं मिलित्वा त्रयस्त्रिंशद्देवा भवन्ति । देवेन्द्राग्न्यादित्यादि विज्ञानया स्तेषु व्यावहारिकमेव देवत्वं योजनीयम् । त्रयोलोका स्त्रयोदेवाः । तेन इत्यचाह निरुक्तकारः । यानानि त्रयाणि भवन्ति स्थानानि नामानीत्यादीनि । वि० अ० ६ खं० ४८ । त्रयोलोका यत एव । अग्नेः कार्यं लोको यत्रोत्तरिक्षलोकः प्रायो ऽसौ लोकः ॥ अ० का० १४ अ० ४ मंत्रेऽपि त्रयोदेवा ज्ञातव्याः । द्वौ देवावत्र प्राणश्चेति । अत्यर्थो ब्रह्मशब्दस्यः मूलात्याख्यः सर्वजगतो वृद्धिकरत्वाद्ब्रह्मोदयः । किमेते सर्वे सर्वोपास्याः सन्तीत्यत्राह । नेत्र किंतु (सदाऽ०) यत्सर्वजगत्कर्तृ सर्वमणिमत्सर्वज्ञेयं सर्वोपास्यं सर्वाधारं सर्वव्यापकं सर्वकारणमनादि सच्चिदानन्दस्वरूपमजं न्यायकारीत्यादिविशेषणयुक्तं ब्रह्मास्ति । स एवैको देवश्चतुर्विंशो वेदोक्तसिद्धान्तलक्षणैः परमेश्वरो देवः सर्वमनुष्यैरुपासनीयो ज्ञातव्य इति सम्यग्बुध्यध्वम् । ये वेदोक्तमार्गपरायणा आर्याः सन्ति सर्वदैतत्सर्वोपास्यं ब्रह्म बुध्यन्ति मन्यन्ते च । अस्मादृषिप्रभृतिभ्यो नोपासनेन चास्मिन्नेवैकस्मिन्मनुष्येषु सिध्यतीति निश्चयः । अथ प्रमाणम् । यत्तोऽन्येदेवासीत अन्येऽन्यमानः किं नुवन्तो वयाम् किमयरोत्स्यतीतीश्वरोह तस्मिन्न त्वात्मानमेव प्रियमुपासीत स य आत्मानमेव प्रियमुपास्ते न हास्यप्रियं प्रमायुकं भवति । योन्यां देवतामुपास्ते नासावेद यथा पशुरेवमधदेवानाम् ॥ अ० का० १४ अ० ४ । अनेनार्थेनितिहासे च शिक्षयतेन परमेश्वरं [illegible] ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब आगे देवता विषय में तेतीस देवों का व्याख्यान लिखते हैं जैसा ब्राह्मण ग्रंथों में वेद मंत्रों का व्याख्यान लिखा है (त्रयस्त्रिंशत्०) अर्थात् व्यवहार के ये (३३) तेतीस देवता हैं (८) आठ वसु (११) ग्यारह रुद्र (१२) बारह आदित्य एक इन्द्र और एक प्रजापति उनमें से आठ वसु ये हैं अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः, चन्द्रमा, और नक्षत्र इन का वसु नाम इस कारण से है कि सब पदार्थ इन्हीं में बसते हैं और ये सबके निवास करने के स्थान हैं (११) ग्यारह रुद्र ये कहाते हैं जो शरीर में दश प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, और ग्यारहवां जीवात्मा है क्योंकि जब वे दस शरीर से निकल जाते हैं सब मरण होने से उस के सब संबंधी लोग रोते हैं वे निकलते हुए उन को रुलाते हैं इस से इन का नाम रुद्र है इसी प्रकार आदित्य बारह महीनों को कहते हैं क्योंकि ये सब जगत् के पदार्थों का आदान अर्थात् सब की आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं इसी से इन का नाम आदित्य है ऐसेही इन्द्र नाम बिजुली का है क्योंकि वह उत्तम ऐश्वर्य की सिद्धि का मुख्य हेतु है और यज्ञ को प्रजापति इस लिये कहते हैं कि उस से वायु और वृष्टि जल की शुद्धिद्वारा प्रजा का पालन होता है तथा पशुओं की यज्ञ संज्ञा होने का यह कारण है कि उन से भी प्रजा का जीवन होता है ये सब मिल के अपने २ दिव्यगुणों से तेतीस देव कहाते हैं और तीन देव स्थान नाम और जन्मको कहते हैं तो देव अन्न और प्राण को कहते हैं अध्यर्धदेव अर्थात् जिस्से सबका धारण और वृद्धि होती है जो सूत्रात्मा वायु सब जगत् में भर रहा है उस को अध्यर्धदेव कहते हैं प्र० क्या ये चालीस देव भी सब मनुष्यों को उपासना के योग्य हैं उ० इन में से कोई भी उपासना के योग्य नहीं है किंतु व्यवहार मात्र की सिद्धि के लिये ये सब देव हैं और सब मनुष्यों के उपासना के योग्य तो देव एक परमेश्वर ही है इस में यह प्रमाण है (सप्तऋ०) जो सब जगत्का कर्त्ता सर्वशक्तिमान् सब का इष्ट सबको उपासना के योग्य सबका धारण करने वाला सर्वत्र व्यापक और सबका कारण है जिस का आदि अंत नहीं और जो सच्चिदानन्दस्वरूप है जिस का जन्म कभी नहीं होता और जो कभी अन्याय नहीं करता इत्यादि विशेषणों से वेदादि शास्त्रों में जिस का प्रतिपादन किया है उसी को इष्ट देव मानना चाहिये और जो कोई इससे भिन्न को इष्ट देव मानता है उस को अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी कहना चाहिये क्योंकि (आत्मेत्ये०) इस में आर्य्यों का इतिहास शतपथब्राह्मण में है कि परमेश्वर जो सब का आत्मा है सब मनुष्यों को उसी की उपासना करनी उचित है इस में जो कोई कहे

कि परमेश्वर को छोड़के दूसरे में भी ईश्वर बुद्धि से प्रेमभक्ति करनी चाहिये सो उस्से कहै कि तू सदा दुःखी होके रोदन करेगा क्योंकि जो ईश्वर की उपासना करता है वह सदा आनन्दमें ही रहता है जो दूसरे में ईश्वर बुद्धि करके उपासना करता है वह कुछ भी नहीं जानता इस लिये वह विद्वानों के बीच में पशु अर्थात् गधा के समान है इस्से यह निश्चय हुआ कि आर्य्य लोग सब दिन से एक ईश्वरही की उपासना करते आये हैं ॥

अतः फलितार्थोयं जातः । देवशब्दे दिवुधातोर्यै दशार्थास्ते संगता भवन्तीति । तद्यथा । क्रीडा । विजिगीषा । व्यवहारः । द्युतिः । स्तुतिः । मोदः । मदः । स्वप्नः । कान्तिः । गतिश्चेति । यथाप्रसिद्धयच्च समानार्थत्वात् । परंत्वन्याः सर्वादेवताः परमेश्वरप्रकाश्याः सन्ति सच स्वयंप्रकाशोस्ति । तत्र क्रीडनं क्रीडा । दुष्टान् विजेतुमिच्छा विजिगीषा । व्यवह्रियन्ते यस्मिन्व्यवहरणं । व्यवहारः । स्वप्नो निद्रा । मदोग्लेपनं दीनता । एते मुख्यतया लौकिकव्यवहारवृतयो भवन्ति । तत्सिद्धिहेतवो ऽन्यादयो देवताः सन्ति । अत्रापि नैव सर्वथा परमेश्वरस्य त्यागो भवति तस्य सर्वत्रानुस्यूतितया सर्वात्मादकाधारकत्वात् । तथा द्युतिर्द्योतनं प्रकाशनं स्तुतिर्गुणेषु गुणकथनं स्थापनं च मोदो हर्षः । प्रसन्नता कान्तिः शोभा । गतिर्ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति । एते परमेश्वरे मुख्यवृत्त्या यथावत्संगच्छन्ते । अतोन्यत्र तत्सत्तया गौण्या वृत्त्या वर्तन्ते । एवं गौणमुख्याभ्यां हेतुभ्यामुभयत्र देवशब्दत्वं सम्यक् प्रतीयते ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस्से यह सिद्ध हुआ कि दिवु धातु के जो दश अर्थ हैं वे व्यवहार और परमार्थ इन दोनों अर्थ में यथावत् घटते हैं क्योंकि इनके दोनों अर्थ की योजना वेदों में अच्छी प्रकार से की है इन में इतना भेद है कि मूर्खादि सब आदि देवता परमेश्वर के ही प्रकाश से प्रकाशित होते हैं और परमेश्वर देव तो अपनेही प्रकाश से सदा प्रकाशित हो रहा है इस्से वही एक सब का पूज्य देव है और दिवु धातु के दश अर्थ ये हैं कि एक क्रीडा जो खेलना दूसरा विजिगीषा जो शत्रुओं को जीतने की इच्छा होना, तीसरा व्यवहार जो कि दो प्रकार का है एक बाहर और दूसरा भीतर का चौथा निद्रा, और पांचवा मद, ये पांच अर्थ मुख्य करके व्यवहार में ही घटते हैं क्योंकि अग्नि आदि ही पदार्थ व्यवहार सिद्धि के हेतु हैं परंतु परमेश्वर का त्याग इस में भी कहीं नहीं होता क्योंकि वे देव उसी की व्यापकता और रचना से दिव्य गुण वाले हुए हैं तथा द्युति जो प्रकाश करना, स्तुति जो गुणों का कीर्त्तन करना, मोद प्रसन्नता, कांति, जो शोभा, गति जो ज्ञान गमन और प्राप्ति है, ये पांच

वर्णे परमेश्वर में मुख्य करके वर्त्तते हैं क्योंकि इन से भिन्न अर्थों में जितने २ जिन २ में गुण हैं उतना २ ही उनमें देवतापन लिया जाता है परमेश्वर में तो सर्व शक्तिमत्त्वादि सब गुण अनंत हैं इस से पूज्य देव एक वही है ॥

अत्र केचिदाहुः । वेदेषु जड़चेतनयोः पूजाविधानाद्वेदाः संशयास्पदं प्राप्ताः सन्तीति गम्यते । अत्रोच्यते । मैवंभूमि । ईश्वरेण सर्वेषु पदार्थेषु स्वासंश्रयस्य रक्षितत्वात् । यथा चक्षुषि रूपग्रहणशक्तिस्तेन रक्षितास्ति । अतश्चक्षुष्मान् पश्यति नैवान्धश्चेति व्यवहारोस्ति । अत्र कश्चिद्दूषाभावेण सूर्य्यादिभिश्च विनेश्वरोरूपं कथं न दर्शयतीति यथा तस्य व्यर्थत्वं शङ्कास्ति । तथा पूजने पूजासत्कारः प्रियाचरणमनुकूलाचरणं चेत्यादयः पर्य्यायाः भवन्ति । सैव पूजा चक्षुषेपि सर्वैर्जनैः क्रियत एव मन्त्यादिषु यावदर्थोपयोगित्वं विद्याक्रियोपयोगित्वं चास्ति तावद्देवतात्वमप्यस्तु नात्र काचित्क्षतिरस्ति । कुतः । वेदेषु यत्र यत्रोपासना विधीयते तत्र तत्र देवत्वात्तेनेश्वरस्यैव ग्रहणात् ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० इस विषय में कोई २ मनुष्य ऐसा कहते हैं कि वेदों के प्रतिपादन में एक ईश्वर की पूजा सिद्ध नहीं हो सकती क्योंकि उन में जड़ और चेतन की पूजा लिखी है इससे वेदों में संदेह सहित कथन मालूम पड़ता है उ० ऐसा भ्रम मत करो क्योंकि ईश्वर ने सब पदार्थों के बीच में स्वतंत्र गुण रक्खे हैं जैसे उसने आंख में देखने का सामर्थ्य रक्खा है तो उससे दीखता है । यह लोक में व्यवहार है इस में कोई पुरुष ऐसा कहे कि ईश्वर नेत्र और सूर्य के विना रूप को क्यों नहीं दिखलाता है जैसे यह शंका उस को व्यर्थ है वैसेही पूजाविषय में भी जानना क्योंकि जो दूसरे का सत्कार प्रियाचरण अर्थात् उस के अनुकूल काम करना है इसी का नाम पूजा है सो सब मनुष्यों को करनी उचित है इसी प्रकार अग्नि आदि पदार्थों में जितना २ अर्थक्रिया पंक्तिपन दिव्यगुण क्रिया सिद्धि और उपकार लेने का संभव है उतना २ उनमें देवपन मानने से कुछ भी हानि नहीं हो सकती क्योंकि वेदों में जहां २ उपासना व्यवहार लिया जाता है वहां २ एक अद्वितीय परमेश्वर का ही ग्रहण किया है ॥

तत्रापि मतद्वयं विग्रहवत्त्वविग्रहवद्देवतासमेदात् । तत्रोभयं पूर्वं प्रतिपादितम् । अन्यत्र । मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव । प्रपा० २ अनु० ११ । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । प्रपा० २ अनु० १ ॥ इति सर्वमनुष्योपास्याः पंचदेवता-

रूपेणिरीयोपनिषदुक्ताः । यश्चाय माता पिता च आचार्यो अतिथिश्चेति पञ्च-
रीरादेवताः सन्ति ॥ यश्च सर्वव्यापिशरीरे ब्रह्मादिकः ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस देवता विषय में दो प्रकार का भेद है एक मूर्त्तिमान् दूसरा अमूर्त्तिमान् जैसे माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि, ये चार तो मूर्त्तिमान् देवता हैं और पांचवा परमेश्वर आमूर्त्तिमान् है अर्थात् उस को किसी प्रकार की मूर्त्ति नहीं है इस प्रकार से पांच देव की पूजा में यह दो प्रकारका भेद जानना उचित है ॥

तथैव पूर्वोक्तासु देवतास्वग्नि पृथिव्यादित्य चन्द्रमो नक्षत्राणि चेति पंचसंख्यका मूर्त्तिमत्यः सन्ति । यश्चैकादशरुद्रा द्वादशादित्या अष्ट-
पृथिवी चाग्नीन्द्रयाणि वायुरन्तरिक्षं द्यौर्मन्त्राक्चेति शरीररहिताः । तथा-
त्मनश्चिच्छक्तिरियं च सशरीराशरीरे देवतेस्त इति । यश्च सशरीर नि-
श्चयुरेवमेव देवताद्वयं भवति । तत्रैतासां व्यवहारोपयोगित्वमात्रेण देव-
त्वं गृह्यते । इत्थमेव मातृपितृाचार्य्यातिथीनां व्यवहारोपयोगित्वं पर-
मार्थप्रकाशकत्वं चेत्यवधार्यं च । परमेश्वरस्तु सर्वाभिप्रायेणोपयोगित्वेन-
वोपास्योस्ति । अतो वेदेषु सर्वत्र सर्वाभिर्देवताभ्यूक्योपास्यत्वेन शिक्षितत्वा-
त्तीति निश्चीयताम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

इसी प्रकार पूर्वोक्त आठ वसुओं में से अग्नि, पृथिवी, आदित्य, चन्द्रमा, और नक्षत्र ये पांच मूर्त्तिमान् देव हैं और ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, मन सहित, वायु, द्यौ, और मेघ, ये मूर्त्तिरहित देव हैं, तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां शिक्षुओं और विधियत ये सब देव मूर्त्तिमान् और अमूर्त्तिमान् भी हैं,[1] इसी साकार और निराकार भेद से दो प्रकार की अवस्था देवताओं में जाननी चाहिये इन में से पृथिव्यादि का देवपन केवल व्यवहार में तथा माता पिता आचार्य और अतिथियों का व्यवहार में उपयोग और परमार्थ का प्रकाश करना आदरी देवपन है और मेघों मन और इंद्रियों का उपयोग व्यवहार और परमार्थ करने में होता है परंतु सब मनुष्यों को उपासना करने के योग्य एक परमेश्वरही देव है ॥

अत्र इदानीं तना: खेषिदार्य्यो यूरोपखण्डादिनिवास्य मौलिकदेव-
त्वमात्रमेव पूजनं वेदेष्वस्तीत्यूचुर्वदन्ति च सदलीकतरमस्ति । तथा यूरोप-

[1] पृथिवी की अपेक्षा द्रव्य अमूर्त्तिमान् और गोलक मूर्त्तिमान् तथा विद्युत और [illegible] में जो २ अङ्ग तथा ज्ञान अमूर्त्तिमान् और दर्शन तथा सामग्री मूर्त्तिमान् जानना [illegible]

खण्डवासिनो बहव एवं वदन्ति पुरा ह्यार्य्या भौतिकदेवतानां पूजका आसन् पुनस्ताः संपूज्य संपूज्य च बहुकालान्तरे परमात्मानं पूज्यं विदुरिति । तदप्यसत् । तेषां सृष्ट्यारम्भमारभ्यानेकैरिन्द्रवरुणाग्न्यादिभिर्नामभिर्वेदोक्तैरीश्वरस्यैवोपासनानुष्ठानाचारागमात् ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० कितने ही आज काल के आर्य्य और यूरोपदेश वासी अर्थात् अंगरेज आदि लोग इस में ऐसी शंका करते हैं कि वेदों में पृथिव्यादि भूतों की पूजा कही है वे लोग यह भी कहते हैं कि पहिले आर्य्य लोग भूतों की पूजा करते थे फिर पूजते२ बहुत काल पीछे उन्होंने परमेश्वर को भी पूज्य जाना था यह उन का कहना मिथ्या है क्योंकि आर्य्य लोग सृष्टि के आरंभ से आज पर्य्यंत इन्द्र वरुण और अग्नि आदि नामों करके वेदोक्त प्रमाण से एक परमेश्वर की ही उपासना करते चले आये हैं इस विषय में अनेक प्रमाण हैं उन में से थोड़े से यहां भी लिखते हैं ॥

अत्र प्रमाणानि । (अग्निमी०) अस्य मन्त्रस्य व्याख्याने हि इन्द्रं मित्रम्० । ऋग्मन्त्रोऽयम् । अस्योपरी ममेत्यग्निं हान्तर्यामात्मानमित्यादि निरुक्तं च लिखितं तत्र द्रष्टव्यम् । तथा तदेवाग्निस्तदादित्य० इति यजुर्मन्त्रश्च । तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषानो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ १ ॥ ऋ० अ० १ अ० ६ व० १५ मं०७ ॥ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ऋ० अ० ८ अ० २ व० ३ मं० १ । इत्यादयो नवमन्त्रा एतद्विषयाः सन्ति ॥ एतद्वेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धामविभृतं गुहासत् । त्रीणिपदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥ २ ॥ मनोऽन्वर्जातिसासविधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्रदेवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ ३ ॥ परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थायप्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥ ४ ॥ य० अ० ३२ मं० ६ । १० । ११ ॥ वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ६ ॥ य० अ० ३१ मं० १८ ।

संख्या	नाम ग्राहक	धाम ग्राहक	संख्या पुस्तक	मौल्य रुपये	मौल्य आने
१५२	रा॰ रा॰ रामचंद्र मोरेश्वर	बर्मीज कोर्ट । नासिक	१	४॥)	८
१५३	रा॰ रा॰ शिवराम बापूजी पराजपे बि॰ ए॰	हेड मास्टर मैट्रेकी पाठशाला । नासिक	१	४॥)	४
१५४	रा॰ रा॰ नरहर गुरुपोत्तम टिलक ..	असिस्टेन्ट मास्टर एंग्लिश स्कूल नासिक	१	४॥)	०
१५५	केशवचंद्र शूरचंद्र ..	साहुकार । नासिक	१	४॥)	४
१५६	रा॰ रा॰ गोविन्द आबा गुर्जर	वकील हाई कोर्ट । ठाणे बोरीवली ..	१	४॥)	०
१५७	रा॰ रा॰ वासुदेव हरी निरंतर	वकील । नासिक	१	४॥)	०
१५८	रा॰ रा॰ रुक्खराव खंडेराव टकले ..	वकील । नासिक	१	४॥)	०
१५९	रा॰ रा॰ नारायण राव जोगलेकर ..	कारभारी संस्थान । त्रिंबक	१	४॥)	०
१६०	रा॰ रा॰ भास्करखंडेराव कृष्ण त्रिंबके ..	डिपुटि इन्स्पेक्टर सरकारी खाला नासिक	१	४॥)	०
१६१	रा॰ रा॰ शोभर वासुदेव	दप्तरे डोंगरि आमीरदार । नासिक ..	१	४॥)	०
१६२	बाबू गंगानारायण तिवारी	कमसरियट के गुमास्ता । मेरठ ..	१	४॥)	४
१६४	पंडित गंगाप्रसाद ..	मैसलन्ना मियाखाह की गली में मुरादाबाद	१		४॥)
१६५	कवि कल्याणराम हेमाराम	प्रान्त गुजरात ज़िला सूरत तालुका जलालपुरका गाम । खरणाड ..	१	४॥)	०
१६६	समर्थदानभारती	सेटों के रामगढ़ जयपुर की सोसाटी दफ्तर सोंभर सरकारी मदरसेमें। सोंभर	१	४॥)	
१६७	डालूराम ब्राह्मण ..	सेटों के रामगढ़ जयपुर की सोसाटी दफ्तर सोंभर कालूरामजी पंडित के मंदिर में । सोंभर	१	४॥)	०
१६८	बाबू भरतरामदास ..	सिनर्ल आडिट आफिस । देहली रेलवे । लाहोर	२	९)	
१६९	लाला मेहरराम	गव॰ आफिज के तालबरदार । ओर टेंट राय लक्ष्मीनारायण साहब बहादुर । म्यूनीसिपल कमीशनर । लाहोर । पंजाब ।	२	९)	
१७०	लाला हेलाधारीलाल	दफ्तर राव लक्ष्मीनारायण साहब बहादुर म्यूनीसिपल कमीशनर । लाहोर ।	१	४॥)	
१७१	मुंशी लक्ष्मीनारायण ..	दफ्तर राय लक्ष्मीनारायण सा॰ ब॰ एक्सी॰ इन्जीनि॰ लाहोर ..	२	४॥)	
१७२	लाला बल्लभदास ..	अकौंटेन्टजनरल तिजारत । लाहोर	१	४॥)	
१७३	लाला नाथरामदास ..	दफ्तर एकौंटेन्टजनरल पंजाब । लाहोर	१	४॥)	
१७४	लाला रत्नचन्द्र ..	दफ्तर एकौंटेन्टजनरल पंजाब। लाहोर	१	४॥)	

संख्या ग्राहक	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	संख्या पुस्तक	मोल्य लगाए	मोल्य उधार
१७५	लाला नारायणदास	सुपरिन्टेन्डेन्ट मुलकमें डायरेक्टरी पं० लाहौर	१	४॥)	
१७६	पंडित अमरनाथ	हैड सुपरिन्टेन्डेन्ट कीफकोर्ट पंजाब। लाहौर	१	४॥)	
१७७	लाला जीवनदास	डिपुटी कमिश्नर । फायनान्शीयल कमिश्नर्स आफिस । पंजाब । लाहौर	१	४०)	
१७८	बाबू मथुरादास दूसरे	एकाउन्टेन्ट जेनेरेल्स आफिस पं० लाहौर	१	४॥)	
१७९	बाबू गौरधनदास	हैड क्लर्क सैन्टरेल प्रैस्स आफिस। लाहौर।	१	४॥)	
१८०	लाला दौलतराम	हैड क्लर्क पोस्टमास्टर जेनेरेल आफिस पं० । लाहौर ।	१	४॥)	
१८१	बाबू शीतलप्रसाद मुकरजी	चीफ मनलोनियर्स आफिस सिन्ध पं० ऐंड्रयो रेलवे। लाहौर। पंजाब	१	४॥)	
१८२	बाबू बैजलसैन	पोस्टमास्टर जेनरेल्स आफिस पंजाब। लाहौर।	१	४॥)	
१८३	पंडित शादीलालजन्द	मरलीकुटिड एन्जीनियर्स आफिस पैंजाब नारदर्न इंडियन रेलवे। लाहौर आहदरा।	१	४॥)	
१८४	लाला गंडामल	हैड क्लार्क मेंडीकेल कालिज लाहौर।	१	४॥)	
१८५	बाबू कमलनयन	एकाउन्टेन्ट जेनेरेल्स आफिस पं० लाहौर।	१	४॥)	
१८६	लाला अनारसीदास	एकाउन्टेन्ट जेनेरेल्स आफिस पं० लाहौर।	१	४॥)	
१८७	लाला शिवारीलाल	नथनीनर्वास चीफ एन्जीनियर्स आफिस मुलकमी नदर पंजाब। लाहौर।	१	४॥)	
१८८	लाला भगवतस्वरूप	फर्स्ट क्लर्क किलाम। गवर्न० कालिज। लाहौर।	१	४०)	
१८९	लाला मंगतमल	रोडर सिन्ध पंजाब डेल्टाक रेलवे प्रेस। लाहौर।	१	४०)	
१९०	ज्ञानचन्द	बेंडीकोट इस्कूल। लाहौर।	१	४॥)	
१९१	बाबू भगवतराम	पोस्टमास्टर जेनेरेल्स आफिस पं० लाहौर।	१	४॥)	
१९२	बाबू ज्वालाराम बी० ए०	डिपुटी इन्सपैक्टर आफ इस्कूल्स पंजाब। लाहौर।	१	४॥)	
१९३	लाला पद्मराम	पब्लिकवर्क्स डीपार्टमेन्ट प्रेस पंजाब। लाहौर।	१	४॥)	
१९४	बाबू अम्बिकाप्रसाद मुकरजी एम० ए० बी० एल०	प्रोफैसर गवर्न० कालिज लाहौर।	१	४॥)	
१९५	बाबू कालीप्रसन्नराय एम० ए० बी० एल०	पिलीडर चीफकोर्ट पंजाब। लाहौर।	१	४॥)	

We beg to acknowledge with thanks the receipt of the following Donations through Rishi Bhakt Bhimsenji of Bombay :—

	Rs. As.		Rs. As.
Lakhmidas Khimchand, Esq.	4-0	Mulchand Bhimsenji, Esq.	4-0
Gokul Das Varaj Das, Esq.	4-0	Lakhmidas Khimchand, Esq.	4-0
Nagindas Lakhmidas, Esq.	4-0	Chaganlal Nagindas, Esq.	4-0
Kalyanji Gokuldas, Esq.	4-0	Patel Shivji Varjivandas, Esq.	4-0
Ramji Kalidas, Esq.	4-0	Umersi Lakhmidas Khimchand, Esq.	4-0
Umersi Lakhmidas, Esq.	4-0	Mulchand Bhimsenji, Esq.	4-0
Narandas Tapidas, Esq.	4-0	Nagindas Umersi, Esq.	4-0
Ramji Dosi, Esq.	4-0	Rao Saheb Parbhudas	4-0
Mulchand Nagindas, Esq.	4-0		

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बनाये पुस्तकों की सूचना ॥

	मूल्य पुस्तक प्राप्ति	महसूल
१ सत्यार्थप्रकाश जी	॥)	।=)
२ ऋग्वेदादिभाष्य जी	७॥=)	।)
३ ऋग्वेदादिभाष्य जी	६)	।)

इनमें से सत्यार्थप्रकाश जी पुस्तक गोदा जय कृष्णदास जी के यहां सरदारहाट में अथवा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास लिखा पढ़ने से मिलेगा। ऋग्वेदादिभाष्य जी के ग्राहक वा खरीदने के सामने कृष्णदास लिखाएगा जी के यहां भी मिलता है।

सत्कारतारिख—स्वामी दयानन्द जी के जन्म और पंडित मुलचन्द जी के जन्म मुलाकात में पाटनसाहेब जलसा के अवसरों की तिथि है जिस दिन और उनके मुलाकात मुलाकात के पक्ष जैसा पाठक पाठक मंडल के हितैषी समझता है।

अर्पणीयजन—स्वामी दयानन्द जी के पास और पंडित मुलचन्द जी के हितैषी से मिलते हैं।

इस की सहायता मनुष्य पुस्तक पाठकों उनको पढ़ाने के लिये मोल इस पत्र सम्बन्धी जो लेखक मित्र सम्बन्धी के पास काशी खरात बनारस में भेज देना चाहिये ॥

REGISTERED No. 16.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विता ॥

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमाषं मूल्यम् भारतवर्षीयसार्वदेशान्तरप्राप्तव्ययसहितम् ।≈) पञ्चत्र द्वादशमासानां मिलित्वा वार्षिकं ४॥) गृह्यते ।

इस ग्रन्थ के प्रतिमास एक एक नम्बर का मूल्य भारतवर्ष के भीतर डाकमाशुल सहित ।≈) और वार्षिक मूल्य ४॥)

यस्य ग्रन्थस्य गृहणेच्छा यस्य भवेत्तेनाऽऽर्य्य लाजपतरायपत्र्याख्यस्य वा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः सर्वोपं वार्षिकं मूल्यं प्रथमतस्तस्य प्रतिमासमेकं प्राप्स्यति ॥

अङ्क (१)

॥ अत्र ग्रन्थे आर्य्य लाजपतरायपत्र्याख्यस्य यन्त्रालये मुद्रितः ॥

संवत १९७४ ।

॥ अस्य ग्रन्थस्याधिकारः आषाढशुक्ला पञ्चमी पर्यन्तं स्थास्यति तत्र परतः ॥

लिखित श्री वि सं० १९७० मार्गे आषाढ में प्रकाश करने की आज्ञा पर्यन्त पंजाब बैंक के जालन्धर नगर में बंदिश स्वामी दयानन्द सरस्वती को लिखाते थे ।

श्री ब्रज चेटभाय खजाने और छापने के सहाय में भेजी हुई सूची माह जून में।

श्रीमान् मैनेजर साहब एम्पायर पुस्तक भण्डार लखनऊ के बेचने से [illegible]		
मद में मैसर्स बैंक लि० मुरलीमनोहर लिटरेरी एसोसियेशन लि० के सभ्यों से		
मद लगा। बाबू दीनानाथ मैनेजरी को मा० अत्र कुलीन्स में आया।		
बाबू दीनानाथ मुखर्जी। ऑफिस मैनेजरिंग कमेटियम लि० ई० है०		
रेलवे। लाहौर		
बाबू जगन्नाथ प्रसाद रईस। फतेहगढ़।		

	नम्बर मनीआर्डर	नाम व पता	पता मनीआर्डर	संख्या पुस्तकों	रुपया	आना
	५५	बाबू कृष्णलालजी वैद्यराज	मजूमदार गुजरात का। खत मऊनाथ।	१	२॥)	
	५८	मौलाना मुहम्मद	रईस गुजरात का। खत महमदाबाद।	५	२२॥)	
	५९	मदनगोपाल कपाल	मास्टर गुजरात का। खत महमदाबाद।	१	॥)	
	६१	मुंशी [illegible]	[illegible]	१०	२॥)	
	६१२	राजा रघुवीरसिंह ..	जिला। मुरार मैनपुरी। ..	१	॥)	
	६२०	ठाकुर केशवलाल ..	वैद्य। [illegible] ठाकुर का मकान कसबा। मथुरा	१	॥)	
	६२१	राजा [illegible]	कानपुर।	५	॥)	
	६२८	बाबू अक्षयकुमार ..	[illegible] टोला जि० मेदिनीपुर [illegible]	१	॥)	
	६२३	ठाकुर रामदत्त ..	ठाकुर मनोहर कछुवाहा। पंचायत। कछुवपेठा। ..	१	॥)	
	६२४	लाला [illegible]	कलेक्टर [illegible] कछुवपेठा। कछुवपेठा। ..	१	॥)	
बैंक से अंक से लौटे	६२५	[illegible]	[illegible] [illegible]	१	॥)	
	६२६	मैसर्स [illegible]	[illegible] [illegible] [illegible]	१	॥)	
बैंक से लौटे	३०	[illegible]	[illegible] [illegible] [illegible]	३२		४)
..	६३१	[illegible]	[illegible] [illegible] [illegible]	१		॥)
..	६३८	रामदत्त	[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]	१		॥)

[illegible] की सफलता करने [illegible] की भूमिका के समझने [illegible] में [illegible] आवश्यक।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ८ ॥ यजु० अ० ४० मं० ५ । सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ॥ यद्यपि विश्वानुर्वनादि शुद्धर्तृर्विद्वाँतान्यसीदत् पितासः । स धामिधादृषिषिच्छमानः प्रयत्यछदर्हरा दधे ॥ ९ ॥ आविवेश ॥ ८ ॥ किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित् कथासीत् । यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ ९ ॥ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ १० ॥ यजु० अ० १७ मं० ५७ । ५८ । १९ ॥ इत्याद्ये संज्ञा यजुषि बहवः सन्ति । तथा सामवेदस्योत्तरार्चिके विंशम् ११ । पश्चिन्वा मूरनो गुयोऽनुग्मा इव धेनवः । ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्रतस्थुषः ॥ ११ ॥ तस्मा द्यौरुत पृथिवी न भियेते न जानतः । अध्वायन्तो सघवन्निन्द्रवाजिनो गव्यं तत्त्वाह्वयामहे ॥ १२ ॥ इत्याद्ययश्च ॥ नासदासीन्नोसदासीत्तदानीं नासीद्रजो नोव्योमापरोयत् । किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥ १३ ॥ इयंदि सृष्टिर्यत आबभूव यदि वादधे यदि वा न । यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो अङ्गवेद यदि वा न वेद ॥ १४ ॥ इत्यन्ता: सामसंज्ञाश्चत्वारो वेदे । अ० ८ ख० ७ व० १७ मं० १ । ७ । यत्परमर्मध्यमं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् । कियतास्कम्भः प्रविवेश तत्र यन्नाविशत् कियत्तद्बभूव ॥ १५ ॥ यस्मिन्नूर्मिरन्तरिक्षं द्यौर्यस्मिन्नध्याहिता । यच्चाग्निश्चन्द्रमाः सूर्य्यावातस्तिष्ठन्त्यार्पिता एकमं सं ब्रह्मिकलयः स्विदेवसः ॥ १६ ॥ अथर्व० का० ५० अनु० ४ मं० ८ । १२ ॥ इत्याद्यो ऽथर्ववेदेऽपि बहवो मन्त्राः सन्ति । यतेषां मन्त्राणां सध्यात्मकेषां चिदर्थः पूर्वं प्रकाशितः शेषं चिदये विधास्य ते ऽग्रतश्चाख्यायते ॥ अणोरणीयान्महतोमहीया-नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम् । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ १ ॥ अथवदस्यर्षमङ्गप्रवयं तथा ऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् । अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्यतं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ २ ॥ यदेवेहतदमुत्र यदमुत्रतदन्विह । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति यइहनानेव पश्यति ॥ ३ ॥ यतो वाचो सर्वभूतान्तरात्मा मनः सूर्यं जुहुधा यः करोति । तमात्मस्थं ये तुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ ४ ॥ नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो वि-

दधाति कामान् । तमात्मस्थं ये ऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ ५ ॥ इति कठवल्ल्युपनिषदि ॥ दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरोह्यजः । अप्राणोह्यमनाः शुभ्रो ऽक्षरात्परतः परः ॥ ६ ॥ यः सर्वज्ञः सर्वविद्यास्यैष महिमा भुवि । दिव्ये ब्रह्मपुरेह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ॥ ७ ॥ इति मुण्डकोपनिषदि । नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् । अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्म्यप्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥ ८ ॥ इति माण्डूक्योपनिषदि ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेदनिहितं गुहायाम् । परमेव्योमन्त्सोऽश्नुते सर्वान्कामान् ब्रह्मणा सह विपश्चितेति ॥ ९ ॥ इति तैत्तिरीयोपनिषदि । यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम् । भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यइति । यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा ॥ अथ यत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पम् । यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यं स भगवः कस्मिन्प्रतिष्ठित इति स्वेमहिम्नि ॥ इति छान्दोग्योपनिषदि । वेदोक्तेशानादिविशेषणप्रतिपादितोऽशोरणीया नित्याद्युपनिषदुक्तविशेषणप्रतिपादितश्च यः परमेश्वरोऽस्ति । स एवाऽऽर्य्यैः सृष्टिमारभ्याद्यपर्य्यन्तं यथावद्विद्वद्भिरुपासितोऽस्तीतिमन्तव्यम् । एवं परब्रह्मविषयप्रकाशकेषु प्रमाणेषु सत्सु यद्यद्भ्रमोत्थमूलरहितमार्य्याणां पूर्वमीश्वरज्ञानं नासीत्पुनः क्रमाज्ज्ञातमिति । तत्किञ्चिद्यथार्हमस्तीति विजानीमः ॥

(इन्द्रं मित्रम्०) इस में चारों वेद शतपथ आदि चारों ब्राह्मण निरुक्त और छः शास्त्र आदि के अनेक प्रमाण हैं कि जिस सद्वस्तु ब्रह्म के इन्द्र ईशान अग्नि आदि वेदोक्त नाम हैं और अशोरणीयान् इत्यादि उपनिषदों के विशेषणों से जिस का प्रतिपादन किया है उसी की उपासना आर्य्य लोग सदा से करते आये हैं इन मंत्रों में से जिन का अर्थ भूमिका में नहीं किया है उन का आगे वेदभाष्य में किया जायगा और कोई २ आर्य्य लोग किंवा यूरोप आदि देशों में रहनेवाले अंगरेज कहते हैं कि प्राचीन आर्य्य लोग अनेक देवताओं और भूतों की पूजा करते थे यह उन का कहना व्यर्थ है क्योंकि वेदों और उन के प्राचीन व्याख्यानों में अग्नि आदि नामों से उपासना के लिये एक परमेश्वर का ही प्रकरण किया है जिस की उपासना आर्य्य लोग करते थे इससे पूर्वोक्त शंका किसी प्रकार से नहीं आसकती ॥

॥ भाष्यम् ॥

किं च हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्यत्र मन्त्रव्याख्यानावसरे इयं मन्त्रोऽर्वाचीनैरुक्तं छन्दश्चेति शाटायनदेशीयत्वेनैर्भट्टयोषणूलरैः लक्षीयसंस्कृतसाहित्याख्ये यन्त्र यत्प्रस्तिपये यदुक्तं तन्न संगच्छते । यच्च वेदानां द्वौ भागावेषश्छन्दो द्वितीयोमन्त्रश्च तत्र यत्स्वाध्यायाख्यं मिथानं परबुद्धिप्रेरणाजन्यं स्वकल्पनया रचनामात्रं यद्वाज्ञानिनो मुखादुत्पन्नमस्मिन्सरदीदृशं यदुक्तं तच्छन्दश्चेति विज्ञेयम् । तस्योत्पत्तिसमयश्च एकविंशच्छतानि वर्षाण्यधिकानि व्यतीतानि । तथैकोनविंशच्छतानि वर्षाणि मन्त्रोत्पत्तौ चेत्यनुमानं तेषामस्ति । तच्च तैलङ्गानि । प्रमाणानि ऋग्भिः पूर्वमिन्द्रेषिरीड्यो भूतस्येत्यादीनि ज्ञातव्यानि । तद्विषयव्यवस्थास्ति । क्रमशः । हिरण्यगर्भशब्दस्याथैवादात् । अत्र प्रमाणानि । ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेवैऽयुतश्च हिरण्यम् । श० कां० ६ अ० ७ ॥ वैश्वकिंशारदमयस्तैलङ्गास्तथलि शाकलाद्या प्रमाणतोऽर्वाचीनं ज्योतिरुच्यते । ऋ० अ० १२ खं० २५ ॥ यज्ञो वै हिरण्यम् । यं० यं० ७ अ० ३ । ज्योतिरेवायं पुरुषइत्यात्मज्योतिः । श० कां० १४ अ० ७ । ज्योतिरिन्द्राणी । श० कां० १० अ० ४ । यथाशब्दः । ज्योतिर्विज्ञानं यस्य स हिरण्यगर्भः । एवं च ज्योतिर्हिरण्यं प्रधानो ज्योतिरयुतं योगो ज्योतिरादित्यादयः केचाः प्रमाणकालोलाश्च एवः तत्कीर्तिर्धन्यवादश्च ज्योतिरात्मा जीवश्च ज्योतिरिन्द्रः सूर्योऽग्निश्चैतस्मिन्हिरण्याख्ये वर्षे वासश्चर्यं यस्य स हिरण्यगर्भः परमेश्वरः । अतो हिरण्यगर्भशब्दप्रयोगाद्वेदानामनुनसत्वं सनातनत्वं तु निश्चीयते न नवीनत्वं च । अस्मात्कारणादयमेतत्सं हिरण्यगर्भशब्दप्रयोगात्तन्त्रस्यानवीनत्वं तु दोषितं भवति । किं तस्य प्राचीनत्वे किमपि प्रमाणं नोपलभ्यत इति । तद्वद् अयं भूलमेव विज्ञेयम् । यद्यपि तन्त्रस्यानवीनत्वे बलिः पूर्वमित्यादिकारणं तदपि नादूषणमेव । शृणु । ईश्वरश्च विशालबुद्धित्वात् । ईश्वरोहि चीन्कालान् जानाति । भूतभविष्यद्वर्तमानकालस्थैर्मन्त्रदृष्टृभिर्मनुष्यैर्मन्त्रैः प्राणैस्तत्कैश्चर्षिभिरहमेवेदं ब्रह्मवै भवामि भविष्यामि चेति शिष्टित्वेऽनुमानित्यदोषः ॥ अन्यच्च । ये वेदादिशास्त्राण्यधीत्य शिष्टेभ्यो भूत्वा ऽध्यापयन्ति ते प्राचीनाः । ये चाधीयते ते नवीनाः । तैर्ऋषिभिरग्निः परमेश्वरश्चेदमुक्तवानित्यदोषश्च ॥

॥ भाषार्थ ॥

इसी विषय में डाक्टर मोक्षमूलर साहेब ने अपने बनाये संस्कृत साहित्य ग्रंथ में ऐसा लिखा है कि आर्य्य लोगों को क्रम से अर्थात् बहुत काल के पीछे ईश्वर का ज्ञान हुआ था और वेदों के प्राचीन होने में एक भी प्रमाण नहीं मिलता किंतु उन के नवीन होने में तो अनेक प्रमाण पाये जाते हैं इस में एक तो हिरण्यगर्भ शब्द का प्रमाण दिया है कि छन्दोभाग से मंत्रभाग वेद सौ वर्ष पीछे बना है और दूसरा यह है कि वेदों में दो भाग हैं एक छन्द और दूसरा मंत्र उन में से छन्दोभाग ऐसा है जो सामान्य अर्थ के साथ संबंध रखता है और दूसरे की प्रेरणा से प्रकाशित हुआ मालूम पड़ता है कि जिस की उत्पत्ति बनाने वाले की प्रेरणा से नहीं हो सकी और उस में कथन इस प्रकार का है जैसे अज्ञानी के मुख से अकस्मात् वचन निकला हो उस की उत्पत्ति में (३१००) इकतीस सौ वर्ष व्यतीत हुए हैं और मंत्रभाग की उत्पत्ति में (२९००) उनतीस सौ वर्ष हुए हैं उसमें (अग्निः पूर्वेभिः०) इस मंत्र का भी प्रमाण दिया है सो उन का यह कहना ठीक नहीं हो सकता क्योंकि उन्होंने (हिरण्यगर्भः०) और अग्निः पूर्वेभिः० इन दोनों मंत्रों का अर्थ यथावत् नहीं जाना है तथा मालूम होता है कि उन को हिरण्यगर्भ शब्द नवीन जान पड़ा होगा इस विचार से कि हिरण्य नाम है सोने का वह सृष्टि से बहुत पीछे उत्पन्न हुआ है अर्थात् मनुष्यों की उत्पत्ति राजा और प्रजा के प्रबंध होने के उपरान्त पृथिवी में से निकाला गया है सो यह बात भी उन की ठीक नहीं हो सकती क्योंकि इस शब्द का अर्थ यह है कि ज्योति कहते हैं विज्ञान को सो जिसके गर्भ अर्थात् स्वरूप में है ज्योति बहुत अर्थात् मोक्ष है सामर्थ्य में जिस के और ज्योति जो प्रकाश स्वरूप सूर्य्यादिलोक जिस के गर्भ में हैं तथा ज्योति जो जीवात्मा जिस के गर्भ अर्थात् सामर्थ्य में है तथा यशः सत्कीर्त्ति जो प्रत्यक्षादि जिस के स्वरूप में है इसी प्रकार ज्योति इन्द्र अर्थात् सूर्य्य वायु और अग्नि ये सब जिस के सामर्थ्य में हैं ऐसा जो एक परमेश्वर है उसी को हिरण्यगर्भ कहते हैं इस हिरण्यगर्भ शब्द के प्रयोग से वेदों का उत्तम पन और सनातन पन जो यथावत् सिद्ध होता है परन्तु इस से उन का नवीन पन सिद्ध कभी नहीं हो सकता इससे डाक्टर मोक्षमूलर साहेब का कहना जो वेदों के नवीन होने के विषय में है सो सत्य नहीं है और जो उन्होंने (अग्निः पूर्वेभिः०) इस का प्रमाण वेदों के नवीन होने में दिया है सो भी अन्यथा है क्योंकि इस मंत्र में वेदों के कर्ता त्रिकाल दर्शी ईश्वर ने भूत भविष्यत वर्त्तमान तीनों कालों के व्यवहारों को यथावत् जान के कहा है कि वेदों को पढ़ के जो विद्वान् हो चुके हैं वा जो पढ़ते हैं वे प्राचीन और नवीन ऋषि लोग मेरी स्तुति करें तथा ऋषि नाम मंत्र ब्राह्मण और तर्क का भी है इन से भी मेरी स्तुति करनी योग्य है इसी अपेक्षा से ईश्वर ने इस

अंश का प्रयोग किया है इसमें वेदों का सनातन एवं नित्य कहना ४० तो सिद्ध होता है किन्तु इस वेदमंत्रों में वेदों का नवीन होना किसी प्रकार से सिद्ध नहीं हो सकता इसी हेतु से भाष्यकार मोक्षमूलर आदिक का कथन ठीक नहीं ।

॥ भाष्यम् ॥

अथ निरुक्तोपि प्रमाणम् । तत्प्रकृतीतरद्वौकाराद्यात्मिकायं मन्त्रार्थाभ्यूहोऽभ्यूढोपि सुनिरीक्षितो भवेत् । पृथङ्नि[illegible] प्रकरणस्य मन्त्रं तु निर्वक्तव्या यद्धेतु प्रत्यक्षमन्त्रदर्शनयोर्वा तदेवार्ष्यं चित्तु तु खलु वेदितृषु भूयो विद्याः प्रशस्यो भवतीत्युक्तं पुरस्तात्तदनुज्ञा वा ऋषिर्दृक्षाम्यस्तु देवानल्पश्रुतो न ऋषिर्मन्त्रविष्यतीति तेभ्य एतं तदृषिं प्रायच्छन् मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढं तस्माद्यदेवं किं चानुपपन्नं तदार्षं सद्भवति । नि० अ०१३ खं० १२ । सत्यार्थः । (तत्प्रकृति०) तत्र वेदसङ्ग्रहस्य पदवाक्याक्षरसमुदाया नामितरत् परस्परं विशेषलिङ्गलक्षणसामान्यवृत्तौ वर्त्तमानानां संबाधामर्थज्ञानचिन्ता भवति । योयं खल्वस्य मन्त्रस्यार्थो भविष्यतीत्यभ्यूहो वृद्धा साधिसुखेनोहेत् विशेषलक्षणार्थलक्षणौ मनुष्येण कर्त्तव्यः । नैतेभ्यतितः प्रकरणमात्रेणैव तदीयानेव तु पृथक् २ निर्वक्तव्याः । किंतु प्रकरणानुकूलतया पूर्वापरसंबन्धेनैव निरुक्तं कर्त्तव्यम् । किंच नैतेषु मन्त्रेष्वनृषेरसमयोऽनुद्धान्तारब्धस्य विदुषः प्रत्यर्थं ज्ञानं भवति । न यावद्धा पारोवर्य्यविद्यसुकृतप्रत्यक्षज्ञानार्थेषु मनुष्येषु भूयो विद्याः प्रशस्यो प्रत्युक्तो विद्वान् भवति । यत्तावदभ्यङ्गः पुरस्तात् वेदार्थे यदि मन्त्रमर्हतीत्युक्तं विद्वांसमिति । ऋचेति ह्यनुषङ्गात् । पुरस्तात्कदाचिन्मन्त्रार्थदृष्टिं मन्त्रार्थदृष्टप्रत्यक्षस्यतीषु यत्तु देवान् विदुषोऽनृषेः पृच्छतो वेदमन्त्रार्थे ऋषिर्भविष्यतीति । तेभ्यः उत्पन्नविद्यानेव देवार्षेर्वेदार्थे चेतं तदृषिं ते प्रायच्छन् दत्तवन्तो ददतेश युष्मासु ऋषिर्दृक्षाम्यतीत्युपक्रमवन्तः । कथंभूतं तं तमृषे मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढं । योयमर्थोऽनुज्ञानमात्रम् । यतः हि विद्वांसः ऋषिवदनृषयो विद्याप्रायाः पुरुषोऽर्हन्ति वेदार्थेऽभ्यूहते प्रकाशयते तदेवार्षमृषिप्रोक्तं वेदव्याख्यानं भवतीति मन्तव्यम् । किंच यदल्पविद्येनाल्पश्रुतेन पदवाक्यिना मनुष्येण व्याख्यायते तदनार्षमनृषं भवति । नैतत्केनाप्यादर्तव्यमिति । कुतः । लक्ष्यलक्षणयुक्तत्वात् । तदादरेण मनुष्याणामप्रमाणतेत्येति । अतः पूर्वोक्तैः साधनैः प्रमाणैश्चान्यैश्चैतैर्ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायां सूत्रितैर्वेदे तावत्त्वेऽपि सति

भिश्चत्रिकालस्थैरग्निः परमेश्वर एवेड्योऽस्ति । नैवास्माद्भिन्नः कश्चित्पदार्थः कस्यापि मनुष्यस्येड्यः स्तोतव्य उपास्योऽस्तीति निश्चयः । यमग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुतेत्यस्य मन्त्रस्यार्थसंगतेर्नैव वेदेष्वर्वाचीनाश्यः कश्चिद् दोषो भवितुमर्हतीति ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस में विचारना चाहिये कि वेदों के अर्थ को यथावत् बिना विचारे उन के अर्थ में किसी मनुष्य को हठ से साहस करना उचित नहीं क्योंकि जो वेद सब विद्याओं से युक्त हैं अर्थात् उन में जितने मंत्र और पद हैं वे सब संपूर्ण सत्यविद्याओं के प्रकाश करने वाले हैं और ईश्वरने वेदों का व्याख्यान भी वेदों से ही कर रक्खा है क्योंकि उन के शब्द धात्वर्थ के साथ योग रखते हैं इस में निरुक्त का भी प्रमाण है जैसा कि यास्क मुनि ने कहा है (तत्प्रकृतीत०) इत्यादि वेदों के व्याख्यान करने के विषय में ऐसा समझना कि जबतक सत्य प्रमाण युक्त वेदों के शब्दों का पूर्वापर प्रकरणों, व्याकरण आदि वेदांगों शतपथ आदि ब्राह्मणों, पूर्वमीमांसा आदि शास्त्रों, और शाखान्तरों का यथावत् बोध न हो और परमेश्वर का अनुग्रह उत्तम विद्वानों की शिक्षा उन के संग से पक्षपात छोड़ के आत्मा की शुद्धि न हो तथा महर्षि लोगों के किये व्याख्यानों को न देखे तबतक वेदों के अर्थ का यथावत् प्रकाश मनुष्य के हृदय में नहीं होता । इस लिये सब आर्य्य विद्वानों का सिद्धांत है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से युक्त जो तर्क है वही मनुष्यों के लिये ऋषि है इससे यह सिद्ध होता है कि जो सायनाचार्य्य और महीधरादि अल्प बुद्धि लोगों के झूठे व्याख्यानों को देख के आजकाल के आर्य्याभास और यूरोपदेश के निवासी लोग जो वेदों के ऊपर अपनी २ देशभाषाओं में व्याख्यान करते हैं वे ठीक २ नहीं हैं और उन अनर्थ युक्त व्याख्यानों के मानने से मनुष्यों को अत्यंत दुःख प्राप्त होता है इससे बुद्धिमानों को उन व्याख्यानों का प्रमाण करना योग्य नहीं तर्क का नाम ऋषि होने से सब आर्य्य लोगों का सिद्धान्त है कि सब कालों में अग्नि जो परमेश्वर है वही उपासना करने के योग्य है ॥

॥ भाष्यम् ॥

अन्यच्च । प्राणा वा ऋषयोऽदेभ्यासः । शे० पं० २ अ० ४ । पूर्वेभिः पूर्वकालाभवद्भास्यैः कारणास्थैः प्राणैः कार्य्यद्रव्यस्थैर्नूतनैश्चर्षिभिः सहैव समाधियोगेन सर्वार्षेर्बुद्धिभिः परमेश्वर एवेड्योऽस्यनेन योगो भवतीति मन्तव्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

जगत् के कारण प्रकृति में जो प्राण हैं उन को प्राचीन और उस के

कार्य में जो प्राण हैं उन को नवीन कहते हैं इस लिये सब विद्वानों को उन्हीं ऋषियों के साथ योगाभ्यास से अग्नि नामक परमेश्वर की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी योग्य है इतने लेखों समझना चाहिये कि मक्ष मोक्षमूलर साहेब आदि ने इस मंत्र का अर्थ ठीक २ नहीं जाना है ॥

॥ भाष्यम् ॥

यच्चोक्तं छन्दोमन्त्रयोर्वेदोक्तीति तदप्य संगतम्। कुतः । छन्दोवेदनिगममन्त्रश्रुतीनां पर्य्यायवाचकत्वात्। तच्च छन्दोऽनेकार्थत्वाद्वेदार्थेन । वैदिकानां गायत्र्यादिछन्दसां लौकिकानामार्य्यादीनां च वाचकम् । कुचित्तस्यासन्नस्यापि । यथाहुर्यास्काचार्य्याः । मन्त्रा मननाच्छन्दांसिच्छादनात्स्तोमः स्तवनाद्यजुर्यजतेः साम्नश्च मितभूषा । वि० भा० १ खं० ५७ ॥ अविद्यादि दुःखानां निवारणान्मुक्तैराच्छादनाच्छन्दोवेदः । तथा छन्देरादेश्चछः शत्यौणादिके सूत्रम् । चदि आल्हादने दीप्तौ चेत्यस्माद्धातोरसुन्प्रत्यये परे चकारस्य छकारादेशे च कृते छन्दस् इति शब्दो भवति । वेदाध्ययनेन सर्वविद्याप्राप्तेर्मनुष्य आल्हादी भवति सर्वार्थज्ञासा चास्माच्छन्दोवेदः । छन्दांसि वै देवेभ्यो लोकाञ्छन्दोभिरावृण्वन्यज्ञं यजुर्भिः शत० कां० ८ अ० २ । मनोवै देवता छन्दांसि । श० कां० ८ ब्रा० ३ । अस्यायमभिप्रायः । मचि गुप्तभाषणे । अस्माद्धुलश्चेति डूचेऽजुत्पत्तौ कृते मन्त्रशब्दस्य सिद्धिर्जायते । गुप्तानां पदार्थानां ज्ञाना यस्मिन्कर्मणि समन्तोवेदः । तदवयवानामनेकार्थानामपि मन्त्रसंज्ञा भवति तेषां तदर्थवत्त्वात् । तथा मनज्ञाने । अस्माद्धातोः सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन् इत्युणादिसूत्रेण ष्ट्रन्प्रत्यये कृते मन्त्रशब्दो व्युत्पद्यते । मन्यन्ते ज्ञायन्ते सर्वैर्मनुष्यैः सत्या; पदार्थो येन यस्मिन्वा समन्तोवेदः । तदवयवा अग्निमीळेपुरोहितमित्यादयो मंत्रा गृह्यन्ते । यानि गायत्र्यादीनि छन्दांसि तदन्विता मन्त्राः सर्वार्थोपदेशकत्वाद्वेदशब्देन गृह्यन्ते । अतश्च छन्दांस्येवदेवाः । यथेतराः सर्वक्रियाविद्यानि बंधनास्तेश्छन्दोभिरेव वेदैर्वेदश्छन्दोभ्यश्चेदं सर्वं विश्वं वयुनं कर्मादिचेष्टरूपं सद्धं सद्धं कृतमिति विज्ञेयम् । येन छन्दसा छन्दोभिर्वा सर्वा विद्याः संवृता आवृताः सत्यश्च स्वीकृता भवन्ति । तस्माच्छन्दांसि वेदाश्चेतनान्मन्त्राश्चेति पर्य्यायौ । यत्र श्रुतिस्तु वेदो विधेय इति अनुभूतौ । स्त्यपि निगमो भवतीति निरुक्ते । श्रुतिर्वेदोमन्त्रश्च निगमो वेदोमन्त्रश्चेति पर्य्यायोक्तः । श्रूयन्ते वा सकला विद्या यया सा श्रुतिर्वेदो मन्त्रा-

वयमुतये: । तथा निगच्छन्ति नितरां जानन्ति प्राप्नुवन्ति वा सर्वा विद्या यस्मिन् स निगमो वेदोमंत्रश्चेति ॥

॥ भाषार्थ ॥

जैसे छन्द और मंत्र ये दोनों शब्द एकार्थवाची अर्थात् संहिता भाग के नाम हैं वैसेही निगम और श्रुति भी वेदों के नाम हैं भेद होने का कारण केवल अर्थही है वेदों का नाम छन्द इसलिये रक्खा है कि ये स्वतंत्र प्रमाण और सत्यविद्याओं से परिपूर्ण हैं तथा उन का मंत्र नाम इस लिये है कि उन से सत्यविद्याओं का ज्ञान होता है और श्रुति इस लिये कहते हैं कि उन के पढ़ने अभ्यास करने और सुनने से सब सत्यविद्याओं को मनुष्यलोग जान सकें हैं ऐसेही जिस करके सब पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो उस को निगम कहते हैं इससे ये चारों शब्द पर्याय अर्थात् एक अर्थ के वाची हैं ऐसाही जानना चाहिये ॥

॥ भाष्यम् ॥

तथा व्याकरणेऽपि । मंत्रे घसह्वरणश्वृदृहाङ्क्वक्रृगमिजनिभ्योलेः ॥ १ ॥ अष्टाध्याय्याम् । अ० २ पा० ४ । छन्दसि लुङ् लङ् लिटः ॥ २ ॥ अ० ३ पा० ४ । बाधपूर्वस्य निगमे ॥ ३ ॥ अ० ६ पा० ४ ॥ अथापिच्छन्दो मन्त्रनिगमाः पर्य्यायवाचिनः सन्ति । यत्र छन्दआदीनां पर्य्यायसिद्धयेयं भेदं ब्रूते तद्वचनमप्रमाणमेवास्तीति विज्ञायते ॥

॥ भाषार्थ ॥

ऐसेही अष्टाध्यायी व्याकरण में भी छन्द मंत्र और निगम ये तीनों नाम वेदों हीके हैं इसलिये जो लोग इन में भेद मानते हैं उन का कथन प्रमाण करने के योग्य नहीं ॥

इति वेदविषयविचारः ॥

अथ वेदसंज्ञाविचारः ।

अथ कोयं वेदो नाम मन्त्रभागसंहितेत्याह । किंच मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयमिति कात्यायनोक्तेर्ब्राह्मणभागस्यापि वेदसंज्ञा कुतो न स्वीक्रियतइति । मैवं वाच्यम् । न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा भवितुमर्हति । कुतः । पुराणेतिहाससंज्ञकत्वाद्वेदव्याख्यानादृषिभिरुक्तत्वादनीश्वरोक्तत्वात्कात्यायनभिन्नैरृषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृतत्वान्मनुष्यबुद्धिरचितत्वाच्चेति ॥

अथ वेदसंज्ञाविचारः ।

प्र० वेद किन का नाम है उ० मंत्र संहिताओं का प० ऋषि कात्यायन ऋषि ने कहा है कि मंत्र और ब्राह्मण ग्रंथों का नाम वेद है फिर ब्राह्मण भाग को भी वेदों में ग्रहण आप लोग क्यों नहीं करते हैं उ० ब्राह्मण ग्रंथ वेद नहीं हो सकते क्योंकि उन्हीं का नाम इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी, भी है वे ईश्वरोक्त नहीं हैं किंतु महर्षि लोगों के किये ग्रंथ हैं व्याख्यान हैं एक कात्यायन को छोड़ के किसी अन्य ऋषि ने उन को वेद संज्ञा में साक्षी नहीं दी है और वे देहधारी पुरुषों से बनाये हैं इन हेतुओं से ब्राह्मण ग्रंथों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती और मंत्रसंहिताओं का वेद नाम इसलिये है कि ईश्वर रचित और सब विद्याओं का मूल है ॥

॥ भाष्यम् ॥

यथा ब्राह्मणग्रन्थेषु मनुष्याणां नामलेख्यपूर्वकाश्चोपदिष्टा इतिहासाः सन्ति नचैवं मन्त्रभागे । किंचयोः । आयुर्वं जमदग्नेः कश्यपस्य चायुषम् । यद्देवेषु चायुषं तन्नो अस्तु चायुषम् ॥ १ ॥ यजुः० अ० ३ मं० ६२ । इत्यादीनि वचनान्यृषीणां नामाङ्कितानि यजुर्वेदादिष्वपि दृश्यन्ते । अनेनेतिहासादिविषये मंत्रब्राह्मणयोस्तुल्यत्वाद्दृश्यते पुनर्ब्राह्मणानामपि वेदसंज्ञा कुतो न मन्यते । मैवंयुक्तम् । नैवात्र जमदग्निकश्यपौ देहधारिणौ मनुष्यौ व्याख्यातः । अत्र प्रमाणम् । चक्षुर्वं जमदग्निर्इन्द्रियदेवेन जगत्प्रकाशकत्वेन श्रुते तस्माच्चक्षुर्जमदग्निर्देहिनः । श० कां० ८ अ० १ । कश्यपो वै कूर्मः प्राणो वै कूर्मः श० कां० ७ अ० ५ । अनेन प्राणस्य कूर्मः कश्यपश्च संज्ञास्ति । शरीरस्य नाभौ तस्य कूर्माकारादस्थितेः । अनेन मन्त्रेणेश्वर एव प्रार्थ्यते तद्यथा । हे जगदीश्वर भवत्कृपया नोऽस्माकं जमदग्निसंज्ञकस्य चक्षुषः कश्यपाख्यस्य प्राणस्य च चायुर्वं चिरुगमयोश्च चीणि शतानि वर्षाणि यावतः इदायुरस्तु । इन्द्रियोपलक्षणमिन्द्रियाणां प्राणो मन आदीनां च (यद्देवेषु चायुषम्) अत्र प्रमाणम् । विद्वांसोहि देवाः । श० कां० ३ अ० ७ । अनेन विदुषां देवसंज्ञास्ति । देवेषु विद्वत्सु यद्विद्याप्रभावयुक्तं चिरुगमायुर्वर्षाणि (तन्नो अस्तु चायुषम्) तत्सोन्द्रियाणां समस्तानां नोऽस्माकं पूर्णोत्तमं सुखयुक्तं चिरुगमायुरस्तु भवेत् । येन सुखयुक्तायुषा वयं दीर्घं जीवेम । अनेनान्यदप्युपदिश्यते । ब्रह्मचर्यादिसुनियमैर्मनुष्यैरेतच्चिरुगमायुः वर्तुं शक्यमस्तीति गम्यते । अतोऽग्निविद्यायज्ञैश्चमदग्न्यादिभिः श्रेष्ठैर्यमार्थं

वेदेषु प्रकाश्यते । अतो नात्र मन्त्रभागेतिहासलेशोऽप्यस्तीत्यवगन्तव्यम् । अतो यच्च सायणाचार्य्यादिभिर्वेदप्रकाशादिषु यच्च कुत्रेति इतिहासवर्णनं कृतं तद्भ्रममूलमस्तीति मन्तव्यम्

॥ भाषार्थ ॥

प्र० जैसे ऐतरेय आदि ब्राह्मण ग्रंथों में याज्ञवल्क्य मैत्रेयी गार्गी और जनक आदि के इतिहास लिखे हैं वैसे ही (आयुषं जमदग्नेः०) इत्यादि वेदों में भी पाये जाते हैं इससे मंत्र और ब्राह्मणभाग ये दोनों बराबर होते हैं फिर ब्राह्मणग्रंथों को वेदों में क्यों नहीं मानते हो उ० ऐसा भ्रम मत करो क्योंकि जमदग्नि और कश्यप ये नाम देहधारी मनुष्यों के नहीं हैं इस का प्रमाण शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि चक्षु का नाम जमदग्नि और प्राण का नाम कश्यप है इस कारण से यहां प्राण से अन्तःकरण और आंख से सब इन्द्रियों का ग्रहण करना चाहिये अर्थात् जिन से जगत् के सब जीव बाहर और भीतर देखते हैं (आयुषं ज०) सो इस मंत्र से ईश्वर की प्रार्थना करनी चाहिये कि हे जगदीश्वर आप के अनुग्रह से हमारे प्राण आदि अंतःकरण और आंख आदि सब इन्द्रियों को (३००) तीन सौ वर्ष तक उमर बनी रहे (यद्देवेषु०) सो जैसी विद्वानों के बीच में विद्यादि शुभगुण और आनन्दयुक्त उमर होती है (तन्नो अस्तु०) वैसी ही हम लोगों को भी हो तथा (आयुषं जम दग्नेः०) इत्यादि उपदेश से यह भी जाना जाता है कि मनुष्य ब्रह्मचर्य्यादि उत्तम नियमों से त्रिगुण चतुर्गुण आयु करसकता है अर्थात् (४००) चार सौ वर्ष तक भी सुख पूर्वक जी सकता है इससे यह सिद्ध हुआ कि वेदों में सत्य अर्थ के बोधक शब्दों से सत्यविद्याओं का प्रकाश किया है लौकिक इतिहासों का नहीं इससे जो सायणाचार्य्यादि लोगों ने अपनी २ बनाई टीकाओं में वेदों में जहां तहां इतिहास वर्णन किये हैं वे सब मिथ्या हैं ॥

॥ भाष्यम् ॥

तथा ब्राह्मणग्रन्थानामेव पुराणेतिहासादिनामास्ति न ब्रह्मवैवर्त्तश्रीमद्भागवतादीनां चेति निश्चीयते । किंच भोः । ब्रह्मयज्ञविधाने यच्च क्वचिद्ब्राह्मणसूचग्रन्थेषु । यद्ब्राह्मणानीतिहासान्पुराणानि कल्पान् गाथानाराशंसीरित्यादीनि वचनानि दृश्यन्ते । यथा मूलमथर्ववेदेऽस्ति । स बृहतीं दिशमनुव्यचलत् । तमितिहासश्च पुराणं च गाथाश्च नाराशंसीश्चानुव्यचलन् । इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद ॥ १ ॥ अथर्व० कां० १५ । प्रपा० ३० ।

भाग० १ । यतो ब्राह्मणग्रन्थेभ्यो भिन्नाभागवतादयो ग्रन्था इतिहासादि संज्ञया श्रुतो न गृह्यन्ते । मैवं शक्यि । यतेः प्रमाणैर्ब्राह्मणग्रन्थानामेव ग्रहणं जायते न श्रीमद्भागवतादीनामिति । श्रुतः । ब्राह्मणग्रन्थेष्वितिहासादीनामन्तर्भावात् । तत्र देवासुराः संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासा ब्राह्मणाः । स वै देवसेभ्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् । छान्दोग्योप० प्रपा० ६ । आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत् किंचनमिषत् । इत्येतरेयारण्यको-पनि० अ० ५ खं० ५ । आपोहवा इदमग्रे सलिलमेव स । श० कां० १५ अ० १ । इदं वा अग्रे नैव किंचिदासीत् । इत्यादीनि जगतः पूर्वावस्था कथनपूर्वकाणि वचनानि ब्राह्मणान्तर्गतान्येव पुराणानि ब्राह्मणानि । कल्पा अन्तार्थसामर्थ्यप्रकाशकाः । तद्यथा । इषेत्वोर्जेत्वेति वृष्टौ तदाह । यदा-हेषेत्वेत्यूर्जेत्वेति यो वृष्टुर्ध्वंसो जायते तस्यै तदाह । सहितावै देवानां प्रसविता सवितृप्रसूताः । श० कां० १ अ० ८ । इत्यादयो ब्राह्मणाः । गाथा याज्ञवल्क्यजनकसंवादो यथा शतपथब्राह्मणे गार्गी मैत्रेय्यादीनां परस्परं प्रश्नोत्तरकथनयुक्ताः सन्तीति । नाराशंस्यश्च । अथाहुर्योऽस्काचार्य्यः । नराशंसो यत्र इति कथश्चो नरा अस्मिन्नासीना: शंसन्त्यग्निरिति शाङ्ख-पुराणिनैरः प्रशस्यो भवति । नि० अ० ८ खं० ६ । नृणां यत्र प्रशंसा नृभिर्यच्च प्रशस्यते ता ब्राह्मणनिरुक्तादन्तर्गताः तथा नाराशंस्यो ब्राह्मणानीतोऽन्या इति किंच तेषु तेषु वचनेष्वपीदमेव विज्ञायते यत् यस्माद्ब्राह्मणानीति संज्ञापदमितिहासादिस्तेषां संज्ञेति । तद्यथा । ब्राह्मणान्येवेतिहासान् जानीयात् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीश्चेति ।

॥ भाषार्थ ॥

और इस हेतु से ब्राह्मण ग्रंथों का ही इतिहासादि नाम जानना चाहिये श्रीमद्भागवतादि का नहीं । प० जहां २ ब्राह्मण और सूत्र ग्रंथों में (यद्ब्राह्मण०) इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी, इत्यादि वचन देखने में आते हैं तथा अथर्व वेद में भी इतिहास पुराणादि नामों का लेख है इस हेतु से ब्राह्मण ग्रंथों से भिन्न इस समय श्रीमद्भागवत महाभारतादि का ग्रहण इतिहास पुराणादि नामों से क्यों नहीं करते हो उ० इन के ग्रहण में कोई भी प्रमाण नहीं है क्योंकि इन में मतों के परस्पर विरोध की लड़ाई आदि की अशुद्ध मिथ्या कथा अपने २ मत के अनुसार लोगों ने लिख रक्खी हैं इससे इतिहास और पुराणादि नामों से इन का ग्रहण करना किसी मनुष्य को उचित नहीं जो ब्राह्मण ग्रंथों में (देवासुराः संयत्ता आसन्) अर्थात् देव

विद्वान् और असुर मूर्ख ये दोनों युद्ध करने को तत्पर हुए थे इत्यादि कथाओं का नाम इतिहास है (सदैवमो०) अर्थात् जिस में जगत् की उत्पत्ति आदि का वर्णन है उस ब्राह्मण भाग का नाम पुराण है (इषेत्वोर्जेत्वेति दृष्टि०) जो वेद मंत्रों के अर्थ अर्थात् जिन में वृक्षों के सामर्थ्य का कथन किया है उन का नाम कल्प है इसी प्रकार जैसे शतपथ ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य जनक गार्गी मैत्रेयी आदि की कथाओं का नाम गाथा है और जिन में नर अर्थात् मनुष्य लोगों ने ईश्वर धर्म आदि पदार्थ विद्वानों और मनुष्यों की प्रशंसा की है उन को नाराशंसी कहते हैं (ब्राह्मणानीतिहासान्०) इस वचन में ब्राह्मणानि संज्ञा और इतिहासादि संज्ञा है अर्थात् ब्राह्मण ग्रंथों का नाम इतिहास पुराण कल्प गाथा और नाराशंसी है सो ब्राह्मण और निरुक्तादि ग्रंथों में जो २ जैसी २ कथा लिखी हैं उन्हीं का इतिहासादि से ग्रहण करना चाहिये अन्य का नहीं ॥

॥ भाष्यम् ॥

अन्यदप्यत्र प्रमाणमस्ति न्यायदर्शनभाष्ये । वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात् । १ । अ०२ आ०२ सू० ६० । अस्योपरि वात्स्यायनभाष्यम् । प्रमाणशब्दो यथा लोके विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः । अयमभिप्रायः । ब्राह्मणशब्दो लौकिकाश्च न वैदिकाइति । तेषां त्रिविधो विभागो लक्ष्यते । सू० विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात् ॥ २ ॥ अ० २ आ० २ सू० ६१ ॥ अस्योप० वा० भा० । त्रिधा खलु ब्राह्मणवाक्यानि विनियुक्तानि विधिवचनान्यर्थवादवचनान्यनुवचनानीति सर्व । सू० विधिर्विधायकः ॥ ॥ ३ ॥ अ० २ आ० २ सू० ६२ ॥ अस्योप० वा० भा० । यद्वाक्यं विधायकं चोदकं सविधिः । विधिस्तु नियोगोऽनुज्ञा वा यथाग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम इत्यादि । ब्राह्मणवाक्यानामिति शेषः । सू० स्तुतिर्निन्दापरकृतिः पुराकल्पस्यर्थवादः ॥ ४ ॥ अ० २ आ० २ सू० ६३ । अस्योप० वा० भा० । विधेः फलवादलक्षणा या प्रशंसा सा स्तुतिः । संप्रत्ययार्थं स्तूयमानं श्रद्दधीतेति प्रवर्त्तिका च फलश्रवणात्प्रवर्त्तते सर्वजित्या वैदेवाः सर्वमजयन्सर्वस्याप्त्यै सर्वस्य जित्यै सर्वस्यैनाप्नोति सर्वं जयतीत्येवमादि । अनिष्टफलवादो निन्दावर्जनार्थं निन्दितं न समाचरेदिति । स एष वा प्रथमो यज्ञो यज्ञानां यज्ज्योतिष्टोमो यद्येनानिष्ट्वान्ये न यजन्ते गर्त्तेपतत्ययमेतज्जीर्य्यते वा इत्येवमादि । अन्यकर्तृकस्य व्याहतस्य विधेर्वादः परकृतिः । हुत्वावद्यमेवाग्नेयमिघारयन्ति । अथ पृषदाज्यं तदुह्वरकाध्वर्यवः पृषदाज्यमेवाग्नेयमिघारयन्ति । अग्नेः प्राणाः पृषदाज्यं स्तोममित्येवमभिदधतीत्येवमादि । येनेदृश समाचरितो-

विधिः पुराकल्पश्चेति । तत्रानूद्य तेन साहचर्या द्विधिः पदमात्रं वाक्यशेषो-ऽनुवादो यानेवार्थान् प्रतिपादयति तेषामेवेत्यादि । अर्थः । परकृतिः पुराकल्पो अर्थवादा इति । स्तुतिनिन्दाशब्देनाभिसंबन्धाद्विध्याश्रयस्य कस्य कस्य-चिदर्थस्य द्योतनादर्थवादश्चेति ॥

॥ भाषार्थ ॥

ब्राह्मण ग्रंथों की इतिहासादि संज्ञा होने में और भी प्रमाण है जैसे लोक में तीन प्रकार की कथा होती हैं वैसे ब्राह्मण ग्रंथों में भी हैं उन में से एक विधिशब्द है जैसे (देवदत्तो ग्रामं गच्छेत्सुखार्थम्) सुख की लिये देवदत्त गांव को जाय इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथों में भी है (अग्निहोत्रं जुहुया-त्स्वर्गकामः) जिस को सुख की इच्छा हो वह अग्निहोत्रादि यज्ञों को करे दूसरा अर्थवाद है जो कि चार प्रकार का होता है एक स्तुति अर्थात् पदार्थों के गुणों का प्रकाश करना जिससे मनुष्यों की श्रद्धा उत्तम काम करने और गुणों के ग्रहण में हो दूसरी निन्दा अर्थात् बुरे काम करने में दोषों का दिखलाना जिससे उन को छोड़ें न करें तीसरा (परकृतिः) जैसे इस चोर ने बुरा काम किया इससे उस को दंड मिला और साहूकार ने अच्छा काम किया इससे उस की प्रतिष्ठा और उन्नति हुई चौथा (पुराकल्प) अर्थात् जो बात पहिले हो चुकी हो जैसे जनक की सभा में याज्ञवल्क्य गार्गी याज्ञव-ल्क्यादि ने इकट्ठे होके आपस में ब्रह्मोत्तर रीति से संवाद किया था इत्यादि इतिहासों को पुराकल्प कहते हैं ॥

॥ सूत्राणि ॥

सू० विधिर्विधिशेषस्यानुष्ठानमनुवादः ॥ १ ॥ अ० २ आ० २ सू० ६४ ॥ ऋग्भा० आ० भा० । विध्यनुष्ठानं चानुवादो विहितानुवचनं च पूर्वैः पदानुवादो ऽपरो ऽर्थानुवादः । सू० न च स्तुतेर्विहितार्थापत्तिसंभवबाधा-प्राप्तत्वात् ॥ ६ ॥ अ० २ आ० २ सू० ५ ॥ ऋग्भा० आ० भा० । न चत्वार्यपि प्रमाणानि किं तर्हि । यैतिरूपमर्थापत्तिः संभवोऽभाव इत्येतान्यपि प्रमा-णानि । यति द्योतयतीत्यतिर्द्योतकः प्रमाणकर्त्रे प्रमाणकारं पर्य्यायैतिरूपम् । अनेन प्रमाणेनापीतिहासादिनार्थिनोऽर्थान्नेष गृह्णन्तो नान्यादिति ॥

॥ भाषार्थ ॥

धर्म का तीसरा भाग अनुवाद है अर्थात् जिस का पूर्व विधान आदि उसी का स्मरण और कथन करना दोनों को प्रकार का है एक शब्द का और दूसरा अर्थ का जैसे वह विद्वान् जो यहां वह पदानुवाद है जिस पदसे जो अर्थ है उस को अर्थानुवाद कहते हैं जिस की प्रतिष्ठा करने में हेतु

उदाहरण उपनय और निगमन को घटाना हो जैसे परमेश्वर नित्य है यह प्रतिज्ञा है विनाश रहित होने से यह हेतु है आकाश के समान है इस को उदाहरण कहते हैं जैसा आकाश नित्य है वैसा परमेश्वर भी है इस को उपनय कहते हैं और इन चारों का क्रम से उच्चारण करके पक्ष में यथायत् योजना करने को निगमन कहते हैं जैसे परमेश्वर नित्य है विनाश रहित होने से आकाश के समान जैसा आकाश नित्य है वैसा परमेश्वर भी इससे इस में समझ लेना चाहिये कि जिस शब्द और अर्थ का दूसरी बार उच्चारण और विचार हो इस को अनुवाद कहते हैं सो ब्राह्मण पुस्तकों में यथायत् लिखा है इस हेतु से भी ब्राह्मण पुस्तकों का नाम इतिहास आदि जानना चाहिये क्योंकि इन में इतिहास पुराण कल्प गाथा और नाराशंसी ये पांच प्रकार की कथा मन्त्र ठीक २ लिखी हैं और भागवतादि को इतिहासादि नहीं जानना चाहिये क्योंकि उन में मिथ्या कथा बहुत सी लिखी हैं ॥

॥ भाष्यम् ॥

अन्यच्च । ब्राह्मणानि तु वेदव्याख्यानान्येव सन्ति नैव वेदाख्यानीति । कुतः । इषेत्वोर्जेत्वेति यo कां० १ अ० १ । इत्यादीनि मंत्रप्रतीकानि धृत्वा ब्राह्मणेषु वेदानां व्याख्यानकरणात् ॥

॥ भाषार्थ ॥

ब्राह्मण ग्रंथों की वेदों में गणना नहीं हो सकती क्योंकि (इषेत्वोर्जेत्वेति०) इस प्रकार से उन में मंत्रों की प्रतीक धर २ के वेदों का व्याख्यान किया है और मंत्रभाग संहिताओं में ब्राह्मण ग्रंथों की एक भी प्रतीक कहीं नहीं देखने में आती इससे जो ईश्वरोक्त मूल मंत्र अर्थात् चार संहिता हैं वेही वेद हैं ब्राह्मण ग्रंथ नहीं ॥

॥ भाष्यम् ॥

अन्यच्च महाभाष्येपि । केषांशब्दानाम् । लौकिकानां वैदिकानां च । तत्र लौकिकास्तावत् । गौरश्वः पुरुषेहस्तीशकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति । वैदिकाः खल्वपि । शन्नोदेवीरभिष्टये । इषेत्वोर्जेत्वा । अग्निमीळेपुरोहितम् । ऋग्मिश्रायाहि वीतयइति । यदि ब्राह्मणग्रंथानामपि वेदसंज्ञाभीष्टा-भूतर्हि तेषामप्युदाहरणमदात् । अत एव महाभाष्यकारेण मन्त्रभागस्यैव वेदसंज्ञां मत्वा प्रथममंत्रप्रतीकानि वैदिकेषु शब्देषूदाहृतानि । किंतु यानि गौरश्व इत्यादीनि लौकिकोदाहरणानि दत्तानि तानि ब्राह्मणादिग्रन्थेष्वेव घटन्ते । कुतः । तेष्वीदृशशब्दपाठव्यवहारदर्शनात् । द्वितीया ब्राह्मणे । १ । अ० २ पा० ३ । चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि । २ । अ० २ पा० ३ । पुराणप्रोक्तेषु

ब्राह्मणकल्पेषु ॥ ३ ॥ अ० ४ पा० ३ । इत्यष्टाध्याय्यां सूत्राणि । अत्रापि पाणिन्याचार्य्यैर्वेदब्राह्मणयोर्भेदेनैव प्रतिपादितम् । तद्यथा पुराणैः । प्राचीनैर्ब्रह्मादृषिभिः प्रोक्ता ब्राह्मणकल्पग्रन्था वेदव्याख्यानाः सन्ति । अतएवैतेषां पुराणेतिहासवत्संज्ञा कृतास्ति । यदपि छन्दो ब्राह्मणयोर्वेदसंज्ञाभीष्टा भवेत्तर्हि चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसीति छन्दोग्रहणं व्यर्थं स्यात् । कुतः । द्वितीया ब्राह्मणेति ब्राह्मणग्रन्थस्य प्रकृतत्वात् । अतो विज्ञायते न ब्राह्मणग्रन्थानां वेदसंज्ञास्तीति । अतः किं सिद्धम् । ब्रह्मेति ब्राह्मणानां नामास्ति । ब्रह्म प्रमाणम् । ब्रह्म वै ब्राह्मणाः क्षत्रं राजन्याः । श० कां० १३ अ० ४ ॥ समानार्थावेतौ वृषशब्दो वृषन्शब्दश्च ब्रह्मन्शब्दो ब्राह्मणशब्दश्च । इति व्याकरणमहाभाष्ये । अ० ४ पा० १ आ० ४ ॥ चतुर्वेदविद्भिर्ब्रह्मभिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेदव्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानि । अन्यच्च । कात्यायनेनापि ब्रह्मणा वेदेन सहचरितत्वात्सहचारोपाधिं मत्वा ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा संमतेति विज्ञायते । तदपि न सम्यगस्ति । कुतः । तस्य तेनानुक्तत्वादतीन्द्रियैर्ऋषिभिरगृहीतत्वात् । अनेनापि न ब्राह्मणानां वेदसंज्ञा साधितुमर्हतीति । इत्यादिबहुभिः प्रमाणैर्मन्त्राणामेव वेदसंज्ञा न ब्राह्मणग्रन्थानामिति सिद्धम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

ब्राह्मण ग्रंथों की वेद संज्ञा नहीं होने में व्याकरण महाभाष्य का भी प्रमाण है जिस में लोक और वेदों के भिन्न २ उदाहरण दिये हैं जैसे गौरश्वः० इत्यादि लोक के और अग्नेर्देवीरभिष्टय इत्यादि वेदों के हैं किंतु वैदिक उदाहरणों में ब्राह्मणों का एक भी उदाहरण नहीं दिया और गौरश्वः इत्यादि जो लोक के उदाहरण दिये हैं वे सब ब्राह्मण पुस्तकों के हैं क्योंकि उन में ऐसाही पाठ है इसी कारण से ब्राह्मण पुस्तकों की वेद संज्ञा नहीं हो सक्ती और कात्यायन के नाम से जो दोनों की वेद संज्ञा होने में प्रचार है सो सहचार उपाधि लक्षणा से किया हो तो भी नहीं बन सक्ता क्योंकि जैसे किसीने किसी से कहा कि इस लकड़ी को भोजन करादो और दूसरे से इतनेही कहने से तुरंत जान लिया कि लकड़ी जड़ पदार्थ होने से भोजन नहीं कर सक्ती किंतु जिस मनुष्य के हाथ में लकड़ी है उस को भोजन कराना चाहिये इस प्रकार से कहा हो तो भी जानने के योग्य नहीं हो सक्ता क्योंकि इस में कात्य ऋषियों की एक भी साक्षी नहीं है इस से यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म नाम ब्राह्मण का है सो ब्रह्मादि जो वेदों के जानने वाले महर्षि लोग थे उन्हों के बनाये हुए ऐतरेय शतपथ आदि वेदों के व्याख्यान

हैं इसी कारण से उन के किये ग्रंथों का नाम ब्राह्मण हुआ है इससे निश्चय हुआ कि मंत्रभाग कोही वेद संज्ञा है ब्राह्मण ग्रंथों की नहीं ॥

॥ भाष्यम् ॥

किंच भोः । ब्राह्मणग्रंथानामपि वेदवत्प्रामाण्यं कर्तव्यमाहोस्विन्नेति । अत्र ब्रूमः । नैतेषां वेदवत्प्रामाण्यं कर्तुं योग्यमस्ति । कुतः । ईश्वरोक्तत्वाभावात्तदनुकूलतयैव प्रमाणार्हत्वाच्चेति । परंतु सन्ति तानि परतः प्रमाणयितुं योग्यान्येवेति ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० हम यह पूछते हैं कि ब्राह्मण ग्रंथों का भी वेदों के समान प्रमाण करना उचित है वा नहीं उ० ब्राह्मण ग्रंथों का प्रमाण वेदों के तुल्य नहीं हो सकता क्योंकि वे ईश्वरोक्त नहीं हैं परंतु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण के योग्य तो हैं * ॥

॥ इति वेद संज्ञा विचारः ॥

॥ अथ ब्रह्मविद्याविषयः ॥

वेदेषु सर्वविद्याः सन्त्याहोस्विन्नेति ॥ अथोच्यते । सर्वाः सन्ति मूलेद्देशतः । तत्रादिमा ब्रह्मविद्या संक्षेपतः प्रकाश्यते । तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ १ ॥ ऋ० अ० १ अ० ६ व० १५ मं० ५ ॥ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ २ ॥ ऋ० अ० ५ अ० २ व० ७ मं० ५ ॥ अनयोरर्थः । (तमीशानम्) ईष्टेऽसावीशानः सर्वं जगत्कर्ता (जगतस्तस्थुषस्पतिं) जगतो जङ्गमस्य तस्थुषः स्थावरस्य च पतिः स्वामी (धियं जिन्वम्) यो बुद्धेस्तृप्तिकर्ता (अवसे हूमहे वयम्) तमवसे रक्षणाय वयं हूमहे आह्वयामः (पूषा) पुष्टिकर्ता (नः) स एवास्माकं पुष्टिकारकोऽस्ति (यथा वेदसामसद्वृधे) हे परमेश्वर यथा येन प्रकारेण वेदसां विद्यासुवर्णादीनां धनानां वृधे वर्धनाय भवानस्ति तथैव कृपया (रक्षिताऽसत्) रक्षकोऽप्यस्तु । एवं (पायुरदब्धः स्वस्तये) अस्माकं रक्षणेस्वस्तये सर्वसुखाय (अदब्धः) अनलसः सन् पालनकर्ता सदैवास्तु ॥ १ ॥ तद्विष्णोरिति मंत्रस्यार्थो वेदविषयविचारणे विज्ञानकाण्डे गदितस्तत्र द्रष्टव्यः ॥

* इस में इतना भेद है कि जो ब्राह्मण ग्रंथों में कहीं वेद से विरुद्ध हो उस का प्रमाण करना किसी को न चाहिये और ब्राह्मण ग्रंथों से विरोध आवे तो भी वेदों का प्रमाण होता है ॥

॥ भाषार्थ ॥

प्र० वेदों में सब विद्या हैं वा नहीं उ० सब हैं क्योंकि जितनी सत्य विद्या संसार में हैं वे सब वेदों वेही निकली हैं उन में से पहिले मन्त्र विद्या संक्षेप से लिखते हैं (तमीशानं) जो सब जगत् का बनाने वाला है (जगतस्तस्थुषस्पतिं) अर्थात् जगत् जो चेतन और तस्थुष जो जड़ इन दो प्रकार के संसार का जो राजा और पालन करने वाला है (धियं जिन्वमवसे हूमहे वयं) जो मनुष्यों को बुद्धि और आनन्द से तृप्त करने वाला है उस की (अवसे हूमहे वयं) हमलोग आह्वान अर्थात् अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं (पूषानो) क्योंकि वह सब की सब तुष्टियों से पुष्ट करने वाला है (यथा वेदसामसद्वृधे) हे परमेश्वर जैसे आप अपनी कृपा से हमारे सब पदार्थों और सुखों को बढ़ाने वाले हैं वैसेही (रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये) वैसे आप हमारे रक्षक हैं वैसेही सब सुख भी दीजिये ॥ १ ॥ (सहितायां०) इस मंत्र का अर्थ वेदविषय प्रकरण के विज्ञान कांड में अच्छी प्रकार लिख दिया है वहां देख लेना ॥ २ ॥

॥ मन्त्रार्थ ॥

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशोदिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभिसंविवेश ॥ ३ ॥ य० अ० ३२ मं० ११ ॥

(परीत्यभू०) यः परमेश्वरो भूतान्याकाशादीनि परीत्य सर्वेषु नित्यव्याप्य सूर्य्यादीँल्लोकान् परीत्य पूर्वादिदिशः परीत्य अग्नेयादि प्रदिशश्च एतेषु परितः सर्वतः स्थित्वा प्राप्य विदित्वा च । (उपस्थाय प्र०) यः स्वसामर्थ्यमात्मानमात्मनि । यश्च प्रथमानि मुख्यभूतानि जानयति तं परमानन्दस्वरूपं मोक्षाख्यं परमेश्वरं यो जीव आत्मना स्वसामर्थ्येनान्तःकरणेनोपस्थाय समीपं गत्वा भूत्वा विदित्वा चाभिसंविवेश अभिमुखेन सम्यक् प्राप्य स अत्र मोक्षाख्यं सुखमनुभवतीति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(परीत्यभू०) जो परमेश्वर आकाशादि सब भूतों में सदा (परीत्य लोकान्) पृथ्व्यादि सब लोकों में व्याप्त हो रहा है (परीत्य सर्वाः०) इसी प्रकार जो पूर्वादि सब दिशा और आग्नेयादि अवदिशाओं में भी परिपूर्ण हो रहा है अर्थात् जिस की व्यापकता से एक अणु भी खाली नहीं है (उपस्थाय०) जो अपने ही सामर्थ्य का आत्मा है (प्रथमजां) और जो सृष्ट्यादि में सृष्टि को उत्पन्न करने वाला है उस आनन्द स्वरूप परमेश्वर को जो जीवात्मा अपने सामर्थ्य अर्थात् मन से समीपवत् जानता है वही उस को प्राप्त होके (अभि०) सदा मोक्ष सुख को भोगता है ॥ ३ ॥

॥ भाष्यम् ॥

महद्यक्षं भुवनस्य मध्ये तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे ॥ तस्मिंश्छ्रयन्ते य उ के च देवा वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः ॥ ४ ॥ अथर्व० का० १० प्रपा० २३ अनु० ४ मं० ३८ ॥ (महद्यक्षं) यन्महत्सर्वेभ्यो महत्तरं यत्तं सर्वमनुष्यैः पूज्यं (भुवनस्य) सर्वसंसारस्य (मध्ये) परिपूर्णं (तपसि क्रान्तं) विज्ञाने वृद्धं (सलिलस्य) अन्तरिक्षस्य कारणरूपेण कार्य्यस्य प्रलयानन्तरं (पृष्ठे) पश्चात् स्थितमस्ति तदेव ब्रह्मविज्ञेयम् (तस्मिंश्छ्रय०) तस्मिन्ब्रह्मणि ये केचापि देवास्तत्रस्तिंशद्वस्वादयस्ते सर्वे तदाधारेणैव तिष्ठन्ति । कस्य का इव (वृक्षस्य स्कन्धः०) वृक्षस्य स्कन्धे परितः सर्वतोलग्नाः शाखा इव ॥

॥ भाषार्थ ॥

(महद्यक्षं०) यक्ष जो महत् अर्थात् सब से बड़ा और सब का पूज्य है (भुवनस्य म०) जो सब लोकों के बीच में विराजमान और उपासना करने के योग्य है (तपसि क्रान्तं) जो विज्ञानादि गुणों में सब से बड़ा है (सलिलस्य पृष्ठे) सलिल जो अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश है उस का भी आधार और उस में व्यापक तथा जगत् के प्रलय के पीछे भी नित्य निर्विकार रहने वाला है (तस्मिंश्छ्रयन्ते यउ के च देवाः) जिस के आश्रय से वसु आदि पूर्वोक्त तेतीस देव ठहर रहे हैं (वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः) जैसे कि पृथिवी से वृक्ष का प्रथम अंकुर निकल के और वही स्थूल होके सब डालियों का आधार होता है इसी प्रकार सब ब्रह्माण्ड का आधार वही एक परमेश्वर है ॥

॥ भाष्यम् ॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते ॥ २ ॥ न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥ ७ ॥ नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥ ८ ॥ तमिदं निगतं सहः स एषएक एक वृदेक एव ॥ ९ ॥ सर्वेचास्मिन्देवा एकवृतो भवन्ति ॥ १० ॥ अथर्व० का०१३ अनु०४ मं०१६ । १७ । १८ । २० । २१ । ॥ (न द्वितीय०) यतेर्मन्त्रेरिदं विज्ञायते परमेश्वर एक एवास्तीति । नैवातो भिन्नः कश्चिदपि द्वितीयः तृतीयः चतुर्थः । ६ । पंचमः षष्ठः सप्तमः । ७ । अष्टमो नवमो दशमश्चेश्वरो विद्यते । ८ । यतो नवभिर्नकारैर्द्वित्वसंख्यामारभ्य शून्यपर्य्यन्ते नैकमीश्वरं विधायास्माद्विज्ञेश्वराभावस्यातिशयतया निषेधो वेदेषु कृतो ऽस्त्यतो द्वितीयस्योपासनमत्यन्तं निषिध्यते । सर्वानन्त्यार्थमितया प्राप्तः सन् जडं चेतनं च द्विविधं सर्वं जगत् स एव पश्यति नास्य कश्चिद्वि-

ष्ठास्ति । न चार्यं कस्यापि दृश्यो भवितुमर्हति । येनेदं जगद्व्याप्तं तमेव परमेश्वरमिदं सकलं जगदपि (निगतं) निश्चितं ज्ञानमस्ति । व्याप्काद्व्याप्यस्य संयोगसंबन्धत्वात् । (सहः) यतः सर्वं सहते तस्मात्स । सर्वैव सहोस्ति । स खल्वेक एव वर्तते । न कश्चिद्द्वितीयस्तदधिकस्तत्तुल्योवास्ति । एकशब्दस्य विशेषणात् । अतः सजातीय विजातीय स्वगतभेदराहित्यमीश्वरे धर्मेण एव द्वितीयेश्वरस्यात्यन्तनिषेधात् । कस्माद्धेतोरेक एवेत्युक्तत्वात् स सर्वदैक एकवृत् । सकेन चेतनमात्रेण वस्तु नैव वर्तते । पुनरेक एवासहायः सन् यद्यदं सकलं जगद्रचयित्वा धारयतीत्यादिविशेषणयुक्तोस्ति । तस्य सर्वशक्तिमत्त्वात् ॥ ६ ॥ अस्मिन्सर्वशक्तिमति परमात्मनि सर्वदेवाः पृथिव्यादयः एकवृत एकाधिकरणा एव भवन्त्यर्थात्प्रलयानन्तरमपि तत्सामर्थ्ये प्राप्येक कारणवृतयो भवन्ति । एवंविधाश्चान्येपि ब्रह्मविद्याप्रतिपादकाः सप्तर्ष्यगाच्छुक्रमकायमित्यादयो मन्त्रा वेदेषु बहवः सन्ति । ग्रन्थाधिक्यभिया नात्र लिख्यन्ते । किंतु यत्र यत्र वेदेषु ते मन्त्राः सन्ति । तत्तद्भाष्यकरणावसरे तत्र तत्रायानुदाहरिष्याम इति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(न द्वितीयो न०) इन सब मंत्रों से यह निश्चय होता है कि परमेश्वर एक ही है उससे भिन्न कोई न दूसरा न तीसरा और न कोई चौथा परमेश्वर है ॥ ६ ॥ (न पंचमो न०) न पांचवा न छःठा और न कोई सातवा ईश्वर है ॥ ७ ॥ (नाष्टमो न०) न आठवा न नवमा और न कोई दशमा ईश्वर है ॥ ८ ॥ (तमिदं०) किंतु वह सदा एक अद्वितीय ही है उससे भिन्न दूसरा ईश्वर कोई भी नहीं । इन मंत्रों में जो दो से लेके दश पर्य्यन्त अन्य ईश्वर होने का निषेध किया है सो इस अभिप्राय से है कि सब संख्या का मूल एक (१) अंक ही है इसी को दो तीन चार पांच छः सात आठ और नव बार गणने से २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । और ९ नव अंक बनते हैं और एक पर शून्य देने से १० दश का अंक होता है उन से एक ईश्वर का निश्चय करा के इन्हीं में दूसरे ईश्वर के होने का सर्वथा निषेध ही लिखा है अर्थात् उस के एकपने में भी भेद नहीं और वह शून्य भी नहीं किंतु जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त एकरस परमात्मा है वही सदा से सब जगत् में परिपूर्ण होके पृथिवी आदि सब लोकों को रच के अपने सामर्थ्य से धारण कर रहा है तथा वह अपने काम में किसी का सहाय नहीं लेता क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है ॥ ९ ॥ (सर्वे अस्मिन्०) उसी परमात्मा के सामर्थ्य में पृथ्वी आदि सब देव अर्थात् पृथिवी आदि लोक ठहर रहे हैं और प्रलय में भी उस के

सामर्थ्य में लय हो के उसी में सने रहते हैं इस प्रकार के मंत्र वेदों में बहुत हैं यहां उन सब के लिखने की कुछ आवश्यकता नहीं क्योंकि जहां २ ये मंत्र आवेंगे वहां २ उन का अर्थ कर दिया जायगा ॥

॥ इति ब्रह्मविद्याविषयविचारः ॥

॥ अथ वेदोक्तधर्मविषयः संक्षेपतः प्रकाश्यते ॥

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ॥ देवाभागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ १ ॥ ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४८ मं० २ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(संगच्छध्वं०) ईश्वरोऽभिवदति हे मनुष्या मयोक्तं न्याय्यं पक्षपातरहितं सत्यलक्षणोक्तवेदं धर्मं यूयं संगच्छध्वं सम्यक् प्राप्नुत अर्थात् सत्यार्थे सर्वे विरोधं विहाय परस्परं संगता भवत येन युष्माकमुत्तमं सुखं सर्वेदा वर्धेत सर्वदुःखनाशश्च भवेत् (संवदध्वं०) संगताभूत्वा परस्परं जल्पवितंडादि विमद्भवादं विहाय संप्रीत्या प्रश्नोत्तरविधानेन संवादं कुरुत यतो युष्मासु सम्यक्तत्वविद्यादयुत्तमगुणाः सदा वर्धेरन् (संवो मनांसि जानताम्) यूयं जानन्तो विजानन्तो भवत जानन्तो वो युष्माकं मनांसि यथा जानन्ति भवेयुस्तथा सम्यक् पुरुषार्थं कुरुतार्थादेन युष्मन्मनांसि सदानन्दयुक्तानि स्युस्तथा प्रयतध्वम् । युष्माभिर्धर्म एव सेवनीयो नाधर्मश्चेत्यत्र दृष्टान्त उच्यते (देवाभागं यथा०) यथा पूर्वे संजानाना ये सम्यग्जानन्तो देवा विद्वांस आप्ताः पक्षपातरहिता ईश्वरधर्मान्यदेवप्रियाश्चासन् युष्मत्पूर्वे विद्यामधीत्य वर्तन्ते. किंवा ये मृतास्ते यथा भागं भजनीयं सर्वशक्तिमदादिलक्षणमीश्वरं मदुक्तं धर्मं चोपासते । तथैव युष्माभिरपि स एव धर्म उपासनीयो यतो वेदप्रतिपाद्योऽधर्मो निश्शङ्कस्त्या विदितश्च भवेत् ॥ १ ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब वेदों की रीति से धर्म के लक्षणों का वर्णन किया जाता है, (संगच्छध्वं) देखो परमेश्वर हम सभों के लिये धर्म का उपदेश करता है कि हे मनुष्य लोगो जो पक्षपात रहित न्याय सत्याचरण से युक्त धर्म है तुम लोग उसी को ग्रहण करो उस से विपरीत कभी मत चलो किंतु उसी की प्राप्ति के लिये विरोध को छोड़ के परस्पर संमति में रहो जिस से तुम्हारा उत्तम सुख

सब दिन बढ़ता जाय और किसी प्रकार का दुःख न हो (संवदध्वं) तुम लोग विरुद्ध वाद को छोड़ के परस्पर अर्थात् आपस में प्रीति के साथ पढ़ना पढ़ाना श्रवण उपदेश सहित संवाद करो जिस से तुम्हारी सत्यविद्या नित्य बढ़ती रहे (संवो मनांसि जानताम्) तुम लोग आपस यथार्थ ज्ञान को नित्य बढ़ाते रहो जिस से तुम्हारा मन प्रसन्नयुक्त होकर पुरुषार्थ को नित्य बढ़ावे जिस से तुम लोग ज्ञानी होकर नित्य आनन्द में बने रहो और तुम लोगों को धर्म का ही सेवन करना चाहिये अधर्म का नहीं (देवाभागं य०) जैसे पक्षपात रहित धर्मात्मा विद्वान् लोग वेद रीति से सत्यधर्म का आचरण करते हैं वैसे प्रकार से तुम भी करो क्योंकि धर्म का ज्ञान तीन प्रकार से होता है एक तो धर्मात्मा विद्वानों की शिक्षा दूसरा आत्मा की शुद्धि तथा सत्य को जानने की इच्छा और तीसरा परमेश्वर की आज्ञा वेदविद्या को जानने से भी मनुष्यों को सत्य असत्य का यथावत् बोध होता है अन्यथा नहीं ॥ १ ॥

एतावानोसज्ञः सप्तिनिः सप्तधानी सप्तधा सप्तचित्तभेदाः ॥ सप्तानं सप्तसमिधस्कृणोमि सप्तापेवेमा सप्तविधा सप्तहोत्रा ॥ २ ॥
ऋ० मं० ८ सू० ८ व० ४९ । मं० ३]

॥ भाष्यम् ॥

(यज्ञानोयज्ञ्रा०) हे मानवा यो युष्माकं यज्ञो ज्ञानमीक्षासमाधिपर्यन्तानां युक्तप्रसिद्धसाधनसमृद्धगुणानां पदार्थानां साधनमुपसनः, ज्ञानं वा यज्ञति यजिषु येन वा सर्वो विचारो यजितुमर्हति । यदाया । साङ्गोपाङ्गो सत्यासत्यविवेकजन्यैः सोपि सत्यज्ञानफलः सर्वोपकारकः सूर्यमण्डलतुल्यो ज्ञानाद्वैरोधरहितएव भवतु । यदा बहुभिर्मनुष्यैर्मिलित्वा सर्वविद्यपदार्थानां विचारः कर्त्तव्यो भवेत्तदा प्रथमतः पृथक् पृथगपि सावधानो भवेयुस्तथापि सर्वैरेव मार्गं गृहीत्वा यदा सर्वेषु मनुष्येषु सत्यविद्याधर्मसङ्गः सद्भक्तिलक्षणान्वितं ज्ञानं स्थानत्रयस्थं ज्ञात्वैवेत्थं कृत्वा नित्यं समाचरेत् । यतः प्रतिदिनं सर्वेषां मनुष्याणामुत्तरोत्तरसुखं वर्धेत । तथा (समिति: समानी) समितिः सामाजिकनियमव्यवस्थाधीयतेऽस्यामिति समानी सर्वमनुष्याणां मान्यलाभाद्वा ब्रह्मचर्यविद्याभ्यासेन गुणाधिका शिष्टसभया राज्यप्रबन्धाद्यानन्दादिना परमार्थव्यवहारशोधिका बुद्धिर्मनोरुचिरो-भयवर्धिनी शुभसभ्योऽहापि समानी मनैमनुष्यस्तत्तद्वानसुखवर्धनायैकरसेव कार्येति (समानं मनः०) मनः संकल्पविकल्पात्मकं संकल्पोसिलाषेच्छे-त्यादि विकल्पेऽप्रीतिर्द्वेष इत्यादि सुखदुःखादि संज्ञाभ्यः अनुभवगुणान्नि

विकल्पश्च रक्षणीयः । एतद्धर्मकं युष्माकं मनः समानमन्योन्यमविरुद्धस्वभावमेवास्तु । यच्चित्तं पूर्वापरानुभूतस्मरणात्मकं धर्मेश्वरचिन्तनं तदपि समानमर्थात्सर्वप्राणिनां दुःखनाशाय सुखवर्धनाय च स्वात्मवत्सम्यक् पुरुषार्थेनैव कार्य्यम् (सह) युष्माभिः परस्परस्य सुखोपकारायैव सर्वं सामर्थ्यं योजनीयम् । (यथा०) येऽहमेषां सर्वेषां प्राणिनां मध्ये स्वात्मवद्वर्त्तन्ते तादृशानां परोपकारिणां परसुखदातॄणामुपर्य्यहं कृपालुर्भूत्वा (अभिमन्त्रये वः) युष्मान्पूर्वैरुक्तं धर्ममाज्ञापयामि । इत्थमेव सर्वैः कर्त्तव्यमिति । येन युष्माकं मध्येनैव कदाचित्सत्यनाशोऽसत्यवृद्धिश्च भवेत् । (समानेन यो०) हविर्दानं ग्रहणं च तदपि सत्येन धर्मेण युक्तमेव कार्य्यम् । तेन समानेनैव हविषा वो युष्मान् जुहोमि सत्यधर्मेण सहैवाहं सदा नियोजयामि । अतो मदुक्त एव धर्मो मन्तव्यो नान्य इति ॥ २ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(समानो मंत्रः) हे मनुष्य लोगो जो तुम्हारा मंत्र अर्थात् सत्य असत्य का विचार है वह समान हो उस में किसी प्रकार का विरोध न हो और जब २ तुम लोग मिल के विचार करो तब २ सब के वचनों को अलग २ सुन के जो २ धर्मयुक्त और जिस में सब का हित हो सो २ सब में से अलग कर के उसी का प्रचार करो जिस से तुम सभों का बराबर सुख बढ़ता जाय (समितिः समानी) और जिस में सब मनुष्यों का मान, ज्ञान, विद्याभ्यास, ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रम, अच्छे २ काम, उत्तम मनुष्यों की सभा से राज्य के प्रबंध का यथावत् करना, और जिस से वृद्धि, शरीर, बल, पराक्रम आदि गुण बढ़ें तथा परमार्थ और व्यवहार शुद्ध हो ऐसी जो उत्तम मर्य्यादा है सो भी तुम लोगों की एक ही प्रकार की हो जिस से तुम्हारे सब श्रेष्ठ काम सिद्ध होते जायं (समानं मनः सह चित्तं) हे मनुष्य लोगो तुम्हारा मन भी आपस में विरोध रहित अर्थात् सब प्राणियों के दुःख के नाश और सुख की वृद्धि के लिये अपने आत्मा के समतुल्य पुरुषार्थवाला हो शुभ गुणों की प्राप्ति की इच्छा को संकल्प और दुष्टगुणों के त्याग की इच्छा को विकल्प कहते हैं जिस से जीवात्मा ये दोनों कर्म करता है उस का नाम मन है उस से सदा पुरुषार्थ करो जिस से तुम्हारा धर्म सदा दृढ़ और अविरुद्ध हो तथा चित्त उस को कहते हैं कि जिस से सब अर्थों का स्मरण अर्थात् पूर्वापर कर्मों का यथावत् विचार हो उस भी तुम्हारा एकसा हो (सह) जो तुम्हारा मन और चित्त है वे दोनों सब मनुष्यों के सुख ही के लिये प्रयत्न में रहें (यथा०) इस प्रकार से जो मनुष्य सब का उपकार करने और सुख देनेवाले हैं मैं उन्हीं पर सदा कृपा करता हूं (समानं मंत्रमभिमन्त्रये वः) अर्थात् मैं उन के लिये आशीर्वाद

और आज्ञा देता हूं कि सब मनुष्य मेरी इस आज्ञा के अनुकूल चलें जिससे उन का सत्यधर्म बढ़े और असत्य का नाश हो (समानेन यो हविषा जुहोमि) हे मनुष्य लोगो सब २ कोई पदार्थ किसी को दिया चाहो अथवा किसी से ग्रहण किया चाहो सब २ धर्म से युक्तही करो उस से विरुद्ध व्यवहार को मत करो और यह बात निश्चय करके जानलो कि मैं सत्य के साथ तुम्हारा और तुम्हारे साथ सत्य का संयोग करता हूं इस लिये कि तुम लोग इसी को धर्म मान के सदा करते रहो और इस से भिन्न को धर्म कभी मत मानो ॥ २ ॥

समानीव आकूतिः समाना हृदयानि वः ॥ समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ऋ० अ० ८ अ० ८ व० ४९ मं ४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

अस्यायमभिप्रायः । हे मानवावो युष्माकं यत्सर्वं सामर्थ्यमस्ति सद्धर्मसंबन्धे परस्परमविरुद्धं कृत्वा सर्वैः सुखं सदा संवर्धनीयमिति । (समानीव०) आकूतिरध्यवसाय उत्साह आशयोतिर्वा सापि वो युष्माकं परस्परोपकारकरणेन सर्वेषां जनानां सुखायैव भवतु । यथा मदुपदिष्टस्यास्य धर्मस्य विलोपो न स्यात्तथैव कार्य्यम् (समानाहृदयानि वः) वो युष्माकं हृदयान्यर्थात्मानसानि प्रेमप्रचुराणि कर्माणि निर्दैराय समानान्यविरुद्धान्येव सन्तु (समानमस्तु वो मनः) अत्र प्रमाणम् कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धा ऽश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्येतत्सर्वं मन एव तस्मादपि पृच्छत उपरिष्टाद्वो मनसा विजानाति । श० कां० १४ अ० ४ ॥ मनसा विविच्य पुनरनुष्ठातव्यम् । शुभगुणानामिच्छाकामः । तत्प्राप्त्यनुष्ठानेच्छासंकल्पः । पूर्वं संशयं कृत्वा पुनर्निश्चयकरणेच्छासंशयो विचिकित्सा । ईश्वर सत्यधर्मादिगुणानामुपर्य्यत्यन्तं विश्वासः श्रद्धा । अनीश्वरवादाधर्माद्युपरिसर्वथाऽनिश्चयोऽश्रद्धा । सुखदुःखप्राप्तावीश्वरधर्माद्युपरि सदैव निश्चयरक्षणं धृतिः । अशुभगुणानामाचरणे नैव कार्य्यमित्यधैर्य्यमधृतिः । सत्यधर्माणामाचरणेऽसत्याचरणे च मनसः संकोचो घृणा ह्रीः । शुभगुणान् गृह्णं धारयेदिति धारणावती वृत्तिर्धीः । असत्याचरणादीश्वरान्यायकारिणात्पापाचरणादीश्वरो नः सर्वं च पश्यतीत्यादि वृत्तिर्भीः । एतद्धर्मकं मनो वो युष्माकं साधारणं तुल्यमस्तु । (यथावः सुसहासति) हे मनुष्या वो युष्माकं यथा परस्परं सुसहायेन स्यात्तथा सम्यक् सुखोन्नतिः स्यात्तथा सर्वैः प्रयत्नो विधेयः ।

सर्वान् सुखिनो दृष्ट्वा चित्त आह्लादः कार्य्यः ॥ नैव कंचिदपि दुःखिनं दृष्ट्वा सुखं केनापि कर्त्तव्यम् । किंतु यथा सर्वे स्वस्थाः सुखिनः स्युस्तथैव सर्वैः कार्य्यमिति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(समानीव आकूतिः) ईश्वर इस मंत्र का प्रयोजन कहता है कि हे मनुष्य लोगो तुम्हारा जितना सामर्थ्य है उस को धर्म के साथ मिला के सब सुखों को सब दिन बढ़ाते रहो निश्चय उत्साह और धर्मात्माओं के आचरण को आकूति कहते हैं हे मनुष्य लोगो तुम्हारा सब पुरुषार्थ सब जीवों के सुख के लिये सदा हो जिस से मेरे कहे धर्म का कभी त्याग न हो और सदा वैसाही यत्न करते रहो कि जिस से (समाना हृदयानि वः) तुम्हारे हृदय अर्थात् मन के सब व्यवहार आपस में सदा प्रेम सहित और विरोध से अलग रहें (समानमस्तु वो मनः) मनः शब्द का अनेक बार ग्रहण करने में यह प्रयोजन है कि जिस से मन के अनेक अर्थ जाने जायं (कामः) प्रथम विचारही कर के सब उत्तम व्यवहारों का आचरण करना और बुरों को छोड़ देना इस का नाम काम है (संकल्पः) जो सुख और विद्यादि शुभगुणों को प्राप्त होने के लिये प्रयत्न से अत्यंत पुरुषार्थ करने की इच्छा है उस को संकल्प कहते हैं (विचिकित्सा) जो २ काम करना हो उस २ को प्रथम शंका कर २ के ठीक निश्चय करने के लिये जो संदेह करना है उस का नाम विचिकित्सा है (श्रद्धा) जो ईश्वर और सत्यधर्म आदि शुभ गुणों में निश्चय से विश्वास को स्थिर रखना है उस को श्रद्धा जानना (अश्रद्धा) अर्थात् अविद्या कुलकर्म बुरे काम करने ईश्वर को नहीं मानने और अन्याय आदि अशुभ गुणों से सब प्रकार से अलग रहने का नाम अश्रद्धा समझना चाहिये (धृतिः) जो सुख-दुःख हानि लाभ आदि के होने में भी अपने धीरज को नहीं छोड़ना उस का नाम धृति है (अधृतिः) बुरे कामों में दृढ़ न होने को अधृति कहते हैं (ह्रीः) अर्थात् जो झूंठे आचरण करने और सच्चे कामों को नहीं करने में मनको लज्जित करना है उस को ह्री कहते हैं (धीः) जो श्रेष्ठ गुणों को शीघ्र धारण करने वाली बुद्धि है उस को धी कहते हैं (भीः) जो ईश्वर की आज्ञा अर्थात् सत्याचरण धर्म करना और उससे उलटे पाप के आचरण से नित्य डरते रहना अर्थात् ईश्वर हमारे सब कामों को सब प्रकार से देखता है ऐसा जान कर उस से सदा डरना कि जो मैं पाप करूंगा तो ईश्वर मुझ पर अप्रसन्न होगा इत्यादि गुण वाली वस्तु का नाम मन है इस को सब प्रकार से सब के सुख के लिये युक्त करो (यथा वः सुसहासति) हे मनुष्य लोगो जिस प्रकार अर्थात् पूर्वोक्त धर्म सेवन से तुम लोगों को उत्तम सुखों की बढ़ती हो और जिस श्रेष्ठ सहाय से आपस में एक से दूसरे को सुख बढ़े ऐसा काम सब

कहां से भेजे गये	क्रमांक	नाम व्यक्ति	पता व ठिकाने	संख्या	मोल्य नाम	कीमती रुपया
पुरुष से	२२८	रामाधार शेटमास्टर	जिनेश स्कूल आरपुर-सागोन भाटापुर जि० भण्डारा	१		४०)
"	२२०	रामोश्वरलाल शेटमास्टर	जिनेल स्कूल सावणेर नजदीक सिवनी जि० भण्डारा	१		४०)
"	२३०	मनुलाल शेटमास्टर	जिनेल स्कूल गुजरी जाकलभंज० भण्डारा० जि० भण्डारा	१		४०)
"	२३८	सुखमोहन शेटमास्टर	दाखील स्कूल गढा। पो० भाटापुर जि० भण्डारा।	१		४०)
"	२३३	नत्थूलाल " "	फारेस्ट डिपार्टमेन्ट मालदा नजदीक इलाहा। भण्डारा।	१		४०)
"	२३४	रामाधार " "	डिपार्टमेन्ट रा० जिला पुरुषोत्तम	१		४०)
	२३५	लालालाल मेसन-लाल मोहरी "	तीसुर मारा आकोला। मोगव	१	४०)	
	२३६	पुरुषोत्तम मालुसरे	मोजमाटीर फारेस्टरी जि० अकोला। " "	१	४०)	
पुरुष से	०८	रा० रा० मल्हारराव पेशवे सिंद रानडे	जज वोरणा पुना। ऐसे लाया	१८		९०)
"	२३९	कृष्णा विष्णु रामचंद्र चौधरी "	हायस्कूल पेठ वसई ठा० पुना	१	४०)	
"	२४०	विठ्ठल तुकाराम	जिनार्क हाईस्कूल जनरल आ-फिस पुणे ठा० कामा पुना	१	४०)	
"	२४१	आबा साहेब घटवधेन	सबडीव मर्चा। पुना पुणे ठा०	१	४०)	
"	२४२	गोपालराव भाऊ पाटणे	पुणे ठा० फडू पुना। " "	१	४०)	
"	२४३	रामचंद्र पु गोसिंद	सुरवार पेठ पुना। पुणे ठा०	१	४०)	
"	२४४	भाऊ साहेब मेहतकर	सोनवार पेठ। पुना पुणे ठा०	१	४०)	
"	२४५	लक्ष्मण भास्करशेट-कर " "	भाजी मार्केट। आपटवार पेठ। पुणे ठाणा पुना। " "	१	४०)	
	२४६	शिवालसेठ " "	शिमोगा। मद्रासकलक्टर। " "	१	४०)	
	२४७	तुकाराम शेट	शिरिमेंटर यालिकर मार्किस मुकुण्डा जेल " "	१	४०)	
	२४८	आबू दामशेट " "	देवगावकर जिला दुमका। मुजफ्फरपुर " "	१	४०)	
"	२४९	लाला अमरनाथ	खजाने के क्लार्क मुजफ्फरपुर	१	४०)	
	२५०	बाबू सुरेश चंद्र	डिपार्टमेंट ऑफ एग्रीकल्चर ऑफ दुमका। " "	१	४०)	
मोक्ष से	२५१	शेखर मोहनलाल " "	मैजर्स गोकलदास। लाहौर " "	१	४०)	
मोक्ष से	२५२	लाला लालचुकंद " "	कमिसरेल्ट पब्लिसिटी। मेल कोट। " "	१	४०)	
मोक्ष से	२५३	लाला मदनलाल " "	रिक्रूटिंग मेडीकेल स्कूल लाहौर	१	४०)	
" "	२५४	लाला ज्वालाप्रसाद	हेड क्लर्क रिक्रूटिंग लाहौर। " "	१	४०)	
"	२५५	लाला गणेशदास " "	चीफ ऑफ कमीशनर ऑफ। गवर्नमेंट ऑफ पंजाब। " "	१	४०)	

कौन से बैंक से लेना	मनीआर्डर नं०	नाम पाने के	पता पाने के	रुपये	मोचक नाम	मोचक दफ्तर
बैंक ऑफ इं	२५८	बाबू ओंकारप्रसाद मेहरोत्रा	एकाउंटेन्ट जनरल पंजाब लाहौर।	११	४।)	
"	२५७	पंडित रामसहाय	किलर्क दफ्तर डाइरेक्टर पैलाज लाहौर।	३	४।)	
"	२५८	बाबू जगन्नाथप्रसाद	एडीस फलकलाहौर।	५०	४५)	
	२५९	लाला दुलारेलाल	पार्सल क्लार्क इन्स्पेक्टर जनरल आफ पोस्टिज पंजाब। लाहौर	५	४।)	४।)
	२६०	लाला नत्थूमल	एकाउंटेन्ट जेनरल आफिस लाहौर।	९	४।)	
	२६१	पंडित नन्दलाल	लाइब्रेरियन कर्ज़न लिबरल मेडल लाहौर।	५	४।)	
	२६२	लाला बुधामल	एकाउंटेन्ट जेनरल आफिस। लाहौर।	५	४।)	
	२६३	भाई प्रेमसिंह	गवर्नमेन्ट प्रेस एकाउंटेन्ट ऐ०। लाहौर	९	४।)	
	२६४	लाला हीरालाल	एकाउंटेन्ट जेनरल आफिस पैलाब। लाहौर।	९	४।)	
	२६५	पण्डित बद्रीनाथ वात्स्यायन एम० शिरोमणि एम० आर० ए० एस०	मालमी डरबाला। रोहतक गर्वी पैलाब। लाहौर।	९	४।)	
	२६८	महाशय जगन्नाथ	मैसमर्स (एकाउन्टेन्ट) सप्लाई राजदोड़ कार्यालय युद्ध मंत्री डिफेन्स गवर्नमेंट पंजाब। शिमला।	९	४।)	
	२६७	लाला देवीसिंह	मैसमर्स महाराजसिंह एण्ड नरायण मुलतान मर्चेन्ट्स बैंकर्स एण्ड कमीशन ऐजेन्ट। शिमला	९	४।)	
	२६८	बाबू बंसीधरदास	मोहल्ला अलीगंज। रोक।	९	४।)८	
बैंक ऑ	२६९	लाला दामोदास	विद्यार्थी दाला ए गवर्नमेन्ट स्कूल। लाहौर।	५	४।)	
"	२७०	मेजर एजक्यू० एम० मन० नाथूराम बहादुर आई० एम० एस०	सुपरिंटेंडेन्ट मुलतान सरिश्तेदार लीस पंजाब पेंशन फंड एण्ड नर बदर लाहौर।	८		८)
"	२७१	लाला रघुनाथ	मारफत लाला जानकीदास रेलवे मकाई। लाहौर।	९		४।)
बाम्बे बी	२७३	नयनसुख बहिया	मोहल्ला सराफा ऊपर मथुरा	५		४।)
बैंक ऑ	२७४	बाबू बलदेवप्रसाद	३ दूसरी किलर्क शाहजहानपुर।	९	४।)	
"	२७५	बाबू किशनलाल	सुपरिंटेंडेन्ट किलर्क। शाहजहानपुर।	९	४।)	
"	२७६	पंडित मोहनलाल	मोहल्ला कुम्मर दिवाला मालवपुर	९	४।)	

REGISTERED No. 16.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्थभाषाभ्यां समन्विता ॥

अस्यैकैकप्रतिमास मूल्यम् भारतवर्षीयडाकव्ययादिकं वयम्-
मूल्येन सहितं ।=) पञ्चभ्यः द्वादशप्रतीनां मिलित्वा
वार्षिकं ॥=) यतोऽग्रेषु भवति ॥

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक नंबर का मूल्य भारतवर्ष के भीतर
डाकमाशूल सहित ।=) तथा वार्षिक मूल्य ॥=)

अस्य ग्रन्थस्य ग्रहणेच्छा यस्य भवेत्सकाशात् तस्यार्यसमाजस्य
वा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपे वार्षिकं मूल्यं
प्रेषयेत्स प्रतिमासमेकं प्राप्स्यति ॥

खंड (१)

॥ अथ श्रीऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायाः प्रथमोऽयं मुद्रितः ॥

सन् १८७४ ।

॥ अस्य ग्रन्थस्यार्थतश्च भाषातश्च सर्वेषां स्वाधीनं सत्यं रक्षितम् ॥

विदित हो कि सं० १९३४ आषाढ़ में श्रावण मास के प्रथम पक्षान्त वेदार्थ देने के
अवसर नगर में वेदिक स्वामी दयानन्द सरस्वती जी विराजमान करेंगे ।

द्वित करते रहो किसी को दुःखी देख के अपने मन में सुख मत मानो किंतु सब को सुखी करके अपने आत्मा को सुखी जानो जिस प्रकार से स्वाधीन होके सब लोग सदा सुखी रहैं वैसाही यत्न करते रहो ॥ ३ ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः ॥ अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धा सत्ये प्रजापतिः ॥ ४ ॥ य० अ० १९ मं० ७७ ।

॥ भाष्यम् ॥

अस्यायम० (दृष्ट्वा०) प्रजापतिः परमेश्वरो धर्ममुपदिशति सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यः सर्वथा सर्वदा सत्यमेव सम्यक् श्रद्धा रक्षणीया ऽसत्ये चाश्रद्धेति । (प्रजापतिः) परमेश्वरः (सत्यानृते) धर्माधर्मौ (रूपे) प्रसिद्धौ प्रसिद्धलक्षणौ दृष्ट्वा (व्याकरोत्) सर्वज्ञतया स्वया विद्यया विभक्तौ कृतवानस्ति । कथमित्यत्राह (अश्रद्धाम०) सर्वेषां मनुष्याणामनृते ऽसत्ये ऽधर्मे ऽन्याये ऽश्रद्धामदधात् । अर्थादधर्मे ऽश्रद्धां कर्तुमाज्ञापयति । तथैव वेदशास्त्रप्रमाणादिते सत्ये प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः परीक्षिते पक्षपातरहिते न्याय्येधर्मे प्रजापतिः सर्वेज्ञ ईश्वरः श्रद्धां चादधात् यं सर्वेमनुष्यैः परमप्रयत्नेन स्वकीयचित्तं धर्मे प्रवृत्तमधर्मान्निवृत्तं च सदैव कार्य्यमिति ॥ ४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(दृष्ट्वा०) इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि प्रजापति परमेश्वर जो सब जगत् का स्वामी अर्थात् मालिक है वह सब मनुष्यों के लिये धर्म का उपदेश करता है कि सब मनुष्यों को सब प्रकार से सब काल में सत्यमें ही प्रीति करनी चाहिये असत्य में कभी नहीं (प्रजापतिः) सब जगत् का अध्यक्ष जो ईश्वर है सो (सत्यानृते) सत्य जो धर्म और असत्य जो अधर्म है जिन को प्रगट और गुप्त लक्षण हैं* (व्याकरोत्) उन को ईश्वर ने अपनी सर्वज्ञ विद्या के ठीक २ विचार से वेद के सत्य और झूठ को अलग २ किया है सो इस प्रकार से है कि (अश्रद्धाम०) हे मनुष्य लोगो तुम सब दिन अधर्म अर्थात् झूठ अन्याय के करने में (अश्रद्धा) अर्थात् प्रीति कभी मत करो वैसाही (श्रद्धाऽस०) सत्य अर्थात् जो वेदशास्त्रोक्त और जिस की प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से परीक्षा की गई हो पक्षी जाय वही पक्षपात से अलग न्याय रूप धर्म है उस के आचरण में सब दिन प्रीति रक्खो और जो २ तुम लोगों के लिये मेरी आज्ञा है उस २ में अपने आत्मा प्राण और मन को सब पुरुषार्थ तथा कोमल स्वभाव से युक्त करके सदा सत्य ही में प्रवृत्त करो ॥ ४ ॥

* जितना धर्म अधर्म का लक्षण बाहर की चेष्टा के साथ संबंध रखता है वह प्रकट और जितना आत्मा के साथ संबंध रखता है वह गुप्त कहाता है ॥

इते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ॥ मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ ५ ॥ य० अ० ३६ मं० १८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(इते दृꣳह०) अस्यायम० सर्वे मनुष्याः सर्वदा सर्वैः सह मैत्रादीनेव वर्तेरन्निति । सर्वैरीश्वरोक्तोयंधर्मः स्वीकार्य्य ईश्वरः प्रार्थनीयश्च यतो धर्मनिष्ठा स्यात् । तद्यथा हे इते सर्वदुःखविनाशकेश्वर मदुपरि कृपां विधेहि यतो ऽहं सत्यधर्मं यथावद्विजानीयाम् पक्षपातरहितस्य सुहृदश्चक्षुषा प्रेमभावेन सर्वाणि भूतानि (मा) मां सदा समीक्षन्तामर्थान्मम मित्राणि भवन्तु । इतीच्छाविषिद्धं मां (दृꣳह) दृंह सत्यसुखैः शुभगुणैश्च सह सदा वर्धय (मित्रस्याहं०) अयमहमपि मित्रस्य चक्षुषा स्वात्मवत्प्रेमबुद्ध्या (सर्वाणि भूतानि समीक्षे) सम्यक् पश्यामि (मित्रस्य च०) इत्थमेव मित्रस्य चक्षुषा निर्वैरा भूत्वा वयमन्योन्यं समीक्षामहे सुखसंपादनार्थं सदा वर्त्तामहे । इतीश्वरोपदिष्टोधर्मो हि सर्वैर्मनुष्यैरेकएव मन्तव्यः ॥ ५ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(इते दृꣳह०) इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि सब मनुष्य लोग आपस में सब प्रकार के प्रेमभाव से सब दिन वर्त्तें और सब मनुष्यों को उचित है कि जो वेदों में ईश्वरोक्त धर्म है उसी को ग्रहण करें और वेदरीति से सदा ईश्वर की उपासना करें कि जिससे मनुष्यों को धर्म में ही प्रवृत्ति हो (दृꣳह०) हे सब दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर आप हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि जिससे हम लोग आपस में वैर को छोड़ के एक दूसरे के साथ प्रेम भाव से वर्त्तें (मित्रस्य मा०) और सब प्राणी मुझको अपना मित्र जान के बंधु के समान वर्त्तें ऐसी इच्छा से युक्त हम लोगों को (दृꣳह) सत्य सुख और शुभ गुणों से सदा बढ़ाइये (मित्रस्याहं०) इसी प्रकार से मैं भी सब मनुष्यादि प्राणियों को अपने मित्र जानूं और हानि लाभ सुख और दुःख में अपने आत्मा के सम तुल्यही सब औरों को मानूं (मित्रस्य च०) हम सब लोग आपस में मिलके सदा मित्रभाव रक्खें और सत्यधर्म के आचरण से सत्य सुखों को नित्य बढ़ावें जो ईश्वर का कहा धर्म है यही एक सब मनुष्यों को मानने के योग्य है ॥ ५ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ६ ॥ य० अ० १ मं० ५ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(अग्ने व्र०) अस्याभिप्रा० सर्वैर्मनुष्यैरीश्वरस्य सहायेच्छा सदा कार्येति ॥ नेश्वरस्य सहायेन विना सत्यधर्मज्ञानं तस्यानुष्ठानपूर्तिश्च भवतः । हे अग्ने व्रतपते सत्यपते (व्रतं) सत्यधर्मं चरिष्यामि अनुष्ठास्यामि । अत्र प्रमाणम् ॥ सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः । यत्तद्वै देवाश्चरं चरन्ति तत्सत्यम् । श० ब्रा० १ । ८ । १ ॥ सत्याचरणाद्धि देवा असत्याचरणान्मनुष्याश्च भवन्ति । अतः सत्याचरणमेव धर्मप्राप्तिरिति (तच्छकेयम्) अहं तत्सत्याचरणं कर्तुं शक्नुयां समर्थो भवेयम् (तन्मे राध्यताम्) तत्सत्यधर्मानुष्ठानं मे मम सकला राध्यतां कृपया सम्यक् सिद्धं क्रियताम् । किंच तद्विशिनष्टि (इदमहमनृतात्सत्यमुपै०) यत्सत्यधर्मस्यैवाचरणमनृताद्धत्याचरणाद्धर्मान्मृषाभूतं तदहमेवैमि प्राप्नोमीति । एतेन धर्मानुष्ठानमीश्वरप्रार्थनया स्वपुरुषार्थेन च कर्तव्यम् । नापुरुषार्थिनं मनुष्यमीश्वरोऽनुगृह्णाति । यथा चक्षुष्मन्तं द्रष्टारमन्धं च । यस्मिन्वै धर्मे सर्वैर्मनुष्यैरिच्छन्ते पुरुषार्थेनाप्तिर्यस्मिन्नीश्वरानुग्रहोऽखिलाप्तिश्च प्रत्येवेश्वरः कृपालुर्भवति नान्यं प्रतीति हेतुः । जीवे तत् सिद्धिं कर्तुं साधनानामीश्वरेण पूर्णत्वेन रहितत्वात् तदुपयोगाभावाच्च । येन पदार्थेन यस्योपकारो भवितुं शक्येत्तावान्स्वेनैव सङ्गतेऽन्यस्तदुपयोगेश्वरानुग्रहेच्छा कार्येति ॥ ६ ॥

॥ आचार्य ॥

(अग्ने व्र०) इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि सब मनुष्य लोग ईश्वर से सहाय की इच्छा करें क्योंकि बल से सहाय के बिना धर्म का पूर्ण ज्ञान और उस का अनुष्ठान पूरा कभी नहीं हो सकता है सत्यपते परमेश्वर ! व्रतं ; मैं जिस सत्यधर्म का अनुष्ठान किया चाहता हूं उस की सिद्धि आप की कृपा से हो सकती है इसी मंत्र का अर्थ शतपथब्राह्मण में भी लिखा है कि जो मनुष्य सत्य के आचरण कर सत को प्राप्त होते हैं वे देव कहाते हैं और जो असत्य का आचरण करते हैं उन को मनुष्य कहते हैं इससे मैं उस सत्यव्रत का आचरण किया चाहता हूं (तच्छकेयं) मुझ पर आप ऐसी कृपा कीजिये कि जिस से मैं सत्यधर्म का अनुष्ठान पूरा कर सकूं (तन्मे राध्यताम्) उस अनुष्ठान की सिद्धि करने वाले पदार्थ भी तो सो आप ही से सत्यरूप धर्म के अनुष्ठान के लिये सिद्ध कीजिये (इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि) जो यह व्रत है कि

जिस को मैं निश्चय से चाहता हूं उन सब असत्य कामों से छूट के सत्य के आचरण करने में सदा दृढ़ रहूं परंतु मनुष्य को यह करना उचित है कि ईश्वरने मनुष्यों में जितना सामर्थ्य रक्खा है उतना पुरुषार्थ अवश्य करें उस के उपरांत ईश्वर के सहाय की इच्छा करनी चाहिये क्योंकि मनुष्यों में सामर्थ्य रखने का ईश्वर का यही प्रयोजन है कि मनुष्यों को अपने पुरुषार्थ से ही सत्य का आचरण अवश्य करना चाहिये जैसे कोई मनुष्य आंख वाले पुरुष को ही किसी चीज को दिखला सकता है अन्धे को नहीं इसी रीति से जो मनुष्य सत्य-भाव पुरुषार्थ से धर्म को किया चाहता है उस पर ईश्वर भी कृपा करता है अन्य पर नहीं क्योंकि ईश्वर ने धर्म करने के लिये बुद्धि आदि बड़ने के साधन जीव के साथ रक्खे हैं जब जीव उन से पूर्ण पुरुषार्थ करता है तब परमेश्वर भी अपने सब सामर्थ्य से उस पर कृपा करता है अन्य पर नहीं क्योंकि सब जीव कर्म करने में स्वाधीन और पापों के फल भोगने में कुछ पराधीन भी हैं ॥ ६ ॥

व्रतेन दीक्षा माप्नोति दीक्ष्या प्नोति दक्षिणाम् ॥ दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ७ ॥ य० अ० १९ मं० ३० ।

॥ भाष्यम् ॥

(व्रतेन दी०) अस्या० यदा मनुष्यो धर्मं जिज्ञासते सत्यं चिकीर्षति तदैव सत्यं विजानाति तत्रैव मनुष्यैः श्रद्धेयम् । नासत्येचेति । यो मनुष्यः सत्यं व्रतमाचरति । तदा दीक्षामुत्तमाधिकारं प्राप्नोति । (दीक्षया प्नोति ३०) यदा दीक्षितः सन्नुत्तमगुणैरुत्तमाधिकारी भवति तदा सर्वतः सत्कृतः फलवान् भवति तस्य दक्षिणा भवति तां दीक्षया शुभगुणाचरणेनाप्नोति (दक्षिणा श्र०) सा दक्षिणा यदा ब्रह्मचर्य्यादिसत्यव्रतैः सत्कारकर्त्रा स्वस्यान्येषां च भवति तदाचरणे श्रद्धां दृढं विश्वासमुत्पादयति । कुतः । सत्याचरणमेव सत्कारकारकमस्यतः । (श्रद्धया०) यदेतरोत्तरं श्रद्धा वर्धते तदा तया श्रद्धया मनुष्यैः परमेश्वरो मोक्षधर्मादिकं चाप्यते प्राप्यते नान्येति । अतः किमागतं सत्यप्राप्त्यर्थे सर्वदा श्रद्धोत्साहादिपुरुषार्थो वर्धयितव्यः ॥ ८ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(व्रतेन दी०) इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि जब मनुष्य धर्म को जानने की इच्छा करता है तभी सत्य को जानता है उसी सत्य में मनुष्यों को श्रद्धा करनी चाहिये असत्य में कभी नहीं (व्रतेन०) जो मनुष्य सत्य के आचरण को दृढ़ता से करता है तब वह दीक्षा अर्थात् उत्तम अधिकार के

फल को प्राप्त होता है (दीक्षया०) जब मनुष्य उत्तम गुणों से युक्त होता है तब सब लोग हर प्रकार से उस का सत्कार करते हैं क्योंकि धर्म आदि पुरुषार्थों रूपी उस दक्षिणा को मनुष्य प्राप्त होता है अन्यथा नहीं (दक्षिणा०) इस ब्रह्मचर्य आदि सत्य व्रतों से अपना और दूसरे मनुष्यों का अत्यंत सत्कार होता है तब उसी में दृढ़ विश्वास होता है क्योंकि सत्यधर्म का आचरणही मनुष्यों का सत्कार कराने वाला है (श्रद्धया०) फिर सत्य के आचरण में जितनी २ अधिक श्रद्धा बढ़ती जाती है उतना २ ही मनुष्य लोग व्यवहार और परमार्थ के सुख को प्राप्त होते जाते हैं अधर्माचरण से नहीं इस से क्या सिद्ध हुआ कि सत्य की प्राप्ति के लिये सब दिन श्रद्धा और उत्साह आदि पुरुषार्थ को मनुष्य लोग बढ़ातेही जायं जिस से सत्यधर्म की यथावत् प्राप्ति हो ॥ ८ ॥

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्रह्मणा वित्तयज्ञैश्रिता ॥ ९ ॥ सत्ये-नावृता श्रिया प्रावृता यशसा परीवृता ॥ १० ॥ अथर्व० कां० १९ अनु० ५ सं० १ । २ ।

॥ भाष्यम् ॥

(श्रमेण तपसा०) अभिप्रा० श्रमेणेत्यादिमंत्रेषु धर्मस्य लक्षणानि प्रकाश्यन्त इति । श्रमः प्रयत्नः पुरुषार्थे उद्यम इत्यादि । तपो धर्मानुष्ठाने तेन श्रमेणैव तपसा च सहेश्वरेण सर्वे मनुष्याः सृष्टा रचिताः । अतः (ब्रह्मणा) वेदेन परमेश्वरज्ञानेन च युक्ताः सन्तो ज्ञानिनः स्युः (वित्त-यज्ञै०) वित्तं ब्रह्मणि पुरुषार्थे यज्ञितो ब्रह्मं सेवमानाश्च सदैव भवन्तु ॥ ९ ॥ (सत्येनावृ०) वेदशास्त्रेण प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैश्च परीक्षितेनाव्यभिचारिणा सत्येनावृता युक्ताः सर्वे मनुष्याः सन्तु । (श्रिया प्रावृ०) श्रिया शुभगुणाचरणो-ज्ज्वलया ब्रह्मणि निराज्यसेवमानाया प्रकृष्टया लक्ष्म्याऽऽवृता युक्ताः परमप्रयत्नेन भवन्तु (यशसा०) उत्कृष्ट गुणग्रहणं सत्याचरणं यशस्तेन परितः सर्वतोवृता युक्ताः सन्तः प्रकाशयितारश्च स्युः ॥ १० ॥

॥ भावार्थ ॥

(श्रमेण तपसा०) इन मंत्रों के अभिप्राय से यह सिद्ध होता है कि सब मनुष्यों को (श्रमेण०) इत्यादि धर्म के लक्षणों का ग्रहण अवश्य करना चाहिये क्योंकि ईश्वर ने (श्रम०) जो परम प्रयत्न का करना और (तपः) जो धर्म का आचरण करना है इसी धर्म से युक्त मनुष्यों को रचा है इस कारण से (ब्रह्मणा) इस जो वेद विद्या और परमेश्वर के ज्ञान से युक्त होके सब मनुष्य

अपने २ ज्ञान को बढ़ावें (ऋतेश्विता) सब मनुष्य सत्य को ग्रहण सत्य विद्या और धर्माचरण सत्यादि शुभ गुणों का सेवन करें ॥ ९ ॥ (सत्येनावृता) सब मनुष्य प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्य की परीक्षा करके सत्य के आचरण से युक्त हों (श्रिया प्रावृता) हे मनुष्य लोगो तुम शुभ गुणों से प्रकाशित होके चक्रवर्ति राज्य आदि ऐश्वर्य को सिद्ध कर के अति श्रेष्ठ लक्ष्मी से युक्त होके शोभा रूप श्री को सिद्ध कर के उस को चारों ओर पहिन के शोभित हों (यशसा परी०) सब मनुष्यों को उत्तम गुणों का ग्रहण कर के सत्य के आचरण और यश अर्थात् उत्तम कीर्त्ति से युक्त होना चाहिये ॥ १० ॥

स्वधया परिहिता अद्भया पर्य्यूढा दीक्षया गुप्ता यज्ञे प्रतिष्ठिता लोको निधनम् ॥ ११ ॥ ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ १२ ॥ अथर्व० का० १२ । अनु० ५ मं० ३ । ७ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(स्वधया परि०) परितः सर्वतः स्वकीयपदार्थशुभगुणधारणेनैव संतुष्य सर्वे मनुष्याः सर्वेभ्यो हितकारिणः स्युः (अद्भया प०) सत्यमेव विश्वासमूलमस्ति नासदिति तया सत्यो परिदृढविश्वासरूपया श्रद्धया परितः सर्वतः ऊढाः प्राप्तवन्तः सन्तु (दीक्षया गुप्ता) सद्भिराप्तैर्विद्वद्भिः कृतसत्योपदेशया दीक्षया गुप्ता रक्षिताः सर्वमनुष्याणां रक्षितारश्च स्युः (यज्ञे प्रतिष्ठिताः) (यज्ञो वै विष्णुः) व्यापके परमेश्वरे सर्वोपकारके ऽध्वरमेथादौ शिल्पविद्याक्रिया कुशलत्वे च प्रतिष्ठिताः प्राप्तप्रतिष्ठाश्च भवन्तु (लोको निधनम्) अयं लोकः सर्वेषां मनुष्याणां निधनं यावन्मृत्युर्न भवेत्तावत्सर्वोपकारकं सत्कर्मानुष्ठानं कर्त्तुं योग्यमस्तीति सर्वैर्मन्तव्यमितीश्वरोपदेशः ॥ ११ ॥ अन्यच्च । (ओजश्च) न्यायपालनान्वितः पराक्रमः (तेजश्च) प्रगल्भता धृष्टता निर्भयता निर्दीनता सत्ये व्यवहारे कर्त्तव्या (सहश्च) सुखदुःखहानिलाभादिक्लेशपदवर्त्तमानप्राप्तावपि हर्षशोकाकरणं तन्निवारणार्थं परमप्रयत्नानुष्ठानं च सहनं सर्वैः सदा कर्त्तव्यम् (बलं च) ब्रह्मचर्य्यादिसुनियमाचरणे न शरीरबुद्ध्यादिरोगनिराकरणं दृढाङ्गतानिश्चलबुद्धित्वसंपादनं भीषणादिकर्मयुक्तं बलं च कार्य्यमिति (वाक् च) विद्या शिक्षा सत्यमधुरभाषणादि शुभगुणयुक्ता वाणी कार्य्येति (इन्द्रियं च) मन आदीनि वाग्भिन्नानि षड् ज्ञानेन्द्रियाणि वाक् चेति कर्मेन्द्रियाणामुपलक्षणेन कर्मेन्द्रियाणि च सत्यधर्माचरणयुक्तानि पाणाद्यतिरिक्तानि च सदैव रक्षणीयानि

(श्रीश्च) सुराष्ट्रराज्यश्रीः परमपुरुषार्थेन कार्य्येति (धर्मश्च) अयमेव वेदोक्तो न्याय्यः पक्षपातरहितः सत्याचरणयुक्तः पक्षपातकारकश्च धर्मः सर्वैरेव सर्वैः सेवनीयः । अस्मादेवेयं पूर्वापरा सर्वा व्याख्यास्तीति बोध्यम् ॥ १२ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(स्वधया परिहिता) सब प्रकार से मनुष्य लोग स्वधा अर्थात् अपनेही पक्षार्थों का धारण करें इस सूत्र रूप व्यवहार से सदा युक्त हों (अदृणा पर्यूढा) सब मनुष्य सत्य व्यवहार पर अत्यंत विश्वास को प्राप्त हों क्योंकि जो सत्य है वही विश्वास का मूल, तथा सत्य का आचरणही उस का फल, और स्वरूप है, असत्य कभी नहीं (दीक्षया गुप्ता) विद्वानों की सत्य शिक्षा से रक्षा को प्राप्त हो और मनुष्य आदि प्राणियों की रक्षा में परम पुरुषार्थ करो (यज्ञे प्रतिष्ठिता) यज्ञ जो सब में व्यापक अर्थात् परमेश्वर यथवा सब संसार का उपकार करने वाला अग्निहोत्रादि यज्ञ अथवा जो शिल्प विद्या सिद्ध कर के उपकार लेना जो यज्ञ है इस तीन प्रकार के यज्ञ में सब मनुष्य यथावत् प्रवृत्ति करें (लोकोनि०) जब तक तुम लोग जीते रहो तब तक सदा सत्य कर्म में मेरी पुरुषार्थ करते रहो किंतु इस में आलस्य कभी मत करो ईश्वर का यह उपदेश सब मनुष्यों के लिये है ॥ ११ ॥ (क्षेमश्च) धर्म से पालन से युक्त जो निर्भयता (योगश्च) निर्भयता अर्थात् भय रहित होके दीनता से दूर रहना (धृतिश्च) सुख दुःख हानि लाभ आदि की प्राप्ति में भी हर्ष शोकादि छोड़ के सत्यधर्म में दृढ़ रहना दुःख का निवारण और सहन करना (शक्तिश्च) ब्रह्मचर्य्य आदि अच्छे नियमों से शरीर का आरोग्य बुद्धि की चतुराई आदि बल का बढ़ाना (शान्तिश्च) सत्य विद्या की शिक्षा सत्य मधुर अर्थात् कोमल प्रिय भाषण का करना (दृष्टिश्च) जो मन पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय हैं उन को पक्षपातों से रोक के सदा सत्य पुरुषार्थ में प्रवृत्त रखना (श्रीश्च) चक्रवर्त्ति राज्य की सामग्री को सिद्ध करना (धर्मश्च) जो वेदोक्त न्याय से युक्त हो के पक्षपात को छोड़ के सत्यों का सदा आचरण और असत्य का त्याग करना है तथा जो सब का उपकार करने वाला और जिस का फल इस जन्म और परजन्म में आनन्द है उसी को धर्म और उस से उलटा करने को अधर्म कहते हैं उसी धर्म की यह सब व्याख्या है कि जो (संगच्छध्वं०) इस मंत्र से लेके (मनोजुवम०) इस सूत्र तक जितने धर्म के लक्षण लिखे हैं वे सब लक्षण मनुष्यों को ग्रहण करने के योग्य हैं ॥ १२ ॥

ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥ १३ ॥ आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ १४ ॥ पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च सदनं च

सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजां च प्रशवश्च ॥ १५ ॥ अथर्व० कां० १२ अनु० ५ मं० ८ । ९ । १० ।

॥ भाष्यम् ॥

इत्याद्यनेकमंत्रप्रमाणेषु धर्मोपदेशो वेदेष्वीश्वरेणैव सर्वमनुष्यार्थमुपदिष्टोऽस्ति (ब्रह्म च) ब्राह्मणोपलक्षणं सर्वोत्तमविद्यागुणकर्मवत्त्वं सद्गुणप्रचारकरणत्वं च ब्राह्मणलक्षणं सदा सदैव धर्त्तव्यमस्ति (क्षत्रं च) क्षत्रियोपलक्षणं विद्याबलशौर्य्यतेजोधैर्य्यवीरपुरुषार्थान्वितं च सदैवोन्नेयम् (राष्ट्रं च) सत्पुरुषसभयासुनियमैः सर्वसुखाढ्यं शुभगुणान्वितं च राज्यं सदैव कार्य्यम् (विशश्च) वैश्यादि प्रजानां व्यापारादिकारिणां भूगोलेष्वाहतगतिसंपादनेन व्यापाराद्धनवृद्ध्यै संरक्षणं च कार्य्यम् (त्विषिश्च) दीप्तिः शुभगुणानां प्रकाशः सत्यगुणकामना च शुद्धा प्रचारणीयेति (यशश्च) धर्मान्वितानुत्तमा कीर्तिः संस्थापनीया (वर्चश्च) सद्विद्याप्रचारं सम्यगध्ययनाध्यापनप्रबन्धं कर्म सदा कार्य्यम् (द्रविणं च) अन्नाद्यस्य पदार्थस्य न्यायेन प्राप्तीच्छा कार्य्या प्राप्तस्य संरक्षणं रक्षितस्य वृद्धिर्वृद्धस्य सत्कर्मसु व्ययश्च योजनीयः । एतच्चतुर्विधपुरुषार्थेन धनधान्योन्नतिः सुखे सदैव कार्य्ये ॥ १३ ॥ (आयुश्च) वीर्य्यादिरक्षणेन भोजनाच्छादनादिसुनियमेन ब्रह्मचर्य्येसुसेवनेनायुर्बलं कार्य्यम् (रूपं च) निरंतरविषयसेवनेन सदैव सौन्दर्य्यादिगुणयुक्तं स्वरूपं रक्षणीयम् (नाम च) सत्कर्मानुष्ठानेन नाम प्रसिद्धिः कार्य्या यतो ऽन्यस्यापि सत्कर्मसूत्साहवृद्धिः स्यात् (कीर्तिश्च) सद्गुणग्रहणार्थमीश्वरगुणानामुपदेशार्थं कीर्तनं स्वसत्कीर्तिमत्त्वं च सदैव कार्य्यम् (प्राणश्चापानश्च) प्राणायामरीत्या प्राणापानयोः शुद्धिर्बले कार्य्ये । शरीराद्बाह्यदेशं यो वायुर्गच्छति स प्राणः । बाह्याद्देशाच्छरीरं प्रविशति स वायुरपानः । शुद्धदेशनिवासादिनैतयोः प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां बुद्धिशरीरबले च संपादनीयम् (चक्षुश्च श्रोत्रं च) चाक्षुषं प्रत्यक्षं श्रोत्रं शब्दजन्यं चादनुमानादीन्यपि प्रमाणानि यथावद्वेदितव्यानि सैः सत्यं विज्ञानं च सर्वदा कार्य्यम् ॥ १४ ॥ (पयश्च रसश्च) पयोबलादिकं रसो दुग्धघृतादिश्चेतौ वैद्यकरीत्या सम्यक् शोधयित्वा भोक्तव्यौ । (अन्नं चान्नादं च) अन्नमोदनादिकमन्नादं भोक्तुमर्हं शुद्धं संस्कृतमन्नं संपाद्यैव भोक्तव्यम् (ऋतं च सत्यं च) ऋतं ब्रह्म सर्वदैवोपासनीयं सत्यं प्रत्यक्षादिभिः प्रमाणैः परीक्षितं यादृशं स्वात्मन्यस्ति तादृशं सदा सत्यमेव वक्तव्यम् ।

मन्तव्यं च । (दृष्टं च पूर्तं च) दृष्टं ब्रह्मौदनं सर्वोपकारकं यज्ञानुष्ठानं च पूर्तं तु यत्पुत्तर्थं मनसा ध्याया कर्मणा सम्यक् पुरुषार्थेनैव सर्ववस्तुसंभारैश्चोभयानुष्ठानपूर्तिः कार्य्येति (प्रजा च पशवश्च) प्रजामंत्रानादिद्वाराज्यं च सुशिक्षा विद्या सुखान्विता हस्त्यश्वादयः पशवश्च सम्यक् शिक्षान्विताः कार्य्याः । चतुर्भिश्चकारैरन्येपि शुभगुणा अत्र ग्राह्याः ॥ १५ ॥

॥ समाप्तार्थं ॥

(ब्रह्म च) सब से उत्तम विद्या और श्रेष्ठ कर्म करने वालों को ही ब्राह्मण वर्ण का अधिकार देना उन से विद्या का प्रचार कराना और उन लोगों को भी चाहिये कि विद्या के प्रचार में ही सदा तत्पर रहें (वर्म च) अर्थात् सब कामों में चतुरता शूरवीर पन धीरज और पुरुषों से युक्त सेना का रखना दुष्टों को दंड देना और श्रेष्ठों का पालन करना इत्यादि गुणों के बढ़ाने वाले पुरुषों को क्षत्रिय वर्ण का अधिकार देना (राष्ट्रं च) श्रेष्ठ पुरुषों की सभा के अच्छे नियमों से राज्य को सब सुखों से युक्त करना और उत्तम गुणसंहति होके सब कामों को सदा सिद्ध करना चाहिये (विशश्च) वैश्य आदि वर्णों को व्यापारादि व्यवहारों में भूगोल के बीच में जाने आने का प्रबंध करना और उनकी अच्छी रीति से रक्षा करनी अवश्य है जिस से धनादि पदार्थों की संसार में बढ़ती हो (त्विषिश्च) सब मनुष्यों में सब दिन सत्य गुणोंही का प्रकाश करना चाहिये (यशश्च) उत्तम कामों से भूगोल में श्रेष्ठ कीर्त्ति को बढ़ाना उचित है (वर्षश्च) सत्यविद्याओं के प्रचार के लिये अनेक पाठशालाओं में पुत्र और अन्यों को अच्छी रीति से पढ़ने पढ़ाने का प्रचार सदा बढ़ाते जाना चाहिये (द्रविणं च) सब मनुष्यों को उचित है कि पूर्वोक्त धर्म से अप्राप्त पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा से सदा पुरुषार्थ करना, प्राप्त पदार्थों की रक्षा यथावत् करनी चाहिये, रक्षा किये पदार्थों की सदा बढ़ती करना, और सत्य विद्या के प्रचार आदि कामों में बढ़े हुए धनादि पदार्थों का खरच यथावत् करना चाहिये, इस चार प्रकार के पुरुषार्थ से धनधान्यादि को बढ़ाके सुख को सदा बढ़ाते जाओ ॥ १५ ॥ (आयुश्च) वीर्य्य आदि धातुओं की शुद्धि और रक्षा करना तथा युक्ति पूर्वक ही भोजन और वस्त्र आदि का लेना धारण करना है इन अच्छे नियमों से उमर को सदा बढ़ाओ (रूपं च) अत्यंत विषय सेवा से पृथक् रहे के और शुद्ध वस्त्र आदि धारण से शरीर का स्वरूप सदा उत्तम रखना (नाम च) उत्तम कर्मों के आचरण से नाम की प्रसिद्धि करनी चाहिये जिस से अन्य मनुष्यों का भी श्रेष्ठ कर्मों में उत्साह हो (कीर्त्तिश्च) श्रेष्ठ गुणों के ग्रहण के लिये परमेश्वर के गुणों का श्रवण और उपदेश करने रहो जिस से तुम्हारा भी यश बढ़े (प्राणश्चापानश्च) जो वायु भीतर से बाहर आता है उस को

प्राण और जो बाहर से भीतर जाता है उस को अपान कहते हैं योगाभ्यास शुद्ध देश में निवास आदि और भीतर से बल करके प्राण को बाहर निकाल के रोकने से शरीर के रोगों को छुड़ा के वृद्धि आदि को बढ़ाओ (चतुश्च योगं च) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, संभव, और अभाव, इन आठ प्रमाणों के विज्ञान से सत्य का नित्य शोधन करके ग्रहण किया करो ॥ १४ ॥ (पयश्च रसश्च) जो पय अर्थात् दूध जल आदि और जो रस अर्थात् शक्कर ओषधि और घी आदि हैं इन को वैद्यक शास्त्रों की रीति से यथावत् शोध के भोजन आदि करते रहो (अन्नं चान्नाद्यं च) वैद्यक शास्त्र की रीति से तण्डुल आदि अन्न का यथावत् संस्कार करके भोजन करना चाहिये (सत्यं च सत्यं च) सत्य नाम जो ब्रह्म है उसी की सदा उपासना करनी जैसा हृदय में ज्ञान हो सदा वैसाही भाषण करना और सत्य कोही मानना चाहिये (इष्टं च पूर्तं च) इष्ट जो ब्रह्म है उसी की उपासना और जो पूर्वोक्त यज्ञ सब संसार को सुख देने वाला है उस इष्ट की सिद्धि करने की पूर्त्ति और जिस २ उत्तम कामों के आरंभ को यथावत् पूर्ण करने के लिये जो २ अवश्य हो सो २ सामग्री पूर्ण करनी चाहिये (प्रजा च पशवश्च) सब मनुष्य लोग अपने संतान और पशु को अच्छी शिक्षा दिया करें और हस्ती तथा घोड़े आदि पशुओं को भी अच्छी रीति से सुशिक्षित करना उचित है इन मंत्रों में और भी अनेक प्रयोजन हैं कि सब मनुष्य लोग अन्य भी धर्म के शुभ लक्षणों का ग्रहण करें ॥ १५ ॥

॥ भाष्यम् ॥

अत्र धर्मविषये तैत्तिरीयशाखाया अन्यदपि प्रमाणम् । सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यं च स्वा० तपश्च स्वा० दमश्च स्वा० शमश्च स्वा० अग्नयश्च स्वा० अग्निहोत्रं च स्वा० अतिथयश्च स्वा० मानुषं च स्वा० प्रजा च स्वा० प्रजनश्च स्वा० प्रजातिश्च स्वा० सत्यमितिसत्यवचाराथीतरः । तपइति तपोनित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धितपस्तद्धितपः ॥ १ ॥ वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं माव्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्र० कुशलान्न प्र० भूत्यै न प्र० स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्र० देवपितृकार्य्याभ्यां न प्र० । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि । यान्यस्माकꣳसुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि ॥ २ ॥ नो इतराणि । ये के चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः । तेषां त्वयासनेन प्रश्वसित-

ददत् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धया देयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् । अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता आयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युः । यथा ते तेषु वर्तेरन् तथा तेषु वर्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः । एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमु चैतदुपास्यम् ॥ ४ ॥ तैत्तिरीय आरण्यके । प्रप्ा० ७ । अनु० ६ । १९ ॥

॥ भाषार्थ ॥

तैत्तिरीयशाखा में और भी धर्म का विषय है सो आगे लिखते हैं (धर्मं च०) यह सब मनुष्यों को उचित है कि अपने ज्ञान और क्रिया को बढ़ाते हुए वेद और वेदोक्त धर्म की उपासना करते रहें उस के साथ वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना भी बराबर करते जायें (सत्यं च०) प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से ठीक २ परीक्षा करके जैसा तुम अपने आत्मा में ज्ञान से जानते हो वैसा ही बोलो और उसी को मानो उस के साथ पढ़ना पढ़ाना भी कभी न छोड़ो (तपश्च०) विद्या ग्रहण के लिये ब्रह्मचर्य आश्रम को पूर्ण करके सदा धर्म में निश्चित रहो (दमश्च०) अपनी आंख आदि इंद्रियों को अधर्म और आलस्य से छुड़ा के सदा धर्म में चलाओ (शमश्च०) अपने आत्मा और मन को सदा धर्म में अत्यन्त ही स्थिर रक्खो (अग्नयश्च०) तीनों वेद और अग्नि आदि पदार्थों से धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध करो तथा अनेक प्रकार से शिल्प विद्या की उन्नति करो (अग्निहोत्रं च०) वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों से सब सृष्टि का उपकार सदा करते रहो (अतिथयश्च०) जो सब जगत् के उपकार के लिये सत्यवादी सत्यकारी पूर्ण विद्वान् सब का सुख चाहने वाले हों उन सत्पुरुषों के संग से आने के योग्य अतिथियों को सदा बढ़ाते रहो (मानुषं च०) सब मनुष्यों को राज्य और प्रजा के ठीक २ प्रबंध से धन आदि पदार्थों को बढ़ाते रहा करो और अच्छे कामों में खर्च करके उन से धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष, इन चारों फल को सिद्ध द्वारा अपना जन्म सफल करो (प्रजा च०) अपने संतानों का यथायोग्य पालन शिक्षा से विद्वान् करके सदा धर्मात्मा और पुरुषार्थी बनाते रहो (प्रजनश्च०) जो संतानों की उत्पत्ति करने का व्यवहार है उसको पुरुषार्थ करते हैं उस में श्रेष्ठ भोजन और औषध सेवन सदा करते रहो तथा ठीक २ गर्भ की रक्षा भी करो (प्रजातिश्च०) पुत्र और कन्याओं के जन्म समय में स्त्री और बालकों की रक्षा युक्तिपूर्वक करो यहां से लेके प्रजाति पर्यन्त धर्म के जो कारण

लक्षण होते हैं उन सब के साथ स्वाध्याय जो पढ़ना और प्रवचन जो पढ़ाने का उपदेश किया है सो इसलिये है कि पूर्वोक्त जो धर्म के लक्षण हैं वे सब प्राप्त होसकते हैं कि जब मनुष्य लोग सत्य विद्या को पढ़ें और सभी सदा सुख में रहेंगे क्योंकि सब गुणों में विद्याही उत्तम गुण है इसलिये सब धर्म लक्षणों के साथ स्वाध्याय और प्रवचन का ग्रहण किया है सो इन का त्याग करना कभी न चाहिये (सत्यमिति०) हे मनुष्य लोगो तुम सब दिन सत्यवचन ही बोलो (तप इति०) धर्म और ईश्वर की प्राप्ति करने के लिये नित्य विद्या ग्रहण करो अर्थात् विद्या का जो पढ़ना पढ़ाना है यही सब से उत्तम है ॥ १ ॥ (वेदमनूच्या०) जो आचार्य्य अर्थात् विद्या और शिक्षा का देने वाला है वह शिक्षा पढ़ने के समय और जब तक न पढ़चुके तब तक अपने पुत्र और शिष्यों को इस प्रकार उपदेश करे कि हे पुत्रो वा शिष्यलोगो तुम सदा सत्यही बोला करो और धर्म कार्य्य से बच कर के एक परमेश्वरही की भक्ति किया करो इस में आलस्य वा प्रमाद कभी मत करो आचार्य्य को अनेक उत्तम पदार्थ देकर प्रसन्न करो और युवा अवस्था में ही विवाह करके प्रजा की उत्पत्ति करो तथा सत्यधर्म को कभी मत छोड़ो कुशलता अर्थात् चतुराई को सदा ग्रहण करके भूति अर्थात् उत्तम ऐश्वर्य्य को सदा बढ़ाते जाओ और पढ़ने पढ़ाने में कभी आलस्य मतकरो ॥ २ ॥ (देवपितृ०) देव जो विद्वान् लोग और पितृ अर्थात् ज्ञानी लोगों की सेवा और संग से विद्या के ग्रहण करने में आलस्य वा प्रमाद कभी मत करो माता पिता आचार्य्य अर्थात् विद्या के देनेवाले और अतिथि जो सत्य उपदेश के करनेवाले विद्वान पुरुष हैं उनकी सेवा में आलस्य कभी मत करो ऐसेही सत्य भाषणादि शुभ गुणों और कर्मोंही का सदा सेवन करो किंतु मिथ्या भाषणादि को कभी मत करो माता पिता और आचार्य्य आदि अपने संतानों तथा शिष्यों को ऐसा उपदेश करें कि हे पुत्रो वा शिष्य लोगो हमारे जो सुचरित्र अर्थात् अच्छे काम हैं तुमलोग उन्हीं का ग्रहण करो किंतु हमारे बुरे कामों को कभी नहीं जो हमारे बीच में विद्वान् और ब्रह्म के जाननेवाले धर्मात्मा मनुष्य हैं उन्हीं के वचनों में विश्वास करो और उनको प्रीति वा अप्रीति से भी वा लज्जा से भय अथवा प्रतिज्ञा से सदा दान देतेरहो तथा विद्या दान सदा करते जाओ और जब तुमको किसी बात में संदेह हो तब पूर्ण विद्वान् यत्नवान् रहित धर्मात्मा मनुष्यों से पूछ के शंका निवारण सदा करते रहो वे लोग जिस २ प्रकार से जिस २ धर्म काम में चलते होवें वैसे ही तुम भी चलो यही आदेश अर्थात् अविद्या को हटाके उसके स्थान में विद्या का और अधर्म को हटा के धर्मका स्थापन करना है इसी को उपदेश और शिक्षा भी कहते हैं इसी प्रकार शुभ लक्षणों को ग्रहण करके एक परमेश्वर ही की सदा उपासना करो ॥

॥ भाष्यम् ॥

तपः तपः सत्यं तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो भूर्भुवः सुवरित्येतत्तपः ॥ तैत्ति० आरण्य० प्र० १० अनु० ८ ॥ सत्यं परं परꣳ सत्यꣳ सत्येन नसुवर्गाल्लोकाच्च्यवन्ते कदाचन सत्याꣳ हि सत्यं तस्मात्सत्ये रमन्ते ॥ तपइति तपोमात्रशमान्यं यद्विपरं तपस्तद्दुर्धर्षं तद्दुराधर्षं तस्मात्तपसि० ॥ दमइति नियतं ब्रह्मचारिणस्तस्माद्दमे० ॥ शम इत्यरण्ये मुनयस्तस्माच्छमे० ॥ दानमिति सर्वाणि भूतानि प्रꣳसन्ति दानान्नाति दुष्करं तस्माद्दाने० ॥ धर्मइति धर्मेण सर्वमिदं परिगृहीतं धर्मान्नाति दुष्करं तस्माद्धर्मे० ॥ प्रजनइति क्षुयाꣳसस्तस्माद्बुध्यिष्ठाः प्रजायन्ते तस्माद्बुध्यिष्ठाः प्रजनने० ॥ आग्नेयइत्याह तस्मादग्नये आधेयाः अग्निहोत्रमित्याह तस्मादग्निहोत्रे० ॥ यज्ञइति यज्ञेन हि देवादिवंशतास्तस्माद्यज्ञे० ॥ मानसमिति विद्वाꣳसस्तस्माद्विद्वाꣳसं च यज्ञं मानसे रमन्ते ॥ न्यास इति ब्रह्मात्मना हि परः परोहि ब्रह्मा नामि वा मतान्यपराणि तपाꣳसि न्यास एवात्यरेच यत् । यज्ञं वेदेत्युपनिषत् ॥ प्रजापत्यो ह वै पुत्रेभ्यः सुपर्णेभ्यः प्रजापतिं पितरमुपससार किं भगवन्तः परमं वदन्तीति तस्मै प्रोवाच सत्येन वायुराति सत्येनादित्यो रोचते दिवि सत्यं वाचः प्रतिष्ठा सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात्सत्यं परमं वदन्ति ॥ तपसा देवा देवतामग्रमायन्तपसर्षयः सुवरन्वविन्दन् तपसा सपत्नान्प्रणुदामारातीस्तपसि सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात्तपः प० ॥ दमेन दान्ताः किल्बिषमदहन्ति दमेन ब्रह्मचारिणः सुवरगच्छन् दमोभूतानां दुराधर्षं दमे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्दमं प० ॥ शमेन शान्ताः शिवमाचरन्ति शमेन नाकं मुनयोन्वविन्दञ्छमोभूतानां दुराधर्षं शमे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माच्छमं प० दाने यज्ञानां बहुशो दक्षिणालोके दातारमभ्युपपद्यन्ति दानेनारातीरनुपानुदन्त दानेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति दाने सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्दानं प० धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठालोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति धर्मेण पापमपनुदन्ति धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्धर्मं प० प्रजननं वै प्रतिष्ठालोके साधुप्रजायास्तन्तुं तन्वानः पितृणामनृणो भवति तदेव तस्य अनृणं तस्मात्प्रजननं प० आग्नेयो वै पशवो देवयानः पन्था गार्हपत्यश्चक्षुः पृथिवीरथन्तरमन्वाहार्य्यं यजुरन्तरिक्षं सामदैवत्यमाहवनीयः सामसुवर्गो लोको वृत्तनक्षत्रमग्नीन्प० ॥ अग्निहोत्रꣳसायं प्रातर्गृहाणां निष्कृतिः स्विष्टꣳसुहुतं यज्ञ-

क्रतूनां प्रापणश्चसुवर्गस्य लोकस्य ज्योतिस्तस्मादग्निहोत्रं प० ॥ यज्ञ इति यज्ञेन हि देवा दिवंगता यज्ञेनासुरानपानुदन्त यज्ञेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्यज्ञं प० ॥ मानसं वै प्राजापत्यं पवित्रं मानसेन मनसा साधु पश्यति मानसा ऋषयः प्रजा असृजन्तमानसे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मान्मानसं परमं वदन्ति ॥ तैत्ति० आरण्य० प्रपा० १० अनु० ६२ । ६३ ॥ (अनेनाभि०) सर्वैर्मनुष्यैरेतानि यज्ञयमानानि धर्मलक्षणानि सदैव सेव्यानीति । (ऋतं च०) यथार्थस्वरूपं वा ज्ञानं (सत्यं च०) सत्यस्याचरणं च (तपश्च०) ज्ञानधर्मयोर्ऋतादिधर्मलक्षणानां यथावदनुष्ठानम् (दमश्च) अधर्माचरणादिन्द्रियाणि सर्वथा निवर्त्य तेषां सत्यधर्माचरणे सदैव प्रवृत्तिः कार्य्या (शमश्च०) नैव मनसापि कदाचिदधर्मकरणेच्छा कार्य्येति (अग्नयश्च०) वेदादिशास्त्रेभ्यो ऽग्न्यादिपदार्थेभ्यश्च पारमार्थिकव्यावहारिकविद्योपकारकरणम् (अग्निहोत्रं च) नित्यहोममारभ्याश्वमेधपर्य्यन्तेन यज्ञेन वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारा सर्वप्राणिनां सुखसंपादनंकार्य्यम् (अतिथय०) पूर्णविद्यावतां धर्मात्मनां संगसेवाभ्यां सत्यशोधनं छिन्नसंशयत्वं च कार्य्यम् (मानुषं च०) मनुष्यसंबंधिराज्यविद्यादिवित्तं सम्यक् सिद्धं कर्त्तव्यम् (प्रजा च०) धर्मेणैव प्रजामुत्पादा सा सदैव सत्यधर्मविद्या सुशिक्षयान्विता कार्य्या (प्रजनश्च०) वीर्य्यवृद्धिः पुत्रेष्टिरीत्या ऋतुप्रदानं च कर्त्तव्यम् । (प्रजातिश्च०) गर्भरक्षाजन्यसमये संरक्षणं संतानशरीरवृद्धिवर्धनं च कर्त्तव्यम् (सत्यमिति०) मनुष्यः सदा सत्यवक्तैव भवेदिति राथीतराचार्य्यस्य मतमस्ति (तपइति०) यद्वतादि सेवनेनैव सत्यविद्याधर्मानुष्ठानमस्ति तान्नित्यमेव कर्त्तव्यमिति पौरुशिष्टेराचार्य्यस्य मतमस्ति । परं तु नाकौमौद्गल्यस्येदं मतमस्ति स्वाध्यायो वेदविद्याध्ययनं प्रवचनं सदध्यापनं चेत्युभयं सर्वेभ्यः श्रेष्ठतमं कर्मास्ति । इदमेव मनुष्येषु परमं तपोस्ति नातःपरमुत्तमं धर्मलक्षणं किंचिद्विद्यत इति (वेदमनूच्या०) आचार्य्यः शिष्याय वेदानध्याप्यधर्ममुपदिशति हे शिष्य त्वया सदैव सत्यमेव वक्तव्यम् सत्यभाषणादिलक्षणोधर्मश्च सेवनीयः शास्त्राध्ययनाध्यापने कदापि नैव त्याज्ये आचार्य्यसेवा प्रजोत्पत्तिश्च सत्यधर्मकुशलतैश्वर्य्यसंपर्धनसेवने सदैव कर्त्तव्ये देवा विद्वांसः पितरो ज्ञानिनश्च तेभ्यो ज्ञानग्रहणं तेषां सेवनं च सदैव कार्य्यमेवं मातृपित्राचार्य्यातिथीनां सेवनं चैतत्सर्वं संप्रीत्या कर्त्तव्यम् । नैतत्कदापि प्रमादात्त्याज्यमिति । वक्ष्यमाणरीत्या

यादाहृत्य उपदिशेयुः । भोः पुत्रायानुलसति धर्म्याणि चर्यं कुमेवमन्येव सुचरितान्याचरितव्यानि यानि तु पापात्मकानि कालिखिदस्माभिः क्रियन्ते तानि कदापि नैवाचरणीयानि । ये अस्माकं मध्ये विद्वांसो ब्राह्मणाः शुद्धसत्त्वसंगतस्तुप्रविश्वासश्च सदैव कर्तव्यो नेतरेषाम् । मनुष्यैर्विद्यादिपदार्थदानं प्रीत्याऽप्रीत्या श्रिया लज्जया भयेन प्रतिज्ञया च सदैव कर्तव्यम् । धर्मोन्नतिप्रवाहानुसारीव श्रेयस्कारसिति । भोः शिष्य तव क्वास्ति चित्तस्थैर्यमाचरणे च संशयो भवेत्तदा ब्रह्मविदां पक्षपातरहितानां योगिनामपर्यात् पृथग्भूतानां विद्वादिगुणैः क्रियमाणां धर्मकामानां विदुषां यद्यद्भानदुनरं याद्यं तेषामेवाचरणं च । यादृशेन मार्गेण ते विचरेयुस्तेनैव मार्गेण त्वयापि गन्तव्यम् । यथमेव युष्माकं हृदय आदेश उपदेशोऽस्ति स्वायत्त इयमेव वेदानामुपनिषदस्ति । ईदृशमेवानुशासनं सर्वैर्मनुष्यैः कर्तव्यम् । ईदृगाचरणपुरःसरमेव परमयद्धया सच्चिदानन्दादिलक्षणं ब्रह्मोपास्यं नान्यथेति ॥ इदानीं तपसो लक्षणमुच्यते ॥ ऋतं मनस्यं ब्रह्मणश्रोपासनं यथार्थज्ञानं च (सत्यं०) सत्यभाषणं सत्याचरणं च (श्रुतं०) सर्वविद्याश्रवणं मननं च । (शान्तं०) अधर्मान्पृथङ्मुख्यमनसो-वर्त्मं श्रेयस्थापनं मनः शान्तिः । (दमस्त०) इन्द्रियाणां धर्मेण प्रवर्तनमधर्मान्निवर्तनं च, (शमस्त०) मनसोऽपि निग्रहश्चाधर्मात्तुमं प्रवर्तनं च ॥ (दानं त०) तथा सत्यविद्यादिदानं सदा कर्तव्यम् (यज्ञस्त०) पूर्वोक्तं यज्ञानुष्ठानं चेतत्सर्वं तपश्शब्देन गृह्यते नान्यदिति । अन्यच्च । (भूयं०) हे मनुष्या सर्वलोकव्यापकं यद्ब्रह्मास्ति तदेव त्वमुपास्येदमेव तपोऽनन्यथं नातो विपरीतमिति । (सत्यं प०) सत्यप्रधानात्सत्याचरणात्तु एवं धर्मलक्षणं किंचिन्नास्त्येव । कुतः । सत्येनैव नित्यं मोक्षसुखं संसारसुखं च प्राप्यपुनस्तत्प्राप्तेश्च कदापि च्युतिर्भवति । सत्यप्रधानात्मि सत्याचरणमेव लक्षणमस्ति तस्मात्सत्यात्सर्वैर्मनुष्यैः सत्ये खलु दत्तमीयमिति ॥ तपस्तु ऋतादिधर्मलक्षणानुष्ठानमेव साध्यम् । एवं सत्यधर्मप्रधानेनेन विद्यायहणं ब्रह्म इत्युच्यते । यज्ञमेव दानादिज्यर्थनतिः कार्या । विदुषो लक्षणं ज्ञानतो व्यापारः । यज्ञमेव सत्येन ब्रह्मणा वायुरावरीति । सत्येनादित्यः प्रकाशितो भवति सत्येनैव मनुष्याणां प्रतिष्ठा जायते नान्यथेति । मानवा ऋषयः प्रथमजन्मादयश्चेति ॥

॥ भाष्यार्थ ॥

(ऋतं तपा०) तप इस को कहते हैं कि जो (ऋत) यथार्थात् यथार्थ तत्त्व मानने सत्य बोलने (श्रुत) अर्थात् सब विद्याओं को सुनने (शांत) अर्थात् उत्तम कर्म करने और अच्छे स्वभाव के धारने में सदा प्रवृत्त रहो तथा पूर्वोक्त दम, शम, दान, यज्ञ, और प्रेम भक्ति से, तीनों लोक में व्यापक ब्रह्मकी जो उपासना करना है उसको भी तप कहते हैं ऋत आदि का अर्थ प्रथम करदिया है (सत्यंपरं०) अब सत्य का स्वरूप दिखाया जाता है कि जिसका ऋत भी नाम है सत्य भाषण और आचरण से उत्तम धर्म का लक्षण कोई भी नहीं है क्योंकि सत्यवों में भी सत्यही सत्युत्तमपन है सत्य मेंही मनुष्यों को व्यवहार और मुक्ति का उत्तम सुख मिलता है जिस से छूटके वे दुःख में कभी नहीं गिरते इस लिये सब मनुष्यों को सत्य में ही रमण करना चाहिये (तपइति०) जो अन्याय से किसी के पदार्थ को ग्रहण करना जिसका ऋत आदि लक्षण कह चुके हैं जो अत्यंत उत्तम और यद्यपि करने में कठिन भी है तथापि बुद्धिमान् मनुष्य को करना सब सुगम है इस से तप में नित्यही निश्चित रहना ठीक है (दमइति०) जितेंद्रिय हो के जो विद्या का अभ्यास और धर्मका आचरण करना है उस में मनुष्यों को नित्य प्रयत्न होना चाहिये (दानमिति०) दान की स्तुति सब लोग करते हैं और जिस से कठिन कर्म दूसरा कोई भी नहीं है जिससे शत्रु भी मित्र होजाते हैं इस से दान करने का स्वभाव सब मनुष्यों को नित्य रखना चाहिये (धर्मरति०) जो धर्मलक्षण प्रथम कह आये हैं और जो आगे कहेंगे वे सब इसी धर्म के हैं क्योंकि जो न्याय अर्थात् पक्षपात को छोड़ के सत्य का आचरण और असत्य का परित्याग करना है उसी को धर्म कहते हैं यही धर्मका स्वरूप और सब से उत्तम धर्म है सब मनुष्यों को इसी में सदा वर्त्तना चाहिये (यजनइति०) जिससे मनुष्यों की बढ़ती होती है जिसमें बहुत मनुष्य रमण करते हैं इस से उसको यज्ञ कहते हैं (अन्नय इत्याह०) तीनों वेद और अग्नि आदि पदार्थों से सब शिल्पविद्या सिद्ध करनी उचित है (अग्निहोत्रं च०) अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्यंत होम करके सब जगत् का उपकार करने में सदा यत्न करना चाहिये (मानसमिति०) जो विचार करने वाले मनुष्य हैं वेही विद्वान् होते हैं इससे विद्वान् लोग विचार ही में सदा रमण करते हैं क्योंकि मन के विज्ञान आदि गुण हैं वेही ईश्वर और जीव की सृष्टि के हेतु हैं इससे मन का यज्ञ और उस की शुद्धि करना भी धर्म का उत्तम लक्षण है (न्यासइति०) ब्रह्मचर्य के अर्थात् चारों वेद को ज्ञान के संसारी व्यवहारों को छोड़ के न्यास अर्थात् संन्यास आश्रम करके जो सब मनुष्यों को सत्यधर्म और सत्यविद्या से लाभ पहुंचना है यह भी विद्वान् मनुष्यों को धर्म का लक्षण जान के करना उचित है (सत्येन वा०) सत्य को उत्तम इसलिये कहते हैं कि सत्य जो अस्म

है उससे सब लोगों का प्रकाश और वायु आदि पदार्थों का रक्षण होता है सत्य से भी सब व्यवहारों में प्रतिष्ठा [illegible] होती मुक्ति का सुख भी मिलता है तथा सत्पुरुषों में सत्याचरण ही सनातन एक है ॥ (तपसा वेदा०) पूर्वोक्त तपसे ही विद्वान् लोग परमेश्वर वेद को प्राप्त होते सब आप्त विद्वान् आदि शत्रुओं को जीत के पापों से छूट के धर्म ही में स्थिर रहते रखते हैं इस से तप को भी श्रेष्ठ कहते हैं (ब्रह्मचर्य०) ब्रह्म से मनुष्य पापों से अलग होके और ब्रह्मचर्य आश्रम का सेवन कर के विद्या को प्राप्त होता है इसलिये धर्म का ब्रह्म भी अच्छा लक्षण है (गर्भेण०) शम का लक्षण यह है कि जिस से मनुष्य लोग अत्याग का ही आचरण करते हैं इस से यह भी धर्म का लक्षण है (दानेन०) दान से ही यज्ञ अर्थात् दाता के आश्रय से सब प्राणियों का जीवन होता है और दान से ही शत्रुओं को भी जीत कर अपना मित्र कर लेते हैं इस से दान भी धर्म का लक्षण है (धर्मोवि०) सब जगत् की प्रतिष्ठा धर्म ही है धर्मात्मा का ही लोक में विश्वास होता है धर्म से ही मनुष्य लोग पापों को छुड़ा देते हैं जितने उत्तम काम हैं वे सब धर्म में ही लिये जाते हैं इसलिये सब से अच्छा धर्म को भी जानना चाहिये (प्रजननं०) जिस से मनुष्यों का अच्छा और प्रजा में वृद्धि होती है और जो परंपरा से ज्ञानियों की सेवा से ऋण अर्थात् बदले का पूरा करना होता है इस से यजन भी धर्म का हेतु है क्योंकि जो मनुष्यों की उत्पत्ति भी नहीं हो तो धर्म को ही कौन करे इस कारण से भी धर्म को ही प्रधान जानो (आनयोवै०) अर्थात् जिस से तुम लोग सामवेद यजुर्वेद तीनों वेदों को पढ़ो क्योंकि विद्वानों के ज्ञान मार्ग को प्राप्त होके पृथिवी आकाश और स्वर्ग इन तीनों प्रकार की विद्या सिद्ध होती है इस से इन तीनों अग्नि अर्थात् वेदों को श्रेष्ठ कहते हैं (अग्निहोत्रं०) प्रातःकाल में संध्या और वायु तथा वृष्टि जल को दुर्गंध से छुड़ा के सुगंधित करने से सब मनुष्यों को स्वर्ग अर्थात् सुख की प्राप्ति होती है इसलिये अग्निहोत्र को भी धर्म का लक्षण कहते हैं (यज्ञेनहि) विद्या से ही विद्वान् लोग स्वर्ग अर्थात् सुख को प्राप्त होते और शत्रुओं को जीत के अपना मित्र कर लेते हैं इस से विद्या और राजसूय आदि यज्ञ को भी धर्म का लक्षण कहते हैं (मानसं वै०) मन के शुद्ध होने से ही विद्वान् लोग प्रजापति अर्थात् परमेश्वर को जान के नित्य सुख को प्राप्त हो सकते हैं पवित्र मन से सत्य ज्ञान होता है और उस में जो विज्ञान आदि अर्थात् गुण हैं उन से परमेश्वर और जीव लोग भी अपनी २ सब प्रजा को प्रत्यक्ष करते हैं अर्थात् परमेश्वर के विद्या आदि गुणों से मनुष्य की प्रजा उत्पन्न होती है इस से मन को भी पवित्र और विद्या युक्त करना है ये भी धर्म के उत्तम लक्षण और साधन हैं इस से मन के पवित्र होने से सब धर्म आर्थ सिद्ध होते हैं ये सब धर्म के ही लक्षण हैं इन में से कुछ तीन पूरे सब लिखे और सुने आगे भी कहेंगे ॥

॥ भाष्यम् ॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा स सम्यङ् ज्ञानेन ब्रह्मचर्य्येण नित्यम् ॥ अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुद्धो यं पश्यन्ति यतयः क्षीण-दोषाः ॥ १ ॥ सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ॥ येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ २ ॥ मुण्डकोपनिषदि । मुं० ३ खं० १ मं० ५ । ६ ॥ अनयोरर्थः ॥ (सत्येन लभ्य०) सत्येन सत्यधर्माचरणेनैवात्मा परमेश्वरो लभ्यो नान्यथेत्ययं मन्त्रः सुगमार्थः ॥ १ ॥ (सत्यमेव०) सत्यमाचरितमेव जयते तेनैव मनुष्यः सदा विजयं प्राप्नोति । अनृतेनाधर्माचरणेन पराजयं च । तथा सत्यधर्मैरेव देवयानो विदुषां यः सदानन्दप्रदो मोक्षमार्गोऽस्ति सोऽपि सत्येनैव विस्तृतः प्रकाशितो भवति । येन च सत्यधर्मानुष्ठानप्रकाशितेन मार्गेणाप्तकामा ऋषयस्तत्क्रमन्ति गच्छन्ति यत्र सत्यस्य धर्मस्य परमं निधानमधिकरणं ब्रह्म वर्त्तते तत्प्राप्यनित्यानन्दमोक्षप्राप्ता भवन्ति । नान्यथेति । अतश्च सत्यधर्मानुष्ठानमधर्मत्यागश्च सर्वैः कर्त्तव्य इति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(सत्येन लभ्यस्तपसा०) अर्थात् जो सत्य आचरण रूप धर्म का अनुष्ठान ठीक २ विज्ञान और ब्रह्मचर्य्य करते हैं इन्हीं शुभगुणों से सब का आत्मा परमेश्वर जाना जाता है जिस को निर्दोष अर्थात् धर्मात्मा ज्ञानी संन्यासी लोग देखते हैं सो सब के आत्माओं का भी आत्मा प्रकाशस्वरूप और सब दिन शुद्ध है उसी की आज्ञा पालन करना सब मनुष्यों को चाहिये ॥ १ ॥ (सत्यमेवजय०) जो सत्य का आचरण करनेवाला है वही मनुष्य सदा विजय और सुख को प्राप्त होता है और जो मिथ्या आचरण अर्थात् झूठे कामों का करनेवाला है वह सदा पराजय और दुःख ही को प्राप्त होता है विद्वानों का जो मार्ग है सो भी सत्य के आचरण से ही खुल जाता है जिस मार्ग से आप्त काम धर्मात्मा विद्वान् लोग छल के सत्य सुख को प्राप्त होते हैं जहां ब्रह्म ही का सत्य स्वरूप सुख सदा प्रकाशित होता है सत्य से ही उस सुख को वे प्राप्त होते हैं असत्य से कभी नहीं इस से सत्य धर्म का आचरण और असत्य का त्याग करना सब मनुष्यों को उचित है ॥ २ ॥

॥ भाष्यम् ॥

अन्यत्र । चोदना लक्षणोऽर्थो धर्मः ॥ १ ॥ पू० मी० अ० १ पा० १ सू० २ । यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ॥ २ ॥ वैशेषिके । अ० १

अ० १ । सू० २ ॥ अनयोर्द्वयोः (वेदयोः) वेदेनाख्यया सत्यधर्माचरणस्य विधानेन तमेव सत्यधर्मौ लक्ष्येते । यो ह्यर्थादधर्माचरणाद्बुद्धिरक्षणयोः सकाशाद्दूरौ भवति । यस्मिन्नेतस्य निषेधः क्रियते यो ह्यनर्थरूपत्वादधर्मोऽयमिति ज्ञात्वा सर्वमनुष्यैस्त्याज्य एति ॥ १ ॥ (यतोऽभ्यु०) यतोऽभ्युदयस्य सांसारिकसुखस्य सम्यक् प्राप्तिर्भवति येन च निःश्रेयसस्य मोक्षसुखस्य च । स एव धर्मो विज्ञेयः । अतो विपरीतोऽधर्मश्च । अहमपि वेदानामेव व्याख्यानकरणात् । सत्यनैसर्गिकप्रमाणाद्याद्यर्थोपदेशो वेदेश्वरेण । सर्वमनुष्यार्थमुपदिष्टो ऽस्त्येव तस्मात् तेनैवायं धर्मोऽस्मिन् नैव त्याज्यस्तथैवेति वेदितव्यम् ॥ २ ॥

इति वेदोक्तधर्मविषयः संक्षेपतः समाप्तः ॥

॥ भाषार्थ ॥

(वेदना०) ईश्वरने वेदों में मनुष्यों के लिये जिस के करने की आज्ञा दी है वही धर्म और जिस के करने की प्रेरणा नहीं की है वह अधर्म कहाता है परंतु वह धर्म अर्थयुक्त अर्थात् सत्यभाषण जो सत्य है उस से अलग होना है इस से धर्म का भी जो सत्याचरण कहना है वही मनुष्यों में मनुष्यपन है ॥ १ ॥ (यतोऽभ्यु०) जिस से अत्यन्त सुख और निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है उसी का नाम धर्म है यह भी वेदों की आज्ञा है इत्यादि प्रमाण वेद मंत्रों से प्रमाणों और युक्ति सृष्टिक्रमों की साक्षियों से यह धर्म का उपदेश किया है कि सब मनुष्यों को इसी धर्म से सदा वर्त्तना उचित है इस से विदित हुआ कि सब मनुष्यों के लिये धर्म और अधर्म एक ही है जो कहीं जो कोई इस में भेद करे तो उस को अज्ञानी और मिथ्यावादी ही समझना चाहिये ॥

इति वेदोक्तधर्मविषयः संक्षेपतः ॥

॥ अथ ऋग्विदादिभाष्यभूमिका ॥

सायणाचार्यैरुद्वटभट्टैः वेबरमोक्षमूलरैश्च प्रपञ्चितम् ॥
विलसन्तीरेतः कुचक्रैश्च धर्मपक्षैः खिलीकृतं प्रपञ्चितम् ॥ १ ॥
न चुत्वुरासीद्रजसो न तर्भ्यं न राज्ञा आसीदवीरहेतोः ॥ आदीद्धुतां
सुष्ठ्वा मरेभ्यो नहीद्धुतस्यपरः किञ्चनास ॥ २ ॥ धर्मभाषीत्सर्व-
ज्ञा शूद्रवर्णेऽग्नेर्गं संक्षिप्तं धर्मेण शूद्रम् ॥ शुक्रेऽग्नावर्पिंक्तं यद्-

सीत्पर्वस्मन्नहिना जायमैकम् ॥ ३ कामस्तदग्रे समवर्त्तताधि-मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ॥ सतोबन्धुमसति निरविन्दन्हृदिप्रतीष्या कवयो मनीषा ॥ ४ ॥ तिरश्चीनो विततोरश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ॥ रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्ता-त्प्रयतिः परस्तात् ॥ ५ ॥ को अद्धावेदकइहप्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः । अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथाको वेदयत आबभूव ॥ ६ ॥ इयं विसृष्टिर्यत आबभूवयदि वादधेयदि वान ॥ यो अ-स्याध्यक्षः परमेव्योमन्त्सो अङ्गवेदयदिवानवेद ॥ ७ ॥ ऋ० अ० ८ अ० ७ व० १७ ॥

॥ भाष्यम् ॥

एतेषामभिप्रायार्थः । यदिदं सकलं जगद्दृश्यते तत् परमेश्वरेणैव सम्यग्यथायोग्यं संरच्य प्रलयावसरे वियोज्य च विनाश्य से पुनः पुनरेवमेव सदा क्रियतइति । (नासदासी०) यदा काष्ठे जगन्नोत्पन्नमासीत्तदा ऽसत् सृष्टेः प्राक् शून्यमाकाशमपि नासीत् । कुतः । तच्छून्यव्यवहारस्य वर्त्तमाना-भावात् (नोसदासीत्तदानीं) तस्मिन्काले सत्प्रकृत्यात्मकमव्यक्तं सत्संज्ञकं यच्चगत्कारणं तदपि नो आसीन्नावर्त्तत (नासीद्रो०) परमाणवो ऽपि नासन् (नो व्योमापरो यत्) व्योमाकाशमपरं यस्मिन् विराड्राख्ये सोपि नो आसीत् किंतु परब्रह्मणः सामर्थ्याख्यमसीत् सूक्ष्मं सर्वस्यास्य परमकारणसंज्ञकमेव तदानीं समवर्त्तत (किमावरीवः०) व्याख्यातः कुहकस्यार्थः कालेधूमाका-रेण सृष्टं किंचिज्जलं वर्त्तमानं भवति । यथा नैलज्जलेन पृथिव्यावरणं भवति नदीप्रवाहादिकं च चलति । अत एवोक्तं तज्जलं गहनं गभीरं किं भवति । नेत्याह किंत्वावरीवः । आवरकमाच्छादकं भवति नैव कदाचित्तस्यातीवाल्पत्वात् तथैव सर्वं जगत् तत्सामर्थ्यादुत्पद्यास्ति तच्छक्तिमति शुद्धे ब्रह्म-णि किं गहनं गभीरमधिकं भवति । नेत्याह । अतस्तद्ब्रह्मणः कदाचि-न्नैवावरकं भवति । कुतः । जगतः किंचिन्मात्रत्वाद्ब्रह्मणोऽनन्तत्वात्तु ॥ ५ ॥ न मृत्युरासीदित्यादिकं सर्वं सुगमार्थमेषामर्थे भाष्ये वक्ष्यामि ॥ (इयं विसृ-ष्टिः) यतः परमेश्वरादियं प्रत्यक्षाविसृष्टिर्विविधासृष्टिराबभूवोत्पन्नासी-

दस्ति तां च यदि दधे धारयति रक्षति यदि वा विनाशयति यदि वा नर-
क्षयति । योऽस्य सर्वस्याध्यक्षः स्वामी (परमे व्योमन्) तस्मिन्परमाकाशा-
त्मनि परमे प्रकृष्टे व्योमवद्व्यापके परमेश्वरेऽवेदानीमपि सर्गो सृष्टिर्हैनसे ।
प्रलयावसरे सर्वस्यादिकारणे परब्रह्मसामर्थ्ये प्रलीनोऽभवति (सोऽध्वरः) स
यज्ञोऽध्वरः परमेश्वरोऽस्ति । (ऋक्सदेद) हे ऋक्सामित्रजीव त्वं यो वेद स विद्वान्
परमानन्दमाप्नोति । यदि त्वं सर्वेषां मनुष्याणां परमिष्टं सच्चिदानन्दादिलक्षणं
नित्यं सामर्थ्यमेव वेद वा विज्ञापयामि स परमं सुखमपि लभते ॥ ७ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(नासदासीत्) जब यह कार्य्य सृष्टि उत्पन्न नहीं हुई थी तब अज
सर्वशक्तिमान् परमेश्वर और दूसरा जगत् का कारण अर्थात् जगत् बनाने की
सामग्री विराजमान थी उस समय (असत्) शून्यनाम आकाश अर्थात् जो
देखो वा देखने में नहीं आता सो भी नहीं था क्योंकि उस समय उस का
व्यवहार नहीं था (नोसदासीदजोनो०) उस काल में (सत्) अर्थात् अतिः-
सूक्ष्म रजोगुण और तमोगुण मिलाके जो प्रधान कहाता है वह भी नहीं था
(नासीद्रजः) उस समय परमाणु भी नहीं थे तथा (नोव्यो०) विराट् अर्थात्
जो यह स्थूल जगत् के निवास का स्थान है सो भी नहीं था (किमा०) जो
यह वर्त्तमान जगत् है वह भी अनन्त शुद्ध ब्रह्म को नहीं ढांक सकता
और उससे अधिक वा आधार भी नहीं हो सकता जैसे कोहरा का जल पृथिवी
को नहीं ढांक सकता है उस जल से नदी में प्रवाह भी नहीं चल सकता
और न इस कभी गहरा वा उथला हो सकता है इससे क्या जाना जाता है
कि परमेश्वर अनंत है और जो यह उसका बनाया जगत् है सो ईश्वर की
अपेक्षा से कुछ भी नहीं है ॥ १ ॥ (नमृत्यु०) जब जगत् नहीं था तब मृत्यु
भी नहीं था क्योंकि जब स्थूल जगत् संयोग से उत्पन्न होके वर्त्तमान हो पुनः
उस का और शरीर आदि का वियोग हो तब मृत्यु कहावे सो शरीर आदि
कहांसे उत्पन्नहीं नहीं हुए थे (न मृत्यु०) इत्यादि पांच मंत्र सुगमार्थ हैं इसी
लिये इन की व्याख्या भी यहां नहीं करते किंतु वेदभाष्य में करेंगे (इयं विसृष्टिः०)
जिस परमेश्वर के रचने से जो यह नाना प्रकार का जगत् उत्पन्न हुआ है
वही इस जगत् को धारण करता नाश करता और पालित भी है हे मित्र
लोगो जो मनुष्य उस परमेश्वर को अपनी बुद्धि से जानता है वही परमेश्वर
को प्राप्त होता है और जो उस को नहीं जानता वही दुःख से बहता है जो
आकाश के समान व्यापक है उसी ईश्वर में सब जगत् निवास करता है और
जब प्रलय होता है तब भी सब जगत् कारणरूप होके ईश्वर के सामर्थ्य
में रहता है और फिर भी उसी से उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ॥ सदाधार पृथिवीं द्यामुते मां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥ ऋ० अ० ८ अ० ७ व० ३ मं० १ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(हिरण्यगर्भः०) अग्रे सृष्टेः प्राग्धिरण्यगर्भः परमेश्वरो जातस्यास्योत्पन्नस्य जगत एक अद्वितीयः पतिरेव समवर्त्तत । स पृथिवीमारभ्यद्युपर्य्यन्तं सकलं जगद्रचयित्वा (दाधार) धारितवानस्ति तस्मै सुखस्वरूपाय देवाय हविषा वयं विधेमेति ॥ १ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(हिरण्यगर्भः०) हिरण्यगर्भ जो परमेश्वर है वही एक सृष्टि के पहिले वर्त्तमान था । सो इस सब जगत् का स्वामी है और वही पृथिवी से लेके सूर्य्य पर्य्यन्त सब जगत् को रच के धारण कर रहा है इस लिये उसी सुखस्वरूप परमेश्वर देव की हम लोग उपासना करें अन्य की नहीं ॥ १ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ स भूमिꣳसर्वतस्पृत्वा ऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥ य० अ० ३१ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(सहस्रशीर्षा०) अत्र मंत्रे पुरुष इति पदं विशेष्यमस्ति सहस्रशीर्षेत्यादीनि विशेषणानि च अत्र पुरुषशब्दार्थे प्रमाणानि ॥ पुरुषं पुरिशय इत्याचक्षीरन् । नि० अ० २ खं० १३ ॥ (पुरि०) पुरिसंसारे शेते सर्वमभिव्याप्य वर्त्तते स पुरुषः परमेश्वरः ॥ पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः पूरयतेर्वा । पूरयत्यन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोस्ति किंचित् ॥ वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरिषेण सर्वमित्यपि निगमो भवति । नि० अ० २ खं० ३ ॥ (पुरुषः०) पुरिसर्वस्मिन्संसारेऽभिव्याप्य सीदति वर्त्तत इति (पूरयतेर्वा) यः स्वयं परमेश्वर इदं सर्वं जगत्स्वस्वरूपेण पूरयति व्याप्नोति तस्मात्सपुरुषः (अन्तरित्यः) यो जीवस्याप्यन्तर्मध्येऽभिव्याप्य पूरयति तिष्ठति स पुरुषः । तमन्तरपुरुषमन्तर्यामिणं परमेश्वरमभिप्रेत्येयमृक् प्रवृत्तास्ति (यस्मात्परं०) यस्मात्पूर्णात्परमेश्वरात्पुरुषाख्यान्तरं प्रकृष्टमुत्तमं किंचिदपि वस्तुनास्त्येव पूर्वं वा

(नाणवस्ति) यस्मादपरमर्वाचीनं सनुष्यपुरुषं वा लिंगिदृष्टि वस्तुजातमस्ति । सत्यः यस्माद्वरीयः सूक्ष्मं ज्यायः स्थूलं महद्वा लिंगिदृष्टि दृश्यं नाशुभं न भवति वैद्य च भविष्यतीत्यवधेयम् । यस्तव्यो विज्ञाम्यः सर्वस्याश्चिरतां धुर्वैरुक्तम् स्थिरोस्ति । यद्वद (वृषद्वद०) यथा वृषः सांडाषण्डपुरुषपलवृद्धिं धारयन् विभुर्ति तथैव पृथिवे पृथ्वादिकं सर्वं जगद्धारयन्परमेश्वरोभिव्याप्य स्थितोस्तीति । यस्यैको द्वितीयोस्ति नास्य सश्चित्सजातीयो विजातीयो वा द्वितीय ईश्वरोस्तीति । तेन पुरिशेष पुरुषेण परमात्मना यत सर्वं सर्वं जगत् पूर्णं कृतमस्ति तस्मात्पुरुषः परमेश्वरयशोच्यते । इत्ययं प्रथो विशेषो विज्ञानं परं प्रमाणं यच्छतीति वेदितव्यम् । सर्वे वै सहस्रशर्षन्त्य दाप्तो वीत्यादि० अ० ब्रा० ७ च० ५ ॥ (सर्वं०) सर्वमिदं जगत्सहस्रनामसहस्रसंख्यातीति विज्ञेयम् । (सहस्रशी०) सहस्राणयसंख्या तान्यस्यद्वादीनां शिरांसि यस्मिन्सर्वे पुरुषे परमात्मनि स सहस्रशीर्षापुरुषः (सहस्राक्षः अ०) अस्यद्वादीनां सहस्राण्यक्षीण्यस्मिन् । यश्चैव सहस्रायसंख्याताः पादाश्च यस्मिन्वर्त्तन्ते स सहस्राक्षः सहस्रपात् । (भूमिश्च सर्वतस्पृत्वा) स पुरुषः परोक्षाः सर्वतः सर्वेभ्यो बाह्यान्तर्हेतुभ्यो भूमिरिति) भूतलोपलक्षणं भूमिवाक्यं प्रकृतिपरमेव सर्वं जगत्स्पृत्वाभिव्याप्य वर्तते (अत्यं०) दशाङ्गुलमिति हृच्छ्रोत्रयोरवकाशाङ्गुलं । अङ्गुलशित्यवयवोपलक्षणेन शिरस्थं जगतो ऽत्र ग्रहणं भवति । पंचस्थूलभूतानि पंचस्थूलानि चेतदुभयं मिलित्वा दशावयवाख्यं सकलं जगदुच्यते । अन्यच्च । पंचप्राणाः पंचेन्द्रियं च तृतीयस्तत्करणं दशधा जीवश्च । यद्वैवान्यदपि जीवस्य दृश्यं दशाङ्गुलपरिमितं च तृतीयं गृह्यते । एतदर्थं ज्ञात्वा व्याख्यातव्यम् । अस्मात्तात्पर्यादुक्तेपि व्याख्याः सकलसिद्धताः । अयोद्वाविंशत्यक्षरं पूर्णं ज्ञात्वा परमेश्वरो ऽवतिष्ठत इति वेदितव्यम् ॥

॥ भाषार्थः ॥

(सहस्रशीर्षा०) इस मंत्र में पुरुष शब्द विशेष और अन्य सब पद उस के विशेषण हैं पुरुष उसको कहते हैं कि जो इस सब जगत् में पूर्ण हो रहा है अर्थात् जिसने अपनी व्याप्यकता से इस जगत् को पूर्ण कर रक्खा है पुनः कहते हैं अनन्त शिर अर्थात् जो इस में जो सबसे व्याप्त और जो जीव के भीतर भी व्यापक अर्थात् अंतर्यामी है इस अर्थ में विराट् आदि का प्रमाण संयुक्त मात्र में किया है जो जैसे लोग सहस्र नाम है अर्थात् जगत् का शिर आंख आदि का भी नाम है जो जिस के बीच में एक जगत् के अवयवात्मक शिर आंख और पग आदि हैं

उस को सहस्रशीर्षा सहस्राक्ष और सहस्रपात् भी कहते हैं क्योंकि वह अनंत है जैसे आकाश के बीच में सब पदार्थ रहते और आकाश सब से अलग रहता है अर्थात् किसी के साथ बंधता नहीं है इसी प्रकार परमेश्वर को भी जानो (सभूमिꣳसर्वतस्पृत्वा) सो पुरुष सब जगह से पूर्ण होके पृथिवी को तथा सब लोकों को धारण कर रहा है (अत्यतिष्ठद्०) दशांगुलशब्द ब्रह्मांड और हृदय का साक्षी है अंगुलि शब्द अंग का अवयव वाची है पांच स्थूल भूत और पांच सूक्ष्म ये दोनों मिल के जगत् के दश अवयव होते हैं तथा पांच प्राण मन बुद्धि चित्त और अहंकार ये चार और दशमा जीव और शरीर में जो हृदयदेश है सोभी दश अंगुल के प्रमाण से लिया जाता है सो इन तीनों में व्यापक होके इस के चारों ओर भी परिपूर्ण हो रहा है इस से वह पुरुष कहाता है क्योंकि जो इस दशांगुलस्थान का भी उल्लंघन कर के सर्वत्र स्थिर है वही सब जगत् का बनाने वाला है ॥ १ ॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ॥ उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(पुरुष एवे०) यतद्विशेषणयुक्तः पुरुषः परमेश्वरः (यद्भूतं०) यज्जगदुत्पन्नमभूत् यद्भाव्यमुत्पत्स्यमानं चकाराद्वर्त्तमानं च तत्त्रिकालस्थं सर्वं विश्वं पुरुषस्य कृतवानस्ति नान्यः । नैवातो हि परः कश्चिज्जगद्रचयितास्तीति निश्चेतव्यम् । उतापि स एवेशानः ईषणशीलः सर्वस्येश्वरो ऽमृतत्वस्य मोक्षभावस्य स्वामी दाताऽस्ति । नैवैतद्भिन्नेकस्याप्यन्यस्य सामर्थ्यमस्तीति । पुरुषो यदस्मादन्नेन पृथिव्यादिना जगता सहातिरोहति व्यतिरिक्तःसन् जन्मादिरहितोऽस्ति । तस्मात्स्वयमजः सन्सर्वं जनयति स्वसामर्थ्यादिकारणात्कार्य्यं जगदुत्पादयति । नास्यादिकारणं किंचिदस्ति किंच सर्वस्यादिनिमित्तकारणं पुरुषएवास्तीति वेद्यम् ॥ २ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(पुरुष एवे०) जो पूर्वोक्त विशेषण सहित पुरुष अर्थात् परमेश्वर है सो जो जगत् उत्पन्न हुआ था जो होगा और जो इस समय में है इस तीन प्रकार के जगत् को वही रचता है उससे भिन्न दूसरा कोई जगत् का रचने वाला नहीं है क्योंकि वह (ईशान) अर्थात् सर्वशक्तिमान् है (अमृत) जो मोक्ष है उस का देनेवाला एक वही है दूसरा कोई नहीं सो परमेश्वर (अन्न) अर्थात् पृथिव्यादि जगत् के साथ व्यापक होके स्थित है और इस से अलग भी है क्योंकि उस में जन्म आदि व्यवहार नहीं है और अपनी सामर्थ्य से सब जगत् को उत्पन्न भी करता है और आप कभी जन्म नहीं लेता ॥ २ ॥

वो धन वेदभाष्य छपाने और छपाने के सहाय में धर्मार्थ दिया गया उसके अनुसार चौलर्ष में		[illegible]
आर्य-समाज लाहौर की सभासदों अर्थात् मेम्बरों ने	५००)	
लाला लालचन्दजगत देव दूसरी किस्तके लाहौर	५०)	

	संख्या क्रमांक	नाम दाताओं	पता दाताओं	संख्या अक्षरों	वेदभाष्य रुपये	वेदभाष्य आने
	२८७	बाबू अक्षयलाल ..	सिपुटी मुन्सरीम, सदर अदालत	८	४०)	
	२८८	बाबू गोपालचन्द ..	मुन्सरीम, सदर अदालत ..	९	४५)	
	२८९	बाबू नन्दलाल मि- सिर	मुजफ्फरपुर, मोतीचक	९	४५)	
	२९०	पंडित त्रिभुवननाथ सचिव	प्रयागराज	९	४५)	
	२९१	पंडित गुलजारलाल	सिपुटी मुन्सरीम, प्रयागराज	५	२५)	
	२९२	बाबू जनकधारीलाल	एट लार्जी डेपुटियर्स का फिस, प्रयागराज	९	४५)	
	२९३	बाबू मोतीलाल ..	रेह में सर जनरलदी सदर स्टेशन कुंज, जौनपुर ..	९	४५)	
	२९४	बाबू बलदीपसिंह	रजीस्ट्रार हाईकोर्ट, मेरठ छावनी	९	४५)	
	२९५	लाला मुकुन्दलाल गम- ग- पेमास्टर .. रा- बचने स्कूलबाला	अनारकली श्रीलक्ष्मीमंदिर के पास, लाहौर	९	४५)	
	२९६	एन० एन० लाल ..	जिलकं मजिस्ट्रेट एडिशनल सिविल जज, एलाहाबाद सी- पी-	९	४५)	
	२९७	मोतनमुरार दीक्षित ..	मोहल्ला सतघरा, सदर मझला	४		९)
पेज ५ में	२९८	पंडित मानदेव शास्त्री	रामघाट घर नाक जी के मंदिर के समीप धोबा- मोरे की कुल्ला में आदर मथुरा	९	४५)	
	२९९	सरदार मनोहरसिंह	रईस अमलसर .. अमृतसर ..	९	४५)	
पेज ५ के ऊपर से	३	पंडित मुकुन्दस्वरूप	[illegible] .. मोरने .. एट लार्जीपुर	८	४०)	
	३०१	[illegible]	[illegible]	९	४५)	
	३०२	[illegible]	[illegible]	९	४५)	

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बनाये पुस्तकों की सूचना ॥

—:—

	मूल्य	डाकव्यय	सजिल्द
१ सत्यार्थप्रकाश का	... ...	॥)	१)
२ ऋग्वेदादिभाष्य का	... ...	१॥)	२)
३ व्यवहारभानु का	... ...	॥)	)

इनमें से सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य विद्यारत्न श्रीयुत रणछोड़जी के पास अहमदाबाद से अथवा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास लिया सुन्दर लालकोट कालिका देवी की सड़क पर मास्टर श्री के सामने मेजबान लिंगमराम जी के पास भी मिलता है।

ऋग्वेदादि—स्वामी ३० जी के पास और पण्डित सुन्दरलाल जी के पास इलाहाबाद में एलफ्रेड प्रेस में और पण्डित सुन्दरलाल की अनारकली में डेलाने के 'विद्या सदन' ठाकुर गुलजारसिंह सुपरिन्टेन्डेन्ट के पास 'विद्या सदन' लाहौर अथवा मेसर्स के डिलाने से मिलता है।

व्यवहारभानु—स्वामी ३० जी के पास और पुस्तक विक्रेता पण्डित सुन्दरलाल जी डिलाने से मिलता है।

REGISTERED No. 16.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विता ॥

अस्यैवंविधस्य प्रतिमानं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तराणां मूल्येन सहितं ।≈) पतत् द्वादशमासानां मिलित्वा वार्षिकं ४॥) मलावद्भवति ॥

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक नंबर का मूल्य भारतवर्ष के भीतर डाकमासुल सहित ।≈) और वार्षिक मूल्य ४॥)

अस्य ग्रन्थस्य ग्रहणस्येच्छा यस्य भवेत्तेनार्यां लाजरसकेपन्यालयस्य वा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपे वार्षिकं मूल्यं प्रेषयित्वा प्रतिमासमेकं प्राप्स्यति ॥

अंक (६)

॥ यत्र यत्रः कार्यो लाजरसकेपन्यालयस्य पंजाबदेशे मुद्रितः ॥

संवत् १९३४ ।

॥ अस्य ग्रन्थस्याधिकारो भाषाभाषा सर्वथा स्वाधीन एव वर्त्तितः ।

विदित हो कि श्री० पं० लेखराम भादू मास के अंत पर्यन्त पंजाब देश के अमृतसर नगर में

एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः । पादोऽस्य विश्वा-
भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(एतावानस्य०) अस्य पुरुषस्य भूतभविष्यद्वर्तमानस्य यावान्संसा-
रोऽस्ति तावान् महिमा वेदितव्यः । एतावानस्य महिमास्ति चेत्तर्हि अस्य
महिम्नः परिच्छेदं दयनाजातेति गम्यते । अत्र ब्रूते (अतो ज्यायांश्च पूरुषः)
नैतावत्स्वाव यत्र महिमेति । किं तर्हि । अतोऽप्यधिकतमो महिमानन्तस्त-
स्यास्तीति गम्यते । अथाह (पादोऽस्य०) अस्यानन्तसामर्थ्यस्येश्वरस्य
(विश्वा) विश्व नि प्रकृत्यादि पृथिवीपर्य्यन्तानि सर्वाणि भूतान्येक: पादोऽस्ति
एकस्मिन्देशांशे सर्वं विश्वं वर्त्तते (त्रिपादस्य०) अस्य दिवि द्योतनात्मके
स्वस्वरूपे ऽमृतं मोक्षसुखमस्ति । तथा ऽस्य दिवि द्योतके संसारे त्रिपाज्ज-
गदस्ति । प्रकाश्यमानं जगदेकगुणमस्ति प्रकाशकं च तस्मात्त्रिगुणमिति
स्वयं च मोक्षस्वरूपः सर्वाधिष्ठाता सर्वोपास्यः सर्वानन्दः सर्वप्रकाश-
कोऽस्ति ॥ ३ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(एतावानस्य०) सीनों काल में जितना संसार है सो सब इस पुरुष
का ही महिमा है ॥० तब उस की महिमा का परिमाण है तो अंत भी होगा
॥० (अतो ज्यायांश्च पुरुषः) उस पुरुष का अनंत महिमा है क्योंकि (पादो-
ऽस्य विश्वाभूतानि) जो यह संपूर्ण जगत् प्रकाशित हो रहा है सो इस पुरुष के
एक देश में बसता है (त्रिपादस्यामृतं दिवि) और जो प्रकाश गुणवाला जगत्
है सो उस में त्रिगुना है तथा मोक्ष सुख भी उसी ज्ञानस्वरूप प्रकाश में है
और वह पुरुष सब प्रकाश का भी प्रकाश करनेवाला है ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ॥ ततो विष्वङ्
व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ४ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(त्रिपादू०) अयं पुरुषः परमेश्वरः पूर्वोक्तस्य त्रिपादोऽमृतस्य
यस्मात्पादूर्ध्वमुपरिभागे ऽस्तीत्यृग्भूतोऽस्त्येवेत्यर्थः । एकपादेऽमृतं
गच्छेत्तेऽस्ते जगदस्ति तस्मादपीहास्मिन्संसारे स पुरुषः पृथगभवत् । व्यति-
रिक्तोऽभवदित्यर्थः । सच त्रिपात्संसारस्थकपाच्च मिलित्वा सर्वेऽचतुष्पाद्भवति ।
अयं सर्वः संसार इहास्मिन्परमात्मन्येव वर्त्तते पुनर्लयप्रलये तस्मात्परमेश्वा-
रेणे प्रलीनश्च भवति । तथापि स पुरुषोऽविद्यान्धकाराज्ञानजन्ममरणज्वरादि
दुःखादूर्ध्वः परः (उदैत्) उदितः प्रकाशितो वर्त्तते (ततो वि०) ततस्तत्सा-
मर्थ्यात्सर्वेषिदं विश्वमुत्पद्यते किंच तत् (साशना नशने०) यदेकमशने-

न भोजनकरणेन सह वर्त्तमानं जङ्गमं जीवचेतनादिसहितं जगत् । द्वितीयमनशनमविद्यमानमशनं भोजनं यस्मिंस्तत्पृथिव्यादिकं च यज्जडं जीवसंबन्धरहितं जगद्वर्त्तते तदुभयं तस्मात्पुरुषस्य सामर्थ्यकारणादेव जायते । यतः स पुरुष एतद्द्विविधं जगत् विविधतया सुष्ठुरीत्या सर्वात्मतया व्याप्नोति तस्मात् सर्वं द्विविधं जगदुत्पाद्य (अभि व्यक्रामत्) सर्वतो व्याप्तवानस्ति ॥ ४ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(त्रिपादूर्ध्व उदैत्पु०) पुरुष जो परमेश्वर है सो पूर्वोक्त त्रिपाद जगत् से ऊपर भी व्यापक हो रहा है तथा सदा प्रकाशस्वरूप सब में भीतर व्यापक और सबसे अलग भी है (पादोस्येहाभवत्पुनः०) इस पुरुष की अपेक्षा से यह सब जगत् किंचित्मात्र देश में है और जो इस संसार के चार पाद होते हैं वे सब परमेश्वर के शीश में ही रहते हैं इस स्थूल जगत् का जन्म और विनाश सदा होता रहता है और पुरुष तो जन्म विनाश आदि धर्म से अलग और सदा प्रकाशमान है (ततो विष्वङ् व्यक्रामत्) अर्थात् यह नाना प्रकार का जगत् उसी पुरुष के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है (साशना न०) सो दो प्रकार का है एक चेतन जो कि भोजनादि के लिये चेष्टा करता और जीव संयुक्त है और दूसरा अनशन अर्थात् जो जड़ और भोजन के लिये बना है क्योंकि उस में ज्ञानही नहीं है और अपने आप चेष्टा भी नहीं कर सकता परंतु उस पुरुष का अनंत सामर्थ्य ही इस जगत् के बनाने की सामग्री है कि जिससे यह सब जगत् उत्पन्न होता है सो पुरुष सर्व क्रियाकारक हो के उस दो प्रकार के जगत् को अनेक प्रकार से आनन्दित करता है वह पुरुष इस का बनानेवाला संसार में सर्वत्र व्यापक होके धारण करके देखरहा और वही सब जगत् का सब प्रकार से आकर्षण कररहा है ॥ ४ ॥

ततो विराडजायत विराजो अधिपूरुषः । स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ ५ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(ततो विराडजायत) तस्मात्तस्माद् ब्रह्माण्डशरीरः सूर्य्यचन्द्रनेत्रो वायुप्राणः पृथिव्यादि हस्त्यादालंकारलसन्नालचित्तोहि सर्वशरीराणां समष्टि देहो । विविधैः पदार्थैराजमानःसन् । विराट् अजायतेत्यनेनोक्तः (विराजो अधिपूरुषः) तस्माद्विराजोऽधि उपरिष्टाच्च ब्रह्माण्डस्थावयवैः पुरुषः सर्वप्राणिनां जीवाधिकरणो देहः पृथक्कृत । अजायतेत्यनेनोक्तः (सजातो अ०) सदेहो ब्रह्माण्डावयवैरेव वर्धते नश्यः संस्तस्मिन्नेव प्रलीयत इति परमेश्वरस्तु सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ऽत्यरिच्यत अतिरिक्तः पृथग्भूतोऽस्ति । (पश्चा-

भूमिमथोपुरः) पुरः पूर्वं भूमिमुत्पाद्य धारितवांस्ततः पुरुषस्य सामर्थ्यान्त्सजीवेऽपि देहं धारितवानस्ति । सच पुरुषः परमात्मा तस्तस्मात् जीवादप्यत्यरिच्यत पृथग्भूतोस्ति ॥ ५ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(तस्मा विराडजायत) विराट् जिस का ब्रह्माण्ड के अलंकार से वर्णन किया है सो उसी पुरुष के सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है जिस को मूलप्रकृति कहते हैं जिस का शरीर ब्रह्माण्ड के समतुल्य जिस के सूर्य चन्द्रमा नेत्रस्थानी हैं वायु जिस का प्राण और पृथिवी जिस का पग है इत्यादि लक्षणवाला जो यह आकाश है सो विराट् कहाता है यह प्रथम कल्पकर परमेश्वर के सामर्थ्य से उत्पन्न होके प्रकाशमान होरहा है (विराजो अधि०) उस विराट् के तत्वों के पूर्वभागों से सब अप्राणी और प्राणियों का देह पृथक् २ उत्पन्न हुआ है जिस में सब जीव वास करते हैं और जो देह उसी पृथिवी आदि के अवयव अन्न आदि ओषधियों से वृद्धि को प्राप्त होता है (सजातो अत्यरिच्यत) सो विराट् परमेश्वर से अलग और परमेश्वर भी इस संसाररूप देह से सदा अलग रहता है (पश्चाद्भूमिमथोपुरः) फिर भूमि आदि जगत् को प्रथम उत्पन्न करके पश्चात् सो धारण करता है ॥ ५ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् । पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यान्ारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ ६ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(तस्माद्य०) अस्यार्थो वेदोत्पत्तिप्रकरणे कश्चिदुक्तः । तस्मात्परमेश्वरात् (संभृतः पृषदाज्यम्) पृषु सेचनेधातुः वर्षन्ति सिञ्चन्ति वृष्टिवृत्यादिकारणमन्नादिवस्तु यस्मिँस्तत्पृषत् । आज्यं घृतं मधुदुग्धादिकं च पृषद्भिरिति भक्ष्यान्नोपलक्षणम् । आज्यमिति व्यंजनोपलक्षणम् * यावद्वस्तु जगति वर्त्तते तावत्सर्वं पुरुषात्परमेश्वरसामर्थ्यादेव जातमिति बोध्यम् । तत्सर्वमीश्वरेण स्वल्पं २ जीवेष्वपि सम्यग्धारितमस्ति । अतः सर्वैरनन्यचित्तेनायं परमेश्वरश्चोपास्योनान्यश्चेति । (पशूँस्ताँश्चक्रे०) यत्कारण्यावनस्थाः पशवो ये च ग्राम्या ग्रामस्थास्तान्सर्वान्स एव चक्रे कृतवानस्ति । सच परमेश्वरो वायव्यान् वायुसहचरितान्पक्षिणश्चक्रे चकारादन्यान्सूक्ष्मदेहधारिणः कीटपतंगादीनपि कृतवानस्ति ॥ ६ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(तस्माद्यज्ञात्स०) इस मंत्र का अर्थ वेदोत्पत्ति प्रकरण में कुछ कर दिया है पूर्वोक्त पुरुष सेही (संभृतः पृषदाज्यम्) सब भोजन वस्तु घृत दुग्ध आदि पदार्थ। और सब मनुष्य लोगों ने धारण अर्थात् प्राप्त किया है क्योंकि

* पृषद्भिरिति च पदेनौषधि सामग्र्या अपि ग्रहणमस्ति ।

उसी के सामर्थ्य से ये सब पदार्थ उत्पन्न हुए और उन्हीं में सब का जीवन भी होता है इससे सब मनुष्य लोगों को उचित है कि उस को छोड़ के किसी दूसरे की उपासना न करें (पशूं स्तां श्चक्रे०) ग्राम और वन के सब पशुओं को भी उसी ने उत्पन्न किया है तथा सब पक्षियों को भी बनाया है और भी सूक्ष्म देहधारी कीट पतंग आदि सब जीवों के देह भी उसी ने उत्पन्न किये हैं ॥ ६ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे । छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ७ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

अस्यार्थः उक्तो वेदोत्पत्तिप्रकरणे ॥ ७ ॥ ॥ भाषार्थः ॥

(तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः०) इस मंत्र का अर्थ वेदोत्पत्ति विषय में कहदिया है ॥ ७ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः । गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ ८ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(तस्मादश्वा०) तस्मात्परमेश्वरसामर्थ्यादेवाश्वास्तुरंगा अजायन्त । ग्राम्यारण्यपशूनां मध्ये उष्ट्रादीनामन्तर्भावादेषामुत्तमगुणवत्त्वप्रकाशनार्थोऽयमारम्भः (ये केचोभयादतः (उभयतो दन्ता येषां उभयादतो ये केचिदुभयादत उष्ट्रगर्दभादयस्तेऽप्यजायन्त । (गावोह ज०) तथा तस्मात्पुरुषसामर्थ्यादेव गावश्चैनवः किरणाश्चेन्द्रियाणि च जज्ञिरे जातानि । (तस्माज्जाता अजा०) एवमेव चाजाश्छागा अवयश्च जाता उत्पन्ना इति विज्ञेयम् ॥ ८ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(तस्मादश्वा अजायन्त) उसी पुरुष के सामर्थ्य से अश्व अर्थात् घोड़े और बिजुली आदि सब पदार्थ उत्पन्न हुए हैं (ये केचोभयादतः) जिनके मुख में दोनों ओर दांत होते हैं उन पशुओं को उभयदत कहते हैं वे ऊंट गधा आदि उसी से उत्पन्न हुए हैं (गावोह ज०) उसी से गौआदि अर्थात् गाय, पृथिवी, किरण और इन्द्रिय उत्पन्न हुए हैं (तस्माज्जाता अ०) इसी प्रकार छेरी और भेड़ें भी उसी कारण से उत्पन्न हुई हैं ॥ ८ ॥

सं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः । तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ९ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(सं यज्ञं ब०) यमग्रतो जातं प्रादुर्भूतं जगत्कर्तारं पुरुषं पुरो यज्ञं सर्वपूज्यं परमेश्वरं बर्हिषि हृदयाकाशरूपे प्रौक्षन्प्रकृष्टतया यस्यैवाभिषेकं कुर्वन्तः कुर्वन्ति करिष्यन्ति चेत्युपदिश्यत ईश्वरेण (तेन देवा०) तेन पर-

मेश्वरेण पुरुषेण वेदद्वारोपदिष्टास्ते सर्वे देवा विदुषः साध्या ज्ञानिनश्चत्वय्यो संचद्भ्यारश्च येऽन्ये मनुष्यास्तंपरमेश्वरमयजन्ता पूजयन्त । अनेन किं सिद्धं सर्वेमनुष्याः परमेश्वरस्य स्तुतिप्रार्थनोपासना पुरःसरमेव सर्वकर्मानुष्ठानं कुर्य्युरित्यर्थः ॥ ९ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(तं यज्ञं बर्हि०) जो सब से पथम प्रगट था जो सब जगत् का बनाने वाला है और सब जगत् में पूर्ण होरहा है उस यज्ञ अर्थात् पूजने के योग्य परमेश्वर को जो मनुष्य हृदयरूप आकाश में अच्छी प्रकार से प्रेमभक्ति सत्य श्रद्धा करके पूजन करता है वही उत्तम मनुष्य है ईश्वर का यह उपदेश सब के लिये है , तेन देवा अयजन्त भा०) इसी परमेश्वर के वेदोक्त उपदेश से (देवाः) जो विद्वान् (साध्याः) जो ज्ञानि लोग (ऋषयश्चये) ऋषि लोग जो वेदमंत्रों के अर्थ जानने वाले और अन्य भी मनुष्य जो परमेश्वर के सत्कारपूर्वक सब उत्तम ही काम करते हैं वेही सुखी होते हैं क्योंकि सब श्रेष्ठ कर्मों के करने के पूर्वभी उस का स्मरण और प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये और दुष्ट कर्म करना तो किसी को उचितही नहीं ॥ ९ ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् । मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरुपादा उच्येते ॥ १० ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(यत्पुरुषं व्य०) यद्यस्मादेतं पूर्वोक्तलक्षणं पुरुषं परमेश्वरं कतिधा कियत्प्रकारैः (अकल्पयन्) तस्य सामर्थ्यगुणकल्पनं कुर्वन्तीत्यर्थः । (अदधुः) ते सर्वशक्तिमन्तमीश्वरं विशेषसामर्थ्यकथनेनाद्धुरर्थादनेकविधे तस्य व्याख्यानं कृतवन्तः कुर्वन्ति करिष्यन्ति च । (मुखं किं०) अस्य पुरुषस्य मुखं मुख्यगुणेभ्यः किमुत्पन्नमासीत् (किं बाहू) बलवीर्यादिगुणेभ्यः किमुत्पन्नमासीत् (किमूरू) व्यापारादिमध्यमेगुणैः किमुत्पन्नमासीत् (पादा उच्येते) पादावर्थान्मूर्खत्वादिनीचगुणैः किमुत्पन्नं वर्त्तते ॥ अस्योत्तरमाह ॥ १० ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(यत्पुरुषं०) पुरुष उस को कहते हैं कि जो सर्वशक्तिमान् ईश्वर कहाता है (कतिधा व्य०) जिस के सामर्थ्य का अनेक प्रकार से प्रतिपादन करते हैं क्योंकि उस में विद्या विचार बहुत प्रकार का सामर्थ्य है अनेक कल्पनाओं से जिस का कथन करते हैं (मुखं किमस्यासीत्) उस पुरुष के मुख अर्थात् मुख्य गुणों से इस संसार में क्या उत्पन्न हुआ है (किं बाहू) बल वीर्य शूरता और युद्ध आदि क्षत्रियगुणों से इस संसार में कौन पदार्थ उत्पन्न हुआ है (किमूरू) व्यापार आदि मध्यम गुणों से किस की उत्पत्ति हुई है (पादा उच्येते) मूर्खपन आदि नीच गुणों से किस की उत्पत्ति होती है इन सारे प्रश्न के उत्तर ये हैं कि ॥ १० ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ११ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(ब्राह्मणोऽस्य०) अस्य पुरुषस्य मुखं ये विद्यादयो मुख्यगुणाः सत्यभाषणोपदेशादीनि कर्म्माणि च सन्ति तेभ्यो ब्राह्मण आसीदुत्पन्नो भवतीति । (बाहूराजन्यः कृतः) बलवीर्य्यादिगुणान्वितो राजन्यः क्षत्रियस्तेन कृत आत्तम आसीदुत्पन्नो भवति । (ऊरू तदस्य०) कृषिव्यापारादयो गुणाः मध्यमास्तेभ्यो वैश्यो बलिष्ठत्वोऽस्य पुरुषस्योपदेशादुत्पन्नो भवतीति वेदम् (पद्भ्याम्शूद्रो०) पद्भ्यां पादेन्द्रिय नीचत्वमर्थाज्जड़बुद्धित्वादिगुणेभ्यः शूद्रः सेवागुणविशिष्टः परार्थानतया प्रवर्त्तमानोऽजायत जायत इति वेदम् । अस्योपरि प्रमाणानि वर्णाश्रमप्रकरणे वक्ष्यन्ते ॥ छन्दसिलुङ् लङ् लिटः ॥ १ ॥ अष्टाध्या० अ० ३ पा० ४ इति सूत्रेण सामान्यकाले चयोलकारा विधीयन्ते ॥ ११ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्) इस पुरुष की आत्मा के अनुसार जो विद्या सत्यभाषणादि उत्तम गुण और श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मणवर्ण उत्पन्न होता है वह मुख्य कर्म और गुणों के सहित होने से मनुष्यों में उत्तम कहाता है (बाहूराजन्यः कृतः) और ईश्वरने बल पराक्रम आदि पूर्वोक्त गुणों से युक्त क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न किया है (ऊरू तदस्य०) खेती व्यापार और सब देशों की भाषाओं को जानना तथा पशुपालन आदि मध्यम गुणों से वैश्यवर्ण सिद्ध होता है (पद्भ्याम्शूद्रो०) जैसे पग सब से नीच अंग है वैसे मूर्खता आदि नीच गुणों से शूद्र वर्ण सिद्ध होता है इस विषय के प्रमाण वर्णाश्रम की व्याख्या में लिखेंगे ॥ ११ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत । श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(चन्द्रमा मनसो०) तस्यास्यपुरुषस्य मनसो मननशीलात्सामर्थ्याच्चन्द्रमा जात उत्पन्नोऽस्ति । तथा चक्षोर्ज्ञानस्वरूपात्सामर्थ्यात् सूर्य्यो अजायत उत्पन्नोऽस्ति (श्रोत्राद्वा०) श्रोत्राकाशमयादाकाशो नभ उत्पन्नमस्ति । वायुमयाद्वायुरुत्पन्नोऽस्ति प्राणश्च सर्वेन्द्रियाणि चोत्पन्नानि सन्ति । मुखान्मुख्यशक्तेरग्निरजायतोत्पन्नोऽस्ति ॥ १२ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(चन्द्रमा०) इस पुरुष के मनन अर्थात् ज्ञानस्वरूप सामर्थ्य से चन्द्रमा और नेत्रस्वरूप से सूर्य्य उत्पन्न हुआ है (श्रोत्राद्वा०) श्रोत्र अर्थात् अवकाशरूप सामर्थ्य से आकाश और वायुरूप सामर्थ्य से वायु उत्पन्न हुआ है तथा

सब इन्द्रियां भी अपने २ कारण से उत्पन्न हुई हैं और मुख्य ज्योतिरूप सामर्थ्य से अग्नि उत्पन्न हुआ है १२ ॥

नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत । पद्भ्यां भूमिर्द्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २ ॥ अकल्पयन् ॥ १३ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(नाभ्या०) अस्य पुरुषस्य नाभ्या अवकाशमयात्सामर्थ्यादन्तरिक्षमुत्पन्नमासीत् । अत्र शीर्ष्णः शिरोवदुत्तमसामर्थ्यात्प्रकाशमयात् (द्यौः) सूर्य्यो दिव्यलोकः प्रकाशात्मकः समवर्त्तत सम्यगुत्पन्नः सन् वर्त्तते (पद्भ्यां भूमिः) पृथिवीकारणमया सामर्थ्यात्परमेश्वरेण भूमिर्धरणिरुत्पादितास्ति जलं च । (दिशः श्रोत्रा०) शब्दाकाशकारणमयत्वेन दिश उत्पादिताः सन्ति (तथा लोकाँ २ । अकल्पयन्) तथा तेनैव प्रकारेण सर्वलोककारणमयात्सामर्थ्यादन्यान्सर्वान् लोकांस्तत्रस्थान्स्थावरजङ्गमान्पदार्थान् कल्पयन्परमेश्वर उत्पादितवानस्ति ॥ १३ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(नाभ्याआसीदन्त०) इस पुरुष के अत्यन्त सूक्ष्म सामर्थ्य से अन्तरिक्ष अर्थात् जो भूमि और सूर्य्य आदि लोकों के बीच में पोल है सोभी नियत किया हुआ है (शीर्ष्णोद्यौः०) और जिस के सर्वोत्तम सामर्थ्य से सब लोकों के प्रकाश करने वाले सूर्य्य आदि लोक उत्पन्न हुए हैं (पद्भ्यां भूमिः) पृथिवी के परमाणु कारणरूप सामर्थ्य से परमेश्वर ने पृथिवी उत्पन्न की है तथा जलको भी उस के कारण से उत्पन्न किया है (दिशः श्रोत्रात्) उसने श्रोत्ररूप सामर्थ्य से दिशाओं को उत्पन्न किया है (तथा लोकाँ २ । अकल्पयन्) इसी प्रकार सब लोकों के कारणरूप सामर्थ्य से परमेश्वर ने सब लोक और उन में बसनेवाले सब पदार्थों को उत्पन्न किया है ॥ १३ ॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ १४ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(यत्पुरुषेण०) देवा विद्वांसः पूर्वोक्तेन पुरुषेण हविषा गृहीतेन दत्तेन चाग्निहोत्रादारभ्येमेधान्तं शिल्पविद्यामयं च यद्यं यज्ञं प्रकाशितमतन्वत विस्तृतं कृतवन्तः कुर्वन्ति करिष्यन्ति च । इदानीं जगदुत्पत्तेः कालस्यावयवाख्या सामग्र्युच्यते (वसन्तो०) अस्य यज्ञस्य पुरुषादुत्पन्नस्य वा ब्राह्मणाद्यस्य वसन्त आज्यं घृतवदस्ति । (ग्रीष्म इध्मः) ग्रीष्मर्तुरिध्म इन्धनान्यग्निर्वास्ति । (शरद्धविः) शरदृतुः पुरोडाशादिहविर्हवनीयमस्ति ॥ १४ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(यत्पुरुषेण०) देव अर्थात् जो विद्वान् लोग होते हैं उन को भी ईश्वर ने अपने २ कर्मों के अनुसार उत्पन्न किया है और वे ईश्वर के दिये पदार्थ

का यहण करके पूर्वोक्त यज्ञ का विस्तारपूर्वक अनुष्ठान करते हैं और जो ब्रह्माण्ड का रचन पालन और प्रलय करना रूप यज्ञ है उसी को जगत् बनाने की सामग्री कहते हैं (वसन्तो०) पुरुष ने उत्पन्न किया तो यह ब्रह्माण्डरूप यज्ञ है इस में वसन्त ऋतु अर्थात् चैत्र और वैशाख घृत के समान है (ग्रीष्म इध्मः) ग्रीष्म ऋतु जो ज्येष्ठ और आषाढ़ इंधन है ॥ श्रावण और भाद्रपद वर्षा ऋतु । आश्विन और कार्त्तिक शरद ऋतु ॥ मार्गशीर्ष और पौष हिम ऋतु और माघ तथा फाल्गुण शिशिर ऋतु कहाती है यह इस यज्ञ में आहुती है सो यहां रूपकालंकार से सब ब्रह्माण्ड का व्याख्यान जानना चाहिये ॥ १४ ॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिसप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(सप्तास्या०) अस्य ब्रह्माण्डस्य सप्तपरिधयः सन्ति । परिधिर्हि गोलस्यो-परिभागस्य गणितसूत्रेण परिवेष्टने भवति स परिधिर्ज्ञेयः । अस्य ब्रह्माण्डस्य ब्रह्माण्डान्तर्गतलोकानां वा सप्त २ परिधयो भवन्ति । समुद्र एकस्तदु-परिचसरेणुसहितो वायुर्द्वितीयः । मेघमण्डले तथस्थोवायुस्तृतीयः । वृष्टि-जले चतुर्थस्तदुपरिवायुः पंचमः । अत्यन्तसूक्ष्मो धनंजयवायुः । सूर्यः-त्मा सर्वव्यापकः सप्तमश्च । एवमेकैकस्योपरि सप्तसप्तावरणानि स्थितानि सन्ति तस्मात्ते परिधयो विज्ञेयाः (त्रि सप्तसमिधः कृताः) एकविंशतिः पदार्थाः सामग्र्यस्य चास्ति प्रकृतिर्महत् । बुद्ध्याद्यन्तःकरणं जीवश्चैवैका सामग्री परमसूक्ष्मत्वात् । दशेन्द्रियाणि श्रोत्रं, त्वक्, चक्षुः, जिह्वा, नासिका, वाक्, पादौ, हस्तौ, पायुः उपस्थं चेति । शब्दस्पर्शरूपरसगंधाः पंचतन्मात्राः पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशमिति पंचभूतानि च मिलित्वा दश भवन्ति । एवं सर्वाः मिलित्वैकविंशतिर्भवन्त्यस्य ब्रह्माण्डरचनस्य समिधः कारणानि विज्ञेयानि एतेषामग्नयश्चक्षूंषि तु तत्त्वानि ब्रह्मणि सन्तीति बोध्यम् । (देवायज्ञं०) तदिदं येन पुरुषेण रचितं तं यज्ञपुरुषं पशुं सर्व-द्रष्टारं सर्वैः पूजनीयं देवा विद्वांसः (अबध्नन्) ध्यानेन बध्नन्ति तं विहा-यान्यस्यैव कस्यापि ध्यानं नैव बध्नन्ति नैव कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ १५ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(सप्तास्या०) ईश्वर ने एक २ लोक के चारों ओर सात २ परिधि ऊपर २ रची हैं जो गोल चीज के चारों ओर एक सूत में नाप के जितना परिमाण होता है उस को परिधि कहते हैं सो जितने ब्रह्माण्ड में लोक हैं ईश्वर ने उन एक २ के ऊपर सात २ आवरण बनाये एक समुद्र दूसरा

चसरेणु, तीसरा मेघमंडल का वायु, चौथा वृष्टिजल, और पांचमा वृष्टि जल के ऊपर एक प्रकार का वायु, छठा अत्यंत सूक्ष्म वायु जिस को धनंजय कहते हैं सातमा सूत्रात्मा वायु जो कि धनंजय से भी सूक्ष्म है ये सात परिधि कहाते हैं (चि सप्त समिधः०) और इस ब्रह्मांड की सामग्री २१ इक्कीस प्रकार की कहाती है जिस में से एक प्रकृति बुद्धि और जीव ये तीनों मिलके हैं क्योंकि यह अत्यंत सूक्ष्म पदार्थ है ॥ दूसरा श्रोत्र ॥ तीसरी त्वचा । चौथा नेत्र । पांचमी जिह्वा । छठी नासिका । सातमी वाक् । आठमा पग । नवमा हाथ । दशमी गुदा । ग्यारहमा उपस्थ जिस को जिस इंद्रिय कहते हैं । बारहमा शब्द । तेरहमा स्पर्श । चौदहमा रूप । पंद्रहमा रस । सोलहमा गंध । सत्रहमी पृथिवी । अठारहमा जल । उन्नीसमा अग्नि । बीसमा वायु । इक्कीसमा आकाश ये इक्कीस समिधा कहाते हैं (इत्येताय०) जो परमेश्वर पुरुष इस सब जगत् का रचनेवाला सब का देखनेवाला और पूज्य है उस को विद्वान् लोग युक्त से और उसी के उपदेश से उसी के कर्म और गुणों का कथन, प्रकाश, और ध्यान करते हैं उस को छोड़ के दूसरे को ईश्वर किसी ने नहीं माना और उसी के ध्यान में अपने आत्माओं को दृढ़ बांधने से कल्याण जानते हैं ॥ १५ ॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ १६ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(यज्ञेन यज्ञम०) ये विद्वांसो यज्ञं यजनीयं पूजनीयं परमेश्वरं यज्ञेन तत्स्तुतिप्रार्थनोपासनरीत्या पूजनेन तमेवायजन्त यजन्ते यक्ष्यन्ति च । तान्येव धर्माणि प्रथमानि सर्वकर्मभ्य आदौ सर्वमनुष्यैः कर्तव्यान्यासन् नथ तैः पूर्वैः कृतैर्विना केनापि किंचित्कर्मकर्तव्यमिति (तेह ना०) त ईश्वरोपासकाहेति प्राप्तुं नाकं सर्वदुःखरहितं परमेश्वरं मोक्षं च महिमानः पूज्याः सन्तः सचन्त समवेता भवन्ति कीदृशं तत् (यत्र पूर्वे साध्याः०) साध्याः साधनवन्तः कृतसाधनाश्च देवा विद्वांसः पूर्वे यतोऽत्र मोक्षाख्ये परमेपदे सुखिनः सन्ति न तस्माद्ब्रह्मणोऽतिवर्षसंख्यातात्कालात् कदाचित्पुनरावर्तन्ते इति किंतु तमेव सम सेवन्त॥ आचार्यनिरुक्तकारा यास्काचार्याः। यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवा अग्निनाग्निमयजन्तदेवा अग्निः पशुरासीत्तमालभन्त तेनायजन्तेति च ब्राह्मणम् । तानिधर्माणि प्रथमान्यासन् तेह नाकं महिमानः सम सेवन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः साधनाद्युक्तानो देवगणा इति नैरुक्ताः । नि० अ० १२ खं० ४१ ॥ अग्निनाग्नीदेवान्त्सरोगक्षाग्निं

परमेश्वरमयजन्त । अग्निःपशुरासीत्तमेव देवा आलभन्त । सर्वोपकारकमग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तं यौतिकाग्निनापि यत्ते देवा सम सेवन्तेति वा । साध्याः साधनवन्तो यत्र पूर्वे पूर्वेभूता मोक्षाख्या नन्देपदे सन्ति । तमभिप्रेत्यैव द्युस्थानो देवगण इति निरुक्तकारा वदन्ति । द्युस्थानः प्रकाशमयः परमेश्वरः स्थानं स्थित्यर्थं यस्य सः । यद्वा सूर्य्यप्राणस्थानाः विज्ञानकिरणास्तत्रैव देवगणो देवसमूहो वर्त्तत इति ॥ १६ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(यज्ञेन यज्ञम०) विद्वानों को देव कहते हैं और वे सबके पूज्य होते हैं क्योंकि वे सर्वदिन परमेश्वरही की स्तुति प्रार्थना उपासना और आज्ञा पालन आदि विधान से पूजा करते हैं इससे सब मनुष्यों को उचित है कि वेदमंत्रों से प्रथम ईश्वर की स्तुति प्रार्थना करके शुभ कर्मों का आरंभ करें (तेहनाकं०) जो २ ईश्वर की उपासना करनेवाले लोग हैं वे २ सब दुःखों से छूटके सब मनुष्यों में अत्यन्त पूज्य होते हैं (यत्र पूर्वे सा०) जहां विद्वान् लोग परमपुरुषार्थ से जिस पद को प्राप्त होके नित्य आनंद में रहते हैं उसी को मोक्ष कहते हैं क्योंकि उससे निवृत्त होके संसार के दुःखों में कभी नहीं गिरते ॥ इस अर्थ में निरुक्तकार का भी यही अभिप्राय है कि जो परमेश्वर के अनंत प्रकाश में मोक्ष को प्राप्त हुए हैं वे परमेश्वरही के प्रकाश में सदा रहते हैं उन को अज्ञानरूप अंधकार कभी नहीं होता ॥ १६ ॥

अद्भ्यः संभृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ॥ १७ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(अद्भ्यः संभृतः०) तेनपुरुषेण पृथिव्यै पृथिव्युत्पत्यर्थमद्भ्योरसः संभृतः संगृहीतेन पृथिवी रचिता । यथमग्निरसेनाग्नेः सकाशादाप उत्पादिताः । अग्निश्च वायोः सकाशाद्वायुराकाशादुत्पादित आकाशः प्रकृतेः प्रकृतिः स्वसामर्थ्याच्च । विश्वं सर्वं कर्मक्रियमाणमस्य स विश्वकर्मा तस्य परमेश्वरस्य सामर्थ्यमध्ये कारणाख्ये ज्ञेये सृष्टेः प्राक्जगत्समवर्त्तत वर्त्तमानमासीत् । तदानीं सर्वमिदं जगत्कारणभूतमेव तादृशमिति । तस्य सामर्थ्यस्थांशान् गृहीत्वा त्वष्टारचनकर्त्तेदं सकलं जगद्विदधत् । पुनरयेदं विश्वं रूपवत्त्वमेति । तदेव मर्त्यस्य मरणधर्मकस्य विश्वस्य मनुष्यस्यापि च रूपवत्त्वं भवति (आजानमग्रे) वेदाज्ञापनसमये परमात्माज्ञप्तवान् वेदरूपामाज्ञां दत्तवान् मनुष्याय धर्मयुक्तेनैव सकामेन कर्मणा कर्म देवत्वयुक्तं शरीरं धृत्वा विषयेन्द्रियसंयोगजन्यमिष्टं सुखं भवतु तथा निष्कामेन विज्ञानपरमं मोक्षाख्यं चेति ॥ १७ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(यज्ञः संभृतः०) उस परमेश्वर पुरुष ने पृथिवी की उत्पत्ति के लिये जल से सारांश रस को ग्रहण करके पृथिवी और अग्नि के परमाणुओं को मिलाके पृथिवी रची है इसी प्रकार अग्नि के परमाणु के साथ जल के परमाणुओं को मिलाके जल को वायु के परमाणुओं के साथ अग्नि के परमाणुओं को मिलाके अग्नि को और वायु के परमाणुओं से वायु को रचा है वैसेही अपने सामर्थ्य से आकाश को भी रचा है जो कि सब तत्त्वों के ठहरने का स्थान है ईश्वरने प्रकृति से लेके घास पर्यंत जगत् को रचा है इससे ये सब पदार्थ ईश्वर के रचे होने से उस का नाम विश्वकर्मा है जब जगत् उत्पन्न नहीं हुआ था तब यह ईश्वर के सामर्थ्य में कारणरूप से वर्त्तमान था (तस्य०) जब २ ईश्वर अपने सामर्थ्य से इस कार्य्यरूप जगत् की रचना है तब २ कार्य्यजगत्रूप गुणवाला होके स्थूल बुद्धि के देखने में आता है (तन्मर्त्यस्य देवत्व०) जब परमेश्वर ने मनुष्यशरीर आदि को रचा है तब मनुष्य भी दिव्य कर्म करके देव कहाते हैं और जब ईश्वर की उपासना से विद्याविज्ञान आदि अत्युत्तम गुणों को प्राप्त होते हैं तब भी उन मनुष्यों का नाम देव होता है क्योंकि कर्म से उपासना और ज्ञान उत्तम है इस में ईश्वर की यह आज्ञा है कि जो मनुष्य उत्तम कर्म में शरीर आदि पदार्थों को चलाता है वह संसार में उत्तम सुख पाता है और जो परमेश्वरही की प्राप्तिरूप मोक्ष की इच्छा करके उत्तम कर्म उपासना और ज्ञान में पुरुषार्थ करता है वह उत्तम देव होता है ॥ १७ ॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(वेदाहमेतं पु०) किं विदित्वा त्वं ज्ञानी भवसीति पृच्छ्यते तदुत्तरमाह । यतः पूर्वोक्तलक्षणविशिष्टं सर्वेभ्यो महान्तं बृहत्तममादित्यवर्णं स्वप्रकाशविज्ञानस्वरूपं तमसोऽज्ञानाद्विद्यान्धकारान्परस्तात्पृथग् वर्त्तमानं परमेश्वरं पुरुषमहं वेद जानाम्यतोऽहं ज्ञान्यस्मीति निश्चयः । नैव तमविदित्वा कश्चिज्ज्ञानी भवितुमर्हतीति । कुतः (तमेव विदित्वा०) मनुष्यस्तमेव पुरुषं परमात्मानं विदित्वातिमृत्युं मृत्युमतिक्रान्तं मृत्योः पृथग्भूतं मोक्षाख्यमानन्दमेति प्राप्नोति । नैवान्योऽन्यथेति । एवकारात्तमीश्वरं विहाय नैव कस्यचिदन्यस्य लेशमात्रापि उपासना केनचित्कदाचित्कार्य्येति गम्यते । कथमिदं विज्ञायते उन्यस्योपासना नैव कार्य्येति (नान्यः पन्था

विद्यते ऽयनाय) इति वचनात् । अयनाय व्यावहारिक पारमार्थिक सुखाया-ऽन्यो द्वितीयः पन्था मार्गो न विद्यते । किंतु तस्येवोपासनमेव सुखस्यमार्गो ऽतोभिन्नस्येश्वरस्योपासनाभ्यां मनुष्यस्य दुःखमेव भवतीति निश्चयः अतःकारणादेष एव पुरुषः सर्वैरुपासनीयइति सिद्धान्तः ॥ १८ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(वेदाहमेतं) मैं जिस पदार्थ को जान के मनुष्य ज्ञानी होता है उ० उस पूर्वोक्त लक्षण सहित परमेश्वरही को यथावत् ज्ञान के ठीक २ ज्ञानी होता है अन्यथा नहीं जो सब से बड़ा सब का प्रकाश करनेवाला और अविद्या अंधकार अर्थात् अज्ञान आदि दोषों से अलग है उसी पुरुष को मैं परमेश्वर और इष्ट-देव जानता हूं उस को जाने बिना कोई मनुष्य यथावत् ज्ञानवान् नहीं हो सकता क्योंकि (तमेव विदित्वा०) उसी परमात्मा को ज्ञान के और प्राप्त होके जन्म मरण आदि क्लेशों के समुद्र समान दुःख से छूट के परमानंदस्वरूप मोक्ष को प्राप्त होता है अन्यथा किसी प्रकार से मोक्षसुख नहीं हो सकता इस से क्या सिद्ध हुआ कि उसी की उपासना सब मनुष्य लोगों को करनी उचित है उससे भिन्न की उपासना करना किसी मनुष्य को न चाहिये क्योंकि मोक्ष का देनेवाला एक परमेश्वर के बिना दूसरा कोई भी नहीं है इस में यह प्रमाण है कि (नान्यः पन्थाः) व्यवहार और परमार्थ के दोनों सुख का मार्ग एक परमेश्वर की उपासना और उस का जानना ही है क्योंकि इस के बिना मनुष्य को किसी प्रकार से सुख नहीं हो सकता ॥ १८ ॥

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा १९ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(प्रजापति०) सएव प्रजापतिः सर्वस्य स्वामी जीवस्यान्यस्य च जडस्य जगतोऽन्तर्गर्भे मध्येऽन्तर्यामिरूपेणाजायमानोऽनुत्पन्नोऽज: स नित्यं चरति । तत्सामर्थ्यादेवेदं सकलं जगद् बहुधा बहुप्रकारं विजा-यते विशिष्टतयोत्पद्यते (तस्य योनिं०) तस्य परब्रह्मणो योनिं सत्य-धर्मानुष्ठानं वेदविज्ञानमेव प्राप्तिकारणं धीरा ध्यानवन्तः (परि०) परितः सर्वतः प्रेक्षन्ते (तस्मिन्ह तस्थुर्भु०) अस्मिन्भुवनानि विश्वानि सर्वाणि सर्वे लोकास्तस्थुः स्थितिं चक्रिरे । हेति निश्चयार्थे तस्मिन्नेव परमे पुरुषे धीरा ज्ञानिनोमनुष्या मोक्षानन्दं प्राप्य तस्थुः स्थिरा भवन्तीत्यर्थः ॥ १९ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(प्रजापति०) जो प्रजा का पति अर्थात् सब जगत् का स्वामी है

बड़ी बड़ और चेतन के भीतर और बाहर अन्तर्यामिरूप से सर्वत्र व्याप्त हो रहा है जिस ने सब जगत् को उत्पन्न करके अपने वश में सदा वर्त्तमान रहता है (तस्य योनिं०) जो उस परब्रह्म की प्राप्ति का कारण सत्य का आचरण और सत्यविद्या है उस को विद्वान् लोग ध्यान से देख के परमेश्वर को सब प्रकार से प्राप्त होते हैं (तस्मिन्हतस्थु०) जिस में ये सब भुवन अर्थात् लोक ठहर रहे हैं उसी परमेश्वर में ज्ञानी लोग भी सत्य निश्चय से मोक्षसुख को प्राप्त होके जन्म मरण आदि आने जाने से छूट के आनन्द में सदा रहते हैं ॥ १९ ॥

यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः । पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(यो देवेभ्य०) यः पूर्णः पुरुषो देवेभ्यो विद्वद्भ्यस्तत्यकाशार्थमात्मनात्मानमन्तर्यामिरूपेण सर्वेषां प्रकाशयति नान्येभ्यश्च । यश्च देवानां विदुषां पुरोहितः सर्वैः सुखैः सह सोमो विदुषो दधाति । (पूर्वो यो देवेभ्यो जातो०) देवेभ्यो विद्वद्भ्यो यः पूर्वः पूर्वमेव सनातनत्वेन वर्त्तमानः सन् जातः प्रसिद्धोऽस्ति (नमो रुचाय०) तस्मै रुचाय रुचिकराय ब्रह्मणे नमोऽस्तु । यश्च देवेभ्यो विद्वद्भ्यो ब्रह्मोपदेशं प्राप्य ब्रह्मरुचिर्ब्राह्मो ब्रह्मणोऽपत्यमिव वर्त्तमानोऽस्ति । तस्मा अपि ब्राह्मये ब्रह्मसेवकाय नमोऽस्तु ॥ २० ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(यो देवेभ्य०) जो परमात्मा विद्वानों के लिये सदा प्रकाशस्वरूप है अर्थात् उन के आत्माओं को प्रकाश में कर देता और वही उन का पुरोहित अर्थात् अत्यन्त सुखों से धारण और पोषण करनेहारा है इस से वे फिर दुःखसागर में कभी नहीं गिरते । (पूर्वो यो देवेभ्यो जातो०) जो सब विद्वानों से आदि विद्वान् और जो विद्वानों के भी ज्ञान से प्रसिद्ध अर्थात् प्रख्यात होता है (नमो रुचाय०) इस अत्यन्त आनन्दस्वरूप और सत्य में रुचि करानेवाले ब्रह्म को हमारा नमस्कार हो और जो विद्वानों से वेदविद्यादि को यथावत् पढ़ के धर्मात्मा अर्थात् ब्रह्म को पिता के समान मान के सत्यभाव से प्रेम प्रीति करके सेवा करनेवाला जो विद्वान् मनुष्य है उस को भी हमलोग नमस्कार करते हैं ॥ २० ॥

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् । यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥ २१ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(रुचं ब्राह्मं०) रुचं प्रीतिकरं ब्राह्मं ब्रह्मणो ऽपत्यमिव ब्रह्मणः सकाशाज्ज्ञानं जनयन्त उत्पादयन्तो देवा विद्वांसोऽग्रेऽग्रे तद्-

ज्ञानं सज्ज्ञानसाधनं वा ब्रुवन् ब्रुवन्तूपदिशन्तु च (यस्त्वैवं०) यस्त्वेवमनुना प्रकारेण तद्ब्रह्म ब्राह्मणो विद्यात् (तु) पश्चात्तस्यैव ब्रह्मविदो ब्राह्मणस्य देवा इंद्रियाणि वशे सन्ति भवन्ति नान्यस्येति ॥ २१ ॥ ॥भाषार्थ॥

(सर्वं ब्राह्मं०) जो ब्रह्म का ज्ञान है वही अत्यंत आनंद करनेवाला और उस मनुष्य की उस में रुचि कर बढ़ानेवाला है जिस ज्ञान को विद्वान् लोग अन्य मनुष्यों के आगे उपदेश करके उन को आनंदित कर देते हैं (यस्त्वैवं ब्राह्मणो०) जो मनुष्य इस प्रकार से ब्रह्म को जानता है उसी विद्वान् के सब मन आदि इंद्रिय वश में हो जाते हैं अन्य के नहीं ॥ २१ ॥

श्रीश्चते लक्ष्मीश्चपत्न्यौ वहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ॥ इष्णन्निषाणामुं मं इषाण सर्वलोकं मं इषाण ॥ २२ ॥ य० अ० ३१ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(श्रीश्च ते०) हे परमेश्वर ते तव (श्रीः) सर्वा शोभा (लक्ष्मीः) शुभलक्षणावतीधनादिश्च द्वे स्त्रिये पत्न्यौ पत्नीवत्सेवमानेस्तः । तथाहोरात्रे द्वे ते तव (पार्श्वे०) पार्श्ववत्स्तः । ये कालचक्रस्य कारणभूतस्यापि कलाक्षयधर्मवद्भवतो सूर्याचन्द्रमसौ नेत्रे वा तथैव नक्षत्राणि तवैव सामर्थ्यस्यादिकारणस्यावयवाः सन्ति तत्रापि रूपवदस्ति । अश्विनौ द्यावापृथिव्यौ तवैव (व्यात्तम्) विकाशितं मुखमिव वर्तते । तथैव यत् किंचित्सौन्दर्यगुणयुक्तं वस्तु जगति वर्तते तदपि रूपं तवैव सामर्थ्यादुक्तमिति जानीमः । हे विराड्धिष्करणेश्वरमेममामुं परलोकं मोक्षाख्यं पदं कृपाकटाक्षेण (इषाण) इच्छन्सन् (इषाण) स्वेच्छया निष्पादय तथा सर्वलोकं सर्वलोकसुखं सर्वलोकराज्यं वा मदर्थं कृपया त्वमिषाणेच्छस्वाराज्यं सिद्धं कुरु । यथैव सर्वाः शोभा लक्ष्मीश्च शुभलक्षणयुक्ताः सर्वाः क्रिया मे मदर्थमिषाण हे भगवन् पुरुषपूर्णपरमेश्वरसर्वशक्तिमन् कृपया सर्वान् शुभान् गुणान्मह्यं देहि । दुष्टानशुभदोषांश्च विनाशय सदा स्वानुग्रहेण सर्वोत्तमगुणभाजनं मां भवान्करोत्वित्येवं ॥ अत्र प्रमाणानि ॥ श्रीर्ह पश्वः । श० कां० १ अ० ८ । श्रीर्ह सोमः । श० कां० ४ अ० १ । श्रीर्वै यज्ञे श्रीर्वै यज्ञस्य भारः । श० कां० १३ अ० १ ॥ लक्ष्मेर्लोमाद्वा लक्षणाद्वा लक्ष्यनाद्वा लाञ्छनाद्वा लषतेर्वा स्यात्प्रेप्सा कर्मणो लञ्जतेर्वा स्यादप्लायाकर्मणः श्रिये श्लिष्यपरिष्वङ्गाख्यास्यामः ॥ नि० अ० ४ खं० १०) अत्र श्रीलक्ष्म्योः पूर्वोक्तयोरर्थयोरंगभिरस्तीति बोध्यम् ॥ २२ ॥

इति पुरुषसूक्तव्याख्या समाप्ता ॥

॥ भाषार्थ ॥

(श्रीश्च ते) हे परमेश्वर जो आप की अनंत शोभारूप श्री और जो अनंत शुभलक्षणयुक्त लक्ष्मी है वे दोनों स्त्री के समान हैं अर्थात् जैसे स्त्री पति की सेवा करती है इसी प्रकार आप की सेवा आपकी जो प्राप्त होती है क्योंकि आपमें ही सब जगत् की शोभा और शुभलक्षणों से युक्त कर रक्खा है परंतु ये सब शोभा और सत्यभाषणादि धर्म के लक्षणों से लाभ ये दोनों आपकी ही सेवा के लिये हैं सब पदार्थ ईश्वर के आधीन होने से उस के विषय में यह पत्नी शब्द से रूपकालंकार से वर्णन किया है वैसे ही जो दिन और रात्रि ये दोनों अगल के समान हैं तथा सूर्य्य और चन्द्रमा दोनों आप के अगल के समान आ नेत्रस्थानी हैं और जितने ये नक्षत्र हैं वे आप के रूप स्थानी हैं और जो सूर्य्य आदि का प्रकाश और विद्युत् अर्थात् बिजुली ये दोनों मुखस्थानी हैं तथा ओढ के तुल्य और शोभा खुला मुख होता है इसी प्रकार पृथिवी और सूर्य्यलोक के बीच में जो पोल है सो मुख के सदृश है (इषाण) हे परमेश्वर आप की दया से (अमुं) परलोक जो मोक्ष सुख है उस को हमलोग प्राप्त होते हैं इस प्रकार की कृपादृष्टि से हमारे लिये इच्छा करो तथा मैं सब संसार में सब गुणों से युक्त होके सब लोकों के सुखों का अधिकारी जैसे होऊं वैसी कृपा और इस जगत् में मुझ को सर्वोत्तम शोभा और लक्ष्मी से युक्त करो कीजिये यह आप से हमारी प्रार्थना है सो आप कृपा से पूरी कीजिये ॥ २२ ॥

इति पुरुषसूक्तव्याख्या समाप्ता ॥

यत्परं सर्वं यच्च मध्यमं प्रजापतिः ससृजे विश्वरूपम् ॥ कियत्या क्कुत्सः प्रविवेश तत्र यच्च प्राविशत् किय्त्तदबूभुवत् ॥ १ ॥ अथर्व० कां० १० अनु० ४ । सं० ८ ॥ देवाः पितरो मनुष्या गंधर्वाप्सरसश्चये। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ २ ॥ अथर्व० कां० ११ प्रपा० २४ अनु० २ सं० २७ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(यत्परम०) यत्परमं सर्वोत्कृष्टं प्रकृत्यादिकं जगत् । यच्च (अवमं निकृष्टं तृणमृत्तिका क्षुद्रकृमिकीटादिकं चास्ति (यच्च म०) यन्मनुष्यदेहाद्याकाशपर्य्यन्तं मध्यमं च तत्त्रिविधं सर्वं जगत् प्रजापतिरेव (ससृजे वि०) स्वसामर्थ्यं कृतवान् । अत्यादित्यवानस्ति ॥ योऽस्य जगतो विविधं रूपं सृष्टवानस्ति (कियता०) यत्तस्मिंस्त्रिविधे जगति स्वकीयः प्रजापतिः स परमेश्वरः कियतासम्बन्धेन प्राविवेश स चैतत् परमेश्वरे (यच्च०) यत्त्रिविधं जगत्प्राविशत् तत् कियद्बभूव । तदिदं जगत् परमेश्वरसेवयाल्पमेवास्तीति ॥ १ ॥

(देवाः०) देवा विद्वांसः सूर्य्यादयोलोकाश्च पितरो ज्ञानिनः मनुष्यामननशीलाः गंधर्वागानविद्याविदः सूर्य्यादयो वा अप्सरस एतेषां स्त्रियश्च ये चापि जगति मनुष्यादिजातिगणा वर्तन्तेते सर्वेऽस्मिन्नुत्पन्नात्सर्वस्मात्पूर्वं शिष्टास्परमेश्वरानन्तसामर्थ्याच्च ऋचिरे जाताः सन्ति । ये (दिवि देवा दिविश्रितः) दिवि देवाः सूर्य्यादयोलोका ये च दिविश्रिताश्चन्द्रपृथिव्यादयोलोकास्तेऽपि सर्वे तस्मादेवोत्पन्ना इति । इत्याद्यर्थमन्त्या तद्विषया वेदेषु बहवः सन्ति ॥

इति संक्षेपतः सृष्टिविद्याविषयः समाप्तः ॥ ॥ भाषार्थः ॥

(यत्परम०) जो उत्तम मध्यम और नीच स्वभाव से तीन प्रकार का जगत् है उस सब को परमेश्वरने ही रचा है उस ने इस जगत् में नाना प्रकार की रचना की है और एक वही इस सब रचना को यथावत् जानता है और इस जगत् में जो कोई विद्वान् होते हैं वे भी कुछ २ परमेश्वर की रचना के गुणों को जानते हैं वह परमेश्वर सब की रचना है और आप रचना में कभी नहीं आता ॥ १ ॥ (देवाः पितरो०) विद्वान् अर्थात् पंडित लोग और सूर्य्य लोक भी (ज्ञानिनः) अर्थात् यथार्थ विद्या को जानने वाले (मनुष्याः) अर्थात् विचार करने वाले (गंधर्वाः) अर्थात् गान विद्या के जानने वाले सूर्य्यादि लोक और (अप्सरसः) अर्थात् इन सब की स्त्रियां ये सब लोग और दूसरे लोग भी उसी ईश्वर के सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं (दिवि देवाः) अर्थात् जो प्रकाश करने वाले और प्रकाशस्वरूप सूर्य्यादि लोक और (दिविश्रिताः) अर्थात् चंद्र और पृथिवी आदि प्रकाशरहित लोक वेभी उसी के सामर्थ्य से उत्पन्न हुए हैं ॥ २ ॥ वेदों में इस प्रकार के सृष्टि विद्यान करनेवाले मंत्र बहुत हैं परंतु ग्रंथ अधिक न होजाय इसलिये सृष्टिविषय संक्षेप से लिखा है ॥

इति सृष्टिविद्याविषयः ॥

॥ अथ पृथिव्यादि लोकभ्रमणविषयः ॥

अथेदं विधीयते पृथिव्यादयोलोका भ्रमन्त्या होस्विन्नेति । अत्रोच्यते । वेदादिशास्त्रोक्तरीत्या पृथिव्यादयोलोकाः सर्वे भ्रमन्त्येव । तत्र पृथिव्यादिभ्रमणविषये प्रमाणम् ॥

आर्यंगौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः । पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १ ॥ य० अ० ३ मं० ६ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

अस्या मि० आर्यंगौरित्यादिमंत्रेषु पृथिव्यादयोहि सर्वेलोका भ्रमन्त्येवेति विज्ञेयम् । (आर्यंगौः०) आर्यगौः पृथिवीगोलः सूर्य्येश्चन्द्रोऽन्यो लोको वा पृश्निमन्तरिक्षमाक्रमीदाक्रममणं कुर्वन्सन् गच्छतीति तथाऽन्योपि । तत्र पृथिवीमातरं समुद्रजलमसदत् समुद्रजले प्राप्ता सती । तथा (स्वः)

सूर्य्यपितरमग्निमयं च । पुरः पूर्वं पूर्वं प्रयन्सन् सूर्य्यस्य परितो याति । अयमेव सूर्य्यो वायुं पितरमाकाशं मातरं च । तथा चन्द्रोऽग्निं पितरमापोमातरं प्रतिचेति योजनीयम् ॥ अथ प्रमाणानि । गौः । अया वश्चेत्यादौनिघंटुनिरुक्तयोः पृथिवीनामसु गौरिति पठितं यास्ककृते निघण्टौ । तथाच । स्वः । पृथिवी । नाकइति षट्सु साधारणनामसु पृथिवीत्यन्तरिक्षस्य नामोल्लेखः ॥ निरुक्ते । गौरिति पृथिव्यानामधेयं यद्दूरंगता भवति यद्वास्यां भूतानि गच्छन्ति । निरु० अ० २ खं० ५ ॥ गौरादित्यो भवति गमयति रसान् गच्छत्यन्तरिक्षेण द्यौर्यद् पृथिव्या अधिदूरंगता भवति यद्वास्यां ज्योतींषि गच्छन्ति । निरु० अ० २ खं० १४ ॥ सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गंधर्व इत्यपि निगमो भवति सोपि गौरुच्यते । निरु० अ० २ खं० ६ । स्वरादित्यो भवति । निरु० अ० २ खं० १४ गच्छति प्रतिक्षणं भ्रमति या सा गौः पृथिवी । चद्भ्यः पृथिवीति तौत्तिरीयोपनिषदि) यस्मादाज्ञायते सो ऽर्थस्तस्य मातापितृवद् भवति । तथा-स्वः यच्चेनादित्यस्य यद्यात् पितुर्द्वितीयेषणत्वादादित्योऽस्याः पितृवदिति निश्चीयते । यद्दूरंगता दूरंदूरं सूर्य्याद्गच्छतीति विज्ञेयम् । अयमेव सर्वे लोकाः स्वस्य स्वस्य कक्षायां शाश्वात्मनेश्वरसत्तया च धारिताः सन्तो भ्रमन्तीति सिद्धान्तो बोध्यः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

अब सृष्टिविद्याविषय के पश्चात् पृथिवी आदि लोक घूमते हैं वा नहीं इस विषय में लिखा जाता है इस में यह सिद्धान्त है कि वेदशास्त्रों से प्रमाण और युक्ति से भी पृथिवी और सूर्य्य आदि सब लोक घूमते हैं इस विषय में यह प्रमाण है ॥

(आर्य गौः०) गौ नाम है पृथिवी सूर्य्य चन्द्रमादि लोकों का से सब अपनी २ परिधि में अंतरिक्ष के मध्य में सदा घूमते रहते हैं परंतु गौ जल है गौ पृथिवी की माता के समान है क्योंकि पृथिवी जल के परमाणुओं के साथ अपने परमाणुओं के संयोग होही उत्पन्न हुई है और मेघमंडल के जल के बीच में गर्भ के समान सदा रहती है और सूर्य्य उस के पिता के समान है इस से सूर्य के चारों ओर घूमती है इसी प्रकार सूर्य्य का पिता वायु और आकाश माता तथा चन्द्रमा का अग्नि पिता और जल माता उनके प्रति वे घूमते हैं इसी प्रकार से सब लोक अपनी २ कक्षा में सदा घूमते हैं इस विषय का संस्कृत में निघंटु और निरुक्त का प्रमाण लिखा है उस को देख लेना इसी प्रकार सूत्रात्मा जो वायु है उस के आधार और आकर्षण से सब लोकों का धारण और भ्रमण होता है तथा परमेश्वर अपने सामर्थ्य से पृथिवी आदि सब लोकों का धारण भ्रमण और पालन करता है ॥ १ ॥

या गौर्वर्त्तनिं पर्य्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवारतः ।
सा प्रक्ष्वाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्योदाशद्धविषा विवस्वते ॥ २ ॥
ऋ० अ० ८ अ० २ व० १० मं० ॥ १ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(या गौर्वर्त्तनि०) या पूर्वोक्ता गौर्वर्त्तनिं स्वकीयमार्गे (अवारतः) निरंतरं भ्रमती सती पर्य्येति । विवस्वतेर्य्यात्सूर्य्यस्य * परितः सर्वतः स्वस्वमार्गे गच्छति । (निष्कृतं) कथंभूतं मार्गं तत्तद्भ्रमणार्थमीश्वरेण (निष्कृतं) निर्मादितम् । (पयो दुहाना०) अवारतो निरंतरं पयोदुहाना अनेकरसफलादिभिः प्राणिनः प्रपूरयती । तथा व्रतनी व्रतं स्वकीयभ्रमणादि सत्यनियमं प्रापयन्ती (साप्र०) दाशुषे दानकर्त्रे वरुणाय श्रेष्ठकर्मकारिणे देवेभ्यो विद्वद्भ्यश्च हविषा हविर्दानेन सर्वाणि सुखानि दाशत् ददाति किं कुर्वती प्रक्ष्वाणा सर्वप्राणिनां व्यक्तवाण्या हेतुभूतासतीयं अर्चत इति ॥ २ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(या गौर्व०) जिस २ का नाम गौ कह आये हैं सो २ लोक अपने २ मार्ग में घूमता और पृथिवी अपनी कक्षा में सूर्य्य के चारों ओर घूमती है अर्थात् परमेश्वर ने जिस २ के घूमने के लिये जो २ मार्ग निष्कृत अर्थात् निश्चय किया है उस २ मार्ग में सब लोक घूमते हैं (पयो दुहाना०) यह गौ अनेक प्रकार के रस फल फूल तृण और अन्नादि पदार्थों से सब प्राणियों को निरंतर पूर्ण करती है तथा अपने २ घूमने के मार्ग में सब लोक सदा घूमते २ नियमही से प्राप्त होरहे हैं (सा प्रक्ष्वाणा०) जो विद्यादि उत्तम गुणों का देनेवाला परमेश्वर है उसी के जानने के लिये सब जगत् दृष्टांत है और जो विद्वान् लोग हैं उन को उत्तम पदार्थों के दान से अनेक सुखों को भूमि देती और पृथिवी सूर्य्य वायु और चन्द्रादि गौही सब प्राणियों की वाणी का निमित्त भी है ॥ २ ॥

त्वं सोम पितृभिः संविदानो द्यावा पृथिवी आततन्थ ।
तस्मै तइन्द्रो हविषा विधेम वयंस्याम पतयोरयीणाम् ॥ ३ ॥ ऋ०
अ० ६ अ० ४ व० १३ मं० ३ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(त्वं सोम०) अस्यामिश्रा० अस्मिन्मन्त्रे चन्द्रलोकः पृथिवीमनुभ्रमतीत्यर्थं विशेषोस्ति । अयं सोमश्चन्द्रलोकः पितृभिः पितृवत्याकर्षणगुणैः सह संविदानः सम्यक् ज्ञानवान् भूमिमनुभ्रमति । कदा चित्सूर्य्यपृथिव्योर्मध्येपि भ्रमन्सन्नागच्छतीत्यर्थः अस्यार्थे भाष्यकरणसमये स्पष्टतया वक्ष्या-

* दुषांतु तुमिति सूत्रेण विवस्वत इति प्राप्ते विवस्वते इति पदं साधते ॥

मि । तथा द्यावापृथिवी यजेते इति मंत्रवर्णार्थाद्यो: सूर्य्यः पृथिवी च इतस्ततश्चल नत्यर्थौ । अर्थात्स्वस्यां स्वस्यां कक्षायां सर्वे लोका भ्रमन्तीति सिद्धम् ॥ इति पृथिव्यादिलोकभ्रमणविषयः संक्षेपतः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(त्वं सोम०) इस मंत्र में यह बात है कि चन्द्रलोक पृथिवी के चारों ओर घूमता है कभी २ सूर्य्य और पृथिवी के बीच में भी आजाता है इस मंत्र का अर्थ अच्छी तरह से भाष्य में करेंगे तथा (द्यावा पृथिवी) यह अनुवाक मंत्रों में पाठ है कि द्यौः नाम प्रकाश करनेवाले सूर्य्य आदि लोक और जो प्रकाशरहित पृथिवी आदि लोक हैं वे सब अपनी २ कक्षा में सदा घूमते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि सब लोक भ्रमण करते हैं ३ ॥

इति संक्षेपतः पृथिव्यादिलोकभ्रमणविषयः ॥

॥ अथाकर्षणानुकर्षणविषयः ॥

यह्वा ते सूर्य्यना हरी वा हुधा नेदिवे दिवे । आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ १ ॥ ऋ० अ० ६ अ० १ व० ६ मं० ६ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(यद्वा ते०) अस्याभिप्रा० सूर्य्येण सह सर्वेषां लोकानामाकर्षणमस्मीश्वरेण सह सूर्य्यादिलोकानां चेति । हे इन्द्रेश्वर या वायो सूर्य्य यद्वा यस्मिन्काले ते हरी आकर्षण प्रकाशन हरणशीलौ बलपराक्रमगुणाश्रयौ किरणौ वा सूर्य्यता सूर्य्यतौ प्रकाशवन्तावत्यन्तं वर्धमानौ भवतस्ताभ्यां (आदित्) तदनन्तरं (दिवेदिवे) प्रतिदिनं प्रतिक्षणं च ते सह गुणाः प्रकाशाकर्षणादयो (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि भुवनानि सर्वान् लोकानाकर्षणेन येमिरे नियमेन धारयन्ति । अतःकारणात्सर्वे लोकाः स्वांस्वां कक्षां विहायेतस्ततो नैव विचलन्तीति ॥ १ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(यद्वा ते०) इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि सब लोकों के साथ सूर्य्य का आकर्षण और सूर्य्य आदि लोकों के साथ परमेश्वर का आकर्षण है (यद्वा ते०) हे इंद्र परमेश्वर या हे अनंत बल और पराक्रमगुणों से सब संसार का धारण आकर्षण और पालन होता है आप के ही सब गुण सूर्य्यादि लोकों को धारण करते हैं इस कारण से सब लोक अपनी २ कक्षा और स्थान से इधर उधर चलायमान नहीं होते दूसरा अर्थ इंद्र जो वायु सूर्य्य है इस में ईश्वर के रचे आकर्षण प्रकाश और बल आदि बड़े २ गुण हैं उन से सब लोकों का दिन २ और क्षण २ के प्रति धारण आकर्षण और प्रकाश होता है इस हेतु से सब लोक अपनी २ ही कक्षा में चलते रहते हैं इधर उधर विचल भी नहीं सकते ॥ १ ॥

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्रनियेमिरे ॥ आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ २ ॥ ऋ० अ० ६ अ० १ व० ६ मं० ४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(यदा ते मारुती०) अस्याभिप्रा० अत्रापि पूर्वमंत्रवदाकर्षणविद्यास्तीति । हे पूर्वोक्तेन्द्र यदा ते तव मारुतीर्मारुत्यो मरणधर्मिणो मरुत्प्राणा वा विशः प्रजास्तुभ्य येमिरे तवाकर्षणधारणनियमं प्राप्नुवन्ति तदैव सर्वे . . विश्वानि भुवनानि स्थितिं लभन्ते । तथा तवैव गुणैर्येमिरे । आकर्षणनियमं प्राप्नुवन्ति सन्ति । अत एव सर्वाणि भुवनानि यथा कक्षं भ्रमन्ति वसन्ति च ॥ २ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(यदा ते मारुती) अभि० इस मंत्र में भी आकर्षण विद्या है हे परमेश्वर आप की जो प्रजा उत्पत्ति स्थिति और प्रलय धर्मवाली और जिस में वायु प्रधान है वह आप के आकर्षणादि नियमों से तथा सूर्य लोक के आकर्षण करके भी स्थिर होरही है जब इन प्रजाओं को आप के गुण नियम में रखते हैं तभी भुवन अर्थात् सब लोक अपनी २ कक्षा में घूमते और स्थान में बस रहे हैं ॥ २ ॥

यदा सूर्य्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः आदित्तेविश्वा भुवनानि येमिरे ॥ ३ ॥ ऋ० अ० ६ अ० १ व० ६ मं० ५ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(यदा सूर्य०) अभि० अत्रापि पूर्ववदभिप्रायः । हे परमेश्वरामुं सूर्य्यं भवान्दधितवानस्ति । यद्विद्योतनात्मके त्वयि शुक्रमनन्तं सामर्थ्यं ज्योतिः प्रकाशमयं वर्त्तते । तेन त्वं सूर्य्यादिलोकानधारयो धारितवानसि (आदित्ते) तदनन्तरं (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि भुवनानि सूर्य्यादयो लोका अपि (येमिरे) तदा कर्षणनियमेनैव स्थिराणि सन्ति । अर्थाद्यथा सूर्य्यस्य कर्षणेन पृथिव्यादयो लोकास्तिष्ठन्ति । तथा परमेश्वरस्याकर्षणेनैव सूर्य्यादयः सर्वे लोका नियमेन सह वर्त्तन्त इति ॥ ३ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(यदा सूर्य०) अभि० इस मंत्र में भी आकर्षणविचार है हे परमेश्वर जब इन सूर्य्यादि लोकों को आप ने रचा और आप के ही प्रकाश से प्रकाशित हो रहे हैं और आप अपने अनंत सामर्थ्य से इन का धारण कर रहे हो इसी कारण से सूर्य्य और पृथिवी आदि लोकों और अपने स्वरूप को धारण कर रहे हैं इन सूर्य्य आदि लोकों का सब लोकों के साथ आकर्षण से धारण होता है इससे यह सिद्ध हुआ कि परमेश्वर सब लोकों का आकर्षण और धारण कर रहा है ॥ ३ ॥

अस्तभ्नाद्द्यावापृथिवी अहुतोऽन्तर्वेदद्यावा । ऊर्ध्वो नाकं सचथे स्वर्दृशा तमः । विचक्षणेव विषणे अस्तंयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त सत्यम् ॥ ४ ॥

ऋ० अ० ४ अ० ५ व० १० मं० ३ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(अस्तभ्नाद्द्यावा०) अभि० । परमेश्वर सूर्य्यलोकौ सर्वांल्लोकानाकर्षणप्रकाशाभ्यां धारयत इति । हे परमेश्वर सत्र सामर्थ्येनैव वैश्वानरः पूर्वोक्तः सूर्य्यादिलोको द्यावापृथिव्यौ भूमिप्रकाशौ व्यस्तभ्नात्तस्मिन्सत्यनस्ति । अतो भवान् मित्रश्च सर्वेषां लोकानां व्यवस्थापकोऽस्ति । अद्भुत आश्चर्य्यस्वरूपः स सवित्रादिलोको ज्योतिषा तयोरन्तरकृषोनिरोहिनं निवारितं तमः करोति । यावत्तथैव विषणे धारणाकर्षणौ द्यावापृथिव्यौ धारणाकर्षणेन व्यवतेयत् । विविधतयैतयोर्धर्तेमाने कारयति । कस्मिन्निव चर्मण्याकर्षितानि लोमानीव । यथा त्वचि लोमानि स्थितान्याकर्षितानि भवन्ति । तथैव सूर्य्यादिबलाकर्षणेन सर्वे लोकाः स्थापिताः सन्तीति विज्ञेयम् । अतः किमागमं दृश्यं वीर्य्यवद्विश्वं सर्वं जगद्वा सूर्य्यादिलोको धारयति सूर्य्यादेर्धारणमीश्वरः करोतीति ॥ ४ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(अस्तभ्नाद्द्यावा०) अभि० इस मंत्र में भी आकर्षणविचार है हे परमेश्वर आप के प्रकाश से ही वैश्वानर सूर्य्य आदि लोकों का धारण और प्रकाश होता है इस हेतु से सूर्य्य आदि लोक भी अपने २ आकर्षण से अपना और पृथिवी आदि लोकों का भी धारण करने में समर्थ होते हैं इस कारण से आप सब लोकों के परम मित्र और स्थापन करने वाले हैं और आप का सामर्थ्य अत्यंत आश्चर्य्यरूप है सो सविता आदि लोक अपने प्रकाश से अंधकार को निवृत्त कर देते हैं तथा प्रकाशरूप और अप्रकाशरूप इन दोनों लोकों का समुदाय धारण और आकर्षण व्यवहार में वर्त्तते हैं इस हेतु से इन से नाना प्रकार का व्यवहार सिद्ध होता है यह आकर्षण किस प्रकार से है कि जैसे त्वचा में लोमों का आकर्षण होरहा है वैसेही सूर्य्य आदि लोकों के आकर्षण के साथ सब लोकों का आकर्षण हो रहा है और परमेश्वर भी इन सूर्य्य आदि लोकों का आकर्षण कर रहा है ॥ ४ ॥

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च । हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥ १ ॥ य० अ० ३३ मं० ४३ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(आकृष्णेन०) अभि० अथाप्याकर्षणविद्यामाहेति । सविता परमात्मा सूर्य्यलोको वा रजसा सर्वलोकैः सहाकृष्णेनाकर्षणगुणेनसह वर्त्तमा-

नोस्ति । कथंभूतेन गुणेन हिरण्ययेन ज्योतिर्मयेन । पुनः कथंभूतेन रमणानन्दादिव्यवहारसाधकेन ज्ञानतेजोरूपेण रथेन किंकुर्वन् सन्मर्त्ये मनुष्यलोकममृतं सत्यविज्ञानं किरणसमूहं वा स्वस्वकक्षायां निवेशयन्व्यवस्थापयन्सन् । तथा च मर्त्ये पृथिव्यात्मकं लोकं प्रत्यमृतं मोक्षसोषध्यात्मकं वृष्ट्यादिकं रसं च प्रवेशयन्सन्सूर्य्यो वर्त्तमानोस्ति । सच सूर्य्योदेवो द्योतनात्मको भुवनानि सर्वान् लोकान्धारयति । तथा पश्यन्दर्शयन्सन् रूपादिकं विभक्तं याति प्रापयतीत्यर्थः । अस्मात्पूर्वमंत्राद् द्युभिरक्तुभिरिति पदानुवर्त्तनात्सुर्य्योद्युभिः सर्वैर्दिवसैरक्तुभिः सर्वाभिरात्रिभिश्चार्थात्सर्वैर्लोकान्तिचणमाकर्षतीति गम्यते । यथं सर्वेषु लोकेष्वात्मका स्वस्याप्याकर्षणशक्तिरस्त्येव । तथानन्तःकर्षणशक्तिस्तु खलु परमेश्वरस्तीति मन्तव्यम् । रजोलोकानां नामास्ति । अथाहुर्निरुक्तकारायास्काचार्य्याः ॥ लोका रजांस्युच्यन्ते । निरु० अ० ४ खं० १९ रथो रंहतेर्गतिकर्मणः स्थिरतेर्वा स्याद्विपरीतस्य रममाणोस्मिंस्तिष्ठतीति वारयतेर्वा रसतेर्वा । निरु० अ० ९ खं० ११ ॥ विश्वानरस्यादित्यस्य । निरु० अ० १२ खं० २१ ॥ अतो रथशब्देन रमणानंदकरं ज्ञानं तेजो गृह्यते । इत्यादयोमंत्रा वेदेषु धारणाकर्षणविधायका बहवः सन्तीति बोध्यम् ॥ ९ ॥

॥ इति धारणाकर्षणविद्याविषयः संक्षेपतः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(आकृष्णेन०) अभि० । इस मंत्र में भी आकर्षणविद्या है । सविता जो परमात्मा वायु और सूर्य्यलोक हैं वे सब लोकों के साथ आकर्षण धारण गुण से सहित वर्त्तते हैं सो हिरण्मय अर्थात् अनंत बल ज्ञान और तेज से सहित (रथेन) आनंद पूर्वक क्रीड़ा करने के योग्य ज्ञान और तेज से युक्त है इस में परमेश्वर सब जीवों के हृदयों में अमृत अर्थात् सत्य विज्ञान को सदैव प्रकाश करता है और सूर्य्यलोक भी रस आदि पदार्थों को मर्त्य अर्थात् मनुष्यलोक में प्रवेश करता और सब लोकों को व्यवस्था से अपने २ स्थान में रखता है ऐसेही परमेश्वर धर्मात्मा ज्ञानी लोगों को अमृतरूप मोक्ष देता और सूर्य्य लोक भी रसयुक्त जो ओषधि और वृष्टि का अमृतरूप जल को पृथिवी में प्रविष्ट करता है सो परमेश्वर सत्य असत्य का प्रकाश और सब लोकों का प्रकाश करके सब को जनाता है तथा सूर्य्यलोक भी रूपादि का विभाग दिखलाता है इस मंत्र से पहिले मंत्र में (द्युभिरक्तुभिः) इस पद से यही अर्थ आता है कि दिन रात अर्थात् सब समय में सब लोकों के साथ सूर्य्यलोक का और सूर्य्य आदि लोकों के साथ परमेश्वर का आकर्षण हो रहा है तथा सब लोकों में ईश्वरही की रचना से अपना २ आकर्षण है और परमेश्वर की

लो आकर्षणरूप शक्ति अर्थात् है यहां लोकों का नाम रज है और रज शब्द के अनेक अर्थ हैं इस कारण से कि जिस से रमण और आनंद की प्राप्ति होती है इस को रज कहते हैं इस विषय में निरुक्त का प्रमाण इसी अंश के भाष्य में लिखा है सो देख लेना ऐसे धारण और आकर्षण विद्या के सिद्ध करने वाले मंत्र वेदों में बहुत हैं ॥ १ ॥ इति धारणाकर्षणविषयः संक्षेपतः ॥

॥ अथ प्रकाश्यप्रकाशकविषयः संक्षेपतः ॥

॥ सूर्य्येण चन्द्रादयः प्रकाशिता भवन्तीत्यत्र विषये विचारः ॥

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्य्येणोत्तभिता द्यौः ॥ ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधिश्रितः ॥ १ ॥ द्यौरहं नादित्या दृंहितः द्यौरहं पृथिवी मही ॥ अथोनक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १४ अनु० १ मं० १ । २ । का स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः ॥ किं० स्विद्धिमस्य भेषजं किंवा दधात्यप्वनत् ॥ ३ सूर्य्यएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ॥ अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ ४ ॥ य० अ० २३ मं० ९ । १० ॥

॥ भाष्यम् ॥

(सत्येनो०) यथामभि० अथ चन्द्रपृथिव्यादिलोकानां सूर्य्यः प्रकाशकोऽस्तीति । इयं भूमिः सत्येन नित्यस्वरूपेण ब्रह्मणोत्तभितोर्ध्वमाकाशमध्ये धारितास्ति तथायुना सूर्य्येण च । (सूर्य्येण०) तथाद्यौः सूर्य्यः प्रकाशः सूर्य्येणोत्तभितो धारितः (ऋतेन०) कालेन सूर्य्येण तथायुना वा ऽऽदित्या द्वादशमासाः किरणास्तत्सदृशेनाग्नेयेन बलवन्तः सन्तो वा तिष्ठन्ति (दिवि सोमो अधिश्रितः) एवं दिवि द्योतलात्मके सूर्य्यप्रकाशे सोमश्चन्द्रोऽधिश्रित आश्रितः सन्प्रकाशितो भवति । अथोचन्द्रलोकादिषु स्वकीयः प्रकाशो नास्ति । सर्वे चन्द्रादयोलोकाः सूर्य्यप्रकाशेनैव प्रकाशिता भवन्तीति वेदात् ॥ १ ॥ (सोमेनादित्या०) सोमेन चन्द्रलोकेन सहादित्याः किरणाः संयुज्य सतो निवृत्य च भूमिं प्राप्य बलिनो बलकर्तृ शीला भवन्ति तेषां बलप्रापकशीलत्वात् । तद्यथा । यावन्तो ऽन्तरिक्षदेशे सूर्य्यप्रकाशस्यावरणं पृथिवी करोति तावति देशेधिके शीतलत्वं भवति । तत्र सूर्य्यकिरणपतनाभावादन्धकारे सोमत्वाभावाच्च बलकारिणो बलवन्तो भवन्ति । सोमेन चन्द्रलोकः प्रकाशेन सोमाधीवध्यादिना च पृथिवी सही बलवती पुष्टा भवति । अथो इत्यनन्तर-

मेषां नक्षत्राणामुपरिष्टे समीपे चन्द्रमा आहितः स्थापितः सन्वर्त्तत इति विज्ञेयम् ॥ २ ॥ (कः स्वि०) को ह्येकाकी ब्रह्माण्डे चरति । कोऽपि स्वेनैव स्वयं प्रकाशितःसन् भवतीति । कः पुनः प्रकाशितो ज्ञायते हिमस्य शीतस्य भेषजमौषधं किमस्ति । तथा बीजारोपणाद्यै महत् क्षेत्रमिव किमत्र भवतीति प्रश्नाश्चत्वारः ॥ ३ ॥ एषां क्रमेणोत्तराणि । (सूर्य्य एकाकी०) अस्मिन्संसारे सूर्य्य एकाकीचरति स्वयंप्रकाशमानः सन्नन्यान्सर्वान् लोकान्प्रकाशयति तस्यैव प्रकाशेन चन्द्रमा पुनः प्रकाशितो जायते नहि चन्द्रमसि स्वतः प्रकाशः कश्चिदस्तीति । अग्निर्हिमस्य शीतस्य भेषजमौषधमस्तीति । भूमिर्महद्वा वपनं बीजारोपणादेरधिकरणं क्षेत्रं चेति वेदेष्वेतद्विषयप्रतिपादका एवंभूता मंत्रा बहवः सन्ति ॥ ४ ॥

॥ इति प्रकाश्यप्रकाशकविषयः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(सत्येनो०) इन मंत्रों में यही विषय और इस का यही प्रयोजन है कि लोक दो प्रकारके होते हैं एक तो प्रकाश करने वाले और दूसरे वे जो प्रकाश किये जाते हैं अर्थात् सत्यस्वरूप परमेश्वर ने ही अपने सामर्थ्य से सूर्य्य आदि सब लोकों को धारण किया है उसी के सामर्थ्य से सूर्य्यलोक ने भी अन्य लोकों का धारण और प्रकाश किया है तथा ऋत अर्थात् काल महि ने सूर्य्य किरण और वायु ने भी सूक्ष्म स्थूल त्रसरेणु आदि पदार्थों का यथावत् धारण किया है (दिवि सोमो०) इसी प्रकार दिवि अर्थात् सूर्य्य के प्रकाश में चन्द्रमा प्रकाशित होता है उस में जितना प्रकाश है सो सूर्य्य आदि लोक का ही है और ईश्वर का प्रकाश तो सब में है परंतु चन्द्र आदि लोकों में अपना प्रकाश नहीं है किंतु सूर्य्य आदि लोकों से ही चन्द्र और पृथिव्यादिलोक प्रकाशित हो रहे हैं ॥ १ ॥ (सोमेनादित्या०) जब आदित्य की किरण चन्द्रमा के साथ युक्त हो के उस से उलट कर भूमि को प्राप्त हो के बलवाली होती है तभी वे शीतल भी होती हैं क्योंकि आकाश के जिस २ देश में सूर्य्य के प्रकाश को पृथिवी की छाया रोकती है उस २ देश में शीत भी अधिक होता है जिस २ देश में सूर्य्य की किरण तिरछी पड़ती हैं उस २ देश में गर्मी भी कमती होती है फिर गर्मी के कम होने और शीतलता के अधिक होने से सब मूर्तिमान् पदार्थों के परमाणु जम जाते हैं उन को जमने से पुष्टि होती है और जब उस के बीच में सूर्य्य की तेज रूप किरण पड़ती हैं तब उन में से भाफ उठती है उनके योग से किरण भी बलवाली होती हैं जैसे जल में सूर्य्य का प्रतिबिंब अत्यंत चमकता है और चन्द्रमा के प्रकाश और वायु से सोमलता आदि ओषधियां भी पुष्ट होती हैं और उनसे पृथिवी पुष्ट होती है इसीलिये ईश्वरने नक्षत्र लोकों के समीप चंद्रमा को स्थापित किया है ॥ २ ॥ (कःस्वि०) इस मंत्र में चार प्रश्न हैं

नो शन बैठकाध्यक्ष के सहाय में साढ़े आठवें में आया।						नमूना पर्सनल
पंडित लालचन्द । जयपुर की तर्फदी । २० शीकर रामगढ़						५)
जिन से अन्त में लेंगे	सदस्यता संख्या	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	संख्या पुस्तक	मासूल रवाना	मोल अखबार
	२८०	राय हरीकिशन साहिब	टीचर्स मदरसा, पहलवा ..	१	॥)	
	२८७	बाबू रामनरायण ..	जज किरकी बरेली बार-बरेली	१	॥)	
	२८८	पंडित रामसहाय ..	सेनर डिस्पेंसरी जेल, बरेली	१	॥)	
	२८९	बाबू लोचनी प्रसाद	सब जजकी कचहरी बीसल, बरेली	१	॥)	
	२९०	अलीमल्ल सेठ ..	मकसूदाना मालखाना, बरेली	१	॥)	
	२९१	नाथूमल्ल सेठ ..	धारकेशा, आसुखपुर, बरेली	१	॥)	
पेज ४ से	२९५	लाला गुलाबसिंह ..	डिपार्टमेन्टल अकाउन्टेंट, अम्बाला	१	॥)	
,,	२९६	लाला भगवानदास दास एंड ..	स्टाफसार्जेन्ट २३ वें पलटन काली रामनगर। ..	१	॥)	
अखबार खरीदने वालों से	२९७	लाला काशीराम	डिपार्टमेन्ट नहरी शाहजहांपुर, लाहौर।	१	॥)	
,,	२९८	मास्टर हरीराम	गवर्नमेन्ट स्कूल, लाहौर ..	१	॥)	
,,	२९९	पोथीसमाज ..	लाहौर, लाहौर	५	२॥)	
पेज ४ से	३१०	लाला भगवानसहाय	तहसील कचहरी, रामनगर ..	१	॥)	
,,	३१४	सैयद मकसूदशाह	सिपुत्री डाकखाना रुपैल राजा तहसील, सिकन्दराबाद, बुलन्दशहर	१		॥)
,,	३१५	कर्नैलसिंह बेटे करना सिंह के ..	कदरा मित्रसिंह चौधरी के मौसेरे भाई गली में. मा मोसमद	१	॥)	
बेअखबार अर्थात् अखबार से	३१६	सिंह मनुआदीन ..	हेड पोस्टमास्टर पिंडदादनखां। पो. ओ. जेर के नवाब पंजाब, डलहौजी ..	१	॥)	
	३१७	पंडित नथवसिंह ..	बुनहरा, अलमोड़ा	१	॥)	
	३१८	बाबू लक्ष्मीदत्त बाजपेई ..	अलमोड़ा	१	॥)	
	३१९	पंडित गोपीकिशोरी प्रसाद ..	राजा बीरू बड़ा बाजार कलकत्ता	१	॥)	
	३२०	बाबू रामधार बाजपेई ..	डिप्लमेंट सुपरिंटेंडेंस आफ अर्डेंस सेक्रेटरी डिपो० गवर्नमेंट टॉप्स राफ डिपार्टमेंट। कलकत्ता	१	॥)	

We beg to acknowledge following amounts received by Babu Hurry Chand Chintamon of Bombay.

	Rs. As.		Rs. As.
Chunbhoovun Gunesbhoy,	4-8	Mannuk Lal Gunesbhoy,	4-8
Narayan Sunderdas Chandi,	4-8	Rao Saheb Bookhoora,	4-8
Joyshunkar Atma Josey,	4-8	Purmeswurdas Gurdass,	4-8
Beelanath Umbaramdyen,	4-8	Mooleband Brijvalubdass,	4-8
Vasurjee Prirajee,	4-8	Bhanoshunker Nanyareshunker,	4-8
Prugjee Dhurajee,	4-8	Vunmaredass Parutamdass,	4-8
Soundersee Unclundass,	4-8	Cullianjee Sewjee,	4-8
Dungursee Anundjee,	4-8	Prunjee Rughunath,	4-8
Dullursee Dulujee,	4-8	Dhurseem Narayan,	0-0
Thakoredass Brijlookundass,	3-0	Lukmi Dass, Purmundass,	4-8
Anna Vurtmad Jose,	4-8	Tejbhuram Dass, Gwalidass,	4-8
Seeta al Chunedass,	4-8	Bhai Jeevunjee,	4-8
Govind Narayan,	4-8		

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बनाये पुस्तकों की सूचना ॥

	मूल्य पुस्तक प्रति	महसूल
१ सत्यार्थप्रकाश का	३)	।=)
२ संस्कारविधि का	॥=)	।)
३ आर्याभिविनय का	।)	=)

इनमें से सत्यार्थप्रकाश का पुस्तक राजा जयकृष्णदास जी के पास शहर इलाहाबाद में कटरा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास किंवा सुवर्ण बाजारकोठ पालिका टैंक की सड़क पर रामबाग के सामने केडयपाल गिरधरलाल जी के पास को मिलता है :

संस्कारविधि स्वामी द० जी के पास वीर पंडित सुन्दरलाल जी के पास इलाहाबाद में पोस्टमास्टर जनरल की बाजारी के ठिकाने से किंवा रईस ठाकुर शुकदेवसिंह सुशोभित के पास जिला अलीगढ़ परगना सोरखल के ठिकाने से मिलता है।

आर्याभिविनय—स्वामी द० जी के पास वीर पूर्वोक्त पंडित सुन्दरलाल जी के ठिकाने से मिलता है ॥

हमें जो सज्जन मनुष्य पुस्तक पाठुके उनको प्रसन्नतापूर्वक यथोचित मोल इस ग्रन्थ और भाषा की लाहिब सामेत अन्यों के पास आर्यों अर्थात् बनारस में भेज देना चाहिये ॥

REGISTERED No. 16

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

सायणाचार्य्यकृत

॥ वेदानामर्थमार्गाणां सन्दर्भिका ॥

अस्मिन्नेकादशस्य प्रतिभागस्य मुख्यतः पञ्चसप्तत्यधिकत्रयोदशशतानां
मूल्यम् रूप्यकाः ८ । सप्तत्रिंशदधिकशतानां त्रिंशत्तमं
पार्थिकं ३० । अनवधृतम् ।

इमे पृष्ठे के प्रतिभागस्य षष्ठे भागे नेत्रं मा तुच्छं भवत्वेतद्वे भोगं
प्रत्यभागमूल्यं पञ्चाशत् ५० । शेषं पार्थिकं मूल्यं ५० ।

अस्य ग्रन्थस्य पञ्चाशत्येका प्रस्य अष्टशतानां नवनवतिसप्तशतस्य
या द्वयानन्दसप्तशतीत्यभिधा, तस्याः पार्थिकं मूल्यं
शतस्य प्रतिभागस्य प्राप्यते ।

मूल्यं १०)

॥ अस्य वेदभाष्यभूमिकाख्यस्य ग्रन्थस्य मुद्रणादिकं ॥

॥ सर्वं ॥

॥ अस्य ग्रन्थस्याधिकारी भगवान्दयानन्दः सरस्वती स्वयमेव ॥

प्रकाशक को चाहिए, कि इस पुस्तक के आदि और अन्त के पत्रों में
मुद्रक के नाम, स्थान, संवत् और मुद्रणालय का नाम भी छपवा दे ।

इन के बीच में से पहिला (प्रथम) कौन एकाकी अर्थात् चलेगा विचरता और अपने प्रकाश में प्रकाशित होगा है। दूसरा कौन दूसरे के प्रकाश से प्रकाशित होगा है। तीसरा। तीसरा कौनसा कोनसा होगा है और चौथा। कौन वहां चौथे अर्थात् एकएकके रखने का स्थान है ॥ ३ ॥ इन चारों पक्ष का उत्तर देते हैं (सूर्य्य एकाकी०) (१) इस मंत्र में सूर्य्यदेव एकाकी अर्थात् चलेगा विचरेगा और अपने ही तेज पर घूमता है तथा प्रकाशस्वरूप होकर सब लोकों का प्रकाश करने वाला है ॥ (२) चन्द्रमा सूर्य्य के प्रकाश से चंद्रमा प्रकाशित होता है ॥ (३) तीसरा कोनसा कोनसा है और तीसरा पक्ष है इसीलिये आकार तीनों के रखने का स्थान तथा यह तीन दोनों का इकट्ठा संग है ॥ (४) वेदों में इस विषय के सिद्ध करने वाले मंत्र बहुत हैं उनमें से यहां एक देदेनाहार लिखदिया है वेदभाष्य में सब विषय विस्तार पूर्वक आजावेंगे ॥ ४ ॥ इति संक्षेपतः प्रकाश्यप्रकाशकविषयः ॥

॥ अथ मणिनविद्याविषयः ॥

एकाँचये निश्चये निश्चये एकंचये एकंचये सप्तचये सप्तचये नवंचये नवंचये एकादशचये एकादशचये त्रयोदशचये त्रयोदशचये पञ्चदशचये पञ्चदशचये सप्तदशचये सप्तदशचये नवदशचये नवदशचये एकविंशतिश्चये एकविंशतिश्चये त्रयोविंशतिश्चये त्रयोविंशतिश्चये पञ्चविंशतिश्चये पञ्चविंशतिश्चये सप्तविंशतिश्चये सप्तविंशतिश्चये नवविंशतिश्चये नवविंशतिश्चये एकत्रिंशच्चये एकत्रिंशच्चये त्रयस्त्रिंशत्त्रयाणाम् ॥ १ ॥ चतुश्चये चतुश्चये द्वादशचये द्वादशचये षोडशचये षोडशचये विंशतिश्चये विंशतिश्चये चतुर्विंशतिश्चये चतुर्विंशतिश्चये अष्टाविंशतिश्चये अष्टाविंशतिश्चये द्वात्रिंशच्चये द्वात्रिंशच्चये षट्त्रिंशच्चये षट्त्रिंशच्चये चत्वारिंशच्चये चत्वारिंशच्चये चतुश्चत्वारिंशच्चये चतुश्चत्वारिंशच्चये अष्टाचत्वारिंशच्चये अष्टाचत्वारिंशच्चये शतेन चतुष्टयानाम् ॥ २ ॥ य० अ० १८ मं० ॥ २४ ॥ २५ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

अस्मि० अनयोरेवयोर्मंत्रयोः सर्वाक्षरोक्तसंख्याजरेखागणितं प्रकाशितमिति (प्रका०) प्रकाशस्य का व्याख्या सं० अस्ति । १ । सैकेन युताः द्वौ अवयवाः । २ । एष द्वाभ्यां युतौ वा त्रिभ्यश्चाधिका (३) ॥ १ ॥ द्वाभ्यां

द्वौ युक्तौ चत्वारः । ४ । यत्र निरूपभिस्त्रित्वसंख्यायुक्ता षट् (६) एकमेव चतस्रश्चमे पञ्चमे इत्यादिषु परस्परं संयोगादिक्रियया सहानेकविधाङ्कैर्गणित-विद्या सिध्यति । अन्यत्रान्यत्रस्थानेकषड्राशां षष्ठान्मनुष्यैरनेकविधा गणित-विद्याः सन्तीति वेद्यम् सेयं गणितविद्या वेदाङ्गे ज्योतिषशास्त्रे प्रसिद्धास्त्यतो नात्र लिख्यते । परन्त्वीदृशामेवा ज्योतिषशास्त्रस्थ गणितविद्याया मूलमिति विज्ञायते । इयमङ्कसंख्या निश्चितेषु संख्यातपदार्थेषु प्रवर्त्तते येषामज्ञातसंख्याः षड्रार्थास्तेषां विज्ञानार्थं बीजगणितं प्रवर्त्तते । तदपि विधानमेका धेति । क^{२}—क^{२} इत्यादि संकेतेनैतन्मंत्रादिभ्यो बीजगणितं निःसरतीत्यवधेयम् ॥ २ ॥

"अ^{२}ग्न^{२} आ^{१}या^{२}हि वी^{२}तये^{२} गृणा^{३}नो^{२} ह^{२}व्य^{१}दा^{२}तये ॥ नि^{१} होता^{२} सत्सि^{२} बर्हि^{२}षि^{२}," ॥ साम. छं० । प्र० १ । ख० १ । यथैका क्रिया ह्यनेकरी प्रसिद्धैतिन्यायेन स्वरसंकेतैरङ्कैर्बीजगणितमपि साध्यत इति वेद्यम् एवं गणितविद्याया रेखागणितं तृतीयोभागः सोप्यत्रोच्यते ॥

॥ भाषार्थ ॥

(एकाचमे॰) इन मंत्रों में यही प्रयोजन है कि अंक बीज और रेखा भेद से जो तीन प्रकार की गणितविद्या सिद्ध की है उनमें से प्रथम अंक जो संख्या है (१) और दो आर गणने से दोकी वाचक होती है जैसे १ + १ = २ ऐसे ही एक के आगे एक तथा एक के आगे दो वा दो के आगे एक आदि जोड़ने से भी समझ लेना इसी प्रकार एक के साथ तीन जोड़ने से चार ४ तथा तीन को तीन ३ के साथ जोड़ने से (६) अथवा तीन को तीन से गुणने से ३ × ३ = ९ हुए ॥ ५ ॥ इसी प्रकार चार के साथ चार पांच के साथ पांच छः के साथ छः आठ के साथ आठ इत्यादि जोड़ने वा गुणने तथा सब मंत्रों के आशय को फैलाने से सब गणित विद्या निकलती है जैसे पांच के साथ पांच (१५) वैसे ही पांच २ छः २ (५५) (६६) इत्यादि जान लेना चाहिये ऐसे ही इन मंत्रों के अर्थों को आगे योजना करने से अंकों से अनेक प्रकार की गणित विद्या सिद्ध होती है क्योंकि इन मंत्रों के अर्थ और अनेक प्रकार के प्रयोगों से मनुष्यों को अनेक प्रकार की गणित विद्या अवश्य जाननी चाहिये और जो की वेदों का अंग ज्योतिषशास्त्र कहाता है उस में भी इसी प्रकार के मंत्रों के अभिप्राय से गणित विद्या सिद्ध की है और अंकों से जो गणित विद्या निकलती है वह निश्चित और असंख्यात पदार्थों में युक्त होती है और अज्ञात पदार्थों की संख्या जानने के लिये जो बीजगणित होता है सोभी (एकाचमे॰) इत्यादि मंत्रों ही से सिद्ध होता है जैसे (क^{२} + क^{२}) (क^{२} — क^{२}) (क^{२} + क^{२}) — इत्यादि संकेत से निकलता है यह

और वेदीकी दो परिधि मुनियों ने निकाला है और इसी प्रकार से तीसरा भाग लेने रेखागणित से जैसी वेदीकी से सिद्ध होता है ॥ २ ॥ (अग्निर्³ आ०) इस मंत्र के संकेतों से भी बीजगणित निकलता है ॥

इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः । अयꣳ सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३ ॥ य० अ० २३ मं० ६२ ॥ कात्यौत्सा प्रतिमा किं बिदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत् । छन्दः किमासीत्प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥ ४ ॥ ऋ० अ० ८ अ० ७ व० १८० मं० ६ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(इयं वेदिः०) अग्निप्र० अस्य मंत्रस्यो रेखागणितं प्रकाशयत इति । इयं या वेदिश्चितिरेणा चतुरस्रा सेनाकारा वर्तुलाकारादियुक्ता क्रियते तस्या वेदेराकृत्या रेखागणितोपदेशलक्षणं विज्ञायते । यत्र पृथिव्याः परोऽन्तो यो सामोऽन्तर्वेदेः सूचयेष्टनवद्भवति स परिधिरित्युच्यते । यस्यायं यज्ञोहि संगमनीयो रेखागणिते मध्यो व्यासाख्यो मध्यरेखाख्यश्च योयं ऽऽस्य भुवोलस्य लक्षणस्य सा नाभिरस्ति ॥ (आयꣳसो०) सोमसोकाप्येवमेव परिध्यादि युक्तोस्ति (वृष्णो अश्व०) वृष्णिकर्तुः सूर्यस्यामेर्वायोर्वा वेगहेतोरपि परिध्यादिकं तथैवास्ति । (रेतः) तेषां सौर्यसोपरिधिरूपेण सामर्थ्यमेवं सिद्धमस्तीति वेदयम् ॥ (ब्रह्मायं वा०) यद्ब्रह्मास्मिन्नद्वागयाः (परमंव्योम) अर्थात्परिधिरूपेणान्तर्वेदेः स्थितमस्ति ॥ ३ ॥ (कात्यौत् प्रमा) यथार्थज्ञानं यथार्थज्ञानसाधनं तत्साधिका बुद्धिः कात्यौत् सर्वत्रेति शेषः । यत्तु (प्रतिमा) प्रतिमीयते ऽनया सा प्रतिमायया परिधिर्मा क्रियते सा कात्यौत् । यत्तेषाम्य (विदानम्) कारणं किमस्ति । (आज्यम्) ज्ञातव्यं घृतवत्सारभूतं वास्तिम् अस्ति किमासीत् सर्वबुद्धिकारिवाद्यानन्देन क्रियं सारभूतं च (परिधिः क०) तस्यास्य सर्वस्य विश्वस्य वृत्तावरणं (क आसीत्) । सोमस्य पदार्थसोपरि सर्वतः सूचयेष्टनं कृत्वा यावती रेखा भवति । स परिधिरित्युच्यते । (छन्दः०) स्वच्छन्दं स्वतंत्रं वस्तु (किमासीत्) (प्रउगं) प्रकृष्टमुगं लोकव्यं (किमासीत्) इति प्रश्नाः समाधानानि । (यद्देवा देव०) यत् यं देवं [illegible] विश्वेदेवाः सर्वे विद्वांसः (अयजन्त)

समपूजयन्त पूजयन्ति पूजयिष्यन्ति च स यत्र सर्वस्य (प्रमा) यथार्थतया ज्ञातास्ति (प्रतिमा) परिमाणकर्त्ता । एवमेवायमपि पूर्वोक्तार्थो योजनीयः अथापि परिधिशब्देन रेखागणितोपदेशलक्षणं विज्ञायते । सेयं विद्या ज्योतिषशास्त्रे विस्तरश उक्तास्ति । एवमेतद्विषयप्रतिपादका अपि वेदेषु बहवो मंत्राः सन्ति ॥ इति संक्षेपतो गणितविद्याविषयः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(इयं वेदिः०) अभिप्रा० इन मंत्रों में रेखागणित का प्रकाश किया है क्योंकि वेदी की रचना में रेखागणित का भी उपदेश है जैसे तिकोन चौकोन सेन पक्षी के आकार और गोल आदि जो वेदी का आकार किया जाता है सो आर्य्यों ने रेखागणित ही का दृष्टांत माना था क्योंकि (परो अन्तः पृ०) पृथिवी का जो चारों ओर घेरा है उस को परिधि और ऊपर से अन्त तक जो पृथिवी की रेखा है उस को व्यास कहते हैं इसी प्रकार से इन मंत्रों में आदि, मध्य और अंत आदि रेखाओं को भी जानना चाहिये और इसी रीति से निर्यक त्रिभुवन् रेखा आदि भी निकलती हैं ॥ ३ ॥ (ऋतस्य प्र०) अर्थात् यथार्थ ज्ञान क्या है (प्रतिमा) जिस से पदार्थों का तौल किया जाय सो क्या चीज़ है (निदानम्) अर्थात् कारण जिस से कार्य उत्पन्न होता है वह क्या चीज़ है (आप्यं) जगत् में जानने के योग्य सारभूत क्या है (परिधिः०) परिधि किस को कहते हैं (छन्दः०) स्वतंत्र वस्तु क्या है (प्रउ०) प्रयोग और शब्दों से स्तुति जानने के योग्य क्या है इन सात प्रश्नों का उत्तर यथावत् दिया जाता है (यद्देवा देव०) जिस को सब विद्वान् लोग पूजते हैं वही परमेश्वर प्रमा आदि नाम वाला है इन मंत्रों में भी प्रमा और परिधि आदि शब्दों से रेखागणित साधने का उपदेश परमात्मा ने किया है सो यह तीन प्रकार की गणित विद्या आर्यों ने वेदों से ही सिद्ध की है और इसी आर्य्यावर्त्त देश से सर्वत्र भूगोल में गई है ॥ इति संक्षेपतो गणितविद्याविषयः ॥

॥ अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनायाचनासमर्पणोपासनाविद्याविषयः ॥

स्तुतिविषयस्तु यो भूर्भ वेत्यारभ्योक्तो वक्ष्यते च । अथेदानीं प्रार्थनाविषय उच्यते ।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि मन्युरसि मन्युं मयि धेहि सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ १ ॥ य० अ० १९ मं० ९ ॥ मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् । अस्माकꣳसन्त्वाशिषः सत्याः सन्त्वाशिषः ॥ २ ॥ य० अ० २ मं० १० । यो मेधां

हैवतासः पितरोऽहोपायने । तया मादयस्व मेधसाऽनमीवो रुद्र जलाषी ॥ ६ ॥ य० अ० ३२ मं० १४ ॥ ॥ स्वाहा ॥

अथि० । तेजोसीत्यादिमंत्रेषु परमेश्वरस्य स्तुतिप्रार्थनाविधिरुक्तः प्रकाश्यते यत्र यत्र यैर्यैः (तेजोऽसि०) हे परमेश्वर त्वं यैर्यैर्गुणैर्जगन्तर्यामिन्नादिगुणैः प्रकाशमयोऽसि मय्यप्यस्मिन्नात्मनि तेजोविज्ञानं धेहि (वीर्यमसि०) हे परमेश्वर त्वं वीर्यमस्यनन्तपराक्रमवानसि कृपया मय्यपि शरीरबुद्धिवीर्यस्फूर्त्यादि वीर्यं पराक्रमं स्थिरं धारय (बलमसि०) हे महाबलेश्वर त्वमनन्तबलमसि मय्यप्यनुग्रहेण तत्तुल्यं बलं धेहि मां पालय (ओजोऽसि०) हे परमेश्वर त्वमोजोऽसि मय्योजः सत्यं विद्याबलं धेहि (मन्युरसि०) हे परमेश्वर त्वं मन्युर्दुष्टान्प्रतिबोधः शुद्धोऽसि मय्यपि स्वप्रजया दुष्टान्प्रति मन्युं धेहि (सहोऽसि०) हे सहनशीलेश्वर त्वं सहोऽसि मय्यपि सुखदुःखयुद्धादिसहनं धेहि । यत्तं कृपयैतादृशगुणान्मह्यं देहीत्यर्थः ॥ १ ॥ (मयीन्द्रियन्द्र०) हे इन्द्र परमैश्वर्यवन्परमात्मन् मयि मदात्मनि वीर्यादिकं यत्तच्च सर्वोत्तमं भवान् दधातु । तथा उत्साहं च पोषयतु । अर्थात्सर्वोत्तमैः एतादृशैः सह वर्त्तमानत्वात्त्वं कृपया करोतु पालयतु च (यस्मान् राजा०) तथा नोऽस्माकं सर्वं एव वै शिक्षाबलादिधनं विद्यते यस्मिन्वा सर्वान् स परमेश्वरः राज्यादिधनप्रदत्वाद्वै तथातु (सचन्तां०) सचन्तां तत्र यास्मान्सभैसान्करोतु । तथा सदस्य उत्तमेषु गुणेषु सर्वेषां समवेता सर्वज्ञेश्वरा ऽऽज्ञास्ति (अस्माकꣳसदा०) तथा हे भगवन् त्वत्कृपया ऽस्माकं सर्वा आशिष इच्छाः सर्वदा सत्याः भवन्तु सा काचिदस्माकं चक्षुर्मनोराज्यानुशासनादेव आशिष इच्छामात्रा भवेयुः ॥ २ ॥ (याजेभ्यो०) हे अग्ने परमेश्वर परमोत्तमया मेधया धारणावत्याधिया बुद्ध्या सह (मा) मां मेधाविनं सर्वदा कुरु कामेभ्योऽयुच्यते (देवगणाः) विद्वत्समूहाः पितरो विज्ञानिनश्चोपायने (तया०) तया मेधया (मदा) सर्वमानन्दिनं मां सर्वदा मुदायुक्तं कुरु संपादय (स्वाहा) अत्र स्वाहाशब्दार्थं प्रमाणं निरुक्तकारा आहुः ॥ स्वाहा कृतयः स्वाहेत्येतत्सु आहेति वा स्वा वागाहेति वा स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तासामेषा भवति । निरु० अ० ८ खं० २० ॥ स्वाहाशब्दस्यायमर्थः । (सु आहेति वा) (सु) सुष्ठु सोमनं मधुरं कल्याणकरं प्रियवचनं सर्वमनुष्यैः सदा वक्तव्यं (स्वाशामाहेति वा) या ज्ञानमध्ये स्वकीया वा-

ग्वर्नते सा यदाह तदेवशब्दाग्निद्रियेण सर्वदा वाच्यम् । (स्वं ब्राह्मेति वा) स्वं स्वकीयपदार्थं प्रत्येव स्वत्वं वाच्यं न परपदार्थं प्रतिचैति (स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा) सुष्ठुरीत्या संस्कृत्य २ हविः सदा होतव्यमिति स्वाहाशब्दपर्य्यायार्थः ॥ ३ ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब गणित विद्या विषय के पश्चात् तेजोसीत्यादि मंत्रों में केवल ईश्वर की प्रार्थना याचना समर्पण और उपासना विषय है सो आगे लिखा जाता है परंतु जानना चाहिये कि स्तुति विषय तो (यो भूतं च०) इत्यादि मंत्रों में कुछ २ लिख दिया है और आगे भी कुछ लिखेंगे यहां पहिले प्रार्थना विषय लिखते हैं (तेजोऽसि०) अर्थात् हे परमेश्वर आप प्राकाशरूप हैं मेरे हृदय में भी कृपा से विज्ञानरूप प्रकाश कीजिये (वीर्य्यमसि०) हे जगदीश्वर आप अनन्त पराक्रम वाले हैं मुझको भी पूर्ण पराक्रम दीजिये (बलमसि०) हे अनन्त बलवाले महेश्वर आप अपने अनुग्रह से मुझ को भी शरीर और आत्मा में पूर्ण बल दीजिये (ओजोऽ०) हे सर्व शक्तिमान् आप सब सामर्थ्य के निवासस्थान हैं अपनी कृपा से योगोक्त सामर्थ्य का निवासस्थान मुझ को भी कीजिये (मन्युरसि०) हे दुष्टोंपर क्रोध करने हारे आप दुष्ट कामों और दुष्ट जीवों पर क्रोध करने का स्वभाव मुझ में भी रखिये (सहोऽसि०) हे सब के सहन करने हारे ईश्वर आप जैसे पृथिवी आदि लोकों के धारण और नास्तिकों के दुष्ट व्यवहारों को सहते हैं वैसे ही सुख दुःख हानि लाभ सरदी गरमी भूख प्यास और युद्ध आदि का सहने वाला मुझ को भी कीजिये अर्थात् सब शुभगुण मुझ को देके अशुभ गुणों से सदा अलग रखिये ॥ १ ॥ (मयीदमिंद्र०) हे उत्तम ऐश्वर्य युक्त परमेश्वर आप अपनी कृपा से श्रोत्र आदि उत्तम इंद्रिय और श्रेष्ठ स्वभाव वाले मन को मुझ में स्थिर कीजिये अर्थात् हम को उत्तम गुण और पदार्थों के सहित सब दिन के लिये कीजिये (अस्मान् रा०) हे परम धनवाले ईश्वर आप उत्तम राज्य आदि धनवाले हम को सदा के लिये कीजिये (सबन्धा०) मनुष्यों के लिये ईश्वर की यह आज्ञा है कि हे मनुष्यो तुम लोग सब काल में सब प्रकार से उत्तम गुणों का ग्रहण और उत्तम ही कर्मों का सेवन सदा करते रहो (अस्माकꣳस०) हे भगवन् आप की कृपा से हम लोगों की सब इच्छा सर्वदा सत्य ही होती रहो तथा सदा सत्य ही कर्म करने की इच्छा हो किंतु चक्रवर्त्ती राज्य आदि बड़े २ काम करने की योग्यता हमारे बीच में स्थिर कीजिये ॥ २ ॥ (यास्मेधाम्०) इस मंत्र का यह अभिप्राय है कि हे परमात्मन् आप अपनी कृपा से जो अत्यंत उत्तम सत्य विज्ञानादि शुभगुणों को धारण करने के योग्य बुद्धि है उस से युक्त हम लोगों को कीजिये कि जिस के प्रताप से देव अर्थात् विद्वान् और पितर अर्थात् ज्ञानी होके हम लोग आप की उपासना सब दिन करते रहें (स्वाहा०) इस

कहते हैं कि हे मनुष्यो ! सब मनुष्यों को अच्छा मीठा कल्याण करने वाला और प्रिय वचन सदा बोलना चाहिये (ध्रुवा वाग्वादेति का०) अर्थात् मनुष्यों को उस निश्चय करके जानना चाहिये कि जैसी बात उस को ज्ञान के द्वारा में अर्थात् जो जीव से भी सदा वैसाही बोले उस से विपरीत नहीं (एवं वादेति का०) सब मनुष्य अपने ही पदार्थ को चाहना करें दूसरे के पदार्थ को कभी नहीं अर्थात् जितना २ धर्मयुक्त पुरुषार्थ से उनको पदार्थ प्राप्त हो उसमें ही सदा संतोष करें (स्वाहुतं ह०) अर्थात् सदैव दिव्य अच्छी प्रकार सुसंस्कृत द्रव्यों का संस्कार और के सब जगत के उपकार करने वाले होम को किया करें और स्वाहा शब्द का यह भी अर्थ है कि सब दिन मिथ्याहार को छोड़ के सत्य ही बोलना चाहिये ॥ ३ ॥

एकरुद्रः संत्वादुधा परादुद्वेषो यन्तु योनिज्यवे । युष्माकं सहुतादेवीयवी वामत्र्यस्य सायिदः ॥ ४ ॥ ऋ० अ० १ । व० १ । ऋ० १८ मं० २ ॥ इदं पित्रेऽयं पित्रस्य ब्रह्मणे पित्रस्य क्रत्वे पित्रस्य काम्यो द्वितीयस्यै पित्रस्य । धर्मोसि सुधर्मा त्वमृषे ऽस्यृषेर्दृष्टोसि धरुण ब्रह्म धरुण क्रतं धरुण विश्वं धरुण ॥ ५ ॥ य० अ० । ३८ । मं १४ ॥ यज्ञायज्ञेनो दुरपुरेति हेतं सदं सुमत्रु ... सि । दूरंपूरं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तमे सदं शिवसैवालव-मत्रु ॥ ६ ॥ य० अ० ३४ मं० १ ॥ वाजेवाजे मवतवाजेषे प्रसवेसिषे ... धीतिवर्धने भवतुमद्रे० ॥ ॥ आशयम् ॥

(स्थिराणि०) अयि० ईश्वरो जीवेभ्य आशीर्दत्तानीति विज्ञेयम् । हे मनुष्या वो युष्माकं (आयुधा) आयुधान्यग्नेयास्त्रादीनि यानीमानि धनुर्बाणास्त्रादीनि शस्त्राणि च (स्थिरा) स्थिराणि मदनुग्रहेण सन्तु । (पराशुदे) दुष्टानां शत्रूणां पराजयाय युष्माकं विजयाय च सन्तु । तथा (धीञ्ज) अत्यन्तदृढानि प्रशंसितानि च । (उत) अपि शत्रुसेनाया अपि (प्रतिष्कभे) प्रतिस्तम्भनाय पराक्रुष्टमतया पराजयकरणाय च सन्तु ॥ तथा (युष्माकमस्तु सविता०) युष्माकं सवितृसेना अत्यन्तप्रशंसनीया बलं चास्तु येन युष्माकं चक्रवर्तिराज्यं स्थिरं स्याद्दुष्टकर्मकारिणां युष्मद्विरोधिनां शत्रूणां पराजयश्च सदा भवेत् (मामत्र्यस्य मा०) परंत्वयमाशीर्वादः सत्यकर्मानुष्ठायिनोऽपि दत्तोऽस्ति । किन्तु मायिनोऽन्यायकारिणो मर्त्यस्य मनुष्यस्य च

कदाचिन्मास्तु । अर्थात्त्वैव दुष्टकर्मकारिभ्यो मनुष्येभ्यो ऽहमाशीर्वादं कदाचिद्दद्यामीत्यभिप्रायः ॥ ४ ॥ (वृषे पिन्वस्व०) हे भगवन् वृषे उत्तमेच्छायै परमोत्कृष्टायान्नायास्मान् त्वं पिन्वस्व स्वतंत्रतया सदैव पुष्टिमतः प्रसन्नान्कुरु (ऊर्जे०) वेदविद्याविज्ञानसहायाय परमप्रयत्नकारिणो ब्राह्मणवर्णायेमान् कृत्वा सदा पिन्वस्व दृढोत्साहयुक्तानस्मान् कुरु (त्वाय०) क्षत्राय साम्राज्याय पिन्वस्व परमवीरतः क्षत्रियस्वभावयुक्तान् चक्रवर्तिराज्यसहितानस्मान्कुरु (द्यावापृ०) यथा द्यावापृथिवीभ्यां सूर्य्याग्निभूम्यादिभ्यः पदार्थेभ्यः सर्वजगते प्रकाशोपकारौ भवतः तथैव कलाकौशलयानचालनादिविद्यां गृहीत्वा सर्वमनुष्योपकारं वयं कुर्मः यत्तदर्थमस्मान् पिन्वस्वेतमप्रयत्नवतः कुरु । (धर्मोसि०) हे सुधर्म परमेश्वर त्वं धर्मोसि न्यायकार्यसि अस्मानपि न्यायधर्मयुक्तान् कुरु । (अर्मोसि०) हे सर्वहितकारकेश्वर यथा त्वमर्मोसीनार्नैर्वैरोसि तथा वयमपि सर्वैर्मित्रैरिनैरीश्वरान् कुरु । तथा (अस्मे) अस्मदर्थं (नृम्णानि) कृपया सुराज्यसुनियमसुरक्षादीनि धारय । यथैवास्माकं (ब्रह्म०) वेदविद्यां ब्राह्मणवर्णं च धारय (क्षत्र०) राज्यं क्षत्रियवर्णं च धारय (विशम्०) वैश्यवर्णं प्रजां च धारय । अर्थात्सर्वोत्तमान् गुणानस्मन्निष्ठान् कुर्वीति प्रार्थ्यते याच्यते च भवान् तस्मात्सर्वेभ्यस्मदिच्छां सम्पूर्णां संपादयेति ॥ ५ ॥ (यज्जाग्रतो०) यन् मनोजाग्रतो मनुष्यस्य दूरमुदैति सर्वेषामिन्द्रियाणामुपरि वर्त्तमानत्वादधिष्ठातृत्वेन व्याप्नोति (दैवम्) ज्ञानादि दिव्यगुणयुक्तं (तदु०) तस् ड इति वितर्के सुप्तस्य पुरुषस्य (तथैव) तेनैव प्रकारेण स्वप्ने दिव्यपदार्थद्रष्टृ (भवति) प्राप्नोति यच्च सुषुप्तौ च दिव्यानन्दयुक्तता चैति । तथा (दूरंगमम्) अर्थाद्दूरगमनशीलमस्ति (ज्योतिषां ज्योति०) ज्योतिषामिन्द्रियाणां सूर्य्यादीनां च ज्योतिः सर्वपदार्थप्रकाशकं (एकम्) असहायं यन्मनोस्ति । हे ईश्वर मयकृपया (तन्मे०) तत् मे मम मनो मननशीलं भवतु शिवसंकल्पं कल्याणेच्छुधर्मशुभगुणप्रियमस्तु ॥ ६ ॥ यथैव ब्राह्मश्चम इत्यष्टादशाध्यायस्थैमंत्रैः सर्वस्वसमर्पणं परमेश्वराय कर्त्तव्यमिति वेदे विहितम् । अतः परमोत्तमपदार्थे मोक्षमारभ्याब्रह्मादिचतुर्मुखपर्य्यन्तमीश्वराद्याचितव्यमिति सिद्धम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(स्थिरा धनुः०) इस मंत्र में ईश्वर सब लोगों को आशीर्वाद देता है कि हे मनुष्यो तुम लोग सब काल में उत्तम बलवाले हो किन्तु तुम्हारे (आयुधा) अर्थात् आनेयादि अस्त्र शस्त्र (शितारो) तीक्ष्ण (भुसुंडी) बंदूक धनुष बाण और

तलवार आदि शस्त्र सब स्थिर हों तथा (पराजुदे) मेरी कृपा से तुम्हारे अस्त्र शस्त्र सब दुष्ट शत्रुओं के पराजय करने के योग्य होवें (वीळु) तथा वे अत्यन्त दृढ़ और प्रशंसा करने के योग्य होवें (उत प्रतिष्कभे०) अर्थात् तुम्हारे अस्त्र और शस्त्र सब दुष्ट शत्रुओं की सेना के वेग थामने के लिये बलवान् हों तथा (सुप्राकामस्तुतः०) हे मनुष्यो तुम्हारी (सहिषी०) अर्थात् सेना अत्यन्त प्रशंसा के योग्य हो जिस से तुम्हारा सर्वोत्तम बल और चक्रवर्त्ति राज्य स्थिर होकर दुष्ट शत्रुओं का सदा पराजय होता रहे (मामत्येषम्०) परन्तु यह मेरा आशीर्वाद केवल धर्मात्मा न्यायकारी श्रेष्ठ मनुष्यों के लिये है और लोग (माघि०) अर्थात् कपटी छली अन्यायकारी और दुष्ट मनुष्य हैं उन के लिये नहीं किन्तु ऐसे मनुष्यों का तो सदा पराजय ही होता रहेगा इसलिये तुम लोग सदा धर्मकार्य्यों ही को करते रहो ॥ ४ ॥ (इमे मित्रवरुण०) हे भगवन् (इमे) हमारी युद्धक्रिया करने ही की इच्छा हो और हमारे शरीरों को उत्तम अन्न से सदा पुष्टि युक्त रखिये (जर्ज०) अर्थात् अपनी कृपा से इन को सदा बलय पराक्रम युक्त और दुष्ट प्रयत्नशाले कीजिये (अस्मभ्यं०) सत्य शास्त्र अर्थात् वेदविद्या के पढ़ने पढ़ाने और इस से यथावत् उपकार लेने में हम को अत्यन्त समर्थ कीजिये अर्थात् जिस से हम लोग उत्तम विद्यादि गुणों और कर्मों कर के ब्राह्मण वर्ण हों (क्षत्राय०) हे परमेश्वर आप के अनुग्रह से हम लोग चक्रवर्त्ति राज्य और शूरवीर पुरुषों की सेना से युक्त हों कि क्षत्रिय वर्ण के अधिकारी हम को कीजिये (आदित्यान्०) जैसे पृथिवी सूर्य्य चन्द्रमा जल और वायु आदि पदार्थों से सब जगत् का प्रकाश और उपकार होता है वैसे ही हमारा कोमल विद्याबल आदि दान बढ़ाने के लिये हम को उत्तम सुख सहित कीजिये कि जिस से हम लोग सब सृष्टि के उपकार करने वाले हों (धर्माणि०) हे सुधर्मन् न्याय करनेहारे ईश्वर आप न्यायकारी हैं वैसे हम को भी न्यायकारी कीजिये (अग्ने०) हे भगवन् जैसे आप निर्वैर होके सब से वर्त्तते हो वैसे ही सब से वैर रहित हम को भी कीजिये (अरुरे०) हे परम कारुणिक हमारे लिये (पृथुपाजः) उत्तम राज्य उत्तम धन और शुभगुण दीजिये (इळः०) हे परमेश्वर आप कृपालुओं को हमारे बीच में उत्तम विद्या युक्त कीजिये (क्षत्रम्०) हम को अत्यन्त चतुर शूरवीर और क्षत्रिय वर्ण का अधिकारी कीजिये (विशम्०) अर्थात् वैश्य वर्ण और हमारी प्रजा का रक्षण सदा कीजिये कि जिस से हम शुभगुणवाले होकर अत्यन्त पुरुषार्थी हों ॥ ५ ॥ (यज्जाग्रतो०) हे सर्व व्यापक जगदीश्वर जैसे जाग्रत अवस्था में मेरा मन दूर २ घूमने वाला सब इन्द्रियों का स्वामी तथा (दैवम्०) ज्ञान आदि दिव्य गुणवाला और प्रकाशस्वरूप रहता है वैसे ही (तदु सु०) निद्रा अवस्था में भी शुद्ध और आनन्द युक्त रहे (ज्योतिषः०) जो प्रकाश का भी प्रकाश करनेवाला और एक है (तन्मे०) हे परमेश्वर ऐसा जो मेरा मन है सो आप की कृपा से (शिवसं०) कल्याण करने-

जाना और शुद्ध स्वभाव युक्त हो जिससे अधर्म कामों में कभी प्रवृत्त न हो ॥ ६ ॥ इसी प्रकार से (वाजश्चमे०) इत्यादि शुक्ल यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय में मंत्र ईश्वर के अर्थ सर्वस्व समर्पण करनेके ही विधान में है अर्थात् सब से उत्तम मोक्ष सुख से लेके अन्न जल पर्य्यंत सब पदार्थों की यावना मनुष्यों को केवल ईश्वर ही से करनी चाहिये ॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताꣳ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताꣳ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम्। स्तोमश्च यजुश्च ऋक्च साम च बृहच्च रथन्तरं च॥ स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥ ७ ॥ य० अ० १८ मं० २९ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(आयुर्यज्ञेन०) यज्ञो वै विष्णुः । वेवेष्टि व्याप्नोति सर्वं जगत्स विष्णुरीश्वरः हे मनुष्यास्तेन यज्ञेनेश्वर प्राप्यर्थं सर्वे स्वकीयमायुः कल्पतामिति । यदस्मदीयमायुरस्ति तदीश्वरेण कल्पतां परमेश्वराय समर्पितं भवतु । एवमेव (प्राणः) (चक्षुः) (श्रोत्रं) वाणी (मनः) मननं ज्ञानं (आत्मा) (जीवः) (ब्रह्मा) चतुर्वेदज्ञाता यज्ञानुष्ठानकर्त्ता (ज्योतिः) सूर्य्यादिप्रकाशः (धर्मः) न्यायः (स्वः) (सुखं) (पृष्ठं) मूर्ध्न्यादधिकरणं (यज्ञो०) अश्वमेधादिः शिल्पक्रियामयो वा (स्तोमः) स्तुतिसमूहः (यजुः) यजुर्वेदाध्ययनम् (ऋक्) ऋग्वेदाध्ययनम् (साम) सामवेदाध्ययनम् चकारादथर्ववेदाध्ययनं च (बृहच्च रथन्तरं च) मन्त्रस्य क्रियासिद्धिफलभोगः शिल्पविद्याजन्यं वस्तुचास्मदीयमेतत्सर्वं परमेश्वराय समर्पितमस्तु येन वयं कृतज्ञाः स्याम । एवं कृते परमकारुणिकः परमेश्वरः सर्वोत्तमं सुखमस्मभ्यं दद्यात् येन वयं (स्वर्देवा०) सुखे प्रकाशिताः (अमृता) परमानन्दमोक्षं (अगन्म) सर्वदा प्राप्ताः भवेम । तथा (प्रजापते प्र०) वयं परमेश्वरस्यैव प्रजा (अभूम) अर्थात्परमेश्वरं विहायान्यमनुष्यं राजानं नैव कदाचिन्मन्यामहइति । एवं जाते (वेट् स्वाहा०) सदा वयं सत्यं वदामो भवदाज्ञाकरणे परमप्रयत्नउत्साहवन्तोऽभूम भवेम मा कदाचिद्विषदाद्यविरोधिनो वयमभूम किंतु भवन्मित्रायां सदैव एवमेवास्तु मास्ति ॥ ७ ॥ ॥ भाषार्थः ॥

(आयुर्यज्ञेन०) यज्ञ नाम विष्णु का है सो कि सब जगत् में व्यापक हो रहा है उसी परमेश्वर के अर्थ सब चीज समर्पण कर देना चाहिये इस

विषय में यह मंत्र है कि सब मनुष्य अपनी आयु को ईश्वर की सेवा और उस की आज्ञा पालन में समर्पित करें (प्राणो०) अर्थात् अपना प्राण भी ईश्वर के अर्थ कर देवें (चक्षु०) जो प्रत्यक्ष प्रमाण और आंख (श्रोत्रं०) जो शब्द विद्या और शब्द प्रमाणादि (वाक्०) वाणी (मनो० और शुद्ध विज्ञान (आत्मा०) जीव (ब्रह्मा) तथा चारों वेद जो पढ़ने और पुरुषार्थ लिखने हैं (ज्योतिः०) जो प्रकाश (स्वर्यं०) जो सब सुख (पृष्ठं०) जो उत्तम कर्मों का फल और स्थान (यज्ञो०) जो कि पूर्वोक्त तीन प्रकार का यज्ञ किया जाता है ये सब ईश्वर की प्रसन्नता के अर्थ समर्पित कर देना अवश्य है (स्तोमश्च०) जो स्तुति का समूह (यजुश्च०) सब क्रियाओं की विद्या (ऋक् च०) ऋग्वेद अर्थात् स्तुति स्तोत्र (साम च०) सब गान करने की विद्या (बृहत्०) अथर्ववेद (वैरूपं०) बड़े २ बल पदार्थ और (रथंतरं च०) शिल्प विद्या आदि के फलों में से जो २ फल अपने आधीन हों वे सब परमेश्वर के समर्पण कर देवें क्योंकि सब वस्तु ईश्वर की की बनाई हैं इस प्रकार से जो मनुष्य अपनी सब चेष्टा परमेश्वर के अर्थ समर्पित कर देता है उस के लिये परम कारुणिक परमात्मा सब सुख देता है इस में संदेह नहीं (स्वर्देवा०) अर्थात् परमात्मा की कृपा की लहर और परम प्रकाशरूप विज्ञान प्राप्ति से शुद्ध होके तथा सब संसार के जांच में कीर्तिमान हो के हम लोग परमानन्दस्वरूप मोक्षसुख को (अगन्म०) सदा दिन के लिये प्राप्त हों (प्रजापतेः०) तथा हम सब मनुष्य लोगों को उचित है कि किसी एक मनुष्य को अपना राजा न मानें क्योंकि ऐसा अभागी कौन मनुष्य है कि जो सर्वज्ञ न्यायकारी सब के पिता एक परमेश्वर को छोड़ के दूसरे की उपासना करे और राजा माने इस लिये हम लोग इसी को अपना राजा मान के सत्य न्याय को प्राप्त हों अर्थात् वही सब मनुष्यों का न्याय करने में समर्थ है अन्य कोई नहीं (वेद स्वदा) अर्थात् हम लोग सर्वज्ञ सत्य स्वरूप सत्य न्याय करने वाले परमेश्वर राजा की अपने सत्य भाव से प्रजा होके यथावत् सत्य मानने सत्य होने और सत्य करने में समर्थ होवें सब मनुष्यों को परमेश्वर से इस प्रकार की आशा करना उचित है कि हे दयानिधे आप की आज्ञा और भक्ति में हम लोग परस्पर विरोधी कभी न हों किंतु आप और सब के साथ सदा पिता पुत्र के समान प्रेम से वर्तें ॥ ७ ॥

अथोपासनाविषयः संक्षेपतः ।

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुना विदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ १ ॥
ऋ० अ० ५ अ० ४ व० २४ मं० १ ॥ युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियम् ॥ अग्नेर्ज्योतिर्निश्चार्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ २ ॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे ॥ स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ ३ ॥ युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवं ॥ बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ४ ॥ युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः ॥ शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥ ५ ॥ य० अ० ११ मं० ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(युञ्जते०) अस्याभि० अत्र जीवेन सदा परमेश्वरस्यैवोपासना कर्त्तव्येति विधीयते (विप्राः) ईश्वरोपासका मेधाविनः (होत्राः) योगिनोमनुष्याः (विप्रस्य०) सर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य मध्ये (मनः) (युञ्जते) युक्तं कुर्वन्ति (उत) अपि धियाबुद्धिवृत्तिस्तस्यैव मध्ये युंजते। कथंभूतः स परमेश्वरः सर्वमिदं जगत् यः (विदधे) विदधे तथा (वयुना वि०) सर्वेषां जीवानां शुभाशुभानि यानि प्रज्ञानानि प्रज्ञाश्च तानि यो वेद स वयुना वित् (एकः) स एकोऽद्वितीयोऽस्ति (इत्) सर्वत्र व्याप्तो ज्ञानस्वरूपश्च नास्मात्परः उत्तमः कश्चित् पदार्थो वर्त्तत इति। तस्य (देवस्य) सर्वजगत्प्रकाशकस्य (सवितुः) सर्वजगदुत्पादकस्येश्वरस्य सर्वैर्मनुष्यैः (परिष्टुतिः) परितः सर्वतः स्तुतिः कार्य्या कथंभूता स्तुतिः (महीं) महतीत्यर्थः यं कृतमिति जीवाः परमेश्वरमुपगच्छन्तीति ॥ १ ॥ (युंजानो) योगं कुर्वाणः सन् (तत्त्वाय) ब्रह्मादितत्त्वज्ञानाय (धियं मनो युंजानः सन् योऽस्ति तस्य धियं (सविता) कृपया परमेश्वरः स्वस्मिन्नुपयुंक्ते (अग्नेर्ज्योतिः) यतोऽग्नेरीश्वरस्य (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूपं (निरवाद्य) यथावत् निश्चित्य (अभ्यभरत्) स योगी स्वात्मनि परमात्मानं धारितवान् भवेत् इदमेव बृहद्दिव्यामध्ये योगिन उपासकस्य लक्षणमिति वेदितव्यम् ॥ २ ॥ सर्वे मनुष्या एव मिच्छेयुः (स्वर्ग्याय०) मोक्षसुखाय (शक्त्या) योगबलोन्नत्या (देवस्य) स्वप्रकाशस्वानन्दप्रदस्य (सवितुः) सर्वान्तर्यामिनः परमेश्वरस्य (सवे) अनन्तैश्वर्य्ये (युक्तेन मनसा०) योगयुक्तेन शुद्धान्तःकरणेन वयं सदोपयुञ्जीमहीति ॥ ३ ॥ यं योगाभ्यासेन कृतेन (स्वर्यतः) शुद्धभावप्रेम्णा (देवान्) उपासकान् योगिनः (सविता) अन्तर्यामीश्वरः कृपया (युङ्क्ताय०) तदात्मसु प्रकाशकरणेन सम्यग् युङ्क्ता (धिया) स्वकृपाधारकृत्या (बृहज्ज्योतिः) अनन्तप्रकाशं (दिवं) दिव्यम्

स्वरूपम् (प्रसुष्टुति) प्रकाशयति तथा (मनीषिणः) सत्यार्थिनः सत्यं
[illegible] (मनसा) यथावत्तर्कविज्ञानाभ्यामीक्षितः (सोमः) शोभनगुणकर्मस्वभावः
सदा सन्तनोति ॥ ४ ॥ उपासनः प्रदोषासना यद्वीजादौ प्रति
परमेश्वरः प्रति जानीते (अहर पूर्व्येषु) यदा तीव्र पुरातनं यानानां
मध्ये (नवोनिः) नितरेणात्मना सत्यप्रकाशेन नवभिरहोभिर्याति तदा तद्वच्छ
सोमयामार्थिनोऽहानि (अनोहः) सत्यकीर्तिः (वां) (हि) (मह्ना) महत्त्वेन
आगोषु अगोषु क्षय केव (भूरेः) परमैश्वर्यः (एष्टेः) यज्ञस्य नेतुः (ते) तव
य उपासकाः (अमृतस्य) मोक्षाख्यस्य नित्यस्य परमेश्वरस्य (पुत्राः)
तदा ह्यनुग्रहाकाङ्क्षिणः सन्ति तदा (दिव्यानि) प्रकाशयुक्तानि विद्वद्भि-
र्धारणयुक्तानि धर्माणि तथा दिव्यानि (धामानि) सुखप्रकाशयुक्तानि सत्यानि
सुखप्रकाशानि स्थानानि वा (आसत्रुः) आसमन्तात् तेषु स्थिरा भवन्ति ते
(विश्वेऽ) सर्वे (वां) उपासनेऽपेक्षुपेक्षयो द्वौ (अमृतत्वम्) मोक्षाख्यं
जानन्तु । इत्यनेन प्रकारेणोपासनां कुर्वाणो वां युवां द्वौ तमीश्वरं। हे मनुजे
कृपया उपदेशेनो प्रवामीति ४ ५ ॥ ॥ दोषार्थं ॥

यह ईश्वर की उपासना का विषय जैसा वेदों में लिखा है उसमें से कुछ संक्षेप से यहां भी लिखा जाता है 'युञ्जते मन०' इस का तात्पर्य यह है कि जीव को परमेश्वर की उपासना नित्य जाननी उचित है अर्थात् उपासना समय में सब मनुष्य अपने मन को उसी में स्थिर करें और जो जो ईश्वर के उपासक (विप्राः) अर्थात् सदैव = बुद्धिमान् (वेधसः) उपासना को॥ के प्रकाश जानने हैं वे (विप्रस्य) उस को जानने वाला (बृहतः) बड़े से बड़ा हिरण्यगर्भ (विपश्चितः) और सब विद्वानों से युक्त जो परमेश्वर है उस के बीच में (मनः) (युञ्जते) अपने मन को ठीक२ युक्त करते हैं तथा (धियः) अपनी बुद्धि शुद्धि अर्थात् ज्ञान को भी (युञ्जते०) सदा परमेश्वर ही में स्थिर करते हैं कि परमेश्वर इस सब जगत् को (विदधे०) धारण और विधान करता है : वयुना विदेकस्य, जो सब लोकों के ज्ञानों तथा प्रज्ञा को भी जानते हैं उन्हीं एक परमात्मा सर्वज्ञ आप्त हैं कि जिस से परे कोई उत्तम पदार्थ नहीं है (देवस्य) उस देव अर्थात् सब ज्ञान के प्रकाश और (सवितुः) सबकी रचना करने वाले परमेश्वर की (परिष्टुतिः) हम लोग भक्ति प्रकार से स्तुति करें कैसी वह स्तुति है कि (सत्यो) सब से बड़ी अर्थात् जिस के समान किसी दूसरे की स्तुति नहीं हो सकती ॥ १ ॥ (युञ्जानाः) योग को करने वाले मनुष्य (मन्यवे) सत्य अर्थात् । यथार्थज्ञान के लिये (मनसा) (मनः) अपने अपने मन को परमेश्वर में युक्त करते हैं तथा (सविताः) परमेश्वर उन की (धियः) बुद्धि को अपनी कृपा से अपने में युक्त करता है (दिवंदिवं०) फिर वे परमेश्वर के प्रकाश

को निश्चय करके (अध्याभरत्) यथावत् धारण करते हैं (पृथिव्याः) पृथिवी के बीच में योगी का यही प्रसिद्ध लक्षण है ॥ २ ॥ सब मनुष्य इस प्रकार की इच्छा करें कि (वयम्) हम लोग (स्वर्योगे) मोक्षसुख के लिये (शक्त्या) यथायोग्य सामर्थ्य के बल से (देवस्य) परमेश्वर की सृष्टि में उपासना योग करके अपने आत्मा को शुद्ध करें कि जिस से (युक्तेन मनसा) अपने शुद्ध मन से परमेश्वर के प्रकाशरूप आनन्द को प्राप्त हों ॥ ३ ॥ इसी प्रकार वह परमेश्वर देव भी (देवान्) उपासकों को (स्वर्यतो धिया दिवम्) अत्यन्त सुख को देके (सविता) उन की बुद्धि के साथ अपने आनन्दस्वरूप प्रकाश को करता है तथा (युक्तवाय) वही अन्तर्यामी परमात्मा अपनी कृपा से उन को युक्त करके इन के आत्माओं में (बृहज्ज्योतिः) बड़े प्रकाश को प्रगट करता है और (सविता) जो सब जगत का पिता है वही (प्रसुवा॰) उन उपासकों को ज्ञान और आनन्दादि से परिपूर्ण करदेता है परन्तु (कारिष्यतः) जो मनुष्य सत्य प्रेम भक्ति से परमेश्वर की उपासना करेंगे उन्हीं उपासकों को परम कृपामय अंतर्यामी परमेश्वर मोक्षसुख देके सदा के लिये आनन्द युक्त करेगा ॥ ४ ॥ उपासना का उपदेश देनेवाले और ग्रहण करने वाले दोनों के प्रति परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है कि जब तुम (पूर्व्यम्) सनातन ब्रह्म को (नमोभिः) सत्य प्रेमभाव से अपने आत्मा को स्थिर करके नमस्कारादि रीति से उपासना करोगे तब मैं तुम को आशीर्वाद देऊंगा कि (श्लोकः) सत्यकीर्तिः (वाम्) तुम दोनों को (यतु) प्राप्त हो किस के समान (पथ्येव सूरेः) जैसे परम विद्वान् को धर्ममार्ग यथावत् प्राप्त होता है इसी प्रकार तुम को सत्यसेवा से सत्यकीर्त्ति प्राप्त हो फिर भी मैं सब को उपदेश करता हूं कि (अमृतस्य पुत्राः) हे मोक्षमार्ग के पालन करने वाले मनुष्यो (शृण्वन्तु विश्वे) तुम सब लोग सुनो कि (आये धामानि॰) जो दिव्य लोकों अर्थात् मोक्षसुखों को (आतस्थुः) पूर्व प्राप्त होचुके हैं उसी उपासना योग से तुम लोग भी उन सुखों को प्राप्त हो इस में संदेह मत करो इसी लिये (वृत्रे) मैं तुम को उपासना योग में युक्त करता हूं ॥ ५ ॥

· सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् ॥ धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ६ ॥ युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् । गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ७ ॥ य॰ अ॰ १२ मं॰ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(कवयः) विद्वांसः क्रान्तदर्शनाः क्रान्तप्रज्ञा वा (धीराः) ध्यानवन्तो योगिनः (पृथक्) विभागेन (सीराः) योगाभ्यासोपासनाद्यै

नाड्यो भुञ्जन्ति चष्टात् तासु परमात्मानं ज्ञातुमभ्यस्यन्ति तथा (युञ्जा) युञ्जादि योगयुक्तानि कर्माणि (वितन्वते) विस्तारयन्ति य एवं कुर्वन्ति ते (देवेषु) विद्वत्सु योगिषु (सुम्नया) सुखेनैव स्थित्या परमानन्दं युञ्जन्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ६ ॥ हे योगिनो यूयं योगाभ्यासोपासनेन परमात्मयोगजानन्दं (सुवत) तद्वृत्ता भवत एवं सोच्चरन्तं सदः (वितनुध्वं) विस्तारयत तथा (युञ्जा०) उपासनायुक्तादि कर्माणि (सीराः) प्राणादिन्ययुक्तानाडीश्च युक्तोपासनाकर्माणि योजयत । एवं (कृते योनौ) कल्पे शुद्धे कृते परमानन्दयोनौ कारणे आत्मनि (वपतेहबीजम्) उपासनाविधानेन योगोपासनाया विज्ञानाख्यं बीजं वपत तथा (गिरा च) वेदवाण्या विद्यया (युनक्त) संयुक्ता भवत किंच (शुष्टिः) क्षिप्रं शीघ्रं योगफलं (नो नेदीयः) नोऽस्माकं नेदीयोतिशयेन निकटं परमेश्वरानुग्रहेण (वसत्) अस्तु कथंभूतं फलं (पक्वं) शुद्धानन्दमिश्रं (यया) आशब्दात्तादियात् प्राप्नुयात् (उत्सृजयः) उपासनायुक्तास्ता योगकृत्यः (दुहन्ति) दुहन्ति गच्छन्ति यच्छन्ति । इदमिति निश्चयार्थं पुनः कथंभूतास्ताः (उधसः) शान्त्यादिगुणपूर्णा एताभिर्धृतिभिः परमात्मयोगं वितनुध्वम् ॥ ७ ॥ अत्र प्रमाणम् । शुष्टीति क्षिप्रनामसु चष्टीति निरु० अ० ६ खं० १२ ॥ दुहिता दुरितं यतति भर्त्रा च हसता च । निरु० अ० १२ खं० १ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(ऊधसः) जो विद्वान् योगी लोग धीर (धीराः) ध्यान करने हारे हैं वे (सीरायुञ्जन्ति) (पृथक्) यथायोग्य विधान से नाड़ियों में अपने आत्मा से परमेश्वर की धारणा करते हैं (युञ्जा) जो योग युक्त कर्मों में तत्पर रहने हैं (वितन्वते) अपने ज्ञान और आनन्द को सदा विस्तृत करते हैं (देवेषु सुम्नया) वे विद्वानों के बीच में प्रशंसित होके परमानन्द को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ हे उपासक योगी तुम योगाभ्यास तथा परमात्मा के योग से नाड़ियों में ध्यान करके परमानन्द को (वितनुध्वं) विस्तार करो इस प्रकार करने से (कृते योनौ) योनि अर्थात् अपने कल्पकारण को शुद्ध और परमानन्दस्वरूप परमेश्वर में स्थिर करने रूप में उपासना विधान से विज्ञानरूप बीज को (वपत) बोओ तथा (गिरा च) पूर्वोक्त प्रकार से वेदवाणी करके परमात्मा में (युनक्त) युक्त हो और उस की स्तुति प्रार्थना और उपासना में प्रवृत्ति करो तथा (शुष्टिः) तुम लोग ऐसी रक्षा करो कि तुम उपासना योग के फल को प्राप्त होवें और (नो नेदीयः) हम

की ईश्वर के अनुग्रह से वह फल (अस्तु) शीघ्रही प्राप्त हो जैसा वह फल है कि (यक्षं) जो परिपूर्ण शुद्ध परम आनन्द से भरा हुआ और मोक्ष सुख को प्राप्त करने वाला है (इत्सुदयः) अर्थात् वह उपासना योगवृत्ति कैसी है कि सब क्लेशों को नाश करनेवाली और (अभराः) सब शक्ति आदि गुणों से पूर्ण है उन उपासना योगवृत्तियों से परमात्मा के योग को अपने आत्मा में प्रकाशित करो ॥ ७ ॥

अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सचयोगं भजन्तु मे । योगं प्रपद्ये क्षेमं च क्षेमं प्रपद्ये योगं च नमो ऽहोरात्राभ्यामस्तु ॥ ८ ॥ अथर्व० कां० १९ ॥ अनु० १ व० ८ मं २ ॥ भूयानरात्याः शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि विभूः प्रभूरित्येवोपास्महे वयम् ॥ ९ ॥ नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत १० ॥ अन्नाद्येन यशसा तेजसा ब्राह्मणवर्चसेन ॥ ११ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

अष्टाविंशानि०) हे परमेश्वर भवत्कृपया ऽष्टाविंशानि (शिवानि०) कल्याणानि कल्याणकारकाणि सन्त्वर्थाद्वयोंद्रियाणि दशप्राणा मनोबुद्धिश्चित्ताहंकारशिक्षास्वभावशरीरबले चेति (शग्मानि०) सुखकारकाणि भूत्वा (अहोरात्राभ्यां) दिवसे रात्रौ चोपासनाख्यव्यवहारं योगं (मे) मम (भजन्तु) सेवन्ताम् तथा भवत्कृपया ऽहं (योगं प्र०) प्राप्य (क्षेमं च) (प्रपद्ये) क्षेमं प्राप्ययोगं च प्रपद्ये । यतोऽस्माकम् सहायकारी भवान्भवेदेतदर्थं सतसं नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥ इमे कल्यमाणाश्च मंत्रा अथर्ववेदस्य सन्तीति बोध्यम् ॥ (इन्द्रा०) हे इन्द्र परमेश्वर त्वं (शच्याः) प्रज्ञाया वाचया कर्मणो वा पतिरसि तथा (भूयान्) सर्वशक्तित्वात्सर्वोत्कृष्टत्वादतिशयेन बहुरसि तथा (अरात्याः) शत्रुभूताया वाण्यास्तादृशस्य कर्मणो वा शत्रोर्योद्ध्यान्निवारकोसि (विभूः) व्यापकः (प्रभूः) समर्थश्चासि (इति) अनेन प्रकारेणैवंभूतं (त्वा) त्वां (वयम्) सदैव (उपास्महे) अर्थात्सर्वेषामुपासनं कुर्महे इति ॥ ९ ॥ अत्र प्रमाणम् । वाचो नामसु शचीति पठितं । निघंटु० अ० १ । खं० ११ तथा कर्मणां नामसु शचीति पठितम्० निघं० अ० २ खं० १ ॥ तथा प्रज्ञानामसु शचीति पठितं० निघं० अ० ३ खं० ९ ॥ ईश्वरोभिवदति हे मनुष्या यूयमुपासनारीत्या सदैव (मा) मां (पश्यत) सम्यग् ज्ञात्वा चरत उपासक यथं जानीयाद्वदेच्च हे परमेश्वरा-

मन्तविद्यायुक्त (नमस्ते अस्तु) ते तुभ्यमस्माकं सततं नमोऽस्तु भवतु ॥ ८ ॥ (अग्नाद्येन) कस्ते प्रयोजनायाद्याविराज्येश्वर्य्येण (यशसा) सर्वोत्तम उत्कर्षानुष्ठानोद्भव सत्यश्लोक्यया (तेजसा) निर्दोषतया प्रागल्भ्येण च (ब्राह्मवर्चसेन) पूर्णविद्यासह वर्तमानानस्मान् हे परमेश्वर त्वं कृपया सदैव (पश्य) संप्रेक्षस्वेतदर्थं वयं (त्वां) सर्वदोपासमहे ॥ ११ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(बृहद्विषाणि शिवानि) हे परमैश्वर्ययुक्त मंगलमय परमेश्वर आप की कृपा से मुझको उपासना योग लाभ हो तथा उस से मुझ को सुख भी मिले इसी प्रकार आप की कृपा से दश इंद्रिय दश प्राण मन बुद्धि चित्त अहंकार विद्या स्वभाव शरीर और बल ये चतुर्दश सब कल्याणों में प्रवृत्त होके उपासना योग को सदा सेवन करें तथा हम भी (योगं) उस योग के द्वारा (क्षेमं) रक्षा को और रक्षा से योग को प्राप्त हुआ चाहते हैं इसलिये हम लोग रात दिन आप को नमस्कार करते हैं ॥ ८ ॥ (भूमानरात्याः) हे जगदीश्वर आप (प्रजायाः) सब प्रजा, वाणी, और सर्व इन नौनों के पति हैं तथा (भूमन्) सर्वशक्तिमान् आदि विशेषणों से युक्त हैं जिससे आप (अरात्याः) अर्थात् दुष्ट प्रजा मिथ्या भाषणादि और पाप कर्मों को विनाश करने में अत्यन्त समर्थ हैं तथा आप को (विभूः) सब में व्यापक और (प्रभूः) सब सामर्थ्य वाले जान के हम लोग आप की उपासना करते हैं ॥ ९ ॥ (नमस्ते अस्तु) अर्थात् परमेश्वर सब मनुष्यों को उपदेश करता है कि हे उपासक लोगो तुम मुझ को प्रेमभाव से अपने आत्मा में सदा देखते रहो तथा मेरी आज्ञा और वेदविद्या को यथावत् जान के उसी रीति से आचरण करो फिर मनुष्य यों ईश्वर से प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर आप कृपादृष्टि से (पश्यसा) हम को सदा देखिये इसलिये हम लोग आप को सदा नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥ हे (यशसा) अर्थात् सब आदि ऐश्वर्य (यशसा) सब से उत्तम कीर्ति (तेजसा) भय से रहित (ब्राह्मवर्चसेन) और सम्पूर्ण विद्या से युक्त हम लोगों को कृपा से देखिये इसलिये हम लोग सदा आप की उपासना करते हैं ॥ ११ ॥

अक्षो अक्षो मह्यं सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥ १२ ॥
अक्षो अक्षं रंजते रजः सह इति त्वोपास्महे वयम् ॥ १३ ॥
उरुः पृथुः सुपृथुश्च इति त्वोपास्महे वयम् ॥ १४ ॥ अक्षो अरोः
अक्षैर्लोक इति त्वोपास्महे वयम् ॥ १५ ॥ अथर्व० कां० १९
अनु० ४ सू० ७७ । ४८ । ४९ । ५० । ५१ । ५२ । ५३ ।

॥ भाष्यम् ॥

(हे ब्रह्मन्) (अमः) व्याप्तं शान्तस्वरूपं जलवत् प्राणस्यापि प्राणम् । अम गतौरसुन् प्रत्ययान्तस्यायं प्रयोगः ॥ (अमः) ज्ञानस्वरूपम् (महः) पूज्यं सर्वेभ्यो महत्तरं (सहः) सहनस्वभावं ब्रह्म (त्वा) त्वां ज्ञात्वा (इति) अनेन प्रकारेण (वयं) सततं उपास्महे ॥ १२ ॥ (अमः) आदरार्थोद्विरारम्भः अस्यार्थं उक्तः (अरुणम्) प्रकाशस्वरूपम् (रजसम्) रागविषयमानन्दस्वरूपम् (रजः) सर्वलोकैश्वर्ययुक्तम् (सहः) सहनशक्तिप्रदम् (इति त्वोपास्महे वयम्) त्वां विहाय नैव कश्चिदन्योऽर्थः क्वचिदुपास्योऽस्तीति ॥ १३ ॥ (उरुः) सर्वशक्तिमान् (पृथुः) अतीव विस्तृतो व्यापकः (सुभूर्भुवः) सुष्ठुतया सर्वेषु पदार्थेषु भवतीति सुभूः अन्तरिक्षवद्व्यापकाश्रयरूपत्वाद्भुवः (इति) एवं ज्ञात्वा (त्वो०) त्वां (उपास्महे वयं) १४ ॥ बहुनामसु (उरुरिति प्रत्यक्षनामसु । निघण्टु । अ० ३ । खं० १ (प्रथः) सर्वजगत्प्रसारकः (वरः) श्रेष्ठः (अचः) विविधगतयः सर्वं जगज्जानातीति (लोकः) लोक्यते सर्वैर्जनैर्लोकयति सर्वान् वा (इति त्वो०) वयमीदृक्स्वरूपं सर्वज्ञं त्वामुपास्महे ॥ १५ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(अमो०) हे भगवन् आप सब में व्यापक शान्तस्वरूप और प्राण का भी प्राण हैं तथा (अमः) ज्ञानस्वरूप और ज्ञान को देने वाले हैं (महः) सब के पूज्य सब से बड़े और (सहः) सब के सहन करने वाले हैं (इति) इस प्रकार का (त्वो०) आप को जान के (वयम्) हम लोग सदा उपासना करते हैं ॥ १२ ॥ (अमः) (दूसरी बार इस शब्द का पाठ केवल आदर के लिये है) (अरुणम्) आप प्रकाशस्वरूप सब दुःखों के नाश करने वाले तथा (रजसम्) प्रीति का परम हेतु आनन्दस्वरूप (रजः) सब लोकों के ऐश्वर्य से युक्त (सहः) (इस शब्द का भी पाठ आदरार्थ है) और सहनशक्ति वाले हैं इस लिये हम लोग आप की उपासना निरन्तर करते हैं ॥ १३ ॥ (उरुः) आप सब बल वाले (पृथुः) अर्थात् आदि अन्त रहित तथा (सुभूः) सब पदार्थों में अच्छी प्रकार से वर्तमान और (भुवः) अवकाशस्वरूप से सब के निवासस्थान हैं इस कारण हम लोग उपासना कर के आप के ही आश्रित रहते हैं ॥ १४ ॥ (प्रथो वरो०) हे परमात्मन् आप सब जगत में प्रसिद्ध और उत्तम हैं (अचः) अर्थात् सब प्रकार से इस जगत् का धारण पालन और वियोग करने वाले तथा (लोकः) सब विद्वानों के देखने अर्थात् जानने के योग्य केवल आपही हैं दूसरा कोई नहीं ॥ १५ ॥

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः । रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १६ ॥ ऋ० अ० १ अ० १ व० ११ मं० १ ॥ ॥ आद्यम् ॥

(युञ्जन्ति) ये योगिनो विद्वांसः (परितस्थुषः) परितः सर्वेषु सर्वान् जगत्पदार्थान्समुपाश्रित्य चरन्तं ज्ञातारं सर्वत्रं (ब्रध्नं) विद्यां योगाभ्यासप्रेमसरेण सर्वानन्दवर्धकं महान्तं परमेश्वरमात्मनात्मद्वारा युञ्जन्ति (रोचनाः) ते प्रकाशिता रुचिमया भूत्वा (दिवि) द्योतनात्मके सर्वप्रकाशके परमेश्वरे (रोचन्ते) परमानन्दयोगेन प्रकाशन्ते ॥ इति प्रथमोऽर्थः ॥ अथ द्वितीयः ॥ (परितः) चरन्तमनुप्रविश्याश्रित्य ब्रध्नमादित्यं सर्वे लोकाः सर्वे पदार्थाश्च (युञ्जन्ति) तदाकर्षणेन युक्ता भवन्ति । यते सर्वे तस्यैव (दिवि) प्रकाशे (रोचनाः) रुचिकराः सन्तः (रोचन्ते) प्रकाशन्ते ॥ इति द्वितीयोऽर्थः ॥ अथ तृतीयः ॥ ये उपासकाः परितस्थुषः सर्वान् पदार्थान् चरन्तमरुषं सकलधर्मस्थं (ब्रध्नं) सर्वावयवदृष्टिकरं प्राणादित्यं प्राणायामरीत्या (दिवि) द्योतनात्मके परमेश्वरे सर्वप्रकाशं (रोचनाः) रुचिमन्तःसन्तो युञ्जन्ति युक्तं कुर्वन्ति । अतस्ते तस्मिन् रोचनानन्दे परमेश्वरे रोचन्ते सदैव प्रकाशन्ते ॥ १६ ॥ अथ प्रमाणानि ॥ अयुक्षत मनस्पुरः एकयुजः इति पठितम् निरु० अ० २ खं० ३ ॥ मनसा, ब्रध्न, सकलधर्मसु पठितम् निरु० अ० ३ खं० ३ ॥ तथा । युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तमिति । असौ वा आदित्योऽरुषोऽसौ उमुमेवाऽऽदित्यं युनक्ति स्वर्गस्य लोकस्य समष्ट्यै ॥ १ ॥ श० का० १३ अ० ४ ॥ आदित्यो ब्रध्नं प्राणोरश्मिरेव चन्द्रमारश्मिर्वा यतत्सर्वं यन्मूर्तं चामूर्तं चतत्सर्वमादित्यरश्मिरेव रयिः ॥ १ ॥ प्रश्नोपनि० प्रश्न० १ मं० ५ ॥ परमेश्वरान् महान् कश्चिदपि पदार्थो नास्त्येवातः प्रथमेऽर्थे योजनीयम् ॥ तथा शतपथप्रमाणं द्वितीयमर्थं प्रति ॥ सकलेषु प्रश्नोपनिषत्प्रमाणं तृतीयमर्थं प्रति च । दृष्टिसिद्धकटाक्षाक्षाणि ब्रह्मादयोऽनादौ पठिते । परन्त्वस्मिन् मन्त्रे तद् ब्रह्मादयः [illegible] शतपथादिव्याख्यानविरोधात् । मूलार्थविरोधादेवाशब्देनाप्यनिर्वाच्यार्थग्रहणात् ॥ सर्वं सति मद्भ मोक्षमूलरहस्यवेदस्यैकलक्षमाप्तया व्याख्याने यद्यत्तस्य पश्चोरेव ग्रहणं कृतं तद्भ्रान्तिमूलमेवास्ति ॥ सायणाचार्येणापि ब्रध्नस्य व्याख्यायामादित्यग्रहणादेवमिमन्त्रे तस्य व्याख्यानं [illegible] । परन्तु न ज्ञाते मद्भ मोक्षमूलरहस्यार्थे स्वल्पाभाद्भ प्रमादात्

गृह्णीतः ॥ यतो विज्ञायते स्वकल्पनया लेखनं कृतमिति ज्ञात्वा प्रमाणार्हं नाङ्गीति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(युञ्जन्ति) मुक्ति का उत्तम साधन उपासना है इसी लिये जो विद्वान् लोग हैं वे सब जगत् और सब मनुष्यों के हृदयों में व्याप्त ईश्वर को उपासना रीति से अपने आत्मा के साथ युक्त करते हैं वह ईश्वर कैसा है कि (चरन्तं) अर्थात् सब का जानने वाला (अरुषं) हिंसादि दोषरहित कृपा का समुद्र (भुरं) सब आनन्दों का बढ़ाने वाला सब रीति से बड़ा है। इसी से (रोचनाः) अर्थात् उपासकों के आत्मा सब अविद्यादि दोषों के अन्धकार से छूट के (दिवि) आत्माओं को प्रकाशित करने वाले परमेश्वर में प्रकाशमय होकर (रोचन्ते) प्रकाशित रहते हैं ॥ इति प्रथमोर्थः ॥ अब दूसरा अर्थ करते हैं कि (परिष्टभ्यः) जो सूर्य्यलोक अपनी किरणों से सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों के प्रकाश और आकर्षण करने में (भुरं) सब से बड़ा और (अरुषं) रक्तगुण युक्त है और जिस के आकर्षण के साथ सब लोक युक्त हो रहे हैं (रोचनाः) जिस के प्रकाश से सब पदार्थ प्रकाशित हो रहे हैं विद्वान् लोग उसी को सब लोकों के आकर्षणयुक्त जानते हैं ॥ इति द्वितीयोर्थः ॥ (युञ्जन्ति) इस मन्त्र का और तीसरा यह भी अर्थ है कि सब पदार्थों की सिद्धि का मुख्य हेतु जो प्राण है इस को प्राणायाम की रीति से अत्यन्त प्रीति के साथ परमात्मा में युक्त करते हैं इसी कारण वे लोग मोक्ष को प्राप्त होके सदा आनन्द में रहते हैं इन तीनों अर्थों में निघंटु आदि के प्रमाण भाष्य में लिखे हैं सो देखलेना ॥ १६ ॥ इस मंत्र के इन अर्थों को नहीं जान के भट्ट मोक्षमूलर साहब ने घोड़े का जो अर्थ किया है सो ठीक नहीं है यद्यपि सायणाचार्य्य का अर्थ भी यथार्थ नहीं है परन्तु मोक्षमूलर साहब के अर्थ से तो अच्छाही है क्योंकि प्रफेसर मेक्समोलर साहब ने इस अर्थ में केवल कपोलकल्पना की है ॥

इदानीमुपासना कथंरीत्या कर्त्तव्येति लिख्यते । तत्र शुद्धएकान्ते प्रभौ देशे शुद्धमानसः समाहितो भूत्वा सर्वेभ्योंद्रियेभ्यो मनश्चैकाग्रीकृत्य सच्चिदानन्दस्वरूपमन्तर्यामिनं न्यायकारिणं परमात्मानं सन्निधाय तत्रात्मानं नियोज्य च तस्यैव स्तुतिप्रार्थनानुष्ठाने सम्यक्त्वोपासनयेश्वरे पुनः २ स्वात्मानं संलगयेत् । अत्र पतञ्जलिमहामुनिना स्वकृतसूत्रेषु वेदव्यासकृतभाष्ये चायमनुक्रमो योगशास्त्रे प्रदर्शितः । तद्यथा । योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ १ ॥ अ० १ पा० १ सू० २ ॥ उपासनासमये व्यवहारसमये वा परमेश्वरादतिरिक्तविषयाद्यधर्म्यव्यवहाराच्च मनसोवृत्तिः सदैव निरुद्धा रक्षणीयेति । निरुद्धासती सा क्वावतिष्ठत इत्युच्यते ॥ १ ॥ तदा द्रष्टुः स्वरूपेवस्थानम् ॥ २ ॥ अ० १ पा० १ सू० ३ ॥ यदा सर्वस्माद्व्यवहारा-

स्वनेन उच्यते तदास्योपासकस्य मनो दृढः सर्वज्ञस्य परमेश्वरस्य स्वरूपे स्थितिं लभते ॥ २ ॥ यदोपासको योग्युपासनां विधाय सांसारिक-व्यवहारे प्रवर्तते तदा सांसारिकजनवदस्यापि प्रवृत्तिर्भवत्याहोस्विद्विपरीत-मेतत्याह ॥ वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ३ ॥ अ० १ पा० १ सू० ४ ॥ इत-रत्र सांसारिकव्यवहारे प्रवृत्तेष्वपासकस्य योगिनः शान्ता धर्मात्मका विद्या विज्ञानरूपा सत्यतत्त्वनिष्ठा इतीव तीव्रा साधारणमनुष्य विलक्षणा प्रबुद्धा वृत्तिर्भवतीति । नैवेदृश्यनुपासकानामयोगिनां कदाचिद्वृत्तिर्जायत इति ॥ ३ ॥ वृत्तयः सन्ति कथं निरोद्धव्या इत्यत्राह ॥ वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाक्लिष्टाः ॥ ४ ॥ प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ ५ ॥ तत्र प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ६ ॥ विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूप-प्रतिष्ठम् ॥ ७ ॥ शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ८ ॥ अभावप्रत्य-यालम्बनावृत्तिर्निद्रा ॥ ९ ॥ अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः ॥ १० ॥ अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ ११ ॥ अ० १ पा० १ सू० ५ । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ ॥ उपासनायाः सिद्धेः सहायकारिपरमेश्वरोपासनं किमस्तीत्युच्यते ॥ ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ १३ ॥ अ० १ पा० १ । सू० २३ । भा० प्रणिधानाद्भक्तिविशेषादाविर्भूत ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिध्या-नमात्रेण तदभिध्यानादपि योगिनः शीघ्रं फलं समाधिलाभः फलञ्च भवतीति ॥ १३ ॥ ॥ आर्याभिः ॥

अब किस रीति से उपासना करनी चाहिये सो आगे लिखते हैं । जब २ मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहें तब २ इच्छा के अनुकूल एका-न्त स्थान में बैठकर अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें तथा सब इन्द्रिय और मन को सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छी प्रकार से लगाकर सम्यक् चिन्तन कर के उस में अपने आत्मा को नियुक्त करें फिर उसी की स्तुति प्रार्थना और उपासना को बारंबार करके अपने आत्मा को अती भांति से उस में लगा दे यह की रीति पातञ्जलि मुनि के किये योगशास्त्र और उन्हीं मुनि के शेष व्यास मुनियों के किये भाष्य के समाधि से लिखते हैं ॥ (योग-चित्त) चित्त की वृत्तियों को सब दुराचारों से हटा के शुभ गुणों में स्थिर कर के परमेश्वर के समीप में मोक्ष को प्राप्त करने को योग कहते हैं और वियोग उस को कहते हैं कि परमेश्वर और उस की आज्ञा से विरुद्ध दुराचारों में फंस के उस से दूर होजाना । (प्रश्न) अब वृत्ति शब्द के व्यवहारों में कहां २ लिया जाता है तब कहां पर स्थिर होती है इस का उत्तर यह है

कि ॥ १ ॥ (तदाहुः) जैसे जल के प्रवाह को एक ओर से वृक्ष बांध के रोक देते हैं तब वह जिस ओर नीचा होता है उस ओर चलके कहीं स्थिर हो जाता है इसी प्रकार मन की वृत्ति भी सब ओर से रुकती है तब परमेश्वर में स्थिर हो जाती है एक तो चित्त की वृत्ति के रोकने का यह प्रयोजन है और दूसरा यह है कि ॥ २ ॥ (वृत्तिसा०) अर्थात् उपासक योगी और संसारी मनुष्य जब व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं तब योगी की वृत्ति तो सदा हर्ष शोक रहित आनन्द से प्रकाशित होकर उत्साह और आनन्द युक्त रहती है और संसार के मनुष्य की वृत्ति सदा हर्ष शोक रूप दुःख सागर में ही डूबी रहती है उपासक योगी की तो ज्ञानरूप प्रकाश में सदा बढ़ती रहती है और संसारी मनुष्य की वृत्ति सदा अंधकार में फंसती जाती है ॥ ३ ॥ (वृत्तयः०) अर्थात् सब जीवों के मन में पांच प्रकार की वृत्ति उत्पन्न होती है उस के दो भेद हैं एक क्लिष्ट दूसरी अक्लिष्ट अर्थात् क्लेश सहित और क्लेश रहित उनमें से जिन की वृत्ति विषयासक्त परमेश्वर की उपासना से विमुख होती है उन की वृत्ति अविद्यादि क्लेश सहित और जो पूर्वोक्त उपासक हैं उन की क्लेश रहित शांत होती है ॥ ४ ॥ वे पांच वृत्ति ये हैं पहिली (प्रमाण) दूसरी (विपर्यय) तीसरी (विकल्प) चौथी (निद्रा) और पांच मी स्मृति ॥ ५ ॥ उन के विभाग और लक्षण ये हैं (तत्र प्रत्यक्षा०) इस की व्याख्या वेदविषय के होम प्रकरण में लिख दी है ॥ ६ ॥ (विपर्ययो०) दूसरी विपर्यय कि जिस से मिथ्या ज्ञान हो अर्थात् जैसे को तैसा न जानना अथवा अन्य में अन्य की भावना करलेना इस को विपर्यय कहते हैं ॥ ७ ॥ तीसरी विकल्प वृत्ति (शब्दज्ञाना०) जैसे किसी ने किसी से कहा कि एक देश में हमने आदमी के शिरपर सींग देखे थे इस बात को सुन के कोई मनुष्य निश्चय करले कि ठीक है सींगवाले मनुष्य भी होते होंगे ऐसी वृत्ति को विकल्प कहते हैं सो झूंठी बात है अर्थात् जिस का शब्द तो हो परंतु किसी प्रकार का अर्थ किसी को न मिल सके इसी से इस का नाम विकल्प है ॥ ८ ॥ चौथी (निद्रा) अर्थात् जो वृत्ति अज्ञान और अविद्या के अंधकार में फंसी हो उस वृत्ति का नाम निद्रा है पांचमी (स्मृति) (अनुभूत०) अर्थात् जिस व्यवहार वा वस्तु को प्रत्यक्ष देख लिया हो उसी का संस्कार ज्ञान में बना रहना और उस विषय को (अप्रमोष) भूले नहीं इस प्रकार की वृत्ति को स्मृति कहते हैं इन पांच वृत्तियों को बुरे कामों और अनीश्वर के ध्यान से हटाने का उपाय कहते हैं कि ॥ १० ॥ (अभ्यास०) जैसा अभ्यास उपासना प्रकरण में आगे लिखेंगे वैसा करें और वैराग्य अर्थात् सब बुरे कामों और दोषों से अलग रहें इन दोनों उपायों से पूर्वोक्त पांच वृत्तियों को रोक के उन को उपासना योग में प्रवृत्त रखना ॥ ११ ॥ तथा उस समाधी के योग होने का यह भी साधन है कि (ईश्वर प्र०) ईश्वर में विशेष भक्ति होने से मन का समाधान होके मनुष्य समाधी योग को शीघ्र प्राप्त होजाता है ॥ १२ ॥

अथ प्रधानपुरुषव्यतिरिक्तः कोऽयमीश्वरो नामेति ॥ क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥ १३ ॥ अ० १ पा० २४ सू० १ भा० अविद्यादयः क्लेशाः कुशला अकुशलानि कर्माणि तत्फलं विपाकस्तदनुगुणावासना आशयाः ते च मनसि वर्तमानाः पुरुषे व्यपदिश्यन्ते स हि तत्फलस्य भोक्तेति यथा जयः पराजयो वा योद्धृषु वर्तमानः स्वामिनि व्यपदिश्यते योगेन योगेनापरामृष्टः सपुरुषविशेष ईश्वरः कैवल्यं प्राप्तास्तन्ति यन्ति च कदाचन; केवलिनः ते हि क्लेशान् बन्धनानि छित्त्वा कैवल्यं प्राप्ताः ईश्वरस्य च तत्संबन्धो न भूतो न भावी यथा मुक्तस्य पूर्वबन्धकोटिः प्रज्ञायते नैवमीश्वरस्य यथा वा प्रकृतिलीनस्योत्तरा बन्धकोटिः संभाव्यते नैवमीश्वरस्य सदु सदैव मुक्तः सदैवेश्वर इति योऽसौ प्रकृष्ट सत्वोपादानादीश्वरस्य शाश्वतिक उत्कर्षः सकिं स निमित्त आहो स्विन्निर्निमित्त इति तस्य शास्त्रं निमित्तं शास्त्रं पुनः किं निमित्तं प्रकृष्टसत्वनिमित्तमेतयोः शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरे नित्ये शाश्वतयोरनादिः संबन्धः एतस्मादेतदुक्तवति सदैवेश्वरः सदैव मुक्त इति तद्व सत्यैश्वर्ये साम्यातिशयनिर्मुक्तं न साद्यैश्वर्यान्तरेण सदृशिमप्यते यदैश्वातिशायिस्यात्तदैव तस्यात्तस्मादाकाष्ठा प्राप्तिरैश्वर्यस्य स ईश्वरः स च तत्समानमैश्वर्यमस्ति कस्मात् द्वयोस्तुल्ययोरेकस्मिन् युगपत् शासितव्ये यदभिदध्यतु पुरागमिदमस्तिति सकस्य विद्युश्चितरस्य प्राकाम्यविघातानुत्पत्तौ प्रवर्तं द्वयोश्च तुल्ययोर्युगपत् शासितव्यैप्राप्तिर्नास्ति सर्वस्य विरुद्धत्वात्तस्मादाद्यस्य साम्यातिशयनिर्मुक्तस्यैश्वर्यस्य स ईश्वरः स च पुरुषविशेष इति किं च ॥ १३ ॥ तच्च निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ १४ ॥ अ० १ पा० १ सू० २५ । भा० यद्विद्यातीतानागतं प्रत्युत्पन्नं प्रत्येकमसमुच्चयातीन्द्रियग्रहणसत्यं वस्तुनि सर्वज्ञत्वमीश्वरेऽद्विरुद्धधर्मत्वात् यच्च निरतिशयं स सर्वज्ञः अस्ति काष्ठा प्राप्तिः सर्वज्ञबीजस्य सातिशयत्वान्यथानुपपत्तेः यदिति यच्च काष्ठा प्राप्तिर्ज्ञानस्य स सर्वज्ञः स च पुरुषविशेष इति सामान्यमात्रोपसंहारे कृतोपचयमनुज्ञातं न विशेषप्रतिपत्तौ समर्थमिति तस्य संज्ञादिविशेषप्रतिपत्तिनिमित्तं पर्यन्वेष्या तस्यात्यानुग्रहभावेपि भूतानुग्रहः प्रयोजनं ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसरिष्यः पुरुषानुद्धरिष्यामीति । तथा चोक्तं । आदिविद्वान्निर्माणचित्तमधिष्ठाय कारुण्याद्भगवान् परमर्षिरासुरयेजिज्ञासमानाय तंत्रं प्रोवाचेति ॥ १४ ॥ स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छे-

दात् ॥ १४ अ० १ पा० १ सू० २६ ॥ भा० पूर्वेषामपि गुरुः कालेनावच्छेदात्तेन यत्रावच्छेदार्थेनकालोनोपावर्त्तते स एष पूर्वेषामपि गुरुः यथा ऽस्य सर्गस्यादौ प्रकर्षगत्या सिद्धः तथातिक्रांतसर्गादिष्वपि प्रत्येतव्यः ॥ १५ ॥ तस्य वाचकः प्रणवः ॥ १६ ॥ अ० १ पा० १ सू० २७ ॥ भा० वाच्य ईश्वरः प्रणवस्य किमस्य संकेत कृतम् वाच्यवाचकत्वं अथ प्रदीपप्रकाशवदवस्थितमिति स्थितोऽस्य वाच्यस्य वाचकेन सह संबंधः संकेतस्त्वीश्वरस्य स्थितमेवार्थमभिनयति यथावस्थितः पितापुत्रयोः संबंधः संकेतेनाद्योत्यते अयमस्य पिता अयमस्य पुत्र इति सर्गांतरेष्वपि वाच्यवाचक शक्त्यपेक्षस्तथैव संकेतः क्रियते संप्रतिपत्ति नित्यतया नित्यः शब्दार्थ संबन्ध इत्यागमिनः प्रतिजानते विज्ञात वाच्यवाचकत्वस्य योगिनः ॥ १ ॥ तज्जपस्तदर्थ भावनम् ॥ १७ ॥ अ० १ पा० १ सू० २८ ॥ भा० प्रणवस्य जपः प्रणवाभिधेयस्य चेश्वरस्य भावना तदस्य योगिनः प्रणवंजपतः प्रणवार्थं च भावयतश्चित्तस्य मेकाग्रंसंपद्यते । तथा चोक्तम् । स्वाध्यायाद्योगमासीतयोगात्स्वाध्यायमामनेत् स्वाध्याययोगसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशत इति ॥ १७ ॥ भाषार्थ ॥

अब ईश्वर का लक्षण कहते हैं कि (क्लेश कर्म०) अर्थात् इसी प्रकरण में आगे लिखे हैं सो अविद्यादि पांच क्लेश और अच्छे बुरे कर्मों की जो २ वासना इन सब से जो सदा अलग और बंधरहित है उसी पूर्ण पुरुष को ईश्वर कहते हैं फिर वह कैसा है जिस से अधिक वा तुल्य दूसरा पदार्थ कोई नहीं तथा जो सदा आनन्द ज्ञान स्वरूप सर्व शक्तिमान् है उसी को ईश्वर कहते हैं क्योंकि ॥ १३ ॥ (तत्र निरति०) जिस में नित्य सर्वज्ञ ज्ञान है वही ईश्वर है जिस के ज्ञानादि गुण अनन्त हैं जो ज्ञानादि गुणों की पराकाष्ठा है जिस के सामर्थ्य की अवधि नहीं ॥ और जीव के सामर्थ्य की अवधि प्रत्यक्ष देखने में आती है इसलिये सब जीवों को उचित है कि अपने ज्ञान बढ़ाने के लिये सदैव परमेश्वर की उपासना करते रहैं ॥ १४ ॥ अब उस की भक्ति किस प्रकार से करनी चाहिये सो आगे लिखते हैं (तस्यवा०) जो ईश्वर का ओंकार नाम है सो पिता पुत्र के संबंध के समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता ईश्वर के जितने नाम हैं उनमें से ओंकार सब से उत्तम नाम है इसलिये ॥ १५ ॥ (तज्जप०) इसी नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिये कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो जिस से उस के हृदय में परमात्मा का प्रकाश और परमेश्वर की प्रेम भक्ति सदा बढ़ती जाय ॥ फिर उस से उपासकों को यह भी फल होता है कि ॥ १६ ॥

खाता से बैंक में लेंगे	संख्या पाठक	नाम पाठक	पता पाठक			घर नम्बर	मंजिल मुकाम	मोहल्ला नगर	मेम्बर प्रभार
ह बैंक से	३२८	त्रिभुवनजी प्रेमजी	मोतीखाना,		बंबई	५३	१	४१	
"	३२३	उमेदराम भगवान-दास	बैंबई शाखा.		सूरत		१	४१	
"	३२४	बालजी धनजी	गल्ला बाज़ार गली,		बंबई	६१	१	४१	
"	३२५	दामोदर गोवर्द्धन	बाज़ार गेट गली		"	८७	१	४१	
"	३२८	रामदास छगोलदास	हुंडावाला बाज़ार गली		"	३५	१	४१	
"	३२७	कल्याणजी नारायण-जी	भोईवाड़ा गली		"	६	१	४१	
"	३२८	मेघजी लक्ष्मीदास	कंसारा खेमजी गली			१०	१	४१	
"	३२९	पुरुषोत्तम नारायण-जी	गोकुलदास तेजपाल तेरहवीं फंड सेक्रेटरी आफ़िस कोट		"	११	१	४१	
"	३३०	नगिनदास तुलसी-दास	मोतेश्वर बाज़ार		"	२००	१	४१	
"	३३१	सुन्दरदास लक्ष्मी-दास	मोतीखाना		"	७३	१	४१	
"	३३२	ठक्कर मेंक रामजी	शान्तराम खाली कांदेवाड़ी		"	४२	१	४१	
"	३३३	गङ्गाराम आनन्दराम	कांदेवाड़ी गली		"	१२६	१	४१	
"	३३४	आत्माराम ठाकुर-सी	लुहारचाली		"	३८	१	४१	
"	३३५	बल्लभदास झाटाजी	मरचेन्ट टाइपराइटर आफ़िस		"	१५	१	४१	
"	३३६	मगनलाल भंडारीलाल	पोर्टगीज़ चैन ग्रमोर्विटडसा ईचाली		"	३५	१	४१	
"	३३७	फकीरचन्द निर्भय-राम	कालिकादेवी की सड़क		"	२६	१	४१	
"	३३८	तुलसीराम बुधीलाल	भोईवाड़ा गली		"	१	१	४१	
"	३३९	ठाकुरदास ब्रजभुषण दास	भोईवाड़ा गली		"	७	१	४१	
"	३४०	बालाजी सीताराम कोठारी	गिरिगाम सड़क		"	६७३	१	४१	
"	३४१	हरजी रतनसी	मानदेवी ऊन्दर		"	४४	१	४१	
"	३४२	अबा मार्तोड जोशी	अखारी गली		"	१४४	१	४१	
"	३४३	सेवकलाल छगनदास	नलबाज़ार गली		"	६१	१	४१	
"	३४४	डाक्टर अबामेरे थ्वर दुंटे	काँडाबाड़ी		"	३४	१	४१	
"	३४५	प्राणजी धनदास फाल-दास	गोकीखाली मुंबाटेवी के पास		"	१	१	४१	
"	३४६	थानाधन्द आनन्दजी	मोतीखाना गली		"	५८	१	४१	
"	३४७	हामैंवर ठक्कर	नलबाज़ार गली		"	६१	१	४१	
"	३४८	पीवनदास	नलबाज़ार गली		"	६१	१	४१	
"	३४९	माधवदास रघुनाथ दास	बाज़ारपेठ गली		"	६५	१	४१	
"	३५०	हुकमी ठाकुरसी	लार्डनार्थब्रुक गारडेन रामजी पुरा में		"	४४	१	४१	

कौन से अंक से लेवे	संख्या याहक	नाम याहक	पता याहक	घर नम्बर	संख्या अखबार	मासिक लागत	मौसल अखबार
१ अंक से	३५५	आत्माराम उदाशी	बाबदीबाजार गली, बंबई	५८४	१	४॥)	
"	३५२	मोतीलाल हनुमन्त पुरोहित	बेलर्ड बैंकशिल डिपार्टमेंट	३५	१	४॥)	
"	३५३	विनायक गणेशकवि	दन्तोर महाराजेशुलकर रेंदाद		१	४॥)	
"	३५४	नारायण आनन्दराय	विठ्ठलवाड़ी गली बंबई	५८	१	४॥)	
"	३५५	गोविंदराव नारायण	एकौन्टेंट जेनेरेल आफिस कोर्ट	८	१	४॥)	
"	३५६	मालकदास खनपदा	भोलेश्वर गली	९५१	१	४॥)	
"	३५७	कृंगनलाल मगनलाल	मुंबादेवी तलाव गली	८	१	४॥)	
"	३५८	राजसंखेव मुसकटी	बंबई द्वा० कुरजानपुर		१	४॥)	
"	३५९	नीलकंठ मल्हारजी	गिरिगाम बैंकरोड बंबई	८४८	१	४॥)	
"	३६०	नासुरुद्दिनशा शकलेश्वर	कोट गोलबाड़ गली	३०	१	४॥)	
"	३६१	जेसंगजी हठनजी दादाशन्दजी	खेतवाड़ी दूसरी गली	९५	१	४॥)	
"	३६२	पीतलभाई गणपतजी	पीदण्डु सड़क	७१	१	४॥)	
"	३६३	पाण्डुरङ्ग मुरेश्वर	गिरिगाम गार्डेनेट स्कूल	३६१	१	४॥)	
"	३६४	मनसाशङ्कर जयशङ्कर रावेय	पांटरोड स्टेशन लगेज ऑफिस टाउन		१	४॥)	
"	३६५	आत्माराम फूलचंद	जगन्नोहन की गली	७६	१	४॥)	
"	३६६	मूलचन्द बजबल्लभदास	मुताचाली गली	३१	१	४॥)	
"	३६७	जगन्नाथ त्रिंगाडमले	गोपीनाथ खालीगिरिगाम पिछली सड़क	८	१	४॥)	
"	३६८	प्राणजीवनदास मथाराम	पेथेलगुलाब ढाढी सड़क के पास	९	१		
"	३६९	सेठदुन्दावनदास गुकबेलमदास	नागदेवी सड़क	१०७	१	४॥)	
"	३७०	मूलचन्द उदयदास	बंबई छाया		१	४॥)	
"	३७१	भानुशङ्कर नारायणशङ्कर	बंबई छाया सूरत		१	४॥)	
"	३७२	भूषणदास गरबोदास	बंबई छाया सूरत		१	४॥)	
"	३७३	छरजी पूंजा	बंबई कोट मोटीबाना बंबई	७६	१	४॥)	
"	३७४	बाबु गोपालचन्द्र घोष	कालिकादेवी की सड़क	५६	१	४॥)	
"	३७५	प्रेमजी रघुनाथदास	कालिकादेवी की सड़क	८३	१	४॥)	
"	३७६	हरगोविन्ददास हरिकृष्णदास	पोरचुगी जचर्चरोड की सामने	५८	१	४॥)	
"	३७७	मल्लादेव रामसूरीजोपो	हनुमान गली भोलेश्वर में	९८	१	४॥)	
"	३७८	बाबा पक्कनजीराव	गिरिगाम खांडेवाड़ी गली	९५३	१	४॥)	
"	३७९	विष्णु भाऊ	खेतवाड़ी गली	३३	१	४॥)	

क्रम से अंक में लेंगे	संख्या पावती	नाम पावती	पता पावती	घर नम्बर	संख्या पुस्तक	मोल रुपया	मोल आना
6 अंक में	३८०	डाक्टर पाण्डुरङ्ग गोपाल ..	गिरिगाम (पिछली सड़क) खेतवाड़ .. बंबई	२४०	१	४)	
"	३८१	रंगराज मुनजनजी	कालिकादेवी सड़क बंबई	२३	१	४)	
"	३८२	अन्नाजी शिवजी	कालिकादेवी सड़क .. "	२३	१	४)	
"	३८३	निर्भयराम प्रेमजी ..	कालिकादेवी सड़क .. "	२३	१	४)	
"	३८४	ठाकुरसी नरायणजी	कालिकादेवी सड़क .. "	२३	१	४)	
"	३८५	लक्ष्मीदास पुरुषोत्तमदास	हैदरी सड़क .. .. "	४२	१	४)	
"	३८६	माई जीवनजी ..	गिरिगाम सड़क .. "	१२२	१	४)	
"	३८७	जवाहरलाल उमाशङ्कर ..	ठाठीसतवा अखाड़ी गली "	२८	१	४)	
"	३८८	बालकृष्णनारायण मोरेश्वरा ..	चिटुलवाड़ी गली .. "	८५	१	४)	
"	३८९	क्षीमवासी कृपाराम	मोलेश्वर खत्याल कृपाराम वाली .. .. "	१४३	१	४)	
"	३९०	लक्ष्मीशङ्कर हरिप्रसाद	मावनगरवाला मोलेश्वरमा रलेट के सामने .. "	३	१	४)	
"	३९१	हरिलाल माधवलाल	सुथार डुंगड़ा .. "	१८	१	४)	
"	३९२	विश्वनाथ हरिलालाल ..	जेवर गार्डन .. .. "	१०७	१	४)	
"	३९३	रूपनाथ गोविंदनाथ	चिटुलवाड़ी मन्दिर गली "	१०७	१	४)	
"	३९४	दामोदर बालशंभा	बालमंगेश के पास .. "	१३४	१		४)
"	३९५	गोविंदराव वासुदेव	मङ्गल वाड़ी .. .. "	३	१	४)	
"	३९६	लक्ष्मीदास खेमजी	गढ़ेश बाड़ीलेन .. "	४	१	४)	
"	३९७	त्रिभुवनजी खेमजी	हनुमान गली .. "	७५	१	४)	
"	३९८	रूपराव रघुनाथ	फ्रेजरवाड़ी गली .. "	२२	१	४)	
"	३९९	माधवराव बालशंभा	कुम्भारटुंगड़ा गली .. "	१८	१	४)	
"	४००	रामनारायण ठाकुर	कालिकादेवी की सड़क "	१२	१	४)	
"	४०१	शालगङ्कर उमाशङ्कर	सयधारड़ीनेट लाज पैदरपुर गिरिगाम खेतवाड़ .. "	१५४	१	४)	
"	४०२	प्रोफेसर सेक्सपीयर	क्रीकफोर्ड ... .. इंगलैंगड		१	४)	
"	४०३	प्रोफेसर मोनयरविलयम्स ..	क्रीकफोर्ड ... .. इंगलैंगड		१	४)	
"	४०४	रामचन्द्रभास करमंकी ...	गोन्देवी सड़क ... बंबई	२५	१	४)	
"	४०५	प्राणजीवनदास दामोदरदास ...	नागदेवी गली ... "	१०८	१	४)	
"	४०६	इन्दुप्रकाश के मैनेजर	खेतवाड़ी गली ... "	७५	१	४)	
"	४०७	अब्दुलअलीजी ...	सड़क कालिका देवी ... "	५	१	४)	
"	४०८	प्रागजी ठाकुरसी ...	नगाकांसिद बाजार मूलजी जेठा मार्केट .. "	२८४	१	४)	
"	४०९	भवानी विश्वनाथ	कांदेवाड़ी लोहाचाली "	२७	१	४)	

कौन से अंक से लेंगे	संख्या ग्राहक	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	घर नम्बर	संख्या पुस्तक	मोल्य नगद	मोल्य उधार
६ अंक से	४१०	जमनादास हरिदास	बंबई घडीवाला और सेंटरल-रेलवे आफ़िस ... बंबई	३७	१	॥)	
"	४११	सीमनारायण नरना-यणदास ...	रामवाड़ी सड़क ... "	८८	१	॥)	
"	४१२	हनुमान रामप्रिसी	रामवाड़ी सड़क ... "	८८	१	॥)	
"	४१३	मुलतानी लालचंद जयसुटामदन ...	भोलेश्वर खालिकादास क्षया-राम वाली ... "	१४८	१	॥)	
"	४१४	कल्याणदास माधव-दास ...	घोड़ेवाड़ी गली ... "	६८	१	॥)	
"	४१५	रतनजी मूलजी ...	कोट रेवाशङ्कर जाया हरिवल्लभ ... "	७३	१	॥)	
"	४१६	लालकृष्ण डामोदर	पुरानी सोनापुर गली	५८	१	॥)	
"	४१७	लालजी पैंजनाथ	वालकेश्वर ... "	३१	१	॥)	
"	४१८	माणकजी फ़र्सरामसोनी	महाराजा जीवनजी कोर्ट "	३१	१	॥)	
"	४१९	नारायण चिंतकोबा	खेतवाड़ी गली पहिली "	३२	१	॥)	
"	४२०	गणेश श्रीकृष्ण ...	चिंचपुगली सड़क ... "	५	१	॥)	
"	४२१	हरजीवनदास भगा-नीभाई ...	रामवाड़ी सड़क ... "	८७	१	॥)	
"	४२२	द्वारिकादास त्रिभुवनजी	वालकेश्वर ... ... "	१५८	१	॥)	
"	४२३	गोडबर आर्यपचिका	बंबई ... ... "		१	॥)	
"	४२४	बाबा सुन्दरदास उ-दासी ...	मानबेवी बंदर ... "	१३६	१	॥)	

कौन से अंक से लेंगे	संख्या ग्राहक	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	संख्या पुस्तक	मोल्य नगद	मोल्य उधार
	४२५	पंडित जयदत्त पांडे	मिशन स्कूल, अलमोड़ा ...	१	॥)	४)
	४२७	कल्याणलाल साह	अलमोड़ा	१	॥)	४)
	४१	ठाकुर कर्णसिंह ...	गांव धूनसुर ज़िला शाहजहान-पुर, तिलहर	१	॥)	४)
	६६	मुंशी मनोहरलाल	मकान्ते गुरुहट्टा स्ट्रीस, पटना	२	॥)	४)
	४२७	राय बद्रीदास	सब कलक्टर, सिरसौद ...	१	॥)	४)
	४२८	श्रीमोहनराम ...	ज़िला भागलपुर थाना सदर बहरी, चम्पानगर	१	॥)	४)
	४२९	पं० विष्णुदत्त पांडे	अनारस	१	॥)	४)
	४३०	पंडित गोवर्धनलाल	सर्कारी खजाने के पास, भूपाल	१	॥)	४)
	३४	बाबू नवीनचंद्रराय	पेंशनर 1 कमिश्नर बंगले आगरा	१	॥)	४)
३ अंक से	४३१	बाबू उमेशचंद्र बं-द्योपाध्याय ...	डिपुटी कमिश्नर आफिस, अमृतसर	१	॥)	
३ अंक से और सेट भाग	४३२	डाक्टर गोपालदास	भाई संतसिंह की ढाल, पैशाखी अमृतसर	१	॥)	
"	४३३	आर्य समाज ...	मजरे खुर्द, अमृतसर ...	३		१३)
"	४३४	हरनामसिंह ...	महासिंह का कटड़ा, अमृतसर	१	॥)	

जिस से पक्ष का नाम	पक्ष संख्या	मतदाता का नाम	पता व पेशा	मतदान संख्या	मतदान का समय	मतदाता के हस्ताक्षर
	४६५	श्रीमती [illegible]	[illegible]	१	[illegible]	
भाग ७ पृ.	४६६	[illegible]	[illegible]	१	[illegible]	
	४६७	[illegible]	[illegible]	१	[illegible]	
	४६८	[illegible]	[illegible]	१	[illegible]	
	४६९	[illegible]	[illegible]	१	[illegible]	
	४७०	[illegible]	[illegible]	१	[illegible]	
	४७१	[illegible]	[illegible]	१	[illegible]	
	४७२	[illegible]	[illegible]	१	[illegible]	
	४७३	[illegible]	[illegible]	१	[illegible]	
	४७४	[illegible]	[illegible]	१	[illegible]	
	४७५	[illegible]	[illegible]	१	[illegible]	

जो पत्र वेटबोधि के सदस्य से भार जिलाधार में आया।

	संख्या प्रमाण
[illegible]	४
[illegible]	५
[illegible]	६
[illegible]	७
[illegible]	८
[illegible]	९
[illegible]	१०
[illegible]	११
[illegible]	१२
[illegible]	१३
[illegible]	१४
[illegible]	१५

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवन कालकी घटना ॥

		मुख्य घटना संवत्	घटना
१	जन्म संवत्	१८८१	५
२	संन्यास संवत्	१९०१	२०
३	मृत्यु संवत्	१९४०	६०

स्वामी जी जन्म संवत् का मुख्य कारण यह होगा कि उन्हें अपने पुत्र संवत् में ही स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के जीवन की घटना को जानने की जिज्ञासा होगी। इसलिये उन्हें जन्म संवत् से ही घटना को जानने की जिज्ञासा है।

संन्यास संवत् स्वामी दयानन्द जी के जीवन में एक महत्वपूर्ण घटना है। इस संवत् से ही स्वामी जी ने अपने जीवन को समाज के लिये समर्पित कर दिया था। इसलिये इस संवत् को भी जानने की जिज्ञासा है।

मृत्यु संवत्—स्वामी दयानन्द जी के जीवन की अन्तिम घटना है। इस संवत् से ही स्वामी जी निकलते हैं।

REGISTERED No. 16.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

महर्षिदयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्यभाषाभ्यां सहान्विता ॥

अस्यैकैकस्य प्रतिमाने मूल्यं ... सहितं ।।) सत्रे डाकव्ययसहितं मिलित्वा
शतेन ४।) प्रदातव्यं ॥

इस ग्रंथ के प्रतिमान एक एक सैकड़े का मूल्य आनासहित के पीछे
डाकमसूल सहित ।।) पेशगी चाहिये मूल्य ४।)

अस्य ग्रन्थस्य यद्यन्यत्पुस्तकं यस्य समीपे वर्त्तते तस्यान्यस्मै दातव्यं
वा तयानेऽस्मत्समीपे प्रेषितं चेत्तर्हि वार्षिकं मूल्यं
प्रेषयित्वा प्रतिमानमेकं प्राप्नोति ॥

अंक (८)

॥ अस्य ग्रन्थस्य सर्वेषां भाषाभाष्याणां सत्यार्थप्रकाशस्य च सर्वे स्वत्वाधिकारा मुद्रणाधिकारश्च ॥

संवत् १९२५ ।

॥ अस्य ग्रन्थस्यान्तिमेषु भागेषु यत्र यत्र स्खलनं तत्र तत्र संशोध्य पठेयं ॥

विक्रमी संवत् १९२५ कार्त्तिक मास के अंत पर्यन्त पंजाब देश के लाहोर का पत्रालय
नाम की पोस्ट आफिस स्थापित होकर डाकवाले की मिलना हुआ ।

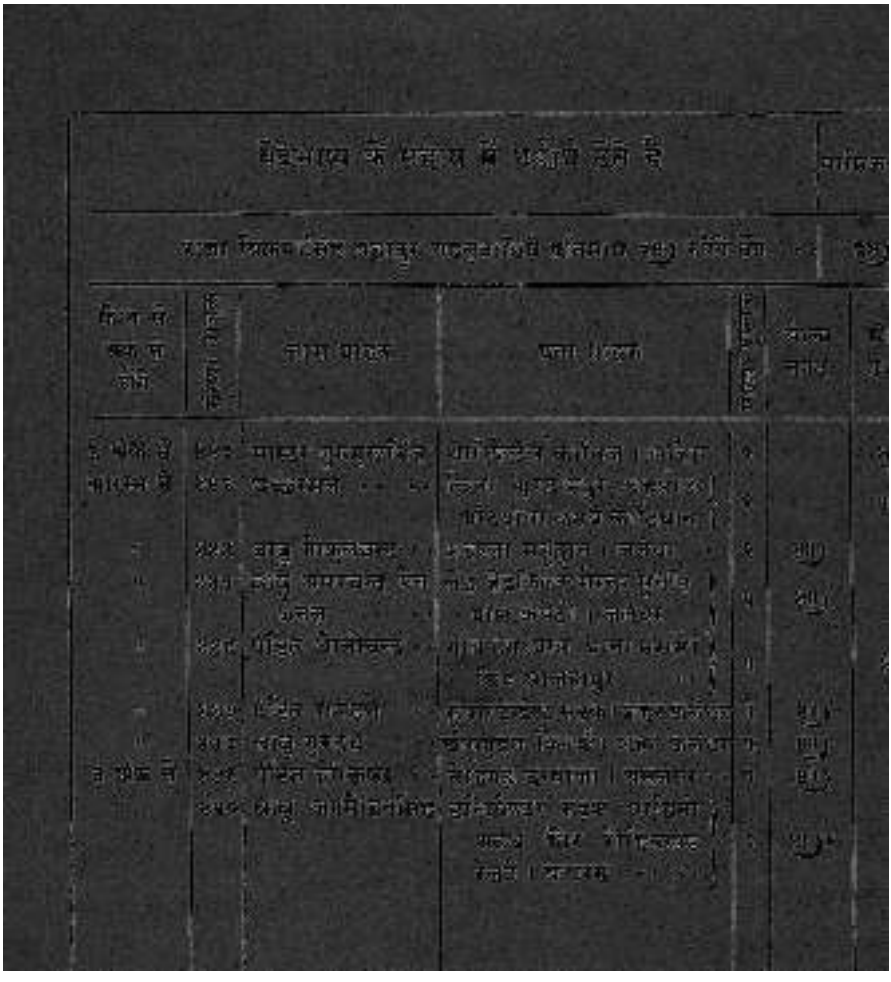

किंचास्य भवति । ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥ १८ ॥ ऋ० १ पा० १ सू० ५६ ॥ भा० येनावद्यन्तरायाः व्याधिप्रभृतयस्ते सावद्यीश्वरप्रणिधानान्न भवन्ति स्वरूपदर्शनमप्यस्य भवति यदेवेश्वरः पुरुषः शुद्धः प्रसन्नः केवलः अनुपसर्गः तथायमपि बुद्धेः प्रतिसंवेदीयः पुरुष इत्येवमधिगच्छति । अथ के पुनरन्तरायाः ये चित्तस्य विक्षेपकाः के पुनस्ते क्रियन्तो वेति ॥ १८ ॥ व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्ते अन्तरायाः ॥ १९ ॥ ऋ० १ पा० १ सू० ३० ॥ भा० नवान्तरायाश्चित्तस्य विक्षेपाः सहैते चित्तवृत्तिभिर्भवन्त्येतेऽप्रभावेनभवंति युगैकाश्चित्तवृत्तयः व्याधिर्थं तुसकरणवैषम्यं, स्त्यानमकर्मण्यता, चित्तस्य संशय उभयकोटिस्पृग्विज्ञानं स्यादिदमेवं नैवं स्यादिति । प्रमादः समाधिसाधनानामभावनम्, (आलस्य) कायस्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्तिः । अविरतिश्चित्तस्य विषयसंप्रयोगात्मागर्द्धः । भ्रान्तिदर्शन विपर्ययज्ञानं अलब्धभूमिकत्वं समाधिभूमेरलाभः । अनवस्थितत्वं यल्लब्ध्वां भूमौ चित्तस्याप्रतिष्ठासमाधिप्रतिलंभेहि सति तदवस्थितं स्यादिति । एते चित्तविक्षेपाः नवयेगमलाः ये.गप्रतिपक्षा योगान्तराया इत्याभिधीयन्ते ॥ २० ॥ दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासाविक्षेपसह भुवः ॥ २१ ॥ अ० १ पा० १ सू० ३१ ॥ भा० । दुःखमाध्यात्मिकं, आधिभौतिकं, आधि दैविकं, च यैरभिहताः प्राणिनस्तदुपघाताय प्रयतन्ते तद्दुःखं दौर्मनस्यम् । इच्छाविघातात्प्रेषतः क्षोभः । यदङ्गान्येजयति कंपयति तदङ्गमेजयत्वं । प्राणो यद्बाह्यं वायुमाचामति स श्वासः । यत्कोष्ठ्यं वायुं निस्सारयति स प्रश्वासः । विक्षेपसहभुवो विक्षिप्तचित्तस्येते भवन्ति समाहितचित्तस्यैतेनभवंति । अथैते विक्षेपाः समाधिप्रतिपक्षाः साभ्यासेवाभ्यां सवैराग्याभ्यां निरोद्धव्याः तत्राभ्यासस्य विषयमुपसंहरन्निदमाह ॥ २२ ॥ तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ २० ॥ अ० १ पा० १ सू० ३२ ॥ भा० । विक्षेपप्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः कर्तव्यश्चित्तमभ्यसेत् यस्य तु प्रत्यर्थनियतं प्रत्ययमात्रं क्षणिकं च चित्तं तस्य सर्वमेव चित्तं प्रकार्यं नास्त्येव क्रियां यदि पुनरिदं सर्वतः प्रत्याहृत्य एकस्मिन्नर्थे समाधीयते तदा भवत्येकाग्र्यसिद्धयति । न प्रत्यर्थनियतं योपि सदृशप्रत्ययप्रवाहेण चित्तमेकाग्रं मन्यते तस्यैकाग्रता यदि प्रवाहचित्तस्य धर्मः तदेकं नास्ति प्रवाहचित्तं क्षणिकत्वात् अथ प्रवाहांशस्यैव प्रत्ययस्य धर्मः स चेदेः

सदृशप्रत्ययप्रवाहो वा वि सदृशप्रत्यय प्रवाहो वा प्रत्यर्थं नियतत्वादेकाय शयेति विशिष्टचित्तानुपपत्तिः । तस्मादेकमनेकार्थमवस्थिते चित्तमिति यदि च चित्तेनैकेनान्विताः स्वभावभिन्नाः प्रत्यया जायेरन् । अथ कथमन्यप्रत्ययदृष्टस्यान्यः स्मर्त्ता भवेत् । अन्यप्रत्ययोपचितस्य च कर्माशयस्यान्यः प्रत्यय उपभोक्ता भवेत् कथंचित्समाधीयमानमप्येतद्दोषायतीयं न्यायमातिष्ठति किंच स्वात्मानुभवापह्नवः चित्तस्यान्यत्वे प्राप्नोति कथं यदहमद्राक्षं तत् स्पृशामि यच्चास्पाक्षम् तत्पश्यामीति । अहमिति प्रत्ययः कथमत्यन्तभिन्नेषु चित्तेषु वर्त्तमानः सामान्यमेकं प्रत्ययिनमाश्रयेत् स्वानुभवाह्नवश्चायमसदात्मा अहमिति प्रत्ययः नच प्रत्यक्षस्य माहात्म्यं प्रमाणान्तरेणाभिभूयते प्रमाणान्तरञ्च प्रत्यक्षबलेनैव व्यवहारं लभते तस्मादेकमनेकार्थमवस्थितं च चित्तं यस्येदं शास्त्रेण परिकर्मनिर्दिश्यते सारूप्यम् ॥ २० ॥ ॥ भाषार्थ ॥

इस मनुष्य को क्या होता है (तत: प्र०) अर्थात् उस अन्तर्यामी परमात्मा की प्राप्ति और (अन्तराय) उस के विघ्नादि क्लेशों तथा रोग रूप विघ्नों का नाश हो जाता है वे विघ्न नव प्रकार के हैं ॥ १० ॥ (व्याधि) एक व्याधि अर्थात् धातुओं की विषमता से ज्वर आदि पीड़ा का होना (दूसरा) (स्त्यान) अर्थात् स्त्य कर्मों में अप्रीति (तीसरा) (संशय) अर्थात् जिस पदार्थ का निश्चय किया चाहे उस का यथावत् ज्ञान न होना (चौथा) (प्रमाद) अर्थात् समाधि साधनों के ग्रहण में प्रीति और उन का विचार यथावत् न होना (पांचवां) (आलस्य) अर्थात् शरीर और मन में आरम्भ की इच्छा से पुरुषार्थ छोड़ बैठना (छठा) (अविरति) अर्थात् विषयसेवा में सुखबुद्धि का होना (सातवां) (भ्रान्तिदर्शन) अर्थात् उलटे ज्ञान का होना जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ बुद्धि करना तथा ईश्वर में अनीश्वर और अनीश्वर में ईश्वरभाव करके पूजा करना (आठवां) (अलब्ध भूमिकत्व) अर्थात् समाधि की प्राप्ति न होना और (नववां) (अनवस्थितत्व) अर्थात् समाधि को प्राप्त होने पर भी उस में चित्त स्थिर न होना ये सब चित्त की समाधि होने में विक्षेप अर्थात् उपासना योग के शत्रु हैं ॥ १९ ॥ अब इन के फल लिखते हैं (दुःख दौर्म०) अर्थात् दुःख की प्राप्ति मन का दुष्ट होना शरीर के अवयवों का कंपना श्वास और प्रश्वास के अत्यन्त वेग से चलने में अनेक प्रकार के क्लेशों का होना जो कि चित्त को विक्षिप्त कर देते हैं ये सब क्लेश अर्थात् चित्तवाले को प्राप्त होते हैं शांत चित्तवाले को नहीं और उन के छुड़ाने का मुख्य उपाय यही है ॥ २० ॥ कि (तत्प्रतिषेधा०) जो केवल एक अद्वितीय ब्रह्मसत्त्व है उसी में प्रेम और सर्वदा उसी की आज्ञा पालन में पुरुषार्थ करना है यही एक उन विघ्नों के नाश करने का वज्ररूप शस्त्र है अन्य कोई नहीं इस लिये सब मनुष्यों को अच्छी प्रकार प्रेमभाव से परमेश्वर के उपासना योग में नित्य

पुरुषार्थ करना चाहिये कि जिस से वे सब विघ्न दूर हो जायं आगे जिस भावना से उपासना करनेवाले सिद्ध व्यवहार में अपने चित्त को प्रसन्न करता होता है सो कहते हैं ॥ २० ॥

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनं ॥ २१ ॥ अ० १ पा० १ सू० ३३ ॥ भा० तत्र सर्वप्राणिषु सुखसंभोगापन्नेषु मैत्रीं भावयेत् दुःखितेषु करुणां पुण्यात्मकेषु मुदितां अपुण्यशीलेषूपेक्षेत एवमस्य भावयतः शुक्लो धर्म उपजायते ततश्च चित्तं प्रसीदति प्रसन्नमेकाग्र्यं स्थितिपदं लभते । २१ ॥ प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ २२ अ० १ पा० ५ सू० ३४ ॥ भा० कोष्ठ्यस्य वायोर्नासिकापुटाभ्यां प्रयत्नविशेषाद्वमनं प्रच्छर्दनं विधारणं प्राणायामः । ताभ्यां वा मनसः स्थितिं संपादयेत् ॥ छर्दनं भक्षितानामन्नपानादीनां प्रयत्नेन शरीरस्थं प्राणं बाह्यदेशं निस्सार्य्य यथाशक्ति बहिरेव स्तम्भनेन चित्तस्य स्थिरता संपादनीया ॥ २२ ॥ योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥ २३ ॥ अ० १ पा० २ सू० २८ ॥ यथामुपासनयोगांगानामनुष्ठानाचरणादशुद्धिरुत्तमं प्रतिदिनं क्षीणो भवति ज्ञानस्य च वृद्धिर्यावत्सोत्तमप्रभिर्भवति ॥ २३ ॥ यम नियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधयो ऽष्टावङ्गानि ॥ २४ ॥ अ० १ पा० २ सू० २९ ॥ तत्राहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः ॥ २५ ॥ अ० १ पा० २ सू० ३० ॥ भा० तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः । उत्तरे च यमनियमास्तत्स्थैर्यार्थं निर्दिष्टा परतया तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते सदवदातरूपकारणाद्वेषादीयन्ते (तथा चोक्तम्) सत्यस्थैर्यं ब्रह्मचर्यं यथा यथा ह्रीयन्ति बहूनि सत्वादित्सते तथा तथा प्रमादकृतेभ्यो हिंसा निदानेभ्यो निवर्तमानस्तामेवावदातरूपामहिंसां करोति, सत्यं यथार्थं वाङ्मनसे यथा दृष्टं यथानुमितं यथा श्रुतं तथा वाङ्मनश्चेति परत्र स्वबोधसंक्रांतये वाग्युक्ता सा दृष्टिनिर्विषा भ्रान्ता वा प्रतिपत्तिबंध्या वा भवेत् इत्येषा सर्वभूतोपकारार्थं प्रयुक्ता न भूतोपघाताय यदि चैवमप्यभिधीयमानाभूतोपघातपरैव स्यान्न सत्यं भवेत् पापमेव भवेत् तेन पुण्याभासेन पुण्यप्रतिरूपकेण कटुं तमः प्रसूयात् तस्मात्परीक्ष्य सर्वभूतहितं सत्यं ब्रूयात् ॥ स्तेयमशास्त्रपूर्वकं द्रव्याणां परतः स्वीकरणं तत्प्रतिषेधः पुनरस्मृतिरूपमस्तेयमिति । ब्रह्मचर्यं गुप्तेन्द्रियस्योपस्थस्य संयमः विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रह इत्येते यमाः ॥ २४ ॥ एषां विवरणं प्राकृतभाषायां वक्ष्यते ।

॥ भाषार्थ ॥

(मैत्री) अर्थात् इस संसार में जितने मनुष्य आदि प्राणी सुखी हैं इन सबों के साथ मित्रता करना । दुःखियों पर कृपादृष्टि रखनी । पुण्यात्माओं के साथ प्रमुदता । पापियों के साथ उपेक्षा अर्थात् न उन के साथ प्रीति रखना और न वैर ही करना इस प्रकार के वर्त्तमान से उपासक के आत्मा में सत्यधर्म का प्रकाश और उस का मन स्थिरता को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ (पच्छर्दन०) जैसे भोजन के पीछे किसी प्रकार से वमन हो जाता है वैसे ही भीतर के वायु को बाहर निकाल के सुखपूर्वक जितना बन सके उतना बाहर ही रोक दे पुनः धीरे २ भीतर लेके पुनरपि ऐसे ही करै इसी प्रकार धारंधार अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाता है और प्राण के स्थिर होने से मन मन के स्थिर होने से आत्मा भी स्थिर हो जाता है इन तीनों के स्थिर होने के समय अपने आत्मा के बीच में तो आनन्द स्वरूप अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है उस के स्वरूप में मग्न हो जाना चाहिये जैसे मनुष्य जल में गोता मार कर ऊपर आता है फिर गोता लगा जाता है इसी प्रकार अपने आत्मा को परमेश्वर के बीच में बारंबार मग्न करना चाहिये ॥ २३ ॥ (योगांगानु०) आगे जो उपासना योग के आठ अंग लिखते हैं जिन के अनुष्ठान से अविद्यादि दोषों का क्षय और ज्ञान के प्रकाश की वृद्धि होने से जीव यथावत् मोक्ष को प्राप्त हो जाता है ॥ २४ ॥ (यमनियम०) अर्थात् एक (यम) दूसरा (नियम) तीसरा (आसन) चौथा (प्राणायाम) पांचवां (प्रत्याहार) छठा (धारणा) सातवां (ध्यान) और आठवां (समाधि) ये सब उपासना योग के अंग कहाते हैं और आठ अंगों का सिद्धान्त रूप फल संयम है ॥ २५ ॥ (तत्राहिंसा०) इन आठों में से पहिला यम है सो पांच प्रकार का है एक (अहिंसा) अर्थात् सब प्रकार से सब काल में सब प्राणियों के साथ वैर छोड के प्रेम प्रीति से वर्त्तना । दूसरा (सत्य) अर्थात् जैसा अपने ज्ञान में हो वैसा ही सत्य बोलै करै और माने ३. (तीसरा) (अस्तेय) अर्थात् पदार्थ वाले की आज्ञा के बिना किसी पदार्थ को इच्छा भी न करना इसी को चोरी त्याग कहते हैं । (चौथा) (ब्रह्मचर्य्य) अर्थात् विद्या पढ़ने के लिये बाल्यावस्था से लेकर सर्वथा जितेन्द्रिय होना और पच्चीसवें वर्ष से लेके अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त विवाह का करना परस्त्री वेश्या आदि का त्यागना सदा सत्यगामी होना विद्या को ठीक २ पढ़ के सदा पढ़ाते रहना और उपस्थ इन्द्रिय का सदा नियम करना । पांचवां (अपरिग्रह) अर्थात् विषय और अभिमानादि दोषों से रहित होना इन पांचों का ठीक २ अनुष्ठान करने से उपासना का बीज बोया जाता है दूसरा अंग उपासना का नियम है जोकि पांच प्रकार का है ॥ २६ ॥

॥ तै तु० शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ २६ ॥ अ० १ पा० २ सू० ३२ ॥ शौचञ्चाद्यमाभ्यन्तरं च तद्यत्र जलादिनाऽऽभ्य-

न्तरं रागद्वेषाभ्यामनभिभूतत्वेन च कार्यम् । संतोषो धर्मानुष्ठानेन सम्यक् प्रसन्नता परादनीया । तपः सदैव धर्मानुष्ठानमेव कर्त्तव्यम् वेदादिसत्यशास्त्राणामध्ययनाध्यापने प्रणवजपो वा । ईश्वरप्रणिधानम् । परमगुरौ परमेश्वरायेव सर्वात्मादिद्रव्यसमर्पणमित्युपासनायाः पञ्चनियमा द्वितीयमङ्गलम् ॥ ७६ ॥ अथाहिंसायाः फलं ॥ अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ २७ ॥ अथ सत्याचरणस्य फलम् ॥ सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ २८ ॥ अथ चौर्यत्यागफलम् ॥ अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ २९ ॥ अथ ब्रह्मचर्य्याश्रमानुष्ठानेन यल्लभ्यते तदुच्यते ॥ ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ ३० ॥ अथापरिग्रहफलमुच्यते ॥ अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः ॥ ३१ ॥ अथ शौचानुष्ठानफलम् ॥ शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सापरैरसंसर्गः ॥ ३२ ॥ किंच सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥ ३३ ॥ संतोषादनुत्तमसुखलाभः ॥ ३४ ॥ कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ॥ ३५ ॥ स्वाध्यायादिष्टदेवता संप्रयोगः ॥ ३६ ॥ समाधिसिद्धीश्वरप्रणिधानात् ॥ ३७ ॥ योग० अ० १ पा० १ सू० ३१ । ३६ । ३७ । ३८ । ३९ । ४० । ४१ । ४२ । ४३ । ४४ । ४५ ॥ ॥ भाषार्थः ॥

(पवित्रता) (शौच) अर्थात् पवित्रता करनी सो भी दो प्रकार की है एक भीतर की और दूसरी बाहर की, भीतर की शुद्धि धर्माचरण सत्य भाषण विद्याभ्यास सत्संग आदि शुभ गुणों के आचरण से होती है और बाहर की पवित्रता जल आदि से यथोचित स्नान मार्जन वस्त्र आसन पात्र आदि शुद्धि करने से होती है (दूसरा) (सन्तोष) जो सदा धर्मानुष्ठान से अत्यन्त पुरुषार्थ करके प्रसन्न रहना और दुःख में शोकातुर न होना किन्तु आलस्य का नाम सन्तोष नहीं है (तीसरा) (तपः) जैसे सोने को अग्नि में तपा के निर्मल कर देते हैं वैसे ही आत्मा और मन को धर्माचरण और शुभ गुणों के आचरण रूप तप से निर्मल कर देना (चौथा) (स्वाध्याय) अर्थात् मोक्षविद्या विधायक वेद शास्त्र का पढ़ना पढ़ाना और ओङ्कार के विचार से ईश्वर का निश्चय करना कराना और (पांचवां) (ईश्वरप्रणिधान) अर्थात् सब सामर्थ्य सब गुण प्राण आत्मा और मन के प्रेमभाव से सत्यादि श्रेष्ठ द्रव्यों को ईश्वर के लिये समर्पण करना ये पांच नियम भी उपासना का दूसरा अंग है अब पांच यम और पांच नियमों के यथावत् अनुष्ठान का फल कहते हैं ॥ २६ ॥ (अहिंसा प्र०) अर्थात् जब अहिंसा धर्म निश्चय हो जाता है तब उस पुरुष के मन से वैरभाव छूट जाता है किन्तु उस के होने से वा उस के संग से अन्य पुरुष का भी वैरभाव छूट जाता है ॥ २७ ॥ (सत्य प्र०) तथा सत्याचरण का ठीक २ फल यह है कि जब मनुष्य निश्चय करके केवल सत्यही

मानना शीलता और करना है तब वह जो २ योग्य काम करना और करना चाहता है वे २ सब सफल हो जाते हैं ॥ २८ ॥ चोरी त्याग करने से यह बात होती है कि (अस्तेय०) अर्थात् जब मनुष्य अपने शुद्ध मन में चोरी के छोड़ देने की प्रतिज्ञा कर लेता है तब उस को सब उत्तम २ पदार्थ यथायोग्य प्राप्त होने लगते हैं और चोरी इस का नाम है कि मालिक की आज्ञा के विना अथवा से उस की चीज और कपट से वा छिपाकर ले लेना ॥ २९ ॥ (ब्रह्मचर्य०) ब्रह्मचर्य सेवन से यह बात होती है कि जब मनुष्य ब्रह्मचर्याश्रम में विवाह न करे उपस्थ इंद्रिय का संयम रक्खे वेदादि शास्त्रों को पढ़ता पढ़ाता रहे विवाह के पीछे भी ऋतुगामी अर्थात् रहे और परस्त्री गमन आदि व्यभिचार को मन कर्म वचन से त्याग देवे सब से प्रकार का वीर्य अर्थात् बल बढ़ता है एक शरीर का दूसरा बुद्धि का उस के बढ़ने से मनुष्य अत्यन्त आनन्द में रहता है ॥ ३० ॥ (अपरिग्रहस्थै०) अपरिग्रह का फल यह है कि जब मनुष्य विषयासक्ती से अलग सर्वथा जितेंद्रिय रहता है तब मैं कौन हूं कहां से आया हूं और मुझ को क्या करना चाहिये अर्थात् क्या काम करने से मेरा कल्याण होगा इत्यादि शुभगुणों का विचार उस के मन में स्थिर होता है ये ही पांच यम कहाते हैं। इन का ग्रहण करना उपासकों को अवश्य चाहिये ॥ ३१ ॥ परंतु यमों का नियम सहकारी कारण है जो कि उपासना का दूसरा अंग कहाता है और जिस का साधन करने से उपासक लोगों का अत्यंत सहाय होता है सो भी पांच प्रकार का है उन में से प्रथम शौच का फल लिखा जाता है (शौचात्स्वां०) पूर्वोक्त दो प्रकार के शौच करने से भी जब अपना शरीर और उस के सब अवयव बाहर भीतर से मलीन ही रहते हैं तब औरों के शरीर को भी परीक्षा होती है कि सब के शरीर मल आदि से भरे हुए हैं इस ज्ञान से वह योगी दूसरे में अपना शरीर मिलाने में घृणा अर्थात् संकोच करके सदा अलग रहता है ॥ ३२ ॥ और उस का फल यह है कि (किञ्च०) अर्थात् शौच से अन्तःकरण की शुद्धि मन की प्रसन्नता और एकाग्रता इंद्रियों का जय तथा आत्मा के दर्शन अर्थात् जानने की योग्यता प्राप्त होती है तदनंतर ॥ ३३ ॥ (संतोषाद्०) अर्थात् पूर्वोक्त संतोष से जो सुख मिलता है वह सब से उत्तम है और उसी को मोक्ष सुख कहते हैं ॥ ३४ ॥ (कायेंद्रिय०) अर्थात् पूर्वोक्त तप से उस के शरीर और इंद्रियां अशुद्धि के क्षय से बढ़ के सदा रोगरहित रहते हैं तथा ॥ ३५ ॥ (स्वाध्याय०) पूर्वोक्त स्वाध्याय से इष्ट देवता अर्थात् परमात्मा के साथ संप्रयोग अर्थात् साक्षात् होता है फिर परमेश्वर के अनुग्रह का सहाय पाने आत्मा की शुद्धि सत्याचरण पुरुषार्थ और प्रेम के संप्रयोग से जीव शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त होता है तथा ॥ ३६ ॥ (समाधि०) पूर्वोक्त प्रणिधान से उपासक मनुष्य सुगमता से समाधि को प्राप्त होता है तथा ॥ ३७ ॥

तत्र स्थिरसुखमासनम् ॥ ३८ ॥ अ० १ पा० २ सू० ४६ ॥ भा० तद्यथा पद्मासनं वीरासनं भद्रासनं स्वस्तिकं दण्डासनं सोपाश्रयं पर्य्यङ्कं क्रौञ्चनिषदनं हस्तिनिषदनमुष्ट्रनिषदनं समसंस्थानं स्थिरसुखं यथा सुखं चेत्येवमादि ॥ ३८ ॥ पद्मासनादिकमासनं विदध्यात् यद्वा यादृगीच्छा तादृशमासनं कुर्य्यात् ॥ ३९ ॥ ततो द्वंद्वानभिघातः ॥ ३९ ॥ अ० १ पा० २ सू० ४८ ॥ भा० शीतोष्णादिभिर्द्वंद्वैरासनजयान्नाभिभूयते ॥ ३९ ॥ तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ ४० ॥ अ० १ पा० २ सू० ४९ ॥ भा० सत्यासनजये बाह्यस्य वायोराचमनं श्वासः कोष्ठ्यस्य वायोर्निःसारणं प्रश्वासस्तयोर्गतिविच्छेद उभयाभावः प्राणायामः ॥४०॥ आसने सम्यक् सिद्धे कृते बाह्याभ्यन्तरगमनशीलस्य वायोर्युक्त्यागमनैरभ्यासेन जयकरणाद्यत्नात् स्थिरीकृत्य गत्यभावकार्यं प्राणायामः ॥ ४० ॥ स तु बाह्याभ्यन्तरस्तंभवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ४१ ॥ अ० १ पा० २ सू० ५० ॥ भा० यत्र प्रश्वासपूर्वको गत्यभावः स बाह्यः यत्र एव मपूर्वको गत्यभावः स आभ्यंतरः तृतीयस्तम्भवृत्तिर्योभयाभावः सकृदारब्धश्च देशे यावति क्षणे यावत्संख्योपेतमात्रया दृष्टो दीर्घसूक्ष्मश्च भवति ॥ ४१ ॥ बालमुष्टिभिरंगुल्यङ्गुष्ठाभ्यां नासिकाछिद्रमसङ्ख्यः प्राणायामः क्रियते स खलु शिष्टेस्त्याज्य एवास्ति किंत्वत्र बाह्याभ्यन्तरांगेषु शान्तिशैथिल्ये संपादे सर्वांगेषु यथावत् स्थितेषु सत्सु बाह्यदेशं गते प्राणे तत्रैव यथाशक्तिसंख्यं प्रथमो बाह्याख्यः प्राणायामः कर्त्तव्यः तथोपरामकर्मेयं बाह्याद्वायादन्तः प्रविशति तस्यश्चेत्तर एव यथाशक्तिनिरोधः क्रियते स आभ्यन्तरोद्वितीयः सेवनीयः । एवं बाह्याभ्यन्तराभ्यामनुष्ठिताभ्यां द्वाभ्यां कदाचिदुभयोर्युगपत्संरोधो यः क्रियते स स्तंभवृत्तिस्तृतीयः प्राणायामोऽभ्यसनीयः ॥ ४० ॥ बाह्याभ्यन्तराविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ४१ ॥ अ० १ पा० २ सू० ५१ ॥ भा० देशकालसंख्याभिर्बाह्याविषयः परिदृष्ट आक्षिप्तः तथाभ्यन्तराविषयः परिदृष्ट आक्षिप्त उभयथा दीर्घसूक्ष्मः तत्पूर्वको भूमिजयात् क्रमेणोभयोर्गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायामस्तृतीयस्तु विषयानालोचितो गत्यभावः सकृदारब्ध एव देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मश्चतुर्थस्तु श्वासयोर्विषयावधारणात् क्रमेण भूमिजयादुभयाक्षेपपूर्वको गत्यभावश्चतुर्थः प्राणायाम इत्यर्थं विशेष इति यः प्राणायाम उभयाक्षेपी स चतुर्थो गद्यते । तद्यथा यदोदराद्बाह्यदेशं प्रतिगंतुं प्रथम-

क्षणे प्रवर्त्तते तं संलक्ष्य पुनः बाह्यदेशे प्रत्येष प्राणः प्रक्षेप्तव्यः पुनश्च यदा बाह्यद्वेषाद्भाभ्यन्तरं प्रथममागच्छेत्तमाभ्यन्तर एव पुनः २ यथाशक्ति गृहीत्वा तत्रैव स्तंभयेत्स द्वितीयः ॥ यत्र द्वयोरेतयोः क्रमेणाभ्यासेन गत्यभावः क्रियते स चतुर्थः प्राणायामः । यस्तु खलु तृतीयोऽस्ति स नैव बाह्याभ्यन्तराभ्यासस्यापेक्षां करोति किन्तु यत्र २ देशे प्राणोऽवस्तिष्ठते तत्र तत्रैव सकृत्स्तम्भनीयः । यथा क्रियमाणमुत्तं दृष्ट्वा मनुष्यश्चकितो भवति तथैव कार्य्यमित्यर्थः ॥ ४१ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(तत्र स्थि०) अर्थात् जिस में सुखपूर्वक शरीर और आत्मा स्थिर हो उस को आसन कहते हैं अथवा जैसे रुचि हो वैसा आसन करे ॥ ३८ ॥ (ततोद्वन्द्वा०) जब आसन दृढ़ होता है तब उपासना करने में कुछ परिश्रम करना नहीं पड़ता है और न सर्दी गर्मी अधिक बाधा करती है ॥ ३९ ॥ (तस्मिन्सति०) जो वायु बाहर से भीतर को आता है उस को श्वास और जो भीतर से बाहर जाता है उस को प्रश्वास कहते हैं इन दोनों के आने जाने के विचार से रोकने को अर्थात् नासिका को हाथ से कभी न पकड़े किन्तु ज्ञान से ही इन के रोकने को प्राणायाम कहते हैं और यह प्राणायाम चार प्रकार से होता है ॥ ४० ॥ (स तु बाह्या०) अर्थात् एक बाह्य विषय दूसरा आभ्यन्तर विषय तीसरा स्तंभ वृत्ति और चौथा जो बाहर भीतर रोकने से होता है ॥ ४५ ॥ अर्थात् जो कि (बाह्याभ्यं०) इस सूत्र का विषय । से चार प्राणायाम इस प्रकार से होते हैं कि जब भीतर से बाहर को श्वास निकले तब उस को बाहर ही रोक दे इस को प्रथम प्राणायाम कहते हैं जब बाहर से श्वास भीतर को आवे तब उस को जितना रोक सके उतना भीतर ही रोक दे इस को दूसरा प्राणायाम कहते हैं तीसरा स्तम्भ वृत्ति है कि न प्राण को बाहर निकाले और न बाहर से भीतर ले जाय किन्तु जितनी देर सुखपूर्वक रह सके उस को जहां का तहां त्यों का त्यों एक दम रोक दे और चौथा यह है कि जब श्वास भीतर से बाहर को आवे तब बाहर ही कुछ २ रोकता रहे और जब बाहर से भीतर आवे तब उस को भीतर ही थोड़ा २ रोकता रहे इस को बाह्याभ्यन्तर विषयी कहते हैं और इन चारों का अनुष्ठान इसलिये है कि जिस से चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहे ॥ ४२ ॥

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् । ४२ ॥ अ० १ पा० २ सू० ५२ । सर्वं प्राणायामाभ्यासाद्योगिनः परमेश्वरस्यान्तर्यामिनः प्रकाशसत्यविवेकज्ञानावरणाख्यमज्ञानमस्ति तत्क्षीयते चयं प्राप्नोतीति ॥ ४९ ॥ किंच धारणासु च योग्यता मनसः । ४३ ॥ अ० १ पा० २ सू० ५३ । भा० प्राणायामाभ्यासादेव प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्येति वचनात् ॥ ४३ ॥ प्राणायामानुष्ठानेनोपासकानां

मनसो ब्रह्मध्याने सम्यग्योग्यता भवति ॥ ४३ ॥ अथ षष्ठः प्रत्याहारः ॥ स्वविषया संप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ४४ ॥ ऋ० १ पा० २ सू० ५४ ॥ यदा चित्तं चितं भवति परमेश्वरात्मस्वरूपव्यतिरिक्तपदार्थान्तरे नैव गच्छति तदेन्द्रियाणां प्रत्याहारो ऽर्थात्तिरोधो भवति । यस्य कस्यचिदपि यथा चित्तं परमेश्वरस्वरूपस्थे भवति तदैवेन्द्रियाण्यप्यर्थेभ्यो निवृत्ते जिते सर्वेन्द्रियाधिकं चित्तं भवतीति विज्ञेयम् ॥ ४४ ॥ ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ४५ ॥ ऋ० १ पा० २ सू० ५५ ॥ ततस्तदनन्तरं स्वस्वविषया संप्रयोगेऽस्वस्वविषयाभावेनौ सत्यामिन्द्रियाणां परमावश्यता यथावद्विजयो जायते स उपासको यदा यदेश्वरोपासनं कर्तुं प्रवर्तते तदा तदैव चित्तस्येन्द्रियाणां च वश्यत्वं कर्तुं शक्नोतीति ॥ ४५ ॥ देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥ ४६ ॥ ऋ० १ पा० ३ सू० १ ॥ भा० नाभिचक्रे हृदयपुण्डरीके मूर्ध्नि ज्योतिषि नासिकाग्रे जिह्वाग्र इत्येवमादिषु देशेषु चित्तस्य वृत्तिमात्रेण बन्ध इति बन्धो धारणा ॥ ४६ ॥ तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ ४७ ऋ० १ पा० ३ सू० २ ॥ तस्मिन्देशे ध्येयालम्बनस्य प्रत्ययस्यैकतानता सदृशः प्रवाहः प्रत्ययान्तरेण परामृष्टो ध्यानम् ॥ ४७ ॥ तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ४८ ॥ ऋ० १ पा० ३ सू० ३ ॥ ध्यानसमाध्योरयं भेदः ध्याने मनसो धातृध्यानध्येयाकारेण विद्यमाना वृत्तिर्भवति समाधौ तु परमेश्वरस्वरूपे सच्चिदानन्दे च मनः स्वरूपशून्यवच्च भवतीति ॥ ४८ ॥ त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४९ ॥ ऋ० १ पा० ३ सू० ४ ॥ भा० तदेतद्धारणाध्यानसमाधित्रयमेकत्र संयमः । यत्रकस्मिन्यानि त्रीणि साधनानि संयम इत्युच्यते तस्य त्रयस्य सांकर्यपरिभाषासंयम इति ॥ ४९ ॥ संयमस्योपासनाया नवमांगम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस प्रकार प्राणायाम पूर्वक उपासना करने से आत्मा के ज्ञान का ढांकने वाला जो धारणा का अज्ञान है वह नित्य प्रति नष्ट होता जाता है और ज्ञान का प्रकाश धीरे २ बढ़ता जाता है इस अभ्यास में यह भी फल होता है कि ॥ ४३ (स्वं च धारणा०) परमेश्वर के ज्ञान में मन और आत्मा की धारणा होने से मोक्ष पर्यन्त उपासना योग और ज्ञान की योग्यता बढ़ती जाती है तथा उस से व्यवहार और परमार्थ का विवेक भी बराबर बढ़ता रहता है इसी प्रकार प्राणायाम करने से भी जान लेना ॥ ४४ ॥ (स्वविषया०) प्रत्याहार उस का नाम है कि जब पुरुष अपने मन को जीत लेता है तब इंद्रियां का जीतना आपसे आप हो जाता है क्योंकि मनको इंद्रियों का चलाने वाला है ॥ ४५ ॥ (ततः परं०) तब वह मनुष्य जितेन्द्रिय होके अपने मन को

ठहराना वा चलाना चाहे उसी में ठहरा और चला सकता है फिर उस को ज्ञान हो जाने से सदा सत्य में ही प्रीति हो जाती है असत्य में कभी नहीं ॥ ४६ ॥ (देशबं०) जब उपासना योग के पूर्वोक्त पांचों अंग सिद्ध हो जाते हैं तब उस का छठा अंग धारण भी यथावत् प्राप्त होती है (धारणा) उस को कहते हैं कि मन को चंचलता से छुड़ा के नाभि, हृदय, मस्तक, नासिका, और भ्रूमि के अर्धभाग आदि देशों में स्थिर करके ओंकार का जप और उस का अर्थ जो परमेश्वर है उस का विचार करना तथा ॥ ४७ ॥ (तत्र प्र०) धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अंतर्यामी व्यापक परमेश्वर है उस के प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेमभक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है उस समय में ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना किंतु उसी अंतर्यामी के स्वरूप और ज्ञान में मग्न हो जाना इसी का नाम ध्यान है इन सात अंगों का फल समाधि है ॥ ४८ ॥ (तदेवार्थ०) जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्निरूप हो जाता है इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके अपने शरीर को भी भूले हुए के समान जानके आत्मा को परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को समाधि कहते हैं ॥ ध्यान और समाधि में इतनाही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करनेवाला जिस मन से जिस चीज का ध्यान करता है ये तीनों विद्यमान रहते हैं परंतु समाधि में केवल परमेश्वर ही के आनन्द स्वरूप ज्ञान में आत्मा मग्न हो जाता है वहां तीनों का भेद भाव नहीं रहता जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न हो के फिर बाहर को आ जाता है ॥ ४९ ॥ (त्रयमेकत्र०) जिस देश में धारणा की जाय उसी में ध्यान और उसी में समाधि अर्थात् ध्यान करने के योग्य परमेश्वर में मग्न हो जाने को संयम कहते हैं जो एक ही काल में तीनों का मेल होना है अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है उन में बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है परंतु जब समाधि होती है तब आनंद के बीच में तीनों का फल एक ही हो जाता है ॥ ५० ॥

॥ अथोपासनाविषये उपनिषदां प्रमाणानि ॥

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तोनासमाहितः नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥ १ ॥ कठोपनि० वल्ली० २ ॥ मं० २४ सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्त सप्त ॥ २ ॥ मुण्ड० १ खं० २ मं० ११ ॥ अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्त-

राक्राशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥ ३ ॥ तं चेद्ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः किं तदत्र विद्यते यदन्वेष्टव्यं वाव विजिज्ञासितव्यमिति ॥ ४ ॥ स ब्रूयाद्यावान्वा अयमाकाशस्तावानेषोऽन्तर्हृदय आकाश उभे अस्मिन्द्यावापृथिवी अन्तरेव समाहिते उभावग्निश्च वायुश्च सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राणि यच्चास्येहास्ति यच्च नास्ति सर्वं तदस्मिन्समाहितमिति ॥ ५ ॥ तं चेद्ब्रूयुरस्मिन्नेदं ब्रह्मपुरे सर्वं समाहितꣳ सर्वाणि च भूतानि सर्वे च कामाय दैवज्जरावप्नोति प्रध्वꣳसते वा किं ततोऽतिशिष्यत इति ॥ ६ ॥ स ब्रूयान्नास्य जरयै त्रज्जीर्यति न वधेनास्य हन्यत एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिता एष आत्मा ऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पो यथाह्येवेह प्रजा अन्वाविशन्ति यथानुशासनं यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवैते उपजीवन्ति ॥ ७ ॥ छान्दोग्योपनि० प्रपा० ८ । खं० १ । २ । ३ । ४ । ५ ॥

अस्य सर्वस्य भाष्यस्याभिप्रायः प्रकाश्यिष्यते ॥ सेयं तस्य परमेश्वरस्योपासनाद्विविधास्ति ॥ एका सगुणा द्वितीया निर्गुणा चेति ॥ तत्राद्या ॥ (सर्व्यगाच्च ॥) इत्यस्मिन्सूत्रे शुक्रशङ्कामति सगुणोपासनम् । अथाथम ब्रह्मलक्षणाविरोधाभ्यादिनिर्गुणोपासनं च [redacted]था । यस्मादेषः सर्वेभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ॥ सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ १ ॥

॥ भाषार्थ ॥

यह उपासनायोग दुष्ट मनुष्य को सिद्ध नहीं होता क्योंकि (नाविरतो०) जब तक मनुष्य दुष्ट कामों से अलग हो कर अपने मन को शांत और आत्मा को पुरुषार्थी नहीं करता तथा भीतर के व्यवहारों को शुद्ध नहीं करता तब तक कितना ही पढ़े वा सुने उस को परमेश्वर की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती ॥ ५ ॥ (तपः प्रभृ०) जो मनुष्य धर्माचरण से परमेश्वर और उस की आज्ञा में अत्यंत प्रेम कर के परंतप अर्थात् शुद्ध हृदय रूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़ तथा वेदादि सत्य विद्याओं में विद्वान् हैं जो अग्निहोत्रादि कर्म कर के संन्यास वा किसी अन्य आश्रम में हैं इस प्रकार के गुण वाले मनुष्य (सूर्यद्वारेण०) प्राण द्वारा से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश करके (विरजाः) अर्थात् सब दोषों से छूट के परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं जहां कि पूर्ण पुरुष अर्थात् जो सब में भरपूर सब में सूक्ष्म (अमृतः) अर्थात् अविनाशी और जिस में हानि लाभ कभी नहीं होता ऐसे परमेश्वर

को प्राप्त होके सदा आनन्द में रहते हैं जिस समय इन सब साधनों से परमेश्वर की उपासना करके उस में प्रवेश किया चाहें उस समय इस रीति से करें कि ॥ २ ॥ (अथ यदिद०) कंठ के नीचे दोनों स्तनों के बीच में और उदर के ऊपर जो हृदय देश है जिस को ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं उस के बीच में जो गर्त है उस में कमल के आकार सदृश अर्थात् अवकाशरूप एक स्थान है और उस के बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एकरस हो कर भर रहा है वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिलजाता है दूसरा उस के मिलने का कोई उत्तमस्थान वा मार्ग नहीं है ॥ ३ ॥ और कदाचित् कोई पूछे कि (तं चेद्ब्रूयु०) अर्थात् उस हृदयाकाश में क्या रक्खा है जिस को खोज ना की जाय तो उस का उत्तर यह है कि ॥ ४ ॥ (यद्वै तदा०) हृदयदेश में जितना आकाश है वह सब अन्तर्यामी परमेश्वर ही से भर रहा है और उसी हृदयाकाश के बीच में सूर्य्य आदि प्रकाश तथा पृथिवी लोक अग्नि वायु सूर्य्य चन्द्र बिजुली और सब भुवन लोक भी ठहर रहे हैं जितने दीखने वाले और नहीं दीखने वाले पदार्थ हैं वे सब उसी की सत्ता के बीच में स्थिर हो रहे हैं ॥ ५ ॥ (तं चेद्ब्रूयु०) इस में कोई ऐसी शंका करे कि जिस ब्रह्मपुर हृदयाकाश में सब भूत और काम स्थिर होते हैं उस हृदयदेश के वृद्धावस्था के उपरान्त नाश हो जाने पर उस के बीच में क्या बाकी रह जाता है कि जिस को तुम खोजने को कहते हो तो इस का उत्तर [illegible] है ॥ ६ ॥ (स ब्रूयात्) सुनो भाई उस ब्रह्मपुर में जो परिपूर्ण परमेश्वर है उस को जरा कभी वृद्धावस्था कभी नहीं है और न कभी नाश पाता है इसी का नाम सत्य ब्रह्मपुर है कि जिस में सब काम परिपूर्ण हो जाते हैं तब (अपहत पाप्मा०) अर्थात् सब पापों से रहित शुद्ध स्वभाव (विजरः) जरा अवस्था रहित (विशोकः) शोक रहित (विजिघत्सोऽपि०) जो खाने पीने की इच्छा कभी नहीं करता (सत्यकामः) जिस के सब काम सत्य हैं (सत्यसंकल्पः) जिस के सब संकल्प भी सत्य हैं उसी आकाश में प्रलय होने के समय सब प्रजा प्रवेश कर जाती है और उसी के रहने से उत्पत्ति के समय फिर प्रकाशित होती है इस पूर्वोक्त उपासना से उपासक लोग जिस २ काम को जिस २ देश को जिस २ सेवभाग अर्थात् अवकाश को इच्छा करते हैं उन सब को वे यथावत् प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥ सो उपासना दो प्रकार की है एक सगुण और दूसरी निर्गुण उन में से (सपर्य्यगा०) इस मंत्र के अर्थानुसार शुक्र अर्थात् जगत् का रचने वाला वीर्यवान् तथा शुद्ध कवि मनीषी परिभू और स्वयंभू इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण है और अकाय अव्रण अस्नाविर इत्यादि गुणों के निषेध होने से वह निर्गुण कहाता है तथा ॥

एको देव इत्यादि सगुणोपासनम् निर्गुणश्चेति इत्यनेन निर्गुणोपासनम् तथा सर्वज्ञादिगुणैः सहवर्तमानः सगुणः अविद्यादिक्लेशपरिमाणादिभ्यो दिव्यैः शब्दस्पर्शरूपरसगंधादिगुणेभ्यः निर्गतत्वान्निर्गुणः । तथा परमेश्वरः सर्वेशः सर्वे व्याप्तं सर्वाध्यक्षः सर्वत्रामो चेत्यादिगुणैः सहवर्तमानत्वात्परमेश्वरस्य सगुणोपासनं विज्ञेयम् तथा सोऽकायोऽव्रणमस्नाविरहितः (अत्र गः) छिद्ररहितः । निराकारः । आकाररहितः । अकायः । शरीरसंबंधरहितः । तथैव शुद्धरूपरसगंधस्पर्शसंख्यापरिमाणादयोगुणास्तस्मिन्न सन्तीदमेव सत्यं निर्गुणोपासनं चात्रज्ञेयम् । अतो देहधारणेनेश्वरः सगुणो भवति देहत्यागेन निर्गुणश्चेति या मूढानां कल्पनास्ति सा वेदादिशास्त्रप्रमाणविरुद्धा विद्वद्वनुभवविरुद्धा चास्ति तस्मात्सज्जनैर्व्यर्थेयं रीतिः सदा त्याज्येति शिवम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(एको देवः०) एक देव इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण और (निर्गुणश्च०) इस के कहने से निर्गुण समझा जाता है तथा ईश्वर सो सर्वज्ञ सर्वगतिमान् शुद्ध सनातन न्यायकारी दयालु सब में व्यापक सब का आधार संगतमय सब को उत्पन्न करने वाला और सब का स्वामी इत्यादि सब गुणों के ज्ञान पूर्वक उपासना करने को सगुणोपासना कहते हैं और वह परमेश्वर कभी जन्म नहीं लेता निराकार अर्थात् आकाररहित कभी नहीं होता अकाय अर्थात् शरीरक भी नहीं धारता व्रणरहित अर्थात् छिद्र कभी नहीं होता और शब्द स्पर्श रूप रस और गंधरहित कभी नहीं होता जिस में दो तीन आदि संख्या की गणना नहीं तथा जिस सकलों को संख्या थोड़ा और बहुत भारी कभी नहीं होता इत्यादि गुणों के निवारण पूर्वक उन का धारण करने को निर्गुण उपासना कहते हैं इस से क्या सिद्ध हुआ कि जो चलाती मनुष्य ईश्वर के देह धारण करने से सगुण और देह त्याग करने से निर्गुण उपासना कहते हैं सो यह उन की कल्पना सब वेद शास्त्रों के प्रमाणों और विद्वानों के अनुभव से विरुद्ध होने के कारण सज्जन लोगों को कभी न माननी चाहिये किंतु सब को पूर्वोक्त रीति से ही उपासना करनी चाहिये ॥ इति संक्षेपतो इष्टोपासनाविषयम् ॥

॥ अथ मुक्तिविषयः संक्षेपतः ॥

सर्वं परमेश्वरोपासनेनाविद्या धर्माचरणानिधर्षाच्छुद्धविज्ञानधर्मानुष्ठानेभ्यो जीवो मुक्तिं प्राप्नोतीति ॥ अथात्र योगशास्त्रस्य प्रमाणानि तद्यथा । अविद्यास्मिता रागद्वेषाभिनिवेशाः पंचक्लेशाः ॥ १ ॥ अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ २ ॥ अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्य

शुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ३ ॥ दृक्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ४ ॥ सुखानुशयी रागः ॥ ५ ॥ दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ६ ॥ स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा रूढोऽभिनिवेशः ॥ ७ ॥ अ० १ पा० २ सू० ३ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ । ९ ॥ तदभावात्संयोगाभावो हानंतदृशेः कैवल्यम् ॥ अ० १ पा० २ सू० २५ ॥ तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ६ ॥ अ० १ पा० ३ सू० ५० ॥ सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ १ ॥ अ० १ पा० ३ सू० ५५ ॥ तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥ ११ ॥ अ० १ पा० ४ सू० २६ ॥ पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ १२ ॥ अ० १ पा० ४ सू० ३४ । अथान्यायशास्त्र प्रमाणानि ॥ दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः ॥ १ ॥ बाधनालक्षणं दुःखमिति ॥ २ ॥ तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ॥ ३ ॥ न्यायद० अ० १ आह्निक १ सू० २ । २१ । २२ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

इसी प्रकार परमेश्वर की उपासना करके अविद्या आदि क्लेश तथा अधर्माचरण आदि दुष्ट गुणों को निवारण करके शुद्ध विज्ञान और धर्मादि शुभ गुणों के आचरण से आत्मा की उन्नति करके जीव मुक्ति को प्राप्त हो जाता है अब इस विषय में प्रथम योगशास्त्र का प्रमाण लिखते हैं पूर्व लिखी हुई चित्त की पांच वृत्तियों को यथावत् रोकने और मोक्ष के साधन में सब दिन प्रवृत्त रहने से नीचे लिखे हुए पांच क्लेश नष्ट हो जाते हैं वे क्लेश ये हैं (अविद्या) एक (अविद्या) दूसरा (अस्मिता) तीसरा (राग) चौथा (द्वेष) और पांचवां (अभिनिवेश) ॥ ५ ॥ (अविद्या क्षेत्र०) इन में से अस्मितादि चार क्लेशों और मिथ्याज्ञानादि दोषों की माता अविद्या है जो कि मूढ़ जीवों को अंधकार में फंसा के जन्ममरणादि दुःखसागर में सदा डुबाती है । परंतु जब विद्वान् और धर्मात्मा उपासकों को सत्य विद्या से अविद्या (विच्छिद्य) अर्थात् छिन्नभिन्न होके (प्रसुप्ततनु) नष्ट हो जाती है तब वे जीव मुक्ति को प्राप्त हो जाते हैं ॥ २ ॥ अविद्या के लक्षण ये हैं (अनित्या) (अनित्य) अर्थात् कार्य्य (जो शरीर आदि स्थूल पदार्थ तथा लोक लोकान्तर में नित्य बुद्धि) तथा जो (नित्य) अर्थात् ईश्वर जीव जगत्का कारण क्रिया क्रियावान् गुण गुणी और धर्म धर्मी हैं इन नित्य पदार्थों का परस्पर संबंध है इन में अनित्य बुद्धि का होना यह अविद्या का प्रथम भाग है तथा (अशुचि) मलमूत्र आदि के समुदाय दुर्गंधरूप मल से परिपूर्ण शरीर में पवित्र बुद्धि का करना तथा तलाव, बावरी, कुंड, कूंआ, और नदी, आदि में सीधे और साफ छुड़ाने की बुद्धि करना और उनका चरणामृत पीना एकादशी आदि मिथ्या व्रतों में भूख प्यास आदि दुःखों का सहना स्पर्श इन्द्रिय के भोग में अत्यंत प्रीति

करना इत्यादि अशुद्ध व्यवहारों को शुद्ध मानना और सत्यविद्या सत्यभाषण धर्म सत्यगुण परमेश्वर की उपासना जिसे त्रिगुणा सर्वोपकार करना सब से प्रेम भाव से वर्त्तना आदि शुद्ध व्यवहार और पदार्थों में यथाविद्यबुद्धि करना यह अविद्या का दूसरा भाग है तथा दुःख में सुख बुद्धि अर्थात् विषयतृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, ईर्षा, द्वेष, आदि दुःखरूप व्यवहारों में सुख मिलने की आशा करना जितेंद्रियता निष्काम शम संतोष विवेक प्रसन्नता प्रेम मित्रता आदि सुखरूप व्यवहारों में दुःखबुद्धि का करना यह अविद्या का तीसरा भाग है इसी प्रकार अनात्मा में आत्मबुद्धि अर्थात् जड़ में चेतन भाव और चेतन में जड़ भावना करना अविद्या का चतुर्थ भाग है यह चार प्रकार की अविद्या संसार के अज्ञानी जीवों को बंधन का हेतु होके उन को सदा नचाती रहती है परंतु विद्या अर्थात् पूर्वोक्त अनित्य अशुचि दुःख और अनात्मा में अनित्य अपवित्रता दुःख और अनात्म बुद्धि का होना तथा नित्य शुचि सुख और आत्मा में नित्य पवित्रता सुख और आत्म बुद्धि करना यह चार प्रकार की विद्या है जब विद्या से अविद्या की निवृत्ति होती है तब बंधन से छूट के जीव मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ (अस्मिता०) दूसरा क्लेश (अस्मिता) कहाता है अर्थात् जीव और बुद्धि को मिले के समान देखना अभिमान और अहंकार से अपने को बड़ा समझना इत्यादि व्यवहार को अस्मिता जानना जब सम्यक् विज्ञान से अभिमान आदि के नाश होने से इस की निवृत्ति हो जाती है तब गुणों के ग्रहण में रुचि होती है ॥ ४ ॥ तीसरा (सुखानु०) राग अर्थात् जो २ सुख संसार में साक्षात् भोगने में आते हैं उन के संस्कार की स्मृति से जो सुख्या के लोभसागर में ग्रहना है इस का नाम राग है जब ऐसा ज्ञान मनुष्य को होता है कि सब संयोग वियोग संयोग वियोगांत हैं अर्थात् वियोग के अंत में संयोग और संयोग के अंत में वियोग तथा वृद्धि के अंत में क्षय और क्षय के अंत में वृद्धि होती है तब इस की निवृत्ति हो जाती है ॥ ५ ॥ (दुःखानु०) चौथा द्वेष कहाता है ॥ अर्थात् जिस अर्थ का पूर्व अनुभव किया गया हो उस पर और उस के साधनों पर सदा क्रोधबुद्धि होना इस की निवृत्ति भी राग की निवृत्ति में ही होती है ॥ ६ ॥ (स्वरसवा०) पांचवां (अभिनिवेश) क्लेश है जो सब प्राणियों को नित्य आशा होती है कि हम सदैव शरीर के साथ बने रहें अर्थात् कभी मरें नहीं। पूर्व जन्म के अनुभव से होती है और इस में पूर्व जन्म भी सिद्ध होता है क्योंकि छोटे २ कृमि चींटी आदि को भी मरण का भय बराबर बना रहता है इसी से इस क्लेश को अभिनिवेश कहते हैं जो कि विद्वान् मूर्ख सबों में भी बराबर दीख पड़ता है इस क्लेश की निवृत्ति तब समझ लेना कि जब जीव परमेश्वर और प्रकृति अर्थात् जगत् के कारण को नित्य और कार्यद्रव्य के संयोग वियोग को अनित्य जान लेना इन क्लेशों की शांति से जीवों को

मोक्षसुख की प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ (तदभावात्०) अर्थात् तब अविद्यादि क्लेश दूर होके विद्यादि शुभगुण प्राप्त होते हैं तब जीव सब बंधनों और दुःखों से छूट के मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ॥ ८ ॥ (तद्वैराग्या०) अर्थात् शोक रहित आदि सिद्धि से भी विरक्त होके सब क्लेशों और दोषों का बीज जो अविद्या है उस के नाश करने के लिये यथावत् प्रयत्न करे क्योंकि उस के नाश के विना मोक्ष कभी नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ तथा (सत्त्व पुरुष०) अर्थात् सत्त्व जो बुद्धि पुरुष जो जीव इन दोनों की शुद्धि से मुक्ति होती है अन्यथा नहीं ॥ १० ॥ (तदा विवेक०) जब सब दोषों से अलग होके ज्ञान की ओर आत्मा झुकता है तब कैवल्य मोक्ष धर्म के संस्कार से चित्त परिपूर्ण हो जाता है तभी जीव को मोक्ष प्राप्त होता है क्योंकि जब तक बंधन के कामों में जीव फसता जाता है तब तक उस को मुक्ति प्राप्त होना असंभव है ॥ ११ ॥ कैवल्य मोक्ष का लक्षण यह है कि (पुरुषार्थ०) अर्थात् कारण के सत्त्व रजो और तमोगुण और उन के सब कार्य्य पुरुषार्थ से नष्ट होकर आत्मा में विज्ञान और शुद्धि यथावत् होके स्वरूप प्रतिष्ठा जैसा जीव का तत्त्व है वैसा ही स्वाभाविक शक्ति और गुणों से युक्त हो के शुद्ध स्वरूप परमेश्वर के स्वरूप विज्ञान प्रकाश और नित्य आनन्द में जो रहना है उसी को कैवल्य मोक्ष कहते हैं ॥ १२ ॥ अब मुक्ति विषय में गोतमाचार्य्य के कहे हुए न्यायशास्त्र के प्रमाण लिखते हैं (दुःखजन्म०) अब मिथ्या ज्ञान अर्थात् अविद्या नष्ट हो जाती है तब जीव के सब दोष नष्ट हो जाते हैं उस के पीछे (प्रवृत्ति०) अर्थात् अधर्म अन्याय विषयासक्ति आदि की वासना सब दूर हो जाती है उस के नाश होने से (जन्म) अर्थात् । फिर जन्म नहीं होता उस के न होने से सब दुःखों का अत्यंत अभाव हो जाता है दुःखों के अभाव से पूर्वोक्त परमानंद मोक्ष में अर्थात् सब दिन के लिये परमात्मा के साथ आनंद ही आनंद भोगने को बाकी रह जाता है इसी का नाम मोक्ष है ॥ १ ॥ (बाधना०) सब प्रकार की बाधा अर्थात् दुःख, विज्ञान और परतंत्रता का नाम दुःख है ॥ २ ॥ (तदत्यन्त०) फिर उस दुःख के अत्यंत अभाव और परमात्मा के नित्य योग करने से जो सब दिन के लिये परमानंद प्राप्त होता है उसी सुख का नाम मोक्ष है ॥ ३ ॥

॥ अथ वेदांतशास्त्रस्य प्रमाणानि ॥

अभावं बादरिराह ह्येवम् ॥ १ ॥ भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ २ ॥ द्वादशाह वदुभयविधं बादरायणोऽतः ॥ ३ ॥ अ० ४ पा० ४ सू० १० । ११ । १२ ॥ यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ॥ बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ १ ॥ तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ॥ अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥ २ ॥ यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा

येऽस्य हृदिश्रिताः ॥ अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ ३ ॥ यदा सर्वे प्रमिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थ यः ॥ अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥ ४ ॥ कठो० अ० २ वल्ली० ६ मं० १० । ११ । १४ । १५ ॥ हैवेन चक्षुषा मनसैतान् कामान् पश्यन् रमते ॥ ५ ॥ य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषा सर्वे च लोका आताः सर्वे च कामाः स सर्वाश्च लोका नाप्नोति सर्वाश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य जानातीति ह प्रजापतिरुवाच प्रजापतिरुवाच ॥ ६ ॥ यदमनरापस्तदब्रह्म तदमृतः स आत्मा प्रजापतेः सभा वेश्म प्रपदो यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां यशो राज्ञां यशो विशां यशोऽहमनुप्रापत्सि सहाहं यशसां यशः ॥ ७ ॥ छान्दोग्योपनि० प्रपा० ७ ॥ अणुः पन्थाविततः पुराणो मामस्पृष्टोऽनुवित्तेयेव ॥ तेन धीरा अपि यन्ति ब्रह्मविद उत्क्रम्य स्वर्गं लोकमितो विमुक्ताः ॥ ८ ॥ तस्मिञ्शुक्लमुतनीलमाहुः पिङ्गलं हरितं लोहितं च ॥ एष पन्था ब्रह्मणाहानुवित्तस्तेनैति ब्रह्म वित्तेजसः पुण्यकृच्च ॥ ९ ॥ प्राणस्य प्राणमुत चक्षुषश्चक्षुतश्रोत्रस्य श्रोत्रमन्नस्यान्नं मनसो ये मनो विदुः ॥ ते निचिक्युर्ब्रह्म पुराणमग्र्यं नेह नानास्ति किंचन ॥ १० ॥ मृत्योः समृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ मनसैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमयं ध्रुवम् ११ ॥ विरजः पर आकाशात् अज आत्मा महान्ध्रुवः ॥ तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ॥ १२ ॥ अ० कां० १४ अ० ८ ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब व्यासोक्त वेदान्त दर्शन और उपनिषदों में जो मुक्ति का स्वरूप और लक्षण लिखे हैं सो आगे लिखते हैं (अथातो०) व्यास जी के पिता जो बादरि आचार्य थे उन का मुक्तिविषय में ऐसा मत है कि जब जीव मुक्त दशा को प्राप्त होता है तब वह शुद्ध मन से परमेश्वर के साथ परमानन्द मोक्ष में रहता है और इन दोनों से भिन्न इन्द्रियादि पदार्थों का अभाव हो जाता है ॥ १ ॥ तथा (भाव्य जैमिनि०) इसी विषय में व्यास जी के मुख्य शिष्य जो जैमिनि थे उन का ऐसा मत है कि जैसे मोक्ष में मन रहता है वैसे ही शुद्ध संकल्पमय शरीर तथा प्राणादि और इन्द्रियों की शुद्ध शक्ति भी बराबर बनी रहती है क्योंकि उपनिषद् में (एष एकधा भवति द्विधा भवति त्रिधा भवति) इत्यादि वचनों का प्रमाण है कि मुक्त जीव संकल्प मात्र से ही भिन्न शरीर रच लेता है और इच्छामात्र ही से शीघ्र छोड़ भी देता है और शुद्ध ज्ञान का सदा प्रकाश बना रहता है ॥ २ ॥ (द्वादशाह०) इस मुक्ति विषय में बादरायण जो व्यास जी थे उन का ऐसा मत है कि मुक्ति में भाव

और अभाव दोनों ही अपने रहते हैं अर्थात् क्लेश अज्ञान और अशुद्धि आदि दोषों का सर्वथा अभाव हो जाता है और परमानंद ज्ञान शुद्धता आदि सब सत्यगुणों का भाव बना रहता है इस में दृष्टान्त भी दिया है कि जैसे वानप्रस्थ आश्रम में बारह दिन का प्राजापत्यादि व्रत करना होता है उस में थोड़ा भोजन करने से क्षुधा का थोड़ा अभाव और पूर्ण भोजन न करने से क्षुधा का कुछ भाव भी बना रहता है इसी प्रकार मोक्ष में भी पूर्वोक्त रीति से भाव और अभाव समझ लेना इत्यादि निरूपण मुक्ति का वेदांत शास्त्र में किया है ॥ ६ ॥ अब मुक्तिविषय में उपनिषद्कारों का जो मत है सो भी आगे लिखते हैं कि (यदा पंचाव०) अर्थात् जब मन के सहित पांच ज्ञानेन्द्रिय परमेश्वर में स्थिर होके उसी में सदा रमण करती हैं और जब बुद्धि भी ज्ञान से विरुद्ध चेष्टा नहीं करती उसी को परमगति अर्थात् मोक्ष कहते हैं ॥ ७ ॥ (तां योग०) उसी गति अर्थात् इन्द्रियों की शुद्धि और स्थिरता को विद्वान् लोग योग की धारणा मानते हैं जब मनुष्य उपासना योग से परमेश्वर को प्राप्त होके प्रमाद रहित होता है तभी जानो कि वह मोक्ष को प्राप्त हुआ वह उपासना योग कैसा है कि प्रभव अर्थात् शुद्धि और सत्यगुणों का प्रकाश करने वाला तथा (अव्ययः) अर्थात् सब अशुद्धि दोषों और असत्य गुणों का नाश करने वाला है इस लिये केवल उपासना योग ही मुक्ति का साधन है ॥ ८ ॥ (यदा सर्वे०) जब इस मनुष्य का हृदय सब बुरे कामों से अलग होके शुद्ध हो जाता है तभी वह अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होके आनंद युक्त होता है (प्र०) क्या वह मोक्ष पद कहीं स्थानांतर वा पदार्थ विशेष है क्या वह किसी एकही जगह में है वा सब जगह में (उत्तर) नहीं ब्रह्म तो सर्वत्र व्यापक हो रहा है वही मोक्षपद कहाता है और मुक्त पुरुष उसी मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ तथा (यदा सर्वे०) जब जीव को अविद्यादि बंधन की सब गांठें छिन्न भिन्न होके टूट जाती हैं तभी वह मुक्ति को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ (प्र०) जब मोक्ष में शरीर और इन्द्रियां नहीं रहतीं तब वह जीवात्मा व्यवहार को कैसे जानता और देख सकता (उत्तर) (देवेन०) वह जीव शुद्ध इन्द्रिय और शुद्ध मन से इन आनन्द रूप कामों को देखता और भोगता भया उस में सदा रमण करता है क्योंकि उस का मन और इन्द्रियां प्रकाश स्वरूप हो जाती हैं ॥ ५ ॥ (प्र०) वह मुक्त जीव सब सृष्टि में घूमता है अथवा कहीं एकहीं ठिकाने बैठा रहता है (उ०) (य एते ब्रह्मलोके०) जो मुक्त पुरुष होते हैं वे ब्रह्मलोक अर्थात् परमेश्वर को प्राप्त होके और सब के आत्मा परमेश्वर की उपासना करते हुए उसी के आश्रय से रहते हैं इसी कारण से उन का जाना आना सब लोक लोकांतरों में होता है उन के लिये कहीं रुकावट नहीं रहती और उन के सब काम पूर्ण हो जाते हैं कोई काम अपूर्ण नहीं रहता इस लिये जो मनुष्य पूर्वोक्त

रीति से परमेश्वर को सब का आत्मा जानके उस की उपासना करता है वह अपनी संपूर्ण कामनाओं को प्राप्त होता है यह दान प्रजापति परमेश्वर सब जीवों के लिये वेदों में बताता है ॥ ६ ॥ पूर्व प्रसंग का अभिप्राय यह है कि मोक्ष की इच्छा सब जीवों को करनी चाहिये (यद्यन्तरा०) जो कि आत्मा का भी अन्तर्यामी है उसी को ब्रह्म कहते हैं और वही अमृत अर्थात् मोक्षस्वरूप है और जैसे वह सब का अन्तर्यामी है वैसे उस का अंतर्यामी कोई भी नहीं किंतु वह अपना अन्तर्यामी आपही है ऐसे प्रजानाथ परमेश्वर के व्याप्ति रूप समाधान को मैं प्राप्त होऊं और इस संसार में जो पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण हैं उन के बीच में (यशः) अर्थात् कीर्त्ति को प्राप्त होऊं तथा (राज्ञां) क्षत्रियों (विशां) अर्थात् व्यवहार में चतुर लोगों के बीच में यशस्वी होऊं हे परमेश्वर मैं कीर्त्तियों का भी कीर्त्ति रूप होके आप को प्राप्त हुआ चाहता हूं आप भी कृपा करके मुझ को सदा अपने समीप रखिये ॥ ७ ॥ अब मुक्ति के मार्ग का स्वरूप वर्णन करते हैं (अणुः पन्था०) मुक्ति का जो मार्ग है सो अणु अर्थात् अत्यंत सूक्ष्म है (वितरः) उस मार्ग से सब दुःखों के पार सुगमता से पहुंच जाते हैं जैसे वृद्ध नौका से समुद्र को तरजाते हैं तथा (पुराणः) जो मुक्ति का मार्ग है वह प्राचीन है दूसरा कोई नहीं मुझ को (स्पृष्टः) वह ईश्वर की कृपा से प्राप्त हुआ है उसी मार्ग से विमुक्त मनुष्य सब शोक और दुःखों से छूटे हुए (धीराः) अर्थात् विचारशील और ब्रह्मविद् वेदविद्या और परमेश्वर के जानने वाले बीच (उत्क्रम्य) अर्थात् अपने सत्य पुरुषार्थ से सब दुःखों का उल्लंघन करके (स्वर्गं लोकं) सुखस्वरूप ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥ तस्मिन्शुक्लं० अर्थात् उसी मोक्षपद में (शुक्ल) श्वेत (नील) शुद्ध घनश्याम (पिंगल) पीला श्वेत (हरित) हरा और (लोहित) लाल ये सब गुणवाले लोक लोकांतर ज्ञान से प्रकाशित होते हैं यही मोक्ष का मार्ग परमेश्वर के साथ समागम के पीछे प्राप्त होता है उसी मार्ग से ब्रह्म को जानने वाला ॥ तथा (तैजसः) शुद्ध स्वरूप और पुण्य का करने वाला मनुष्य मोक्ष सुख को प्राप्त होता है अन्य प्रकार से नहीं ॥ ९ ॥ (प्राणस्य प्राणः०) जो परमेश्वर प्राण का प्राण चक्षु का चक्षु श्रोत्र का श्रोत्र अन्न का अन्न और मन का मन है उस को जो विद्वान् निश्चय करके जानते हैं वे पुरातन और सब से श्रेष्ठ ब्रह्म को मन से प्राप्त होने के योग्य मोक्षसुख को प्राप्त होके आनंद में रहते हैं (नेहनाः०) जिस सुख में किंचित भी दुःख नहीं है ॥ १० ॥ (मृत्योः समृत्यु०) जो अनेक ब्रह्म अर्थात् दो, तीन, चार, दश, बीस, जानता है वा अनेक पदार्थों के संयोग से बना जानता है वह बारंबार मृत्यु अर्थात् जन्म मरण को प्राप्त होता है क्योंकि वह ब्रह्म एक और चेतन मात्र स्वरूप ही है तथा प्रमाद रहित और व्यापक होके सब में स्थिर है उस को मन से ही देखना होता है क्योंकि ब्रह्म आकाश से भी सूक्ष्म है

॥ १९ ॥ (विरजः परआ०) जो परमात्मा विशेष रहित आकाश से परम सूक्ष्म (अजः) अर्थात् जन्मरहित और सदा ध्रुव अर्थात् निश्चल है जानि लोग उसी को ज्ञान के अपनी बुद्धि को विशाल करें और वह इसी से ब्राह्मण कहाता है ॥ १२ ॥

सहोवाच । एतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्य स्थूलमनण्व ह्रस्वमदीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमोऽवाय्वनाकाशमसंगमस्पर्शमगन्धमरसमचक्षुष्कमश्रोत्रमवागमनोऽतेजस्कमप्राणममुखमनामागोत्रमजर ममरमभयमृतमरजोऽशब्दमविवृतमसंवृतमपूर्वमनपरमनन्तरमबाह्यं न तदश्नोति किं च न तदश्नोति कश्चन ॥ १३ ॥ शु० कां० १४ अ० ६ । कं० ८ ॥

इति मुक्तेः प्राप्तव्यस्य मोक्षस्वरूपस्य सच्चिदानन्दादिलक्षणस्य परब्रह्मणः प्राप्त्या जीवस्सदासुखी भवतीति बोध्यम् ॥

॥ अथ वैदिकप्रमाणम् ॥

ये यज्ञेन दक्षिणया समक्ता भद्रस्य सुख्यमसृक्षतमानश । तेभ्यो भद्रंगिरसो वो अस्तु प्रति ब्रवीत मानवंसुमेधसः ॥ १ ॥ ऋ० अ० ८ अ० २ व० १ मं० १ ॥ सनोबंधुर्जनिता सविधाता धामानि वेद भुवनानिविश्वा । यत्र देवा अमृतं मानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥ २ ॥ य० अ० ३२ मं १० ॥

अविद्यास्मितेत्यारभ्याध्यैरयंतेत्यन्तेन मोक्षस्वरूपं निरूपणमस्तीति वेदितव्यम् एवमर्थः प्राकृतभाषायां प्रकाश्यते ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(सहोवाच ए०) याज्ञवल्क्य कहते हैं हे गार्गि जो परब्रह्म नाश, स्थूल, सूक्ष्म, लघु, लाल, चिक्कण, छाया, अन्धकार, वायु, आकाश, संग, शब्द, स्पर्श, गंध, रस, नेत्र, कर्ण, मन, तेज, प्राण, मुख, नाम, गोत्र, वृद्धावस्था, मरण, भय, आकार, विकाश, संकोच, पूर्व, अपर, भीतर, बाहर, अर्थात् बाहर, इन सब दोष और गुणों से रहित मोक्षस्वरूप है । वह साकार पदार्थ के समान किसी को प्राप्त नहीं होता और न कोई उस को मूर्ति द्रव्य के समान प्राप्त होता है क्योंकि वह सब में परिपूर्ण सब से अलग अद्भुत स्वरूप परमेश्वर है उस को प्राप्त होने वाला कोई नहीं हो सकता जैसे मूर्त द्रव्य को चक्षुरादि इंद्रियों से साक्षात् कर सकता है क्योंकि वह सब इंद्रियों के विषयों से अलग और सब इंद्रियों का आत्मा है तथा (ये यज्ञेन) अर्थात् पूर्वोक्त ज्ञान रूप यज्ञ और आत्मादि द्रव्यों की परमेश्वर को दक्षिणा देने से ये मुक्त लोग नित्य सुख में प्रसन्न रहते हैं (इंद्रस्य) जो परमेश्वर की साख्य अर्थात् मित्रता से मोक्षभाव को प्राप्त हो गये हैं उन्हीं के लिये भद्र नाम सब सुख नियत किये

गये हैं (अंगिरसः) अर्थात् उन के जो भाग हैं वे (सुमेधसः) उन की बुद्धि को अत्यंत बढ़ाने वाले होते हैं और उस मोक्ष प्राप्त मनुष्य को पूर्व मुक्त लोग अपने समीप आनंद में रख लेते हैं और फिर वे परस्पर अपने ज्ञान से एक दूसरे को प्रीत पूर्वक देखते और मिलते हैं (सनोबंधुः) सब मनुष्यों को यह जानना चाहिये कि वही परमेश्वर हमारा बंधु अर्थात् दुख का नाश करने वाला (जनिता) सब सुखों का उत्पन्न और पालन करने वाला है तथा वही सब कामों का पूर्ण करता और सब लोकों को जानने वाला है कि जिस में देव अर्थात् विद्वान् लोग मोक्ष को प्राप्त होके सदा आनंद में रहते हैं और वे तीसरे धाम अर्थात् शुद्ध सत्त्व में स्थित होके सर्वोत्तम सुख में सदा स्वच्छंदता से रमण करते हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार संक्षेप से मुक्ति विषय कुछ तो वर्णन कर दिया और कुछ आगे भी कहीं २ करेंगे सो जान लेना जैसे (इदाहमेतं) इस मंत्र में भी मुक्ति का विषय कहा गया है ॥ इति मुक्तिविषयः संक्षेपतः ॥

॥ अथ नौविमानादिविद्याविषयसंक्षेपतः ॥

तुग्रो॑ ह भुज्युमश्विनोद॒मेघे॒ रयिं॒ नकष्टिं॒ शम्मृवां॑ अ॒र्वाचाः॑ । तमू॑हथुर्नौभि॑रात्म॒न्वतीभि॑रंतरिक्षप्रु॒द्भिरपो॑दकाभिः ॥ १ ॥ त्रिभि॒: पञ्चा॑शतै॒रहा॑ति॒ व्रजद्भि॑र्नासत्या भुज्युमू॒हथुः॑ प॒तंगैः॑ । समु॒द्रस्य॒ धन्व॑न्नार्द्र॒स्य पा॒रे त्रि॒भिर्यौ॒: शत॑पद्भि॒: षळ॑श्वैः ॥ २ ॥ ऋ० । अ० १ । अ० ८ । व० ८ । मं० । ३ । ४ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

अस्यामिप्रायः तुग्रोऽहेत्यादिषु मंत्रेषु शिल्पविद्या विधीयतइति (तुग्रोऽह०) तुजिहिंसाबलादाननिकेतनेषु । अस्मात्तुतोरोगादिके रक् प्रत्यये कृते तुग्र इति पदं जायते । यः कश्चिद्धनमिलाषी भवेत् (रयिं) धनं कामयमानो (भुज्युं) पालनभोगमयं धनादिपदार्थसंयोगमिच्छन् विजयं च । पदार्थविद्यया स्वामिलाभं प्राप्नुयात् । सच (अश्विना०) पृथिवीमयैः काष्ठलोष्ठादिभिः पदार्थैर्नावं रचयित्वा अग्निजलादिप्रयोगेण (उद्मेघे) समुद्रे गमयेदागमयेच्च तेन सुखादिसिद्धिं साधयेत् । यथं कुर्वन् न कश्चिन्मृत्यवान् योगक्षेमविरहःसन् न मरणं कदाचित् प्राप्नोति कुतः तस्य कृतपुरुषार्थत्वात् । अतो नावं (अरुहाः) अर्थात् समुद्रे द्वीपांतरगमनेति नावो साधनारूढने परमप्रयत्नेन नित्यं कुर्य्यात् । को साधयित्वा (अश्विना) द्यौरिति द्योतनात्सूर्याग्निप्रयोगेण पृथिव्या पृथिवीमयेनायस्तामरजतधातुकाष्ठादिमयेनचेयंक्रियासाधनीया । अश्विनौ युवां तौ सा-

धितौ द्वौ नावादिकं यानं (जहथुः) देशांतरगमनं सम्यक् सुखेन प्राप-यतः । पुरुषव्यत्ययेनात्र प्रथमपुरुषस्थाने मध्यमपुरुषप्रयोगः । कथंभू-तैर्याने: (नौभिः) समुद्रे गमनागमनहेतुरूपाभिः । (आत्मन्वतीभिः) स्वयं स्थिताभिः स्वात्मीयस्थिताभिर्वा । राजपुरुषैर्व्यापारिभिश्च मनुष्यै-रर्थवद्भिरार्थं समुद्रमार्गेण तासां गमनागमने नित्यं कार्ये इति शेषः । तथा ताभ्यामुक्ताग्रवक्राभ्यां भूयांस्यन्यान्यपि विमानादीनि साधनीयानि । एवमेव (अंतरिक्षप्रुद्भिः) अंतरिक्षं प्रतिगं तृभिर्विमानाख्ययानैः साधिभिः सर्वैर्मनुष्यैः परमेश्वरस्य सम्यक् प्रापणीयम् ॥ पुनः कथंभूताभिर्नौभिः (अपोदकाभिः) अपगतं दूरीकृतं जललेपो यासांता अपोदकानावः । अर्थात् सच्छिद्रनास्ता-भिः । उदरे जलागमनरहिताभिश्च समुद्रे गमनं कुर्य्यात्तथैव भूयानेभूमौ जलयानैर्जले अंतरिक्षयानैश्चांतरिक्षे चेति अर्थात्त्रिविधं यानं रचयित्वा जलभूम्याकाशगमनं यथावत्कुर्य्यादिति ॥ ९ ॥ अत्र प्रमाणम् । अथातो-द्युस्थानादेवतास्तासामश्विनौ प्रथमावागच्छतो ऽश्विनौ यद्व्यश्नुवाते सर्वं रसेनान्योज्योतिषा ऽन्योऽश्वैरश्विनावित्यौर्णवाभस्तत्कावश्विनौ द्यावा-पृथिव्यादित्येके ऽहोरात्रावित्येके सूर्याचंद्रमसावित्येके ॥ निरु० अ० १२ खं० १ ॥ तथाश्विनौ चापि भर्त्तारौ जंभरीभर्त्तारावित्यर्थस्तुफरीतूदहन्तारौ । उदन्यजेवेत्युदकजे इव रथे समुद्रे ॥ निरु० अ० ०३ खं० ५ ॥ एतैः प्रमाणैरत्रसिध्यति वायुजलाग्निपृथिवीविकारकलाकौशलसाधनेन न वि-विधं यानं रचनीयमिति ॥ ९ ॥ (तिस्रः जपस्त्रिरह्न) कथंभूतैर्नौसाधि-भिः त्रिसप्तीरात्रिभिस्त्रिभिर्दिनैः । (आर्द्रस्य) जलेन पूर्णस्य समुद्रस्य तथा (धन्वनः) स्थलस्यान्तरिक्षस्य पारे (अतिव्रज्द्भिः) अत्यंत-वेगवद्भिः ॥ पुनः कथंभूतैः (पतङ्गैः) प्रतियातं वेगेन गंतृभिः । तथा (त्रिभीरथैः) त्रिभी रमणीयसाधनैः (शतपद्भिः) शतेनासंख्यातेन वेगेन पद्भ्यां यथा गच्छेनादृशैरत्यंतवेगवद्भिः । (षडश्वैः) षडश्वा आशुगमन-हेतवोयन्त्राख्याग्निस्थानानि वा येषु तानि षडश्वानि तैः षडश्वैर्याने-स्त्रिषु मार्गेषु सुखे न गन्तव्यमिति शेषः तेषां यानानां सिद्धिः केन द्रव्येण भवतीत्यत्राह ॥ (नासत्या) पूर्वोक्ताभ्यामश्विभ्याम् । अत एवोक्तं ना-सत्यौ द्यावापृथिव्यौ तानि यानानि (जहथुः) इत्यत्र पुरुषव्यत्ययेन प्रथमस्य स्थाने मध्यमः । प्रत्यक्षविधयश्चाचक्षत्वात् अत्र प्रमाणम् । व्यत्य-योबहुलम् । अष्टाध्याय्याम् । अ० ३ पा० १ अत्राह महाभाष्यकारः ॥

सुविड्भ्यडालिङ्गनरागां कालहलचल्वरकर्तृयङां च । व्यत्ययमिच्छन्ति शास्त्रकृदेवां सोपि च सिध्यति आहुलकेनेति महाभाष्यप्रामाण्यात् ॥ तावेव नायत्याचाश्विनौ सम्यग् यानानि वहत्यत्र सामान्यकाले लिङ्विधानात् । ऊहथुरित्युक्तम् । तावेव तेषां यानानां मुख्ये साधनेऽस्तः ॥ यः खलु कुर्वन्नो भुज्युमूतमसुखभोगं प्रापयुर्नान्ययेति ॥ २ ॥ ॥ भाषार्थः ॥

अब मुक्ति के आगे समुद्र भूमि और अन्तरिक्ष में शीघ्र चलने के लिये यान विद्या लिखते हैं जैसी कि वेदों में लिखी है (तुवोदः०) तुदिधातु से रक् प्रत्यय करने से तुद शब्द सिद्ध होता है उस का अर्थ हिंसक, बलवान्, ग्रहण करने वाला, और स्थान वाला है क्योंकि वैदिक शब्द सामान्य अर्थ में वर्त्तमान हैं जो शत्रु को हनन कर के अपने विजय बल और धनादि पदार्थ और जिस २ स्थान में सवारियों से अत्यन्त सुख का ग्रहण किया जावे उन सबों का नाम तुद है (रयिं) जो मनुष्य उत्तम विद्या सुवर्ण आदि पदार्थों की कामना वाला है उस का जिन से पालन और भोग होता है उन धनादि पदार्थों की प्राप्ति भोग और विजय की इच्छा को आगे लिखे हुए प्रकारों से पूर्ण करें (अश्विना) जो कोई सोना, चांदी, तांबा, पीतल, लोहा, और लकड़ी, आदि पदार्थों से अनेक प्रकार की कलायुक्त नौकाओं को रचके उन में अग्नि वायु और जल आदि का यथावत् प्रयोग कर और पदार्थों को भर के व्यापार के लिये (उदमेधे) समुद्र और नदी आदि में (अधाहाः) आवे जावे तो उस के द्रव्यादि पदार्थों की उन्नति होती है ॥ जो कोई इस प्रकार से पुरुषार्थ करता है वह (न ऋष्टिन्मघवान्) पदार्थों की प्राप्ति और उन की रक्षा सहित होकर दुख से मरण को प्राप्त कभी नहीं होता क्योंकि वह पुरुषार्थी होके आलसी नहीं रहता वे नौका आदि किन को सिद्ध करने से होते हैं अर्थात् जो अग्नि वायु और पृथिव्यादि पदार्थों में शीघ्र गमनादि गुण और अश्वि नाम से सिद्ध हैं जैसी यानों को धारण और प्रेरणा आदि अपने गुणों से वेगवान् कर देते हैं वैसेही युक्ति से सिद्ध किये हुए नाव विमान और रथ आर्थात् भूमि में चलने वाली सवारियों का (ऊहथुः) लाना जाना जिन पदार्थों से देश देशान्तर में सुख से होता है । यहां पुरुष व्यत्यय से (ऊहतुः) इस के स्थान में (ऊहथुः) ऐसा प्रयोग किया गया है । उन से किस २ प्रकार की सवारी सिद्ध होती हैं सो लिखते हैं (नौभिः) अर्थात् समुद्र में सुख से जाने आने के लिये अत्यन्त उत्तम नौका होती हैं (आत्मन्वतीभिः) जिन से उन के मालिक अथवा सौंपकर चला के जाते आते रहें व्यवहारी और राजपुरुष लोग इन सवारियों से समुद्र में जावें आवें तथा (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) अर्थात् जिन से आकाश में जाने आने की क्रिया सिद्ध होती है जिन का नाम विमान शब्द

करके प्रसिद्ध है तथा (अपोदकाभिः) से सवारी ऐसी शुद्ध और चिकनी होनी चाहिये जो जल से न गले और न जलदी टूटे फूटे । इन तीन प्रकार की सवारियों की जो रीति पहिले कह आये और जो आगे कहेंगे उसी के अनुसार यथावत् उन को सिद्ध करें इस अर्थ में सिक्त का प्रमाण संस्कृत में लिखा है सो देख लेना उस का अर्थ यह है (अघातोर्ह्यश्वानादेः) वायु और अग्नि आदि का नाम अश्वि है क्योंकि सब पदार्थों में व्यानरूप करके वायु और विद्युत रूप से अग्नि ये दोनों व्याप्त हो रहे हैं । तथा जल और अग्नि का नाम भी अश्वि है क्योंकि अग्नि ज्योति से युक्त और जल रस से युक्त हो के व्याप्त हो रहा है । (अश्वैः) अर्थात् वे वेगादि गुणों सेभी युक्त हैं । जिन पुरुषों को विमान आदि सवारियों की सिद्धि की इच्छा होवे वायु अग्नि और जल से उन को सिद्ध करें यह और्णवाभ आचार्य का मत है । तथा कई एक ऋषियों का ऐसा मत है कि अग्नि की ज्वाला और पृथिवी का नाम अश्वि है । पृथिवी के विकार काष्ठ और लोहा आदि से कलायंत्र चलाने से भी अनेक प्रकार के वेगादि गुण सवारियों वा अन्य कारीगरियों में किये जाते हैं तथा कई एक विद्वानों का ऐसा मत है कि (अहोरात्रौ) अर्थात् दिन रात्रि का नाम अश्वि है क्योंकि इन से भी सब पदार्थों के संयोग और वियोग होने के कारण से वेग उत्पन्न होते हैं अर्थात् जैसे शरीर और ओषधि आदि में वृद्धि और क्षय होते हैं इसी प्रकार कई एक शिल्प विद्या जानने वाले विद्वानों का ऐसा भी मत है कि (सूर्य्याचंद्रमसौ) सूर्य्य और चंद्रमा को अग्नि कहते हैं क्योंकि सूर्य्य और चंद्रमा के आकर्षणादि गुणों से जगत् के पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग वियोग वृद्धि क्षय आदि शुभ गुण उत्पन्न होते हैं । तथा (नभेरी) और (नुर्फरीसू) ये दोनों पूर्वोक्त अश्वि के नाम हैं (नभेरी) अर्थात् विमान आदि सवारियों के धारण करने वाले और (नुर्फरीसू) अर्थात् कलायंत्रों के हनन से वायु अग्नि जल और पृथिवी के युक्ति पूर्वक प्रयोग से विमान आदि सवारियों का धारण पोषण और वेग होते हैं जैसे घोड़े और बैल चाबुक मारने से शीघ्र चलते हैं वैसे ही कलाकौशल से धारण और वायु आदि को कलाओं करके प्रेरने से सब प्रकार की शिल्प विद्या सिद्ध होती है । (उदस्थाते) अर्थात् वायु अग्नि और जल के प्रयोग से समुद्र में सुख करके गमन हो सकता है ॥ १७ (तिस्रः सपर्यन्) । नासत्या० । जो पूर्वोक्त अश्वि कह आये हैं वे (भुज्युमूहथुः) अनेक प्रकार के भोगों को प्राप्त करते हैं क्योंकि जिन के वेग से तीन तिन रात में (समुद्र०) सागर (अन्तरि०) आकाश और भूमि के पार नौका विमान और रथ करके (अनृक्षरैः०) सुखपूर्वक पार जाने में समर्थ होते हैं (त्रिभिरयैः) अर्थात् पूर्वोक्त तीन प्रकार के वाहनों से गमनागमन

The following books have been received for Daya Nand Saraswati Commemoration Volume:

Sardar Dayalsingh Trustee,	1	Hans Raj Gupta,	1
Shrimati Amrit Kaur,	1	Shanker Dass Kapoor,	1
Narendra Bahadur Singh,	1	Lala Jagat Narain,	1
Shri Ram Sharma,	1	Shri Ram Sharma,	1
Shankar Dayal Sharma,	1	Shri Gopal Singh,	1
Narendra Kumar,	1	Shri Daya Chand Gupta,	1
Kanwar Lal Gupta,	1	Dr. Dharmendra Nath,	1
Shri L. Dharmaraj,	1	Shri Lal Mohan Lal,	1
Shri Jagdish Chand,	1	Shri Ram Lal Kapur Trust,	1
Jamuna Dutt Vaidya,	1	Shri Virendra Kumar,	1
Jagdishwar Vidyalankar,	1	Shri Om Prakash Vaidya,	1
Jagdishwar Arshi,	1	Shri Jagdish Prakash,	1
Balkrishan Virmani,	1	Shri Ram Lal Kohli,	1
Lala Jagat Narain, Shri Lal Bahadur	1	Shri Dharmendra Nath Vanprastha,	1
Shri Lal Mohan,	1	Shri Jagdish Prakash Arya,	1
Shri Bhim Sen Chanana,	1	Shri Ram Lal Kapur Bhawan Trust,	1
Shri Om Prakash,	1	Shri Ram Lal Kohli,	1
Lala Jagat Narain,	1	Shri Jagdish Prakash Arya,	1
Pt. Ram Dev,	1		

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के कतिपय पुस्तकों की सूची ॥

		मूल्य पोस्टेज सहित	साधारण
१	सत्यार्थप्रकाश का	७)	५)
२	ऋग्वेदादिभाष्य का	१५)	८)
३	यजुर्वेदादिभाष्य का	८)	७)

पहले ३ सत्यार्थप्रकाश का पुस्तक बेचने वाले कलकत्ता जी के पास आर्य साहित्य में पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास जिसने केवल जोड़ने वाले लोगों को बेचने का अधिकार दिया है। पंडितों के अलावे अन्य व्यक्ति विशेषतः जो के पास तथा अन्य व्यापारियों को बेचने का अधिकार नहीं है के पास से खरीदें।

संस्था विशेष स्वामी दयानन्द के नाम से और पंडित मुंशीराम जी के नाम से पुस्तकों के व्यापारियों को बेचने की अनुमति नहीं दी है किसी संस्था व्यक्ति विशेष को बेचने के लिए किसी व्यापारी से खरीदने के लिए किसी व्यापारी को अधिकार नहीं है।

व्यापारियों—स्वामी दयानन्द जी के नाम और पुस्तक बेचने के लिए मुंशीराम जी के नाम से खरीदने के लिए।

नोट: जो व्यक्ति संस्था पुस्तकें खरीदें उनको उक्त व्यापारियों से ही खरीदना चाहिए और उन्हें बेचने का अधिकार प्राप्त व्यक्तियों से ही खरीदना चाहिए अन्यथा धोखा में पड़ना पड़ेगा।

REGISTERED No. 16.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्थभाषाभ्यां समन्विता ॥

अस्येकैकस्य प्रतिभाग मूल्यम् आनेत्रयोन्यूनमेकादशानामपि-
पुस्तकानां मूल्यं (८) रूप्यक द्वादशभागाश्च मिलित्वा
चतुर्दश (१४) रूप्यकाणि ॥

इस ग्रंथ के प्रतिभाग एक एक तेरह (१३) मूल्य आनासहित के और
सातभागसहित (१) और सर्वोंका मूल्य ४०)

अस्य ग्रन्थस्य बहवोऽध्येतारो यदा भवेयुस्तदाऽस्माभिर्लाभस्यर्षयोऽध्यर्धा
वा द्वयानन्तरसंख्यकाः स्वामिनः समेषां चतुर्दश मूल्य
त्रयोदश प्रतिभागमेकं प्राप्स्यति ॥

अंक (८)

॥ अथ ग्रंथ आरभ्य लाजरसकपर्यन्तमस्य पत्राणि मुद्रितानि ॥

मुद्रक ।

॥ अस्य ग्रंथस्याधिकारी मालकर्ण अथवा कर्णो मालीरत्न एव लिखितः ॥

लिखित श्री वि. सं. १९४० शाके १८०५ मासे फाल्गुने पर्वणि पंजाब देशे के वजीराबाद नगर के
पंडित श्रीमद् दयानन्द सरस्वती जी निवास करी ।

जिन अन्य विद्यार्थियों के नाम उनके आगे लिखे गये हैं		आगे पढ़ेंगे
सेठ मोतीलाल मालवीय	मध्यप्रदेश गुजरात का	... ... ५४२
सिंहल गंगाप्रसाद	कलकत्ता मद्रास बम्बई गुजरात का	... ५४३
राजा शिवप्रसाद	स्वयं पढ़ेंगे	५४

स्थान के अंक में लेख	पृष्ठ संख्या	नाम पाठक	नाम पाठक		संख्या संख्या	के नाम उत्तर
	४३०	पंडित रामनाथ ...	तांत्रिक कुलतिलक सरिता के गंगा तीर्थ	४	४३२	
	४३२	बाबू रघुनाथ आदि	कह जिसके आगिन जहर पर आदर और उसकीर्ण कलकत्ता तथा तीर्थ गंगातीर्थ तिलिंगाना और लाख जिलनीय	४	४३४	
४ अंक में	४३४	लाला देवीप्रसाद	तिलिंगाना और संगत। सा. दिल्ली मुलमेटा रैण पेशा- ज। आदर नाहरी। ...	४	४३५	
३ अंक में	४३५	बाबू जानकीनाथ गंगानारायण	दशरथ कलकत्ता। तिलिंगाना पेशाब	४	४३५	
आगरा में	४३६	राव राजकुमार ...	प्रकाश, तिलिंगाना कलकत्ता। तिलिंगाना। पेशाब	४		४३७
	४३७	राव रामकुमार ...	रामदेव। कलिंगा कलकत्ता ...	४	४३९	
	४३८	मिस्टर रेवरेण्ड मैरी	सार्वजनिक ने तिलिंगा दान। मैरीनेट, नगर मेरी	४	४३९	
	४४०	मैरी मनोहरलाल ...	मिद्धान्त पुस्तक। पंडित पत्नी।	४	४४१	
	४४१	बाबू रामाधार वाजपेयी ...	पत्नी कलकत्ता ४४ पुस्तकालय ७८- जिस अंक पेट कलेक्- टर तिलिंगाना रामपेठ टीलाल्क तिलकेलवर। गाजीपुर	४	४४३	
	४४२	मुंशी रामसहाय ...	लिए ४४२। मोती तिलंगि- री अंक गया	४	४४३	
६ अंक में	४४४	सार्वजनसभा ...	सार्वजन। पेशाब	४४		४४४
"	४४५	इश्वर रघुनाथ	तिलिंगा सार्वजनिक। सार्वजन। पेशाब	४		४४५
"	४४६	मुंशी भगवान मद्रास	अंक तिलिंगे का तिलिंगा। मद्रास। पेशाब	४		४४६
"	४४७	बाबू सत्यकेतुलाल	तिलिंगाने रामपेठ पुस्तक। पुस्तकालय। पेशाब ...	४		४४७
"	४४८	लाला रामचन्द्र ...	कलेक्टर तीर्थ पुस्तकालय के तिलिंगा। पेशाब ...	४		४४९

करना चाहिये तथा (षड्भ्यः) छः अश्व अर्थात् उन में अग्नि और जल के छः घर बनाने चाहियें जैसे उन यानों से अनेक प्रकार के गमनागमन कर सकें तथा (पतद्भिः) जिन से तीन प्रकार के मार्गों में यथावत् गमन हो सकता है ॥ २ ॥

अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे । यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावं मातस्त्र्यांसम् ॥ ३ ॥ यमश्विना ददथुः श्वेतमश्वं घोषायै शक्रदिष्णुमत्ये । तद्वां दात्रं महि कीर्त्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजीसदमिद्धव्यो अर्यः ॥ ४ ॥ ऋ० अष्ट० १ अ० ८ व० ८ । ९ । मं० ५ । १ । ॥ भाष्यम् ॥

हे मनुष्याः पूर्वोक्ताभ्यां प्रयत्नाभ्यां कृतसिद्धयानैः (अनारम्भणे) आलंबरहिते (अनास्थाने) स्थातुमशक्ये (अग्रभणे) हस्तालंबना विद्यमाने (समुद्रे) समुद्रवदन्तर्व्याप्तो यस्मिन् तस्मिन् जलेन पूर्णे । अंतरिक्षे वा कार्य्यसिद्ध्यर्थं युष्माभिर्गन्तव्यमिति । अश्विना ऊहथुर्भुज्युमिति पूर्वमन्त्रेणेयम् । तद्यानं सम्यक् प्रयुक्ताभ्यां साभ्यामश्विभ्यां (अस्तं) क्षिप्रं चालितं यानं सम्यक् कार्य्यं साधयतीति ॥ कथंभूतां नावं समुद्रे चालयेत् (शतारित्राम्) शतानि अरित्राणि लोहमयानि समुद्रस्थलांतरिक्षमध्ये स्तंभनार्थानि साधयद्दृढार्थानि च भवन्ति यस्यां तां शतारित्रां । एवमेव शतारित्रं भूम्याकाशस्थिमानं प्रतियोजनीयं तथा तदैतन्निर्विघ्नं यानं शतकलं शतबंधनं शतस्तंभनसाधनञ्च रचनीयमिति । तद्यानैः कथंभूतं भुज्युं भोगं प्राप्नुवन्ति ॥ (त्र्यांसं) स्थितिमंतमित्यर्थः ॥ ३ ॥ यदस्मादेवं भोगो जायते तस्मादेवं सर्वमनुष्यैः प्रयत्नः कर्त्तव्यः (यमश्विना०) यं सम्यक् प्रयुक्ताभ्यामग्निजलाभ्यामश्विभ्यां शुक्रघोषे साध्याख्यमश्वं (अघाश्वाय) शीघ्रगमनाय शिल्पविद्याविदो मनुष्याः प्राप्नुवन्ति तमेवाश्वं गृहीत्वा पूर्वोक्तानि यानानि साधयंतीति । (शश्वत्) तानि शश्वन्निरंतरमेव (स्थन) सुखकारकाणि भवंति । तद्यानसिद्धिं (अश्विनाऽददथुः) ददतस्ताभ्यामेवायं गुणो मनुष्यैर्ग्राह्य इति (वाम्) अत्रापि पुरुषव्यत्ययः । तयोरश्विनोर्मध्ये यस्यामश्वं वर्त्तते तस्य कीदृशं (दात्रं) दानयोग्यं सुखकारकत्वात्पोषकं च (महि०) महद्गुणयुक्तम् (कीर्त्तेन्यम्) कीर्तनीयमत्यंतप्रशंसनीयम् । कृत्यार्थैतवैकेनकेन्यत्वन इति केन्य प्रत्ययः अन्येभ्यस्तच्चेष्टोपकारकं । (भूत्) अभूत्

भवतीति अच लडर्थे लुङ्विहित इति वेदम् ॥ स चाभ्याख्यो वाजी वेगवान् (पैङ्गः०) यो यानं मार्गं शीघ्रवेगेन गमयितास्ति पैङ्गलंगावश्वनाम्नौ । निघं० अ० १ खं० १४ । (सदमित्) यः सदं वेगं इत् यति प्राप्नोतीतीदुशोऽश्वो ऽग्निरस्माभिः (हव्यः) ग्राह्योऽस्ति । (अर्यः) समश्वमर्य्यो वैश्यो अश्विग्वनोऽवश्यं गृह्णीयात् ॥ अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः । इति पाणिनिसूत्रात् । अर्य्यो वैश्य स्वामिशाचीति ॥ ४ ॥

चयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्यवेना मनु विश्व इद्विदुः ।
चयः स्कंभासः स्कभितास आरभे चिर्नक्षं याथस्त्रिवंधिना दिवा ॥ ५ ॥

ऋ० अष्ट १ अ० ६ वर्ग ४ मं० । २ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(मधुवाहने) मधुरगतिमतिरथे (चयः पवयः) वज्रतुल्यश्चक्रसमूहाः कलायंत्रयुक्ता दृढाः शीघ्रं गमनार्थे चयः कार्य्याः । तथैव शिल्पिभिः (चयः स्कंभासः) स्तंभनार्थाः स्तम्भास्त्रयः कार्य्याः (स्कभितासः०) किमर्थाः सर्वकलानां स्थापनार्थाः (विश्वे) सर्वे शिल्पिनो विदुवांसः । (सोमस्य) सोमगुणविशिष्टस्य सुखस्य (वेनां) कमनीयां कामनासिद्धिं विदुर्जानन्त्येव ॥ अर्थात् (अश्विना) अश्विभ्यामेवेतद्यानमारब्धुमिच्छेयुः । कुतः तावेवाश्विनौ तदानसिद्धिं (याथः) प्रापयत इति । तत्कीदृशमित्यपेक्षायां (चिर्नक्षम्) (त्रिर्दिवा) त्रिसृभीरात्रिभिस्त्रिभिर्दिनैश्चातिदूरमपि मार्गं गमयतीति बोध्यम् ॥ ५ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(अनारंभणे०) हे मनुष्य लोगो तुम पूर्वोक्त प्रकार से अनारंभण अर्थात् आलंब रहित समुद्र में अपने कार्य्यों की सिद्धि करने योग्य यानों को रचो (तदीरयेथाम्) वे यान पूर्वोक्त अश्विनौ से ही जाने आने के लिये सिद्ध होते हैं (अनास्थाने) अर्थात् जिस आकाश और समुद्र में बिना आलंब से कोई भी नहीं ठहर सकता (अग्रभणे) जिस में हाथ से पकड़ने का आलंब कोई भी नहीं मिल सकता (समुद्रे) ऐसा जो पृथिवी पर जल से पूर्ण समुद्र प्रत्यक्ष है तथा अंतरिक्ष में भी साम्र समुद्र है क्योंकि यह भी सर्वत्र के जल से पूर्ण रहता है उन में किसी प्रकार का आलंबन सिवाय नौका और विमान से नहीं मिल सकता इस से इन यानों को पुरुषार्थ से रच लेवें (यदश्विनाजहतुर्भु०) जो यान वायु आदि अश्वि से रचा जाता है वह उत्तम भोगों को प्राप्त करदेता है क्योंकि (अस्त्रं) जो उन से चलाया जाता है वह पूर्वोक्त समुद्र भूमि और अंतरिक्ष में सब कार्य्यों को सिद्ध करता है (अस्तारिष्टाम्) उन नौकादि सवारियों में बैठकर अरिष्ट अर्थात् जल का पार हो जाने उन

के थांभने और वायु आदि विघ्नों से रक्षाके लिये लोह आदि के लंगर भी रखना चाहिये जिनसे जहां चाहें वहां उन यानों को थांभें इसी प्रकार उन में सैकड़ह जल ईंधन और थांभने के साधन रखने चाहियें इस प्रकार के यानों से (सश्चिदांसम्) स्थिर भोग को मनुष्य लोग प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ (यमश्विना) जो अश्वि अर्थात् अग्नि और जल हैं उन के संयोग से (श्येनमप्त्रं) भाफरूप अश्व अत्यंत वेग देने वाला होता है जिस से कारीगर लोग सवारियों को (अघाय्याय) शीघ्र गमन के लिये वेगयुक्त करदेते हैं जिस वेग की हानि नहीं हो सकती उस को जितना बढ़ाया चाहें उतना बढ़ सकता है (शश्वद्दिस्त-स्थि०) जिन यानों में बैठ के समुद्र और अंतरिक्ष में निरंतर स्वस्ति अर्थात् नित्य सुख बढ़ता है (उदप्रुतः) जो कि वायु अग्नि और जल आदि से वेग गुण उत्पन्न होता है उस को मनुष्य लोग सुविचार से ग्रहण करें (वाम्) यह सामर्थ्य पूर्वोक्त अश्वि संयुक्त पदार्थों ही में है (तत्) सो सामर्थ्य कैसा है कि (दावने) जो दान करने के योग्य (मघि) अर्थात् बड़े २ शुभ गुणों से युक्त (कीर्तेन्यम्) अत्यंत प्रशंसा करने के योग्य और सब मनुष्यों को उपकार करने वाला (भूत्) है क्योंकि वही (पेतुः) अंतरिक्ष मार्ग में शीघ्र चलाने वाला है । (सदमित्) अर्थात् जो अत्यंत वेग से युक्त है (दव्यः) ग्रहण और दान देने के योग्य है (अर्य्यः) वैश्य लोग तथा शिल्प विद्या का स्वामी उस को अवश्य ग्रहण करे क्योंकि इन यानों के विना द्वीपांतर में जाना आना कठिन है । ४ । यह यान किस प्रकार का बनाना चाहिये कि (त्रयः पवयो मधु०) जिस में तीन पहियें हों जिन से वह जल और पृथिवी के ऊपर चलाया जाय और मधुर वेगवाला हो उस के सब अंग वज्र के समान दृढ़ हों जिन में कलायंत्र भी दृढ़ हों जिन से शीघ्र गमन होवे (त्रयः स्कंभासः) उन में तीन २ थंभे ऐसे बनाने चाहियें कि जिन के आधार सब कलायंत्र लगे रहें तथा (स्कभितासः) वे थंभे भी दूसरे काष्ठ वा लोहे के साथ लगे रहें (आरा) जो कि नाभि के समान मध्यकाष्ठ होता है उसी में सब कलायंत्र जुड़े रहते हैं । (त्रिधातु) सब शिल्पि विद्वान् लोग ऐसे यानों को सिद्ध करना अवश्य जानें (सोमस्यैनाम्) जिन से सुन्दर सुख की कामना सिद्ध होती है (रथे) जिस रथ में सब क्रीड़ा सुखों की प्राप्ति होती है (आरभे) उस के आरंभ में अश्वि अर्थात् अग्नि और जल ही मुख्य हैं (त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा) जिन यानों से तीन दिन और तीन रात में द्वीप द्वीपांतर में जा सकते हैं ॥५॥

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् । तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छ-तम् ॥ ६ ॥ ऋ० अष्ट० १ अ० ३ व० ५ मं० ॥ ७ ॥ त्रिरिषे वांदिव-

स्पृशस्पृथो तीर्थे सिन्धूनां रथः । धियोयुयुक्र इन्दवः ॥ ७ ॥ ऋ० अष्ट० १ अ० ६ व० ३४ मं० ८ ॥ विये भाजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः प्रष्टार्यन्तो अच्युता चिदोजसा । मनो जुवो यन्मरुतो रथेष्वा वर्षं व्रातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ८ ॥ ऋ० अ० १ अ० ६ व० ९ मं० ४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

यत्पूर्वोक्तं भूमिसमुद्रान्तरिक्षेषु गमनार्थे यानमुक्तं तत् पुनः कीदृशं कर्त्तव्यमित्यत्राह ॥ (परिविधातु) अयस्तामरजतादि धातुत्रयेण रचनीयम् । इदं कीदृशेन भवतीत्यत्राह । (आत्मेव वातः०) आगमनागमने । यथात्मा मनश्च शीघ्रं गच्छत्यागच्छति तथैव कला प्रेरितौ वाय्वग्नी अश्विनौ रूपाणि त्वरितं गमयत आगमयतश्चेति विज्ञेयमिति संक्षेपतः ॥ ६ ॥ तत् कीदृशं यानमित्यत्राह (अरित्रं) स्तम्भनार्थसाधनयुक्तं (पृथु) अतिविस्तीर्णं । ईदृशः स रथः अग्न्यश्वयुक्तः (सिंधूनाम्) महासमुद्राणां (तीर्थे) तरणे कर्त्तव्ये ऽतीव वेगवान् भवतीति बोध्यम् (धियायु०) तत्र तिसृभिर्रथे (इंद्वः) जलानि वाय्वग्नेरर्थं (युयुक्रे) यथावद्युक्तानि कार्य्याणि । येनातीव शीघ्रगामी स रथः स्यादिति (इन्दवः) इति जलनामसु निघण्टौ वर्गे १२ पठितम् (उन्दे रिक्षादेः) । उणादौ प्रथमे पादे सूत्रम् ॥ ७ ॥ हे मनुष्याः (मनोजुवः) मनोवद्वेगयोः वाय्वग्नेः संयोगकलाकौशलैस्तेषु रथेषु पूर्वोक्तेषु त्रिविधयानेषु यूयम् (अयुग्ध्वम्) तान् यथावद्यो जयत । कथंभूता अग्निवाय्वादयः । (आवृषं व्रातासः) जलसेचनयुक्ताः येषां संयोगे वाय्वग्न्योर्वेगोत्पत्त्या वेगवन्ति तानि यानानि सिद्धयन्तीत्युपदिश्यते ॥ ८ ॥

॥ भाषार्थ ॥

फिर वह सवारी कैसी बनानी चाहिये कि (त्रिभिः अधिनाय०) (पृथिवीमयायतम्) जिस सवारियों से हमारा भूमि जल और आकाश में यथेष्टदिन आनंद से जाना आना बनता है (परिविधातुभि०) वे लोहा तांबा चांदी आदि तीन धातुओं से बनती हैं । और जैसे (रथ्या परावतः०) नगर वा ग्राम की गलियों में झट पट जाना आना बनता है वैसे दूर देश में भी उन सवारियों से शीघ्र २ जाना आना होता है ॥ (नासत्या०) इसी प्रकार क्रिया के निमित्त पूर्वोक्त दो अश्वि हैं उन से बड़े २ कठिन मार्ग में भी सहज से जाना आना करें जैसे (आत्मेव वातः स्व०) मन के वेग के समान शीघ्र गमन के लिये सवारियों से प्रतिदिन सुख से सब भूगोल के बीच जावें

आसे ॥ ६ ॥ (अरित्रं वाम्) जो पृथिवी अरित्र युक्त यान बनते हैं वे (तीर्थे सिन्धूनां रथः) जो रथ बड़े २ समुद्रों के मध्य में भी पार पहुंचाने में श्रेष्ठ होते हैं (द्विअस्त्यु) जो विस्तृत और आकाश तथा समुद्र में जाने आने के लिये अत्यन्त उत्तम होते हैं जो मनुष्य उन रथों में यंत्र सिद्ध करते हैं। वे सुखों को प्राप्त होते हैं (धिया युयुज्र) उन तीन प्रकार के यानों में (इंधनः) काष्ठ वेग के लिये एक जलाशय बनाके उस में जल सेचन करना चाहिये जिससे वह अत्यन्त वेग से चलने वाला यान सिद्ध हो ॥ ७ ॥ (त्रिये आसने०) हे मनुष्य लोगो (मनोजवः) अर्थात् जैसा मन का वेग है वैसे वेग वाले यान सिद्ध करो (यत्सुरथो रथेषु) उन रथों में (प्रवत्) अर्थात् वायु और अग्नि को मनोवेग के समान चलाओ और (आ वृषन्वानासः) उन के योग में जलों का भी स्थापन करो (पृषतीरयुग्ध्वम्) जैसे जल के बाष्प घूमने की कलाओं को वेग वाली कर देते हैं वैसे ही तुम भी उन को सब प्रकार से युक्त करो जो इस प्रकार से प्रयत्न करके सवारी सिद्ध करते हैं वे (त्रिधातवेने) अर्थात् त्रिविध प्रकार भोगों से प्रकाशमान होते हैं और (सुमखाम षष्टिभिः) जो इस प्रकार से इन शिल्प विद्या रूप श्रेष्ठ यज्ञ करने वाले सब भोगों से युक्त होते हैं (अच्युता चिदोजसा०) वे कभी दुखी होके नष्ट नहीं होते और सदा पराक्रम से बढ़ते जाते हैं क्योंकि कलाकौशलता से युक्त वायु और अग्नि आदि पदार्थों की (सृष्टि) अर्थात् कलाओं से (प्रया०) पूर्व स्थान को छोड़ के मनोवेग यानों से आते जाते हैं उन ही से मनुष्यों को सुख भी बढ़ता है इसलिये इन उत्तम यानों को अवश्य सिद्ध करें ॥ ८ ॥

आनो नावामतीनां यातं पाराय गन्तवे। युञ्जाथामश्विना रथम् ॥ ९ ॥ ऋ० अष्ट० १ अ० ३ व० २४ मं० ७ ॥ शुभ्रं नियानं वरयः सुपर्णा अयोदंष्ट्रा ऊर्ज्जयन्तः पतन्ति। तत्रारभध्वं सदनाय हि प्रियमत्रा वः सोमः सुकृतः पपाशते ॥ १० ॥ द्वादशप्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि कउ तच्चिकेत। तस्मिन्त्साकं त्रिशतानशंकवोऽर्पिताः षष्टिर्नचलाचलासः ॥ ११ ॥ ऋ० अष्ट० २ अ० ३ व० २३। २४। मं० ४७। ४८ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

समुद्रे भूमौ चान्तरिक्षे गमनयोग्यमार्गस्य (पाराय) (गन्तवे) गन्तुं यानानि रचनीयानि (नावामतीनाम्) यथा समुद्रगमनवृत्तीनां मेधाविनां नावा नौकया पारं गच्छन्ति तथैव (नः) अस्माकमपि नौरुत्तमा भवेत् (आयुञ्जाथाम०) यथा मेधाविभिरग्निजले आसमन्तादानेषु युज्यते ।

तथास्माभिरपि योजनीये भवतः । सर्वं सर्वेमनुष्यैः समुद्रादीनां पारावारगमनाय पूर्वोक्त यानरचने प्रयत्नः कर्त्तव्य इत्यर्थः ॥ मेधाविनामसु निघण्टौ १७ खण्डे मनस इति पठितम् ॥ ६ ॥ हे मनुष्यः (सुपर्णीः) शोभनपतनशीलाः (हरयः) अश्वादयोऽश्वाः । (अपोवसानाः) जलसेचनाच्छादिता अधस्ताज्ज्वालारूपैः काष्ठैरग्निनाः प्रज्वालिताः कलाकौशलक्रमयुक्ताः कृताश्चेतदा (कृष्णं) पृथिवीविकारमयं (नियानं) निश्चितं यानं (दिवमुत्पत०) द्योतनात्मकमाकाशमुत्पतन्ति । ऊर्द्धं गमयन्तीत्यर्थः ॥ १० ॥ (द्वादशप्रधयः) तेषु यानेषु प्रधयः सर्वकलायुक्तानामराणां धारणार्थाद्वादशकर्त्तव्याः ॥ (चक्रमेकम्) तन्मध्ये सर्वकलाभ्रामणार्थमेकं चक्रं रचनीयम् (त्रीणि नभ्यानि) मध्यस्थानि मध्यावयवधारणार्थानि त्रीण्यित्यन्तानि रचनीयानि तैः (साकं विंशता) त्रीणि शतानि (शंकवोऽर्पिताः) यन्त्रकलारचयित्वा स्थापनीयाः (अचलाचलासः) ता; कलाः चला; चालनार्हाः । अचलाः स्थिरस्थाः (षष्टिः) षष्टिसंख्याकानि कलायंत्राणि स्थापनीयानि । तस्मिन्याने । यत्तदादिविधानं सर्वं कर्त्तव्यम् । (कतमद्विकेत) इत्येतत्कृत्यं को विजानाति (न) नहि सर्वं । इत्यादृग् यत्तद्विषया वेदेषु बहवोऽर्थास्सन्त्य प्रसंगादत्र सर्वे नोल्लिख्यन्ते ॥ ११ ॥

॥ भाषार्थ ॥

हे मनुष्यो (आरोहावतीनाम्) जैसे बुद्धिमान् मनुष्यों के बनाये नाव आदि यानों से (पाराय) समुद्र के पारावार जाने के लिये सुगमता होती है वैसे ही (आ०) (युंजाथाम्) पूर्वोक्त वायु आदि विद्याओं का योग यथावत् करो (रथम्) जिस प्रकार उन यानों से समुद्र के पार और वार में जा सको (नः) हे मनुष्यो आओ आपस में मिल के इस प्रकार के यानों को रचें जिन से सब देश देशान्तर में हमारा जाना आना सर्वत्र हो ॥ ९ ॥ (कृष्णं नि०) अग्नि जलयुक्त (कृष्णं) अर्थात् खिंचने वाला । जो (नियानं) निश्चित यान है उस के (हरयः) वेगादि गुण रूप (सुपर्णीः) अच्छी प्रकार गमन कराने वाले जो पूर्वोक्त अश्वादि पशु हैं वे (अपोवसानाः) जल सेचन युक्त काष्ठ को प्राप्त होके (दिवमुत्पतन्ति०) उस काष्ठ लोहा आदि से बने हुए विमान को आकाश में बड़ा चलते हैं (नभसस्पृ०) वे जब चारों ओर से सदन अर्थात् जल से वेग युक्त होते हैं तब (नभसः) अर्थात् यथार्थ सुख के देने वाले होते हैं (पृथिवीं पृ०) जब जल कलाओं के द्वारा पृथिवी जल से युक्त किई जाती है तब उससे उत्तम २ भोग प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ (द्वादश प्रधयः) इन यानों के बाहर भी धुरे रखने चाहियें जिन में सब कलायंत्र लगाये जायें (चक्रमेकम्) उन में एक चक्र बनाना चाहिये

जिस के घुमाने से सब कला घूमें (चीणि नभ्यानि०) फिर उस के मध्य में तीन चक्र रखने चाहियें कि एक के चलाने से सब एक जायं दूसरे के चलाने से आगे चलें और तीसरे के चलाने से पीछे चलें (तस्मिन् साकं त्रिशता०) उन में तीन २ सौ (शंकवः) बड़ी २ कीलें अर्थात् पेंच लगाने चाहियें कि जिन से उन के सब अंग जुड़ जायं और उन के निकालने से सब अलग २ हो जायं (षष्टिर्नेचला चलासः) उन में ६० साठ कलायंत्र रचने चाहियें कहीं एक चलते रहें और कुछ बंद रहें अर्थात् जब विमान को ऊपर चढ़ाना हो तब भाफ घर के ऊपर के मुख बंद रखने चाहियें और जब ऊपर से नीचे उतारना हो तब ऊपर के मुख अनुमान से खोल देना चाहिये ऐसे ही जब पूर्व को चलाना हो तो पूर्व के बंद करके पश्चिम के खोलने चाहियें और जो पश्चिम को चलाना हो तो पश्चिम के बंद करके पूर्व के खोल देने चाहियें इसी प्रकार उत्तर दक्षिण में भी जान लेना (न) उन में किसी प्रकार की भूल न रहनी चाहिये (कदाचिदेतत्) इस महा गंभीर शिल्प विद्या को सब साधारण लोग नहीं जान सकते किंतु जो महा विद्वान् हस्त क्रिया में चतुर और पुरुषार्थी लोग हैं वेही सिद्ध कर सकते हैं इस विषय के वेदों में बहुत मंत्र हैं परंतु यहां थोड़ा ही लिखने में बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे ॥ ११ ॥ इति नौविमानादिविद्याविषयः संक्षेपतः ॥

॥ अथ तारविद्यामूलं संक्षेपतः ॥

युवं पेदवे पुरुतारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासुदुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥ ८ ॥ ऋ० अष्ट० १ अ० ८ व० २१ मं० १० ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(अस्यामि०) अस्मिन् मंत्रे तारविद्याबीजं प्रकाश्यत इति हे मनुष्या (अश्विना०) अश्विनौगुणयुक्तं (पुरुतारं) बहुभिर्विद्वद्भिः स्वीकर्त्तव्यम् बहूत्तमगुणयुक्तम् ॥ (श्वेतं) अग्निगुणविद्युन्मयं शुद्धधातुनिर्मितम् । (अभिद्युं) प्राप्त विद्युत्प्रकाशम् । (पृतनासुदुष्टरं) राजसेनाकार्य्येषु दुस्तरं प्रधिषितुमशक्यं (चर्कृत्यं) बारंबारं सर्वक्रियासु योजनीयम् । (तरुतारं०) तारारूपं यंत्रं यूयं कुरुत । कथंभूतैर्गुणैर्युक्तं (शर्यैः) पुनः पुनर्हननप्रेरणगुणैर्युक्तम् । कस्मै प्रयोजनाय (पेदवे) परमोत्तमव्यवहारसिद्धिप्राप्तये । पुनः कथंभूतं (स्पृधां) स्पर्द्धमानानां शत्रूणां पराजयाय स्वकीयानां वीराणां विजयाय च परमोत्तमम् । पुनः कथंभूतं (चर्षणीसहम्०) मनुष्यसेनायाः कार्यसहनशीलम् पुनः कथंभूतं (इन्द्रमिव०) सूर्यवत्

दूरस्थमपि व्यवहारप्रकाशनसमर्थं (युवं) युवामश्विनौ (दुष्टस्यधः) पुरुषव्यात्ययेन पृथिवीविद्युद्ध्याख्याभ्यामश्विनौ सम्यक् साधयित्वा सनाराय्यं यंत्रं नित्यंसेवध्वमिति बोध्यम् ॥ ८ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(युवं पेदवे०) अपि पा० इस मंत्र से तारविद्या का मूल जानना चाहिये पृथिवी से उत्पन्न धातु तथा काष्ठादि के यंत्र और विद्युत् अर्थात् बिजली इन दोनों के प्रयोग से तारविद्या सिद्ध होती है क्योंकि (द्यावापृथिव्यारित्येके०) इस निरुक्त के प्रमाण से इन का अश्वि नाम जान लेना चाहिये (पेदवे) अर्थात् वह अत्यंत शीघ्र गमनागमन का हेतु होता है (पुरुभुजम्) अर्थात् इस तारविद्या से बहुत उत्तम व्यवहारों के फलों को मनुष्य लोग प्राप्त होते हैं (शर्धाय) अर्थात् लड़ाई करने वाले जो राजपुरुष हैं उन के लिये यह तारविद्या अत्यंत हितकारी है (शंतन०) यह तार शुद्ध धातुओं का होना चाहिये (अभिद्युभ) और विद्युत् प्रकाश से युक्त करना चाहिये (पृतनासु दुष्टरम्) सब सेनाओं के बीच में जिस का दुःसह प्रकाश होना और बलयुक्त करना अशक्य है (चर्कृत्यम्) जो सब क्रियाओं के बारंबार चलाने के लिये योग्य होता है (शर्ध्यः) अनेक प्रकार कलाओं के चलाने से अनेक उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये विद्युत् की उत्पत्ति करके उस का साधन करना चाहिये (तक्तारम्) जो इस प्रकार का तारराज्य यंत्र है उस को सिद्ध करके प्रीति से सेवन करो किस प्रयोजन के लिये (पेदवे०) परम उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिये तथा दुष्ट शत्रुओं के पराजय और श्रेष्ठ पुरुषों के विजय के लिये तारविद्या सिद्ध करनी चाहिये (सर्वसेनासह०) जो मनुष्यों की सेना के युद्धादि अनेक कार्यों को सहन करने वाला है (इन्द्रमिव०) जैसे समीप और दूरस्थ पदार्थों का प्रकाश सूर्य्य करता है वैसे तार यंत्र से भी दूर और समीप के सब व्यवहारों का प्रकाश होता है (युवं०) (दुष्टस्यधः) यह सायंच पूर्वोक्त अश्वि के गुणों ही से सिद्ध होता है इस को बड़े प्रयत्न से सिद्ध करके सेवन करना चाहिये इस मंत्र में पुरुष व्यत्यय पूर्वोक्त नियम से हुआ है अर्थात् मध्यम पुरुष के स्थान में प्रथम पुरुष समझना चाहिये ॥ १ ॥ इति तारविद्यामूलं संक्षेपतः ॥

॥ अथ वैद्यकशास्त्रमूलोद्देशः संक्षेपतः ॥

सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ॥ १ ॥ य० अ० ६ मं० २२ ॥

॥ भाष्यम् ॥

अस्यामिप्रायार्थः । इदं वैद्यकशास्त्रस्यायुर्वेदस्य मूलमस्ति । हे

परमवेदोक्तेश्वर भवत्कृपया (नः) अस्मभ्यं (ओषधयः) सोमाद्याः (सुमिषिया) अत्र (इया, डियाजीकारागामुपसंख्यानम्) इति वार्त्तिकेन जसः-स्थाने (डियाच्) इत्यादेशः सुमिषाः सुखप्रदारोगनाशकाः सन्तु यथावद्विज्ञाताश्च । तथैव (आपः) प्राणाः सुमिषाः सन्तु । तथा (योस्मान्द्वेष्टि) योऽधर्मात्मा कामक्रोधादिर्वा रोगश्च विरोधी भवति (यंच वयं द्विष्मः) यमधर्मात्मानं रोगं च वयं द्विष्मः (तस्मै०) दुर्मिषिणा दुःखप्रदा विरोधिन्यः सन्तु । अर्थात् ये सुपथ्यकारिणस्तेभ्य ओषधयोमिषवत् दुःखनाशिका भवन्ति । तथैव कुपथ्यकारिभ्यो मनुष्येभ्यश्च यमवत् दुःखाय भवन्तीति । यत्र वैद्यकशास्त्रस्य मूलार्थविधायकावेदेषु बहवो मन्त्राः सन्ति प्रसंगात्तथाऽत्र लिख्यन्ते । यच्च यच्च ते मन्त्राः सन्ति तत्र तत्रैव तेषामर्थान्यथावदुदा हरिष्यामः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(सुमिषियान०) हे परमेश्वर आप की कृपा से (आपः) अर्थात् जो प्राण और जल आदि पदार्थ तथा (ओषधयः) सोमलता आदि सब ओषधी (नः) हमारे लिये (सुमिषियाः) (सन्तु) सुखकारक हों तथा (दुर्मिषिया) जो दुष्ट, प्रमादी, हमारे द्वेषी लोग हैं और हम जिन दुष्टों से द्वेष करते हैं उन के लिये विरोधिनी हों ॥ क्योंकि जो धर्मात्मा और पथ्य के करने वाले मनुष्य हैं उन को ईश्वर के रचे सब पदार्थ सुख देने वाले होते हैं और जो कुपथ्य करने वाले तथा पापी हैं उन के लिये सदा दुःख देने वाले होते हैं इत्यादि मंत्र वैद्यक विद्या के मूल के प्रकाश करनेवाले हैं ॥ इति वैद्यक विद्याविषयः संक्षेपतः ॥

॥ अथ पुनर्जन्मविषयः संक्षेपतः ॥

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिहनो धेहि भोगम् । ज्योक्पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमतेसृडयानः स्वस्ति ॥ १ ॥ पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौर्देवी पुनरन्तरिक्षम् । पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यांऽइया स्वस्तिः ॥ २ ॥ ऋ० अ० ८ अ० १ व० २१ मं० ६ । ७ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

यतियामभि० । एतदादिमंत्रेश्वर पूर्वजन्मानि पुनर्जन्मानि च प्रकाश्यन्तेऽस्ति (असुनीते०) असवः प्राणा नीयन्ते येन सोऽसुनीतिस्तत्संबुद्धौ हे असुनीते ईश्वर मरणानन्तरं द्वितीयशरीरधारणे वयं सदा सुखिनो भवेम (पुनरस्मा०) अर्थात्सदा वयं पूर्वं शरीरं त्यक्त्वा द्वितीयशरीरधारणं

कुर्मस्तदा (चक्षुः) चक्षुरित्युपलक्षणमिन्द्रियाणाम् ॥ पुनर्जन्मनि सर्वाणीन्द्रियाण्यस्मासु धेहि (पुनः प्राणमि०) प्राणमिति वायोरन्तःकरणस्योपलक्षणम् । पुनर्द्वितीयजन्मनि प्राणमन्तःकरणं च धेहि । यं हे भगवन्पुनर्जन्मसु (नः) अस्माकं (भोगं) भोगपदार्थान् (व्येषु) निरन्तरमस्मासु धेहि । यतो वयं सर्वेषु जन्मसु (उत्तरन्तं) सूर्य्यं श्वासप्रश्वासात्मकं प्राणं प्रकाशमयं सूर्य्यलोकं च निरन्तरं पश्येम (अनुमते) हे अनुमन्तः परमेश्वर (नः) अस्मान्सर्वेषु जन्मसु (मृडय) सुखय भवत्कृपया पुनर्जन्मसु (स्वस्ति) सुखमेव भवेदिति प्रार्थ्यते ॥ १ ॥ (पुनर्नः) हे भगवन् भवदनुग्रहेण (नः) अस्मभ्यं (असुं) प्राणमक्षमयं बलं च (पृथिवी पुनर्ददातु) तथा (पुनर्द्यौः०) पुनर्जन्मनि द्यौर्दीप्तिमाना सूर्य्यज्योतिरसुं ददातु (पुनरन्तरिक्षं) तथाऽन्तरिक्षं पुनर्जन्मन्यसुं जीवनं ददातु (पुनर्नः सोमस्त०) तथा सोमओषधिसमूहश्चन्द्रोरसः पुनर्जन्मनि तन्वं शरीरं ददातु (पुनः पूषा०) हे परमेश्वर पुष्टिकर्त्ता भवान् (पथ्यां) पुनर्जन्मनि धर्ममार्गे ददातु तथा सर्वेषु जन्मसु (यास्वस्तिः) सा भवत्कृपया नोऽस्मभ्यं सदैव भवस्त्विति प्रार्थ्यते भवान् ॥ २ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(असुनीते) हे सुखदायक परमेश्वर आप (पुनरस्मासु चक्षुः) कृपा करके पुनर्जन्म में हमारे जीव में उत्तम नेत्र आदि सब इन्द्रियों को स्थापन कीजिये तथा (पुनः प्राणं०) प्राण अर्थात् मन बुद्धि चित्त अहंकार बल पराक्रम आदि युक्त शरीर पुनर्जन्म में कीजिये (रयिं नो धेहि भोगं०) हे जगदीश्वर इस संसार अर्थात् इस जन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम २ भोगों को प्राप्त हों तथा (व्येषं पश्येम सूर्य्यमुच्चरंतम्) हे भगवन् आप की कृपा से सूर्य्यलोक, प्राण, और आप को विज्ञान तथा प्रेम से सदा देखते रहें (अनुमते मृडयानः स्वस्ति) हे अनुमते सब को मान देने हारे सब जन्मों में हम लोगों को मृडय सुखी रखिये जिस से हम लोगों को स्वस्ति अर्थात् कल्याण हो ॥ १ ॥ (पुनर्नः असुं पृथिवी ददातु पु०) हे सर्वशक्तिमान आप के अनुग्रह से हमारे लिये बारंबार पृथिवी प्राण को प्रकाश चक्षु को और अंतरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें (पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु) पुनर्जन्म में सोम अर्थात् ओषधियों का रस हम को उत्तम शरीर देने में अनुकूल रहे तथा (पूषा०) पुष्टि करने वाला परमेश्वर कृपा करके सब जन्मों में हम को सब दुःख निवारण करने वाली पथ्य रूप स्वस्ति को देवे ॥ २ ॥

पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन्पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन्पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन् । वैश्वानरो अदब्धस्तनूपा अग्निर्नः

पातु दुरितादवद्यात् ॥ ३ ॥ यजु० अ० ४ मं० १५ ॥ पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणंच । पुनरग्नयो धिष्ण्या यथास्थाम कल्पन्तामिहैव ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० ७ अनु० ६ व० ६७ मं० १ ॥ आयो धर्माणि प्रथमः ससाद ततो वपूंषि कृणुषेपुरूणि । धास्युर्योनिं प्रथम आविवेशायो वाचमनुदितां चिकेत ॥ ५ ॥ अथर्व० कां० ५ अनु० १ व० १ मं० २ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(पुनर्मनः पु०) हे जगदीश्वर भवदनुग्रहेण विद्यादिशुभगुणयुक्तं मन आयुश्च (मे) मह्यमागन्पुनः पुनर्जन्मसु प्राप्नुयात् (पुनरात्मा) पुनर्जन्मनि मदात्मा विचारः शुद्धः सन् प्राप्नुयात् (पुनश्चक्षुः) चक्षुः श्रोत्रं च मह्यं प्राप्नुयात् (वैश्वानरः) यः सकलस्य जगतो नयनकर्त्ता (अदब्धः) दम्भादिदोषरहितः (तनूपाः) शरीरादिरक्षकः (अग्निः) विज्ञानानन्दस्वरूपः परमेश्वरः (पातु दुरि०) जन्मजन्मान्तरे दुष्टकर्मभ्योस्मान् पृथक्कृत्य पातु रक्षतु येन वयं निष्पापा भूत्वा सर्वेषु जन्मसु सुखिनो भवेम ॥ ३ ॥ (पुनर्म०) हे भगवन्पुनर्जन्मनीन्द्रियमश्चात्सर्वेणेन्द्रियगणयुक्तो प्राणधारको जीवः (द्रविणं) विद्यादिशुभधनं (ब्राह्मणं च) ब्रह्मनिष्ठात्वं (पुनरग्नयः) मनुष्यशरीरं धारयित्वा ऽऽहवनीयाद्यग्न्याधानकरणं (मैतु) पुनः पुनर्जन्मस्वेतानि मामागच्छन्तु (धिष्ण्या यथास्याम) हे जगदीश्वर वयं यथा येन प्रकारेण पूर्वेषु जन्मसु धिष्ण्या धारणशक्त्याधिया सेतमशरीरेन्द्रिया आस्याम तथैवेहास्मिन्संसारे पुनर्जन्मनि बुध्या सह स्वस्वकार्य्यकरणे समर्था भवेम येन वयं केनापि करणेन न कदाचिद्विकला भवेम ॥ ४ ॥ (आयो-ध०) योऽयं जीवः (प्रथमः) पूर्वजन्मनि (धर्माणि) यादृशानि धर्मकार्य्याणि (आससाद) कृतवानस्ति स (ततो वपूंषि०) तस्माद्धर्मकरणाद्बहून्युत्तमानि शरीराणि पुनर्जन्मनि कृणुषे धारयति । यदं यश्चाधर्मकृत्यानि चकार स नैव पुनः पुनर्मनुष्यशरीराणि प्राप्नोति किं तु पश्वादीनि हि शरीराणि धारयित्वा दुःखानि भुंक्ते ॥ इदमेव मन्त्रार्धेनेश्वरो ज्ञापयति (धास्युर्योनिं०) धास्यतीति धास्युरर्थात् पूर्वजन्मकृतपापपुण्यफलभोगशीलो जीवात्मा (प्रथमः) पूर्वं देहं त्यक्त्वा वायुजलौषध्यादिपदार्थान् (आविवेश) प्रविश्य पुनः कृतपापपुण्यानुसारिणीं योनिमाविवेश प्रविशतीत्यर्थः । (यो वाचम०) योऽयं जीवोऽनुदितामीश्वरोक्तां वेदवाणीं आप्तमंतात् विदित्वा

धर्ममाचरति स पूर्ववद्दिव्यशरीरं धृत्वा सुखमेव भुंक्ते । तद्विपरीता चरणस्त्वित्यूर्ध्वदेहं धृत्वा दुःखभागी भवतीति विज्ञेयम् ॥ ५ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(पुनर्मनः पुनरात्मा) हे सर्वज्ञ ईश्वर जब २ हम जन्म लेवें तब २ हम को शुद्ध मन, पूर्ण आयु, आरोग्यता, प्राण, कुशलतायुक्त जीवात्मा, उत्तम चक्षु, और श्रोत्र, प्राप्त हों (वैश्वानरोऽदब्धः) जो विश्व में विराजमान ईश्वर है वह सब जन्मों में हमारे शरीरों का पालन करे (अग्निनः) सब पापों के नाश करने वाले आप हम को (पातु दुरितादवद्यात्) बुरे कामों और सब दुःखों से पृथक् जन्म में अलग रक्खें ॥ ३ ॥ (पुनर्मैत्विन्द्रियम्) हे जगदीश्वर आप की कृपा से पुनर्जन्म में मन आदि ग्यारह इन्द्रिय मुझ को प्राप्त हों अर्थात् सर्वदा मनुष्यदेह ही प्राप्त होता रहे (पुनरात्मा) अर्थात् प्राणों को धारण करने हारा सामर्थ्य मुझ को प्राप्त होता रहे जिस से दूसरे जन्म में भी हम लोग सौ वर्ष वा अधिक आचरण से अधिक भी जीवें (द्रविणं) सत्य सत्यविद्यादि श्रेष्ठ धन भी पुनर्जन्म में प्राप्त होते रहें (ब्राह्मणो व्य०) और सदा के लिये ब्रह्म जो वेद है उस का व्याख्यानसहित विज्ञान तथा आपही में हमारी निष्ठा बनी रहे (पुनरग्नयः) तथा सब जगत् के उपकार के अर्थ हम लोग अग्निहोत्रादि यज्ञ को करते रहें (धिष्ण्या यथास्थाम) हे जगदीश्वर हम लोग जैसे पूर्वजन्मों में शुभ गुण धारण करनेवाली बुद्धि से उत्तम शरीर और इन्द्रिय सहित थे वैसे ही इस संसार में पुनर्जन्म में भी बुद्धि के साथ मनुष्यदेह के धारण करने में समर्थ हों ये सब शुद्ध बुद्धि के साथ (मैनु) मुझ को यथावत् प्राप्त हों (वसैव) जिस से हम लोग इस संसार में मनुष्यजन्म को धारण करके धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सदा सिद्ध करें और इस सामग्री से आप की भक्ति को प्रेम से सदा किया करें जिस कर के किसी जन्म में हम को कभी दुःख प्राप्त न हो ॥ ४ ॥ (आयो धर्माणि०) जो मनुष्य पूर्वजन्म में धर्माचरण करता है (सतो बन्धूँरुत कृणुते पुरुत्रा) उस धर्माचरण के फल से अनेक उत्तम शरीरों को धारण करता और अधर्मात्मा मनुष्य नीच शरीर को प्राप्त होता है (पाशुर्यानि०) जो पूर्वजन्म में किए हुए पाप पुण्य के फलों को भोग करने के स्वभाव युक्त जीवात्मा है वह पूर्व शरीर को छोड़ के वायु के साथ रहता है (पुनः०) जल ओषधि वा प्राण आदि में प्रवेश करके वीर्य्य में प्रवेश करता है तदनन्तर योनि अर्थात् गर्भाशय में स्थित होके पुनः जन्म लेता है (यो ब्राह्मणमुदिसां चिकेत) जो जीव अनुदित वाणी अर्थात् जैसी ईश्वर ने वेदों में सत्यभाषण करने की आज्ञा दी है वैसा ही (आचिकेत) यथावत् जान के बोलता है और धर्म ही में (ससाद) यथावत् स्थित रहता है वह मनुष्ययोनि में उत्तम शरीर धारण करके अनेक सुखों को भोगता है और जो अधर्माचरण करता है वह अनेक नीच शरीर अर्थात् कीट पतंग पशु आदि को धारण करके अनेक दुःखों को भोगता है ॥ ५ ॥

द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुतमर्त्यानाम् । ताभ्यमिदं विश्वमेजत्समेतियदन्तरा पितरं मातरं च ॥ ६ ॥ य० अ० १९ मं० ४७ ॥ मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः । नानायोनि सहस्राणि मयोषितानि यानिवै ॥ १ ॥ आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधास्तनाः । मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥ २ ॥ अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुर्योनौ समन्वितः ॥ निरु० अ० १३ खं० १९ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(द्वे सृती०) अस्मिन्संसारे पापपुण्यफलभोगाय द्वौमार्गौस्तः । एकः पितॄणां ज्ञानिनां देवानां विदुषां च द्वितीयः (मर्त्यानां) विद्याविज्ञानरहितानां मनुष्याणाम् । तयोरेकः पितृयानोद्वितीयोदेवयानश्चेति यत्र जीवोमातापितृभ्यां देहं धृत्वा पापपुण्यफले सुखदुःखे पुनःपुनर्भुंक्ते । अर्थात् पूर्वापरजन्मानि च धारयति सा पितृयानाख्यासृतिरस्ति । तथा यत्र मोक्षाख्यंपदं लब्ध्वा जन्ममरणाख्यात्संसाराद्विमुच्यते सा द्वितीया सृतिर्भवति । तत्र प्रथमायां सृतौ पुण्यसंचयफलं भुक्त्वा पुनर्जायते म्रियते च । द्वितीयायां च सृतौ पुनर्न जायते न म्रियते चेत्यहमेवंभूते द्वे सृती (अश्रृणवं) श्रुतवानस्मि । (ताभ्यामिदं विश्व०) पूर्वोक्ताभ्यां द्वाभ्यां मार्गाभ्यां सर्वं चगत् (एजत्समेति०) कम्पमानं गमनागमने समेति सम्यक् प्राप्नोति (यदन्तरा पितरं मातरं च) यदा जीवः पूर्वं शरीरं त्यक्त्वा वायुजलोषध्यादिषु भ्रमित्वा पितृशरीरं मातृशरीरं वा प्रविश्य पुनर्जन्म प्राप्नोति तदा समशरीरो जीवो भवतीति विज्ञेयम् । ६ । अत्र मृतश्चाहं पुनर्जातश्चत्यादिनिरुक्तकारैरपि पुनर्जन्मधारणमुक्तमिति बोध्यम् ॥ ७ ॥

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथा ऽभिरूढोऽभिनिवेशः ॥ ८ ॥ पात० अ० १ पा० २ सू० ९ ॥ पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ॥ ९ ॥ न्या० अ० १ आ० १ सू० १९ ॥

(स्वरस०) योगशास्त्रे पतंजलिमहामुनिना तदुपरि भाष्यकर्त्रावेदव्यासेन च पुनर्जन्म सद्भावः प्रतिपादितः । या सर्वेषु प्राणिषु जन्मारभ्यमरणपर्यन्ताख्याप्रवृत्तिर्दृश्यते तया पूर्वापरजन्मानि भवन्तीति विज्ञायते । कुतः । जातमात्रकृमिरपि मरणभयमनुभवति । तथा विदुषोप्यनुभवो भवती-

त्यतः । जीवेनानेकानिशरीराणि धार्य्यन्ते । यदि पूर्वजन्मनि मरणानुभवो न भवेदुतर्हि तत्संस्कारोपि न स्यान्नैव संस्कारेणविना स्मृतिर्भवति स्मृत्याविना मरणत्रासः कथं जायेत । कुतः । प्राणिमात्रस्य मरणभयदर्शनात्पूर्वोपरजन्मानि भवन्तीति वेदितव्यम् ॥ ८ ॥ (पुनरु०) तथा महर्षिकुणा गोतमेनापिणा न्यायदर्शने तद्भाष्यकर्त्रा वात्स्यायनेनापि पुनर्जन्मभावोमतः यत्पूर्वशरीरं त्यक्त्वा पुनर्द्वितीयशरीरधारणं भवति तत्प्रेत्यभावाख्यःपदार्थो भवतीति विज्ञेयम् । प्रेत्याथोन्मरणं प्राप्यभावोऽर्थात्पुनर्जन्मधृत्वा जीवो देहवान् भवतीत्यर्थः ॥ ९ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(द्वे सृती०) इस संसार में हम दो प्रकार के जन्मों को (शश्वत्सम्) सुनते हैं एक मनुष्य शरीर का धारण करना और दूसरा नीचगति से पशु, पक्षि कीट, पतंग, वृक्ष, आदि का होना इन में मनुष्य शरीर के तीन भेद हैं एक पितृ अर्थात् ज्ञानी होना दूसरा देव अर्थात् सब विद्याओं को पढ़के विद्वान् होना तीसरा मर्त्य अर्थात् साधारण मनुष्य शरीर का धारण करना इन में प्रथम गति अर्थात् मनुष्य शरीर पुण्यात्माओं और पुण्य पाप तुल्यफलों को होता है और दूसरा तो जीव अधिक पाप करते हैं उन के लिये है (ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति०) इन्हीं भेदों से सब जगत् के जीव अपने २ पुण्य और पापों के फल भोग रहे हैं (यदन्तरा पितरं मातरं च) जीवों को माता और पिता के शरीर में प्रवेश करके जन्मधारण करना, पुनः शरीर को छोड़ना, फिर जन्म को प्राप्त होना, बारंबार होता है॥ जैसा वेदों में पूर्वापर जन्म के धारण करने का विधान किया है वैसा ही निरुक्तकार ने भी प्रतिपादन किया है जब मनुष्य को ज्ञान होता है तब वह ठीक २ जानता है कि (मृतश्चाहं पु०) मैंने अनेक बार जन्म मरण को प्राप्त होकर नाना प्रकार के हजारहू गर्भाशयों का सेवन किया ॥ १ ॥ (आहाराव्रि०) अनेक प्रकार के भोजन किये अनेक माताओं के स्तनों का दुग्ध पिया अनेक माता पिता और सुहृदों को देखा ॥ २ ॥ (अवाक्शिरः) मैंने गर्भ में नीचे मुख ऊपर पग इत्यादि नाना प्रकार की पीड़ाओं से युक्त होके अनेक जन्म धारण किये परंतु अब इन महा दुःखों से तभी छूटूंगा कि जब परमेश्वर में पूर्ण प्रेम और उस की आज्ञा का पालन करूंगा नहीं तो इस जन्ममरणरूप दुःखसागर के पार जाना कभी नहीं होसक्ता ॥ तथा योगशास्त्र में भी पुनर्जन्म का विधान किया है (स्वरस०) (सर्वस्य प्रा०) हर एक प्राणियों की यह इच्छा नित्य देखने में आती है कि (भूयासमिति) अर्थात् मैं सदैव सुखी बनारहूं मरूं नहीं यह इच्छा कोई भी नहीं करता कि (मानभूवं) अर्थात् मैं न होऊं ऐसी इच्छा पूर्वजन्म के अभाव से कभी नहीं हो सकती यह अभिनिवेश क्लेश कहलाता है जो कि कृमि पर्यंत को भी मरण का भय बराबर होता है यह व्यवहार

पूर्वजन्म की सिद्धि को जनाता है ॥ तथा न्यायदर्शन के (पुनरु०) सू० । और इसी के वात्स्या० भा० । में भी कहा है कि जो उत्पन्न अर्थात् किसी शरीर को धारण करता है वह मरण अर्थात् शरीर को छोड़ के पुनरुत्पन्न दूसरे शरीर को भी अवश्य प्राप्त होता है इस प्रकार मरके पुनर्जन्म लेने को प्रेत्यभाव कहते हैं ॥ ९ ॥ भाष्यम् ॥

अत्र केचिदेकजन्मवादिनो वदन्ति यदि पूर्वजन्मासीत्तर्हि तत्स्मरणं कुतो न भवतीत्यस्य भ्रमः । भो ज्ञाननेत्रमुद्घाट्य द्रष्टव्यमस्मिन्नेव शरीरे जन्मतः पंचवर्षपर्य्यन्तं यद्यत्सुखं दुःखं न भवति यच्च जागरितावस्थास्थानां सर्वव्यवहाराणां सुषुप्तावस्थायांच । सदनुभूतस्मरणं न भवति पूर्वजन्मकृतस्मरणस्य तु का कथा । (प्रश्नः) यदि पूर्वजन्मकृतयोः पापपुण्ययोः सुखदुःखफलेशेश्वरो ऽस्मिन् जन्मनि ददाति तयोश्चास्माकं साक्षात्काराभावान्नो ऽन्यायकारी भवति नातो ऽस्माकं शुद्धिश्चेति । अत्र भ्रमः । द्विविधं ज्ञानं भवत्येकं प्रत्यक्षं द्वितीयमानुमानिकं च । यथाकस्यचिद्वैद्यस्याऽवैद्यस्य च शरीरे ज्वरावेशो भवेत्तत्र खलु वैद्यस्तु विद्यया कार्य्यकारणसंगत्यनुमानतो ज्वरनिदानं जानाति नापरश्च परंतु वैद्यकविद्यारहितस्यापि ज्वरस्य प्रत्यक्षत्वात् किमपि मया कुपथ्यं पूर्वं कृतमिति जानासि विनाकारणेन कार्य्यं नैव भवतीति दर्शनात् । तथैव न्यायकारीश्वरोपि विना पापपुण्याभ्यां न कस्मैचित्सुखं दुःखं च दातुं शक्नोति संसारे नीचोच्चसुखिदुःखिदर्शनाद्विज्ञायते पूर्वजन्मकृते पापपुण्ये बभूवतुरिति । अथैकजन्मवादिनामन्येऽपि दृशाः प्रश्नाः सन्ति तेषां विचारेणोत्तराणि देयानि किंचनबुद्धिमतः प्रत्यक्षलेखनं योग्यं भवति तेष्वुद्वेगमाधेयाधिक्यं जानन्ति यन्योपि भूयान्न भवेदिति मत्वा ऽधिकं नोल्लिख्यते ॥ ॥ भाषार्थ ॥

इस में अनेक मनुष्य ऐसा प्रश्न करते हैं कि जो पूर्व जन्म होता है तो हम को उस का ज्ञान इस जन्म में क्यों नहीं होता (उत्तर) आंख खोल के देखो कि जब इसी जन्म में जो २ सुख दुःख तुमने बाल्यावस्था में अर्थात् जन्म से पांचवर्ष पर्यन्त पाये हैं उन का ज्ञान नहीं रहता परन्तु जो कि नित्य पठन पाठन और व्यवहार करते हैं उनमें से भी कितनी ही बातें भूल जाते हैं तथा निद्रा में भी यही हाल हो जाता है कि अब के किये का भी ज्ञान नहीं रहता जब इसी जन्म के व्यवहारों को इसी शरीर में भूल जाते हैं तो पूर्व शरीर के व्यवहारों का कब ज्ञान रह सकता है तथा ऐसा भी प्रश्न करते हैं कि जब हम को पूर्व जन्म के पाप पुण्य का ज्ञान नहीं होता और ईश्वर उन का फल सुख वा दुःख देता है इस से ईश्वर का न्याय वा जीवों का सुधार भी नहीं हो सकता (उत्तर) ज्ञान दो प्रकार का होता है एक प्रत्यक्ष दूसरा

अनुमानादि से जैसे एक वैद्य और दूसरा अवैद्य इन दोनों को ज्वर आने से वैद्य तो रस का पूर्व निदान जान लेता है और दूसरा नहीं जान सकता परंतु उस पूर्व कुपथ्य का कार्य्य तो ज्वर है यह दोनों को प्रत्यक्ष होने से वे जान लेते हैं कि किसी कुपथ्य से यह ज्वर हुआ है अन्यथा नहीं इस में इतना विशेष है कि विद्वान् ठीक २ रोग के कारण और कार्य्य को निश्चय करके जानता है और यह अविद्वान् कार्य्य को तो ठीक २ जानता है परंतु कारण में उस को यथावत् निश्चय नहीं होता वैसे ही ईश्वर न्यायकारी होने से किसी को विना कारण से सुख वा दुःख कभी नहीं देता जब हम को पुण्य पाप का कार्य्य सुख और दुःख प्राप्त है तब हमको ठीक निश्चय होता है कि पूर्व जन्म के पाप पुण्यों के विना उत्तम मध्यम और नीच शरीर तथा सुखादि पदार्थ कभी नहीं मिल सकते इससे हम लोग निश्चय करके जानते हैं कि ईश्वर का न्याय और हमारा सुधार ये दोनों काम यथावत् बनते हैं इत्यादि प्रयोजन बुद्धिमान् लोग अपने विचार से यथावत् जानलेवें मैं यहां इस विषय के बढ़ाने की आवश्यकता नहीं देखता ॥ इति पुनर्जन्मविषयः संक्षेपतः ॥

॥ अथ विवाहविषयः संक्षेपतः ॥

गृभ्णामि॑ते सौभगत्वाय॒ हस्तं॑ मया॑ पत्या॑ जरदष्टि॒र्यथास॑ः ।
भगो॑ अ॒र्य॒मा स॑वि॒ता पुर॑न्धि॒र्मह्यं॑ त्वा॒ दुर्गार्ह॑पत्याय॒देवाः॑ ॥ १ ॥
दे॒वस्ते॑ सवि॒तोद्व॑पतु॒ ह्वया॑मसि॒ मरु॑तो॒ विश्व॑मायु॒र्व्यश्नु॑तम् । क्रीडं॑तौ पु॒त्रैर्नप्तृ॑भिर्मो॒दमा॑नौ॒स्वेगृ॒हे ॥ २ ॥ ऋ० अ० ८ अ० ३ व० २७ । २८ मं० १ । २ ॥

॥ भाष्य ॥

अनयोरग्नि० अथ विवाहविधानं क्रियतइति । हे कुमारि युवते कन्ये (सौभगत्वाय) सन्तानोत्पत्त्यादिप्रयोजनसिद्धये (ते) तव हस्तं (गृभ्णामि) गृह्णामि त्वया सहाहं विवाहं करोमि त्वं च मया सह हे स्त्रि (यथा) येन प्रकारेण (मया पत्या) सह (जरदष्टिः) (आसः) जरावस्थां प्राप्नुयास्तथैव त्वया स्त्रिया सह जरदष्टिरहं भवेयं वृद्धावस्थां प्राप्नुयाम् । एवमावां संप्रीत्या परस्परं धर्ममानन्दं कुर्य्यावहि । (भगः) सकलैश्वर्य्यसंपन्नः (अर्य्यमा) न्यायव्यवस्थाकर्त्ता (सविता) सर्वजगदुत्पादकः (पुरंधिः) सर्वजगद्धारकः परमेश्वरः (मह्यं गार्हपत्याय) गृहकार्य्याय त्वां मदर्थं दत्तवान् तथा (देवाः) अन्ये सर्वे विद्वांसः साक्षिणः सन्ति, यथावां प्रतिज्ञोल्लंघनं

कुर्य्योवहिं तर्हि परमेश्वरउराड्यो विद्वद्वराड्यो च भवेवेति ॥ १ ॥ विवाहं कृत्वा परस्परे स्त्रीपुरुषौ कीदृशवर्त्तमानौ भवेतामेतदर्थमीश्वराज्ञां ददाति (दृह्येवस्तां०) हे स्त्रीपुरुषौ युवां द्वाविहास्मिँल्लोके गृहाश्रमे सुखेनैव सदा (वस्तम्) निवासं कुर्यातम् (माविथेष्टं) तथा कदाचिद्विरोधेन देशान्तरगमनेन वा वियुक्तौ वियोगं प्राप्तौ मा भवेतम् । यवं मदाज्ञोवोदेन धर्मे कुर्वाणौ सर्वोपकारिणौ सद्भक्तिमाचरन्तौ (विश्वमायुर्व्यश्नुतम्) विविधसुखसहितमायुः प्राप्नुतम् । पुनः (स्वे गृहे) स्वकीयेगृहे पुत्रैर्नप्तृभिश्च सह मोदमानौ सर्वानन्दं प्राप्नुवन्तौ (क्रीडन्तौ) सद्भक्तिक्रियां कुर्वन्तौ सदैव भवतम् । इत्यनेनाप्येकस्या: स्त्रियाश्चतुर्णां पतिभवत्वेकस्य पुरुषस्यैकशस्त्री चेति । अर्थादनेकस्त्रीभिः सह विवाहनिषेधो नरस्य तथा ऽनेकैः पुरुषैः सहैकस्याः स्त्रियाश्चेति सर्वेषु वेदमन्त्रेष्वेकवचनस्यैव निर्देशात् । यवं विवाहविधायकावेदेष्वनेके मंत्राः सन्तीति विज्ञेयम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(गृभ्णामि ते०) (सौभगत्वाय हस्तं) हे स्त्रि मैं सौभाग्य अर्थात् गृहाश्रम में सुखके लिये तेरा हस्त ग्रहण करता हूं और इस बात की प्रतिज्ञा करता हूं कि जो काम तुझ को अप्रिय होगा उस को मैं कभी न करूंगा ऐसे ही स्त्री भी पुरुष से कहे कि जो व्यवहार आप को अप्रिय होगा उस को मैं भी कभी न करूंगी और हम दोनों व्यभिचारादि दोष रहित होके वृद्धावस्था पर्य्यन्त परस्पर आनन्द के व्यवहारों को करेंगे हमारी इस प्रतिज्ञा को सब लोग सत्य जानें कि इस से उलटा काम कभी न किया जायगा । (भग) जो ऐश्वर्य्यवान् (अर्य्यमा) सब जीवों के पाप पुण्य के फलों को यथावत् देने वाला (सविता) सब जगत् का उत्पन्न करने और सब ऐश्वर्य्य का देने वाला तथा (पुरंधि) सब जगत् का धारण करने वाला परमेश्वर है वही हमारे दोनों के बीच में साक्षी है तथा (मह्यं त्वा०) परमेश्वर और विद्वानों ने मुझ को तेरे लिये और तुझ को मेरे लिये दिया है कि हम दोनों परस्पर प्रीति करेंगे तथा उद्योगी होकर घर का काम अच्छी तरह से करेंगे और मिथ्या भाषणादि से बच कर सदा धर्म्म ही में वर्त्तेंगे सब जगत् का उपकार करने के लिये सत्य विद्या का प्रचार करेंगे और धर्म्म से पुत्रों को उत्पन्न करके उन को सुशिक्षित करेंगे इत्यादि प्रतिज्ञा हम ईश्वर की साक्षी से करते हैं कि हम नियमों को ठीक २ पालन करेंगे दूसरी स्त्री और दूसरे पुरुष से मनसे भी व्यभिचार न करेंगे (देवाः) हे विद्वान् लोगो तुम भी हमारे साक्षी रहो कि हम दोनों गृहाश्रम के लिये विवाह करते हैं फिर स्त्री कहे कि मैं इस पति को छोड़ के मन वचन और कर्म्म से भी दूसरे पुरुष को पति न मानूंगी तथा

पुरुष भी प्रतिज्ञा करे कि मैं इस के सिवाय दूसरी स्त्री को अपने मन कर्म और वचन से कभी न चाहूंगा ॥ १ ॥ (इहैवस्तं०) विवाहित स्त्री पुरुषों के लिये परमेश्वर की आज्ञा है कि तुम दोनों गृहाश्रम के शुभ व्यवहारों में रहो (मावियौष्टं) अर्थात् विरोध करके अलग कभी मत हो और व्यभिचार भी किसी प्रकार का मत करो सन्तानोत्पत्ति से सन्तानों की उत्पत्ति, उन का पालन और सुशिक्षा, गर्भस्थिति के पीछे एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य और लड़कों को प्रसूता स्त्री का दुग्ध बहुत दिन न पिलाना इत्यादि शुभ व्यवहारों से (विश्वमा०) सौ १०० वा एक सौ पच्चीस १२५ वर्ष पर्यन्त आयु को सुख में भोगो (क्रीडन्तौ०) अपने घरमें आनन्दित होके पुत्र और पौत्रों के साथ नित्य धर्म पूर्वक क्रीडा करो इस से विपरीत व्यवहार कभी न करो और सदा मेरी आज्ञा में वर्त्तमान करो इत्यादि विवाह विधायक वेदों में बहुत मंत्र हैं । उन में से कई एक मंत्र संस्कारविधि में भी लिखे हैं वहां देख लेना ॥ इति संक्षेपतो विवाह विषयः ॥

॥ अथ नियोगविषयः संक्षेपतः ॥

कुहस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः । कोवां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्य्यंनयोषां कृणुते सधस्थ आ ॥ १ ॥ ऋ० अ० ७ अ० ८ व० १८ मं० २ ॥ घृतं नारी पतिलोकं वृणानानिपद्यत उपत्वा मर्त्य प्रेतम् । धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेहधेहि ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १८ अनु० ३ व० १ मं० १ ॥ उदीर्ष्वनार्य्यभि जीवलोकं गतासु मेतमुपशेष एहि । हस्ताभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभिसंबभूथ ॥ ३ ॥ ऋ० मंडल १० सू० १८ मं० ८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

यदाभिभि० अथ विधवाविस्त्रीकनियोगव्यवस्थाविधीयतइति (कुहस्विद्दोषा) हे विवाहितौ स्त्रीपुरुषौ युवां (कुह) कस्मिन्स्थाने (दोषा) रात्रौ (वस्तोः) वसथः (कुह०) अश्विनादिवसे च कुह वां कुरुथः (कुहाभि०) कुहाभिपित्वं प्राप्तिं करतः कुरुतः (कुहोषतुः) क्व युवयोर्निवासस्थानवासोऽस्ति (कोषां शयुत्रा) शयनस्थानं युवयोः क्वास्ति । इति स्त्रीपुरुषौ प्रतिप्रश्नेन द्विवचनोच्चारणेन चैकस्य पुरुषस्यैकैव स्त्रीकर्त्तुं योग्यास्ति । तथैकस्याः स्त्रियाश्चैक एव पुरुषश्च द्वयोः परस्परं सदैव प्रीतिर्भवेन्न कदा-

विद्वियोगव्यभिचारौ भवेतामिति द्योत्यते (विधवेव देवरं) कं क्वेव यथा देवरं द्वितीयं वरं नियोगेन प्राप्तं विधवाहव । अत्र प्रमाणम् । देवरः कस्माद्द्वितीयोवर उच्यते । निरु० अ० ३ खं० १५ । विधवाया द्वितीयपुरुषेण सह नियोगकरणे आज्ञास्ति तथा पुरुषस्य च विधवया सह । विधवास्त्री मृतस्त्रीकपुरुषेण सहैव संतानार्थं नियोगं कुर्य्याच्च कुमारेण सह तथा कुमारस्य विधवया सह च । अर्थात्कुमारयोः स्त्रीपुरुषयोरेकवारमेव विवाहः स्यात् । पुनरेवं नियोगश्च नैव द्वितीयेषु द्वितीयवारं विवाहो विधीयते । पुनर्विवाहस्तु खलु शूद्रवर्णेषत्र विधीयते तस्य विद्याव्यवहाररहितत्वात् । नियोजितौ स्त्रीपुरुषौ कथं परस्परं वर्त्तेतामित्यत्राह । (मर्य्येनयोषा) यथा विवाहितं मनुष्यं (सधस्थे) समानस्थाने संतानार्थं योषा विवाहितास्त्री (कृणुते) आकृणुते । तथैव विधवा विगतस्त्रीकश्च संतानोत्पत्तिकरणार्थं परस्परं नियोगं कृत्वा विवाहितस्त्रीपुरुषवद्वर्त्तेयाताम् ॥ १ ॥ (इयं नारी०) इयं विधवानारी (प्रेतं) मृतं पतिं विहाय (पतिलोकं) पतिसुखं (वृणाना) स्वीकर्त्तुमिच्छन्ती सती (मर्त्य) हे मनुष्य (त्वा) त्वामुपनिषद्यते त्वां पतिं प्रीणाति तव समीपे नियोगविधानेनागच्छतीत्वं गृहाणा उस्यां सन्तानान्युत्पादय । कथंभूता सा (धर्मं पुराणं) वेदप्रतिपाद्यं सनातनं धर्ममनुपालयन्ती सती त्वां नियोगेन पतिं वृणुते । त्वमपीमां वृणु (तस्यै) विधवायै (दृष्ट) अस्मिन्समये लोके वा (इमां धेहि) त्वमस्या प्रजोत्पत्तिं कुरु (द्रविणं) द्रव्यं वीर्य्यं (च) अस्यां धेहि अर्थाद्गर्भाधानं कुरु ॥ २ ॥ (उदीर्ष्वनाo) हे विधवे नारि (गतं) (गतासुं) गतप्राणं मृतं विवाहितं पतिं त्यक्त्वा (अभिजीवलोकं) जीवन्तं देवरं द्वितीयवरं पतिं (गहि) प्राप्नुहि (उपशेषे) तस्यैवोपशेषे संतानोत्पादनाय वर्त्तस्व तत्संतानं (हस्तग्राभस्य) विवाहे संगृहीतहस्तस्य पत्युः स्यात् । यदि नियुक्तपत्न्यानियोगः कृतस्तर्हि (दिधिषोः) तस्यैव संतानं भवेत् (तवेदं) तवेदमेव विधवायास्तव (जनित्वं) संतानं भवति । हे विधवे विगतविवाहितस्त्रीकस्य पत्युश्चैतन्नियोगकरणार्थं त्वं (उदीर्ष्व) विवाहितपतिमरणानन्तरमिमं नियोगमिच्छ तथा (अभिसंबभूथ) संतानोत्पत्तिं कृत्वा सुखसंयुता भव ॥ ३ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

नियोग उस को कहते हैं जिस से विधवा स्त्री और जिस पुरुष की स्त्री मरगई हो वह पुरुष ये दोनों परस्पर नियोग करके संतानों का उत्पन्न करते हैं नियोग करने में ऐसा नियम है कि जिस स्त्री का पुरुष वा किसी पुरुष की

स्त्री मरजाय अथवा उन में किसी प्रकार का स्थिर रोग हो जाय वा नपुंसक वंध्यादोष पड़जाय और उन की युवावस्था हो तथा संतानोत्पत्ति की इच्छा हो तो उस अवस्था में उन का नियोग होना अवश्य चाहिये इस का नियम आगे लिखते हैं (कुहस्थिद्०) अर्थात् तुम दोनों विवाहित स्त्री पुरुषों ने (दोषा) रात्रि में कहां निवास किया था (कुहवस्तोरश्विना) तथा दिन में कहां बसे थे (कुहाभिपित्व करतः) तुमने अन्न वस्त्र धन आदि की प्राप्ति कहां की थी (कुहोषतुः) तुम्हारा निवासस्थान कहां है (कोऽह्नां शयुत्रा) रात्रि में तुम कहां शयन करते हो वेदों में पुरुष और स्त्री के विवाह विषय में एक ही वचन के प्रयोग करने से यह निश्चित हुआ कि वेदरीति से एक पुरुष के लिये एकही स्त्री और एक स्त्री के लिये एकही पुरुष होना चाहिये अधिक नहीं और न कभी इन दोनों का पुनर्विवाह वा नियोग होना चाहिये (शिक्षेयं देवरम्) जैसे विधवा स्त्री देवर के साथ संतानोत्पत्ति करती है वैसे तुम भी करो विधवा का जो दूसरा पति होता है उस को देवर कहते हैं इस से यह नियम होना चाहिये कि द्विजों अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में दो २ सन्तानों के लिये नियोग होना और शूद्र कुल में पुनर्विवाह मरण पर्य्यन्त के लिये होना चाहिये परंतु माता गुरुपत्नी भगिनी कन्या पुत्र वधू आदि के साथ नियोग करने का सर्वथा निषेध है यह नियोग शिष्ट पुरुषों की सम्मति और दोनों की प्रसन्नता से हो सकता है जब दूसरा गर्भ रहे तब नियोग छूट जाय और जो कोई इस नियम को तोड़े उस को द्विज कुल में से अलग कर के शूद्र कुल में रख दिया जाय ॥ १ ॥ (इयं नारी पतिलोकं०) जो विधवा नारी पतिलोक अर्थात् पति सुख की इच्छा कर के नियोग किया चाहे तो (प्रेतम्) अर्थात् वह पति मर जाने के अनन्तर दूसरे पति को प्राप्त हो (उपत्वामर्त्य०) इस मंत्र में स्त्री और पुरुष को परमेश्वर आज्ञा देता है कि हे पुरुष (धर्मं पुराणमनुपालयन्ती) जो इस सनातन नियोग धर्म की रक्षा करने वाली स्त्री है उस के संतानोत्पत्ति के लिये (तस्यै प्रजां द्रविणं वेह धेहि) धर्म से वीर्य्यदान कर जिस से वह प्रजा से युक्त होके आनंद में रहे तथा स्त्री के लिये भी आज्ञा है कि जब किसी पुरुष की स्त्री मरजाय और वह संतानोत्पत्ति किया चाहे तब स्त्री भी उस पुरुष के साथ नियोग कर के उस को प्रजायुक्त कर दे इस लिये मैं आज्ञा देता हूं कि तुम मन कर्म और शरीर से व्यभिचार कभी मत करो किंतु धर्मपूर्वक विवाह और नियोग से संतानोत्पत्ति करते रहो ॥ २ ॥ (उदीर्ष्वनार्यभि) हे स्त्री अपने मृतक पति की शोक के (जीवलोकं) इस जीवलोक में (गतासुमेत उपशेष एहि) जो तेरी इच्छा हो तो दूसरे पुरुष के साथ नियोग कर के संतानों को प्राप्त हो नहीं तो ब्रह्मचर्य्याश्रम में स्थिर होकर कन्या और स्त्रियों को पढ़ाया कर ॥ और जो

नियोगधर्म में स्थित हो तो जबतक मरण न हो तबतक ईश्वर का ध्यान और अन्य धर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त होकर (हस्तग्राभस्य दिधिषोः) जो कि तेरा हस्त ग्रहण करने वाला दूसरा पति है उस की सेवा किया कर वह तेरी सेवा किया करे और उस का नाम दिधिषु है (तवेदं) वह तेरे सन्तान की उत्पत्ति करने वाला हो और जो तेरे लिये नियोग किया गया हो तो वह तेरा संतान हो (पत्युर्जनित्वम०) और जो नियुक्त पति के लिये नियोग हुआ हो तो वह संतान पुत्र का हो इस प्रकार नियोग से अपने २ संतानों को उत्पन्न कर के दोनों सदा सुखी रहो ॥ ३ ॥

इमां त्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु । दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ॥ ४ ॥ सोमः प्रथमो विविदे गंधर्वो विविद उत्तरः । तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ५ ॥ अ० अ० ८ अ० ३ व० २८ । २७ । मं० ५ । ५ ॥ अदेवृघ्न्यपतिघ्नीहैधि शिवा पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः । प्रजावती वीरसूर्देवकामास्योनेसम्राज्ञि गार्हपत्याय जागृहि ॥ ६ ॥ अथर्व० । कां० १४ अनु० २ मं० १८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

इदानीं नियोगस्य सन्तानोत्पत्तेश्च परिगणनं क्रियते । कतिवारं नियोगः कर्त्तव्यः कियन्ति संतानानि चोत्पादनीयानि । तत्रादया (इमां त्वमिन्द्र०) हे इन्द्र विवाहितपते (मीढ्वः) हे वीर्य्यदानकर्त्तस्त्वमिमां विवाहितस्त्रियं वीर्य्यसेकेन गर्भयुक्तां कुरु । तां (सुपुत्रां) शोभनपुत्रवतीं (सुभगां) अनुत्तमसुखयुक्तां (कृणु) कुरु (दशास्यां) अस्यां विवाहितस्त्रियां दशपुत्रानाधेहि उत्पादय नातोऽधिकमिति । ईश्वरेण दशसन्तानोत्पादनस्यैवाज्ञा पुरुषाय दत्तेति विज्ञेयम् । तथा (पतिमेकादशं कृधि) हे स्त्रि त्वं विवाहितपतिं गृहीत्वैकादशपतिपर्य्यन्तं नियोगं कुरु । अर्थात् कस्यां चिदापत्कालावस्थायां प्राप्तायामेकैकस्याभावे सन्तानोत्पत्त्यर्थं दशमपुरुषपर्य्यन्तं नियोगं कुर्य्यात् । तथा पुरुषोऽपि विवाहितस्त्रियां मृतायां सत्यां सन्तानाभावे एकैकस्या अभावे दशम्या विधवया सह नियोगं करोत्वितीच्छानास्ति चेन्मा कुरुताम् ॥ ४ ॥ अथोत्तरोत्तरं पतीनां संज्ञा विधीयते (सोमः प्रथमः) हे स्त्रियस्त्वां प्रथमं (विविदे) विवाहितः पतिः प्राप्नोति स सौकुमार्य्यादिगुणयुक्तत्वात्सोमसंज्ञो भवति । (गन्धर्वो वि०) यस्तु

(उत्तरः) द्वितीयो नियुक्तः पतिर्विधवां त्वां विधिवदे प्रेति स गन्धर्वस्तां लभते कुतस्तस्य भोगाभिवाञ्छत्वात् । (तृतीयो ऋ०) येन सह त्वं तृतीयवारं नियोगं करोषि सोऽग्निसंज्ञो भवते । कुतः । द्वाभ्यां पुरुषाभ्यां भुक्तभोगया त्वया सह नियुक्तत्वादग्निदाहवत्तस्य शरीरस्थधातवो दह्यन्त इत्यतः । (तुरीयस्ते मनुष्यजाः) हे स्त्रि चतुर्थमारभ्य दशमपर्य्यन्तास्तव पतयः । साधारणबलवीर्य्यत्वान्मनुष्यसंज्ञा भवन्तीति बोध्यम् । तथैव स्त्रीणामपि सोम्या गंधर्व्याग्नेयी मनुष्यजाः संज्ञास्तत्तद्गुणयुक्तत्वाद्भवन्तीति ॥ ७ ॥

(अदेवृघ्न्यपतिघ्नि) हे अदे वृद्धि देवरसेविके हे अपतिघ्नि विवाहितपतिसेविके स्त्रि त्वं शिवा कल्याणगुणयुक्ता (पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः) गृहकृत्येषु शोभननियमयुक्ता गृहसंबन्धिपशुभ्योहिता श्रेष्ठकांतिविद्यासहिता तथा (प्रजावतीर्वीरसूः) प्रजापालनतत्परा वीरसंतानोत्पादिका (देवृकामा) नियोगेन द्वितीयवरस्य कामयमाना (स्योना) सम्यक् सुखयुक्ता सुखकारिणी सती (इममग्निं गार्हपत्यं) गृहसंबन्धिनमाहवनीयादिमग्निं सर्वं गृहसंबन्धिव्यवहारं च (सपर्य) प्रीत्या सम्यक् सेवय । अत्र स्त्रियाः पुरुषस्य चापत्काले नियोगव्यवस्था प्रतिपादितास्तीति वेदितव्यम् । इति ॥ ६ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(इमां०) ईश्वर मनुष्यों को आज्ञा देता है कि हे इन्द्रपते सेवयं युक्त तू इस स्त्री को वीर्य दान देके सुपुत्र और सौभाग्य युक्त कर हे वीर्यपते (दशास्यां पुत्रानाधेहि) पुरुष के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि इस विवाहित वा नियोगित स्त्री में दश संतान पर्य्यंत उत्पन्न कर अधिक नहीं (पतिमेकादशं कृधि०) तथा हे स्त्री तू नियोग में ग्यारह पति तक कर अर्थात् एक तो उन में प्रथम विवाहित और दश पर्य्यंत नियोग के पति कर अधिक नहीं इस की यह व्यवस्था है कि विवाहित पति के मरने वा रोगी होने से दूसरे पुरुष वा स्त्री के साथ संतानों के अभाव में नियोग करे तथा दूसरे को भी मरण वा रोगी होने के अनन्तर तीसरे के साथ कर ले इसी प्रकार दशवें तक करने की आज्ञा है परंतु एक काल में एकही वीर्यदाता पति रहे दूसरा नहीं इसी प्रकार पुरुष के लिये भी विवाहित स्त्री के मरजाने पर विधवा के साथ नियोग करने की आज्ञा है और जब वह भी रोगी हो वा मरजाय तो संतानोत्पत्ति के लिये दशम स्त्री पर्य्यंत नियोग कर लेवे ॥ ५ ॥ अब पतियों की संज्ञा कहते हैं (सोमः प्रथमो विविदे) उनमें से जो विवाहित पति होता है उस की सोम संज्ञा है क्योंकि वह सुकुमार होने से मृदु आदि गुण युक्त होता है (गंधर्वो विविद उत्तरः) दूसरा पति जो नियोग से होता है सो गंधर्व संज्ञक अर्थात् भोग में अभिज्ञ होता है

(तृतीयेऽग्निष्टेपतिः०) तीसरा पति जो नियोग से होता है वह अग्नि संज्ञक अर्थात् तेजस्वी अधिक उमर वाला होता है (तुरीयस्ते मनुष्यजाः) चौथे पांचे से लेके दशम पर्य्यन्त जो नियुक्त पति होते हैं वे सब मनुष्य संज्ञक कहाते हैं क्योंकि वे मध्यम होते हैं ॥ ५ ॥ (अरे वृष्ट्यपतिघ्नी) हे विधवा स्त्रि तू देवर और विवाहित पति को सुख देने वाली हो किंतु उन का अप्रिय किसी प्रकार से मत कर और वे भी तेरा अप्रिय न करें (शंनो शिवाः०) इसी प्रकार मंगल कार्य्यों को करके सदा सुख बढाते रहो (पशुभ्यः सुयमा सुवर्चाः) घर के पशु आदि सब प्राणियों की रक्षा करके जितेन्द्रिय होके धर्म युक्त श्रेष्ठ कार्य्यों को करती रहो तथा सब प्रकार के विद्यारूप उत्तम तेज को बढाती जा (प्रजावती वीरसूः) तू श्रेष्ठ प्रजा युक्त हो बड़े २ वीर पुरुषों को उत्पन्न कर (देवकामा) जो तू देवर की कामना करने वाली है तो जब तेरा विवाहित पति न रहे वा रोगी तथा नपुंसक हो जाय तब दूसरे पुरुष से नियोग करके संतानोत्पत्ति कर (स्योनेमग्निं गार्हपत्यं सपर्य) और तू इस अग्निहोत्राग्नि घर के कामों को सुखरूप होके सदा प्रीति से सेवन कर ॥ ६ ॥ इसी प्रकार से विधवा और पुरुष तुम दोनों आपत् काल में धर्म करके संतानोत्पत्ति करो और उत्तम २ व्यवहारों को सिद्ध करते जाओ गर्भहत्या वा अभिचार कभी मत करो किंतु नियोग ही करो यही व्यवस्था सब से उत्तम है ॥ इति नियोगविषयः संक्षेपतः ॥

॥ अथ राजप्रजाधर्मविषयः संक्षेपतः ॥

चीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि। अपश्यमत्रमनसा जगन्वान्व्रते गंधर्वा अपि वायुकेशान् ॥ १ ॥ ऋ० अ० २ अ० २ व० २४ मं० ६ ॥ घृतस्योनिरसि घृतस्यनाभिरसि। मात्वाहिंसीन्मा मांहिंसीः॥ २ ॥ य० अ० २० मं० १ ॥ यत्र ब्रह्मच क्षत्रंच सम्यञ्चौ चरतः सह। तं लोकं पुण्यं यत्रेषे यत्र देवाः सहाग्निना ॥ ३ ॥ य० अ० २० मं० २५ ॥ भाष्यम् ॥

एतामभि० अत्र मंत्रेषु राजधर्मो विधीयतइति । यथा सूर्य्यचन्द्रौ राजानौ सर्वमूर्तद्रव्यप्रकाशकौ भवतस्तथा सूर्य्यचन्द्रगुणशीलौ प्रकाशन्याययुक्तौ व्यवहारौ चीणि सदांसि (भूषथः) भूषयतो युवां कुरुतः (विदथे) तामिः सभाभिरेव युद्धे (पुरूणि) बहूनि विजयादीनि सुखानि मनुष्याः प्राप्नुवन्ति तथा (परिविश्वानि) राजधर्मादियुक्ताभिस्सभाभिर्विश्वस्थानि

सर्वाणि यस्मिन् प्राणिजातानि च भूषयन्ति सुखयन्ति । इदमत्र बोध्यम् । यका राजार्य्यसभा तत्र विशेषतो राजकार्य्याण्येव भवेयुः । द्वितीयाऽऽर्य्यविद्यासभा तत्र विशेषतो विद्याप्रचारोन्नतीनामेव कार्य्यं भवतः । तृतीयाऽऽर्य्यधर्मसभा तत्र विशेषतो धर्मोन्नतिरधर्महानिश्चोपदेशे न कर्त्तव्यापरत्वे नास्तिकसभाः सामान्यकार्य्यं मिलित्वैव सर्वानुत्तमान्व्यवहारान्प्रजासुप्रचारयेयुरिति । यत्रैतासुसभासु धर्मात्मभिर्विद्वद्भिः सारासारविचारेण कर्त्तव्याकर्त्तव्यस्य प्रचारोनिरोधश्च क्रियते । तत्र सर्वाः प्रजाः सदैव सुखयुक्ता भवन्ति । यत्रैकोमनुष्यो राजा भवति तत्र पीडिताश्चेति निश्चयः (अपश्यमपश्यम्) इदमहमपश्यम् । ईश्वरोमिवदति यत्र सभया राजप्रबन्धो भवति तत्रैव सर्वाभ्यः प्रजाभ्योहितं जायतइति । (ऋते) यो मनुष्यः सत्याचरणे (मनसा) विज्ञानेन सत्यंन्यायं (अगन्वान्) विज्ञातवान् स राजसभामर्हति नेतरश्च (गंधर्वो) पूर्वोक्तासु सभासु गंधर्वान् पृथिवीराजपालनादिव्यवहारेषु कुशलान् (अपि वायुः केशान्) वायुश्चद्भूतप्रचारेण विदितसर्वव्यवहारान्सभासदः कुर्य्यात् । केशास्सूर्य्यरश्मयस्तद्वत्सत्यन्यायप्रकाशकान्सर्वहितं चिकीर्षून् धर्मात्मनः सभासदस्थापयितुमहमाज्ञापयामि नेतरांश्चेतीश्वरोपदेशः सर्वैर्मन्तव्य इति ॥ १ ॥ (यज्ञस्य योनिरसि) हे परमेश्वर त्वं यथा यज्ञस्य राजव्यवहारस्य योनिर्निमित्तमसि । तथा (यज्ञस्य नाभिरसि) सर्वं राजधर्मस्य त्वं प्रबंधकर्त्तासि तथैव नोऽस्मानपि कृपया राज्यपालननिमित्तान् स्वधर्मप्रबंधकर्तॄंश्च कुरु (मात्याहिंसीन्मा माहिंसीः) तथास्माकं मध्यात्कोपि जनस्त्वामाहिंसीदथाद्वयन्तं तिरस्कृत्य नास्तिको मा भवतु तथा त्वं मां माहिंसीरथान्यम तिरस्कारं कदाचिन्माकुर्य्याः । यतोवयं भवत्सृष्टौ राज्याधिकारिणस्सदा भवेम ॥ २ ॥ (यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च) यत्र देशे ब्रह्म परमेश्वरो वेदो वा ब्राह्मणो ब्रह्मविद्वेतत्सर्वं ब्रह्म तथा (क्षत्रं) शौर्य्यधैर्य्यादिगुणवन्तो मनुष्याश्चेतौ द्वौ (सम्यञ्चौ) यथावद्विज्ञानयुक्तावविरुद्धौ (चरतः सह) तं लोकं तं देशं पुण्यं पुण्ययुक्तं (यज्ञेषं) यज्ञकरणेच्छाविशिष्टं विजानीमः (यत्र देवाः सहाग्निना) यस्मिन्देशे विद्वांसः परमेश्वरेणाग्निहोत्रादि यज्ञानुष्ठानेन च सह वर्त्तन्ते तत्रैव प्रजाः सुखिन्यो भवन्तीति विज्ञेयम् ॥ ३ ॥

॥ भाषार्थ ॥

सब जगत् का राजा एक परमेश्वरही है और सब संसार उस की प्रजा है इस में यह यजुर्वेद के अठारहवें अध्याय के २९ वे मंत्र के वचन का प्रमाण है

कौन से पेज से लिंक है	क्रम संख्या	नाम लेखिका	पता/संपर्क	संख्या	मोबाइल नंबर	संपर्क स्थान
२ पेज से	४४४	लक्ष्मी नारायण ...	सुरेंद्र नारायण, कमलेश्वर, कमलेश्वर, ...	१		४५
"	४४५	रोहित रोशनलाल ...	अजयानंदनगर, गोला, मेमारी कॉलम, ...	१		४५
"	४४६	लाला शिवनारायण ...	पोस्ट ऑफिस, जनपथ, ...	१		४५
"	४४७	लाला रामसहाय ...	किराना, दलालगंज, नेशनल मार्केटिंग, ...	१		४५
"	४४८	लाला नित्यानंद ...	मार्केट, लाला, ...	१		४५
"	४४९	लाला कुलदीप ...	...	१		४५
"	४५०	...	कुरुक्षेत्र, हरियाणा, ...	१		४५
"	४५१	...	...	१		४५
"	४५२	लाला मुरलीधर ...	...	१		४५
"	४५३	लाला रामदुलारे ...	...	१		४५
"	४५४	मुंशी शुभलाभ ...	...	१		४५
"	४५५	लाला श्रीनिवास ...	...	१		४५
"	४५६	लाला ओमप्रकाश ...	...	१		४५
"	४५७	लाला जयचंद ...	...	१		४५
"	४५८	लाला दयाराम ...	...	१		४५
"	४५९	लाला भोलूराम ...	...	१		४५
"	४६०	लाला विश्वनाथ ...	...	१		४५
"	४६१	...	...	१		४५

कौन से क्लास से लिये	मेम्बर नम्बर	नाम मेम्बर	पता मेम्बर	वोट	साधारण नोट	मेम्बरी रुपया
३ क्लास से	४८५	लाला जगन्नाथदास	सिविल सार्जनस ऑफिस सिरसा, पंजाब पोस्ट दफ्तर सिरसा, जिला हिसार, पंजाब	१		५)
"	४८६	लाला मुलखराज	सिविल सर्जन पीलीभीत, यू० पी०	१		५)
"	४८७	लाला रलाराम	सिविल सार्जनस ऑफिस, सिरसा, पंजाब पोस्ट दफ्तर सिरसा, जिला हिसार, पंजाब	१		५)
"	४८८	बाबू निहालचंद	सिविल सर्जनस्टेट मेडिकल ऑफिस, जींद	१		५)
"	४८९	लाला गोविन्द सहाय सक्सेना	सेशनज जज, पर्ल सेशनज, जो सेशन, पंजाब	१		५)
"	४९०	लाला मंगतराम	एक्स असिस्टेंट कमिश्नर, रेलवे, नारनौल स्टेशन रोड, जो सिरसा, पंजाब	१		५)
"	४९१	लाला सुखदयाल	असिस्टेंट इंजीनियर एक्सटेंशन, सिरसा पंजाब मेसर्स हरदयाल एण्ड कम्पनी, सिरसा, पंजाब	१		५)
"	४९२	लाला मुंशीराम एम० ए०	एडवोकेट हाईकोर्ट, मोतिया-खुर्द, पंजाब	१		५)
"	४९३	लाला जैनीरामदास	स्पेशल मजिस्ट्रेट, पलवल, जिला, गुड़गांव	१		५)
"	४९४	लाला मोहनलाल बी० ए०	सबरजिस्ट्रार पलवल, जो गुड़गांव, पंजाब	१		५)
"	४९५	लाला मुरलीधर	सिविल सर्जनस्टेट मेडिकल ऑफिस, नाभा, पंजाब	१		५)
"	४९६	लाला दयाराम	एक्सट्रा असिस्टेंट कमिश्नर, सिरसा, पंजाब पोस्ट दफ्तर सिरसा, जिला हिसार, पंजाब	१		५)
"	४९७	लाला मोहनलाल एम० ए०	एडवोकेट, सिरसा, पंजाब	१		५)
	४९८	बाबू गंगाप्रसाद मुकुरजी	डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर एण्ड एक्स ऑफिशियो सेक्रेटरी म्युनिसिपल कमेटी, रोहतक, पंजाब	१	५)	
	४९९	बाबू हीरालाल गांगुली	डिस्ट्रिक्ट सुपरिंटेंडेंट पोलिस, रोहतक, पंजाब एक्स ऑफिशियो प्रेसिडेंट म्युनिसिपल कमेटी, रोहतक	१	५)	
४ क्लास से	५००	पंडित गंगाधर	हेडमास्टर एंग्लो संस्कृत मिडिल स्कूल, जींद, पंजाब	१	५)	
५ क्लास से	५०१	बाबू गोपीनाथ बोनर्जी	सिविल सर्जन, जींद, पंजाब	१	५)	

REGISTERED No. 19.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विता ॥

अस्येकस्यास्य पुस्तकस्य मूल्यं ॥ आसमुद्रान्तर्वर्तिदेशान्तराणां
मूल्यम् सार्द्धं (१॥) अष्ट द्वादशसंख्यानां मिलित्वा
दशसेर (१०) मितानां ।

इस ग्रंथ के प्रतिशतम एक एक पैसा और मूल्य भारतवर्ष के भीतर
डाकमाशुल सहित (१॥) और डाकिक मूल्य ३०)

यस्य पुस्तस्य बहुपुस्तकेच्छा यस्य सप्तैकत्रिंशत् लालस्कन्धस्थस्य
श दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः पार्श्वे पत्रिकं मूल्यं
प्रेषयित्वा प्रतिशतमेकं प्राप्स्यति ।

संवत् (१९७)

॥ अस्य ग्रन्थस्य [illegible] ॥

संवत् १९७८ ।

॥ अस्य ग्रन्थस्याधिकारो [illegible] ॥

[illegible] ॥

ओवर के बॉल के नंबर	बल्लेबाज़ का नंबर	नाम बल्लेबाज़	पेस बोलर	रन	कुल स्कोर	मैदान उपस्थित
ओवर से	५४८	बाबू निरंजन ...	जॉन जिम्मी रामचन्द्रराव। जिमाख	४	४५८	
	५४९	बनवारी ने सेमारोग	मोहम्मद अब्दुल्ले ... मोहम्मद	०	४५८	
			रमणु रामकृष्णैया ...			
	५५०	सर्वेश्वर नगर जि.	सर्वेश्वर रमणु ... मोहम्मद	१	४५९	
		नगला दुबे	अब्दुल्ले मयंकसिंह ...			
	५५१	बाबू दुर्गाशंकर	बलदेव अवतार अहमदाबाद ...	०	४५९	
		पाण्डेय ...				
	५५२	बाबू गोपालदत्त ...	जॉनसीना। विजय। मोहम्मद ...	१	४६०	
	५५३	पंडित जगन्नाथ	५३ सार्वजनिक मोहल्ले सिंह	४	४६४	
		प्र.। मिश्र ...	निवास। जिम। अवतार। ठाकुर।			
	५५४	पंडित तुलसीदास	५५ सार्वजनिक प्र.। का। बाबा	१	४६५	
			साब। कॉलेज। में। जिम। मोहम्मद			
			मोहम्मद। शाहरुखान ...			
ओवर से	५५५	लाला अमरनाथ ...	मोहम्मद। शाहरुखान। रामलीला	१	४६६	
	५५६	चौधरी अनन्तराम सिंह	जिम। मोहम्मद। अब्दुल्ले। शाह।	२	४६८	
			ए.। मयंकसिंह			
	५५७	बाबू मनोहरलाल में के	ग्रेग। चैपलराव। मोहम्मद। का।	०	४६८	
			बाबा। मेंहदी			
	५५८	बाबू मनोहरलाल ...	विनुमंकड। ठाकुरपुर ...	०	४६८	
	५५९	पण्डित लक्ष्मीनारायण	मोहम्मद। शाहरुखान। का।	१	४६९	
		चतुर्वेदी	मोहम्मद। ठाकुर। के। अब्दुल्ले।			
	५६०	बाबू रामेश्वर प्रसाद	मोहम्मद। शाह। अब्दुल्ले ...	१	४७०	
	५६१	बाबू मुकुन्दलाल	मोहम्मद। शाहरुखान। जिम।	१	४७१	
			जिम। विजयराव। मयंकसिंह।			
			चौधरी। रामलाल			
	५६२	बाबू रामकुमार गुप्ता	मोहम्मद। का। बाबा। मोहम्मद।	१	४७२	
			ठाकुरपुर। ठाकुर।			
ओवर से	५६३	मोहम्मद शफ़ीक़	जॉनसीना। बाबा। मोहम्मद।	०	४७२	४७२
	५६४	पंडित लक्ष्मीनाथ	मोहम्मद। शाहरुखान। का।	१	४७३	
			मोहम्मद। बाबा। मोहम्मद।			
			अब्दुल्ले			
	५६५	चौधरी गुलजारीलाल	जिम। बाबा। मोहम्मद। जिम। पुत्र।	८	४८१	
	५६६	ठाकुर रामेश्वरसिंह	मुहम्मद। शाहरुखान। मोहम्मद।	४	४८५	
		बघेल ...	शाहरुखान। मोहम्मद।			
	५६७	शाहरुखान। मोहम्मद	बाबा। मोहम्मद। शाहरुखान।	२	४८७	
		शेषनाग ...	मोहम्मद। अब्दुल्ले ...			

(सर्वं प्रजापतेः प्रजाश्चक्रुम) अर्थात् सब मनुष्य लोगों को निश्चय करके जानना चाहिये कि हम लोग परमेश्वर की प्रजा हैं और यही एक हमारा राजा है (त्रीणि-राजाना) तीन प्रकार की सभाओं को राजा मानना चाहिये एक मनुष्य को कभी नहीं वे तीनों ये हैं प्रथम राज्य करने के लिये एक आर्य राजसभा कि जिसमें विशेष करके सब राज्यकार्य्य सिद्ध किये जावें. दूसरी आर्य विद्या सभा कि जिसमें सब प्रकार की विद्याओं का प्रचार होता जाय, तीसरी आर्य धर्म सभा कि जिसमें धर्म का प्रचार और अधर्म की हानि होती रहे इन तीन सभाओं से (विश्वे) अर्थात् युद्ध में (शुक्राणि परिक्षत्राणि भूषथः) सब शत्रुओं को जीत के नाना प्रकार के सुखों से विश्व को परिपूर्ण करना चाहिये ॥ १ ॥ (तवाय योनिरसि) हे राज्य के देनेवाले परमेश्वर आपही राज्य सुखके परम कारण हैं (तवस्य नाभिरसि) आप ही राज्य के जीवन हेतु हैं तथा क्षत्रियवर्ण के राज्य का कारण और जीवन सभा हो है (मान्वा हिꣳसीन्मामाहिꣳसीः) हे जगदीश्वर सब प्रजा आप को छोड़ के किसी दूसरे को अपना राजा कभी न मानें और आप भी हम लोगों को कभी मत छोड़िये किंतु आप और हम लोग परस्पर सदा आनन्द में रहें ॥ २ ॥ (यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च) जिस देश में उत्तम विद्वान् ब्राह्मण विद्यासभा और राजसभा विद्वान् शूरवीर क्षत्रिय लोग ये सब मिलके राजकार्यों को सिद्ध करते हैं वही देश धन्य और शुभ क्रियाओं से संयुक्त हो के सुख को प्राप्त होता है (यत्र देवाः सहाग्निना) जिस देश में परमेश्वर की आज्ञा पालन और अग्निहोत्रादि सत्क्रियाओं में वर्त्तमान विद्वान् होते हैं वही देश सब उपद्रवों से रहित होके अखंड राज्य को सिद्ध भोगता है ॥ ३ ॥

देवस्यत्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे रेवत्यै रासनायै गृह्णामि सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय ॥ इन्द्रस्येन्द्रियेण बलायाभिषिञ्चामि ॥ ४ ॥ कोऽसि कतमोऽसि कस्यै-त्वाकायत्वा । सुश्लोक सुमङ्गल सत्यराजन् ॥ ५ ॥ शिवो मे श्रीयशो मुखं त्विषिः केशाश्च श्मश्रूणि ॥ राजा मे प्राणो अमृतꣳ सम्राट् चक्षुर्विराट् श्रोत्रम् ॥ ६ ॥ य० अ० २० मं० ३ । ४ । ५ ॥

॥ आशीः ॥

(देवस्यत्वा सवितुः) हे सभाध्यक्ष स्वप्रकाशमानस्य सर्वस्य जगदुत्पादकस्य परमेश्वरस्य (प्रसवे) अस्यां प्रजायां (अश्विनोर्बाहुभ्यां) सूर्याचन्द्रमसोर्बाहुभ्यां बलवीर्याभ्यां (पूष्णो हस्ताभ्यां) पुष्टिकर्तुः प्राणस्य

ग्रहणदानाभ्यां (अश्विनोर्भैषज्येन) पृथिव्यन्तरिक्षौषधिसमूहेन सर्वरोगनिवारकेण सह वर्त्तमानं त्वां (तेजसे) न्यायादिसद्गुणप्रकाशाय (ब्रह्मवर्चसाय) पूर्णविद्याप्रचाराय (अभिषिंचामि) सुगंधजलैर्मूर्द्धन्यभिमार्जयामि तथा (इन्द्रस्येन्द्रियेण) परमेश्वरस्य परमैश्वर्येण विज्ञानेन च (बलाय) उत्तमबलार्थं (श्रियै) चक्रवर्तिराज्यलक्ष्मीप्राप्तये त्वां (यशसे) अतिशयितकीर्त्यर्थं च (अभिषिंचामि) राजधर्मपालनार्थं स्थापयामीश्वरोपदेशः ॥ ४ ॥ (क्षत्रमसि) हे परमात्मन् त्वं सुष्ठुस्वकृपयास्मानपि सुराज्येन सुखयुक्तान् करोतु (क्षत्रमेधि) त्वमत्यन्तानन्दयुक्तोऽसि । अस्मानपि राजसभाप्रबन्धेनात्यन्तानन्दयुक्तान्संपादय (कस्मैत्वा) अतो नित्यसुखाय त्वामाश्रयामः । तथा (कायत्वा) सुष्ठुराज्यप्राप्तये त्वामुपास्महे (सुश्लोक) हे सत्यकीर्ते (सुमंगल) हे सुष्ठुमंगलमयसुमंगलकारक (सत्यराजन्) हे सत्यप्रकाशक सत्यराज्यप्रदेश्वरास्मद्राजसभाया भवानेव महाराजाधिराजोऽस्तीति वयं मन्यामहे ॥ ५ ॥ सभाध्यक्ष एवं मन्येत (शिरोमेश्रीः) राजलक्ष्मीर्मम शिरोवत् (यशो मुखं) उत्तमकीर्तिर्मुखवत् (स्त्रियः केशाश्च पक्ष्माणि) सत्यन्यायदीप्तिः मम केशश्मश्रुवत् (राजामेप्राणाः) परमेश्वरः शरीरस्थो जीवनहेतुर्वायुश्च मम राजवत् (अमृतः सम्राट्) मोक्षाख्यं सुखं ब्रह्म वेदश्च सम्राट् चक्रवर्तिराजवत् (चक्षुर्विराट् श्रोत्रम्) सत्यविद्यादिगुणानां विविधप्रकाशकरणं श्रोत्रं चक्षुर्वत् । एवं सभासदोऽपि मन्येरन् । एतानि सभाध्यक्षस्य सभासदां चाङ्गानि सन्तीति सर्वे विजानीयुः ॥ ६ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(देवस्यत्वा सवितुः) जो कोई राजा सभाध्यक्ष होने के योग्य हो उस का हम लोग अभिषेक करें और उस से कहें कि हे सभाध्यक्ष आप सब जगत् के प्रकाशित और उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर की (प्रसवे) सृष्टि में प्रजापालन के लिये (अश्विनोर्बाहुभ्यां) सूर्य्य चन्द्रमा के बल और वीर्य्य से (पूष्णो हस्ताभ्यां) पुष्टि करनेवाले प्राण की ग्रहण और दान की शक्तिरूप हाथों से आप को सभाध्यक्ष होने में स्वीकार करते हैं (अश्विनोर्भैषज्येन) परमेश्वर कहता है कि पृथिवीस्थ और पृष्ठवायु इन औषधियों से दिनरात में सब रोगों से तुम को निवारण कर के (तेजसे) सत्यन्याय के प्रकाश, (ब्रह्मवर्चसाय) ब्रह्म के ज्ञान और विद्या की वृद्धि के लिये तथा (इन्द्रस्येन्द्रियेण) परमेश्वर के परमैश्वर्य और आज्ञा के विज्ञान से (बलाय) उत्तम सेना, (श्रियै) सर्वोत्तम लक्ष्मी और (यशसे) सर्वोत्तम कीर्त्ति की प्राप्ति के लिये मैं तुम लोगों को सभा करने की आज्ञा देता हूं कि यह आज्ञा राजा और प्रजा के प्रबंध के

करें हैं इस में सब मनुष्य लोग इस का यथावत् प्रचार करें ॥ ५ ॥ हे महाराजेश्वर आप (कौसि क्रतमोमि) सुखस्वरूप अत्यंत आनन्दकारक हैं हम लोगों को भी सब आनन्द में युक्त कीजिये (सुश्लोक) हे सर्वोत्तम कीर्त्ति के देने वाले तथा (सुमंगल) शोभनमंगलरूप आनन्द के करने वाले जगदीश्वर (सत्यराजन्) सत्यस्वरूप और सत्य के प्रकाश करने वाले हम लोगों के राजा तथा सब सुखों के देने वाले आप ही हैं (कल्पेत्थाजाप्रत्वा) इसी अत्यंत सुख, श्रेष्ठ विचार, और आनन्द के लिये हम लोगों ने आप का शरण लिया है क्योंकि इसी से हम को पूर्ण राज्य और सुख निस्सन्देह होगा ॥ ५ ॥ सभाध्यक्ष सभासद और प्रजा को ऐसा निश्चय करना चाहिये कि (शिरोमे श्रीः) श्री मेरा शिरस्थानी (यशो मुखं) उत्तम कीर्त्ति मेरा मुखवत् (त्विषिः केशाश्चक्षूंषि) सत्यपुरुषों का प्रकाश मेरे नेत्र और डाढ़ी मूछ के समान तथा (राजा मे प्राणः) जो ईश्वर सब का आधार और जीवन हेतु है वही प्राणवत् मेरा राजा (अमृतमंधाट्) अमृतस्वरूप जो इस और मोक्षसुख है वही मेरा सम्राट्वर्त्ती राजा तथा (वसोर्विराट् श्रोत्रम्) जो अनेक सत्यविद्याओं के प्रकाशयुक्त मेरा श्रोत्र है वही मेरा साक्ष है ॥ ६ ॥

बाहू मे बलमिन्द्रियमङ्गानि मे कर्मवीर्यम् । आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ७ ॥ पृष्टीर्मे राष्ट्रमुदरमंसौ ग्रीवाश्च श्रोणी । ऊरू अरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥ ८ ॥ य० अ० २० मं० ७ । ८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(बाहू मे बलं) यदुत्तमं बलं तन्मम बाहू स्तः (इन्द्रियमङ्गानि मे) शुद्धं शिक्षायुक्तं मनः आदिकं च मम यज्ञसाधनवत् (कर्मवीर्यम्) यदुत्तमपराक्रमाधारणं तन्मम कर्मवत् (आत्मा क्षत्रमुरो मम) यन्मम हृदयं तत् क्षत्रवत् ॥ ७ ॥ (पृष्टीर्मे राष्ट्रम्) यद्राष्ट्रं तन्मम पृष्ठभागवत् (उदरमंसौ) यौ दोनाकोशौस्तस्तत्कर्म मम हस्त मूलोदरवत् (ग्रीवाश्च श्रोणी) अत्यन्तायाः सुखेन भूषितपुरुषार्थिकरणं तत्कर्म मम नितंबांगवत् (ऊरू अरत्नी) यत्प्रजाया व्यापारे गणितविद्यायां च निपुणीकरणं तन्मम सोदरत्वंगवद्स्ति (जानुनी विशोमेऽङ्गानि सर्वतः) यत्प्रजाराजसभयोः सर्वथा ये लक्षणं तन्मम कर्म जानुवत् । यत्पूर्वोक्तानि सर्वाणि कर्माणि ममाश्रयवत् सन्ति । यथा स्वाङ्गेषु प्रीतिस्तत्पालने पुरुषस्य सदा भवति तथा प्रजापालने च स्वकीयाबुद्धिस्सर्वैः आर्य्यैति ॥ ८ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(बाहू मे बलं) जो पूर्ण बल है सो मेरी भुजा (इन्द्रियं हस्तौ) जो उत्तम कर्म और पराक्रम में युक्त इन्द्रिय और मन है वे मेरे हाथों के समान (आत्मा क्षत्रमुरो मम) जो राजधर्म शौर्य धैर्य और हृदय का ज्ञान है सो मेरे आत्मा के समान है ॥ ७ ॥ (पृष्ठीर्मे राष्ट्रं) जो उत्तम राज्य है सो मेरी पीठ के समतुल्य (उदरमंसौ) जो राज्य सेना और कोश है वह मेरे हस्त का मूल और उदर के समान तथा (श्रोणाश्च श्रोणी) जो प्रजा को सुख से भूषित और पुरुषार्थी करना है सो मेरे कंठ और श्रोणी अर्थात् नाभि के अधोभागस्थान के समतुल्य (ऊरू अरत्नी) जो प्रजा को व्यापार और गणित विद्या में निपुण करना है सोही अरत्नी और ऊरू अंग के समान तथा (जानुनी) जो प्रजा और राजसभा का मेल रखना यह मेरी जानु के समान है (विशो मेऽङ्गानि सर्वतः) जो इस प्रकार से प्रजापालन में उत्तम कर्म करते हैं वे सब मेरे अंगों के समान हैं ॥ ८ ॥

प्रतिक्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रतितिष्ठामि गोषु। प्रत्यङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन्नात्मप्राणेषु प्रतितिष्ठामि पुष्टे प्रतिष्ठावापृथिव्योः प्रतितिष्ठामि यज्ञे ॥ १० ॥ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳशूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳस्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११ ॥ ३० अ० २१ मं० १० । पृ० ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(प्रतिक्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे) अहं परमेश्वरो धर्मेण प्रतीतिक्षत्रे प्रतिष्ठितो भवामि विद्याधर्मप्रचारितेदेशे च (प्रत्यश्वेषु) प्रत्यश्वं प्रतिगां च तिष्ठामि (प्रत्यङ्गेषु) सर्वस्य जगतोऽङ्गमंगं प्रतितिष्ठामि तथा चात्मानमात्मानं प्रतितिष्ठामि (प्रतिप्राणे॰) प्राणं प्राणं प्रत्येवं पुष्टं पुष्टं पदार्थं प्रतितिष्ठामि (प्रति द्यावापृथिव्योः) दिवं दिवं प्रति पृथिवीं पृथिवीं प्रति च तिष्ठामि (यज्ञे) तथा यज्ञं यज्ञं प्रतितिष्ठाम्यहमेव सर्वत्र व्यापकोऽस्मीति। मामिष्टदेवं समाश्रित्य ये राजधर्ममनुसरन्ति तेषां सदैव विजयोऽभ्युदयो भवतः। अयं राजपुरुषैरस्मिन् प्रजापालने सर्वत्र न्यायविज्ञानप्रकाशो रक्षणीयो यतोऽन्यायाविद्या विनाशः स्यादिति ॥ १० ॥ (त्रातारमिन्द्र॰) यं विश्वस्य त्रातारं रक्षकं परमैश्वर्यवन्तं (सुहवꣳशूरमिन्द्रं) सुहवं शोभनयुद्धकारिणमत्यंतशूरम् जगतो राजानमनलाऽलबलं (शक्रं) शक्तिमंतं शक्तिप्रदं च (पुरुहूतं) बहुभिः शूरैः सुसेवितं (इन्द्रं) न्यायेन राज्यपालकं (इन्द्र-

इवेहवे) युद्धेयुद्धे स्वविजयार्थे । इन्द्रं परमात्मानं (हुवामि) आह्वयामि याचयामि (स्वस्तिनोमघवाधात्विन्द्रः) स परमधनवानिन्द्रः सर्वैश्वर्य-मानीश्वरः सर्वेषुराज्यसाध्येषु नो ऽस्मभ्यं स्वस्ति (धातु) निरन्तरं विजय सुखं दधातु ॥ ११ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(प्रतिक्षत्रे प्रतितिष्ठामि राष्ट्रे) जो मनुष्य इस प्रकार से उत्तम पुरुषों की सभा से न्याय पूर्वक राज्य करते हैं उन के लिये परमेश्वर प्रतिज्ञा करता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग धर्मात्मा होके न्याय से राज्य करो क्योंकि जो धर्मात्मा पुरुष हैं मैं उन के लक्ष्यमें और सब राज्य में प्रकाशित रहता हूं और वे सदा मेरे समीप रहते हैं ; अन्नपशुषु प्रतितिष्ठामि गोपु०) उन की सेना के अन्न और गौ आदि पशुओं में भी मैं स्वसत्ता से प्रतिष्ठित रहता हूं ; (अस्य-ङ्गेषु प्रतितिष्ठाम्यात्मन्) तथा सब सेना राजा के अंगों और उन के आत्माओं के बीच में भी सदा प्रतिष्ठित रहता हूं ; (प्रतिप्राणेषु प्रतितिष्ठामि पुष्टे) उन के प्राण और पुष्ट व्यवहारों में भी सदा व्याप्त रहता हूं (प्रतिद्यावापृथिव्योः प्रतिति-ष्ठामि यज्ञे) जितना सूर्यादि प्रकाशरूप और पृथिव्यादि अप्रकाशरूप जगत् तथा जो अश्वमेधादि यज्ञ हैं इन सब के बीच में भी मैं सर्वदा व्यापक होने से प्रतिष्ठित रहता हूं इस प्रकार से तुम लोग मुझ को सब स्थानों में परिपूर्ण देखो ॥ १० ॥ जिन लोगों की ऐसी निष्ठा है उन का राज्य सदा बढ़ता रहता है (शासारमिन्द्रं) जिन मनुष्यों को ऐसा निश्चय है कि केवल ऐश्वर्यशाली परमात्मा ही हमारा रक्षक है (अवित्ता) जो ज्ञान और आनन्द का देने वाला है (पुरुहूत-शूरमिन्द्रꣳहवेहवे) वही इन्द्र परमात्मा प्रति युद्ध में जो उत्तम युद्ध करानेवाला शूरवीर और हमारा राजा है (हुवामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं) जो अनन्त पराक्रम युक्त ईश्वर है जिस का सब ऋषि वेदादि शास्त्रों से प्रति-पादन और इष्ट करते हैं वही हमारा सब प्रकार से राजा है (स्वस्तिनो मघवा धात्विन्द्रः) जो इन्द्र परमेश्वर मघवा अर्थात् परम विज्ञानरूप धनी और हमारे लिये विजय आदि सब सुखों का देनेवाला है जिन मनुष्यों को ऐसा निश्चय है उन का पराजय कभी नहीं होता ॥

इमं देवा असपत्नꣳसुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय ॥ इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳराजा ॥ १२ ॥ य० अ० ९ मं० ४० ॥ इन्द्रो जयातिन पराजयाता अधिराजो राजसु राजयातै । चर्कृत्यईड्यो बभ्रुशेवोऽसदो वसुस्वो अभिह्वरेषु ॥ १३ ॥ त्वमिन्द्राधि-

राजः अवस्युत्वं भूरभिभूतिर्जनानाम् । त्वं दैवीर्विश इमा विराजा युष्मत्तुचमुजरेते अस्तु ॥ १४ ॥ अथर्व० कां० ६ अनु० १० व० ८८ । मं० । १ । २ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(देवाः) हे देवा विद्वांसः सभासदः (महते क्षत्राय) अतुलराजधर्माय (महते ज्यैष्ठ्याय) अत्यन्तज्ञानवृद्धव्यवहारस्थापनाय (महते जानराज्याय) जनानां विदुषां मध्ये परमराज्यकरणाय (इन्द्रस्येन्द्रियाय) सूर्य्यस्य प्रकाशवद्न्यायव्यवहारप्रकाशनाद्यान्यायान्धकारविनाशाय (अस्मै विशे) वर्त्तमानायै प्रजायै यथावत्सुखप्रदानाय (इमं) (असपत्नंसुवध्वम्) इमं प्रत्यक्षं शत्रुत्वरहितं निष्कंटकमुत्तमराजधर्मं सुवध्वमाधिध्वमैश्वर्य्यसहितं कुरुत यूयमप्येवं जानीत (सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानांराजा) वेदविदां सभासदां मध्ये यो मनुष्यः सोम्यगुणसंपन्नः सकलविद्यायुक्तोस्ति स एव सभाध्यक्षत्वेन स्वीकृतः सन् राजास्तु । हे सभासदः (अमी) ये प्रजास्थामनुष्याः सन्ति तान्प्रत्यप्येवमाज्ञाप्याः (वयंराजा) अस्माकं ये युष्माकंचसभासत् केयं राजसभाव्यवहार एव राजास्तीति । यत्सद्यं वयं (इममसुष्यपुत्रमसुष्यै पुत्रं) प्रख्यातनाम्नः पुरुषस्य प्रख्यातनाम्न्याः स्त्रियाश्च संतानमभिदित्याध्यक्षत्वे स्वीकुर्म्महति ॥ १२ ॥ (इन्द्रो जयाति) स एवेन्द्रः परमेश्वरः सभाध्यक्षो वा जयाति विजयोत्कर्षं सदा प्राप्नोतु (न पराजयाते) सभाकदाचित्पराजयं प्राप्नोतु (अधिराजो राजसु राजयाति) स राजाधिराजोविश्वस्येश्वरः सर्वेषु चक्रवर्तिराजसु माण्डलिकेषु वा स्वकीयसत्यप्रकाशन्यायेन सहास्माकं मध्ये सदा प्रसिध्यतात् । (चकृत्यः) यो जगदीश्वरः सर्वैर्मनुष्यैः पुनः पुनरुपासनायोग्योस्ति (ईड्यः) अस्माभिः स एवैकः स्तोतुं योग्यः (वन्द्यश्च) पूजनीयः (उपसद्यः) समाश्रयितुं योग्यः (नमस्यः) नमस्कर्तुं योग्योस्ति (भवेह) हे महाराजेश्वर त्वमुत्तमप्रकारेणास्मिन् राज्ये सत्कृतो भव (भवत्सत्कारेण सह वर्त्तमानायमध्यस्मिन् चक्रवर्तिराज्ये सदा सत्कृता भवेम) ॥ १३ ॥ (त्वमिन्द्राधिराजः अवस्युः) हे इन्द्र परमेश्वर त्वं सर्वस्य जगतोधिराजोसि अवद्यधावरतीति सर्वस्य रक्षा च स्वकृपया मामपि तादृशं कुरु (त्वं भूरभिभूतिर्जनानाम्) हे भगवन् त्वं भूः सदा भवसि यथा जनानामभिभूतिरभीष्टस्यैश्वर्य्यस्य दातासि तथा मामप्यनुग्रहेण करोतु (त्वं दैवीर्विश इमा विराजाः) हे जगदीश्वर यथा त्वं दिव्यगुणसंपन्ना विविधेतत्पराजणा-

सिता: प्रत्यक्षविद्यया प्रजाः सत्यन्यायेन पालयसि तथा सामपि कुरु (युष्मत्त्वमस्मदरं ते अस्तु) हे महाराजाधिराजेश्वर सभ यदिदं सनातने राजधर्मयुक्तं नाशरहितं विश्वरूपं राष्ट्रमस्ति तदिदं अस्मदुत्तममस्माकमस्त्विति याचितः सन्नाशीर्ददात्वीदं मदधिनं भूगोलाख्यं राष्ट्रं युष्मदधीनमस्तु ॥ १४ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(इमं देवा असपत्न०) अब ईश्वर सब मनुष्यों को राज्यव्यवस्था के विषय में आज्ञा देता है कि हे विद्वान् लोगो तुम इस राज धर्म को यथावत् जानकर अपने राज्य का ऐसा प्रबंध करो कि जिससे तुम्हारे देश पर कोई शत्रु न आ जाय (मरुतः सजात०) हे शूरवीर लोगो अपने सदृश धर्म चक्रवर्ति राज्य श्रेष्ठ कीर्ति सर्वोत्तम राज्य प्रबंध के अर्थ (मरुत्तेजान राज्याय) सब प्रजा को विद्वान् करके ठीक २ राज्यव्यवस्था में चलाने के लिये तथा (इन्द्रस्येन्द्रियाय) बड़े ऐश्वर्य्य सत्य न्याय के प्रकाश करने के अर्थ (सुवध्वं) अच्छे २ राज्य संबंधी प्रबंध करो कि जिनसे सब मनुष्यों को उत्तम सुख बढ़ता जाय ॥ १२ ॥ (वन्दो जयाति) हे बंधु लोगो जो परमात्मा अपने लोगों का विजय कराने वाला (न पराजयाता) जो हम को दूसरों से कभी हारने नहीं देता (अधिराजो) जो महाराजाधिराज (राजसु राजयाते) सब राजाओं के बीच में प्रकाशमान होकर हमको भी भूगोल में प्रकाशमान करने वाला है (चर्षणयः) जो आनन्द स्वरूप परमात्मा सब जगत् को सुखों से पूर्ण करने हारा तथा (देवो वनस्पतिः) सब मनुष्यों को स्तुति और वंदना करने के योग्य (उपप्रयो नमस्यः) सबको शरण लेने और नमस्कार करने के योग्य है (भवेह) सोही जगदीश्वर तुमारा विजय कराने वाला रक्षक न्यायाधीश और राजा है इसलिये हमारी यह प्रार्थना है कि हे परमेश्वर आप कृपा करके हम सबों के राजा हूजिये और हम लोग आप के पुत्र और भृत्य के समान राज्याधिकारी हों और आप के राज्य को सत्यन्याय से सुशोभित करें ॥ १३ ॥ (त्वमिन्द्राधिराजः सबभूः) हे परमेश्वर आप ही सब संसार के अधिराज और आर्यों के समान सत्य-न्याय के उपदेशक (त्वं भूरभिभूतिजेषानाय) आप ही सदा निश्चयस्वरूप और धर्मात्मा मनुष्यों को राज्य ऐश्वर्य्य के देने वाले (त्वं दैवीर्विश इमा विराजाः) आप ही इन विविध प्रजाओं को सुधारने और दुष्ट राजाओं का युद्ध में पराजय कराने वाले हैं (युष्मत्तन्नमदरं ते अस्तु) हे जगदीश्वर आप का राज्य नित्य तरुण बना रहे कि जिससे सब संसार का विविध प्रकार का सुख मिले इस प्रकार जो मनुष्य अपने सत्य प्रेम और पुरुषार्थ से ईश्वर की भक्ति और इसकी आज्ञा पालन करते हैं उन को वह आशीर्वाद देता है कि मेरे रचे हुए भूगोल का राज्य तुम्हारे आधीन हो ॥ १४ ॥

स्थिरार्थः सन्त्वायुधपराणुदेहीळ इत्प्रतिष्कभे । युष्माकमस्तु तविषीपनोऽसीमा मर्त्यस्य मायिनः ॥ १५ ॥ ऋ० अ० १ अ० ३ व० १८ मं० २ ॥ तं सभाच सभिनश्च सेनाच ॥ १६ ॥ अथर्व० कां० १५ अनु० २ व० ९ मं० २ ॥ इमं वीरमनुहर्षध्वमुग्रमिन्द्रं सखायो अनुसंरभध्वम् । ग्रामजितं गोजितं वज्रबाहुं जयन्तमजं प्रमृणन्तमोजसा ॥ १७ ॥ अथर्व० कां० ६ अनु० १० व० ८७ मं० २ ॥ सभ्यसभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः । त्वयेन्द्राः पुरुहूत विश्वमायुर्व्यश्नवम् ॥ १८ ॥ अ० कां० १९ अनु० ७ व० ५५ मं० ६ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(स्थिरार्थः०) अस्यार्थेप्रार्थनाविषयउक्तः ॥ १५ ॥ (तं सभा च) राजसभा प्रजाच तं पूर्वोक्तं सर्वराजाधिराजं परमेश्वरं तथा सभाध्यक्षमभिषिच्य राजानं मन्येत (समितिश्च) तमनुष्ठित्यैव समितिर्युद्धमाचरणीयम् (सेनाच) तथा वीरपुरुषाणां या सेना सापि परमेश्वरं स सभाध्यक्षां सभां सत्सेनानीं चानुधित्य युद्धं कुर्य्यात् ॥ १६ ॥ ईश्वरः सर्वान्मनुष्यान्प्रत्युपदिशति (सखायः) हेसखायः (इमं वीरमुग्रमिन्द्रं) शत्रूणां हन्तारं युद्धकुशलं निर्भयं सेनास्थितं प्रतिराजपुरुषं सधेन्द्रं परमैश्वर्य्यवन्तं परमेश्वरं (अनुहर्षध्वं) सर्वे यूयमनुमोदध्वमेवं कृत्वैव दुष्टशत्रूणां पराजयाय (अनुसंरभध्वं) युद्धारम्भं कुरुत कार्यमूलं तं (ग्रामजितं) येन पूर्वे शत्रूणां समूहा जिताः (गोजितं) येनेन्द्रियाणि पृथिव्यादिकं च जितं (वज्रबाहुं) वज्रः प्रशस्तबलं बाहुर्यस्य (जयन्तं) जयं प्राप्नुवन्तं (प्रमृणन्तमोजसा) ओजसा बलेन शत्रून् प्रकृष्टतया हिंसन्तं (अजं) वयं समाश्रित्य सदा विजयं प्राप्नुमः ॥ १७ ॥ (सभ्यसभां मे पाहि) हे सभायां साधो परमेश्वर मे मम सभां यथावत् पालय । सदस्यस्मच्छब्दनिर्देशात्सर्वान्मनुष्यानिदंवाक्यं गृह्णातीति (ये च सभ्याः सभासदः) ये सभाकर्मसु साधवश्चतुराः सभायां सीदन्ति ते अस्माकं पूर्वोक्तां त्रिविधां सभां पान्तु यथावदुचन्तु (त्वयेन्द्राः-पुरुहूत) हे बहुभिः पूजित परमात्मन् त्वया सहये सभाध्यक्षाः सभासदश्चतुरं राजधर्मज्ञानं गच्छन्ति तथैव सुखं प्राप्नुवन्ति ॥ (विश्वमा-

भुर्वीश्चवस्) यत्सं सभाषालिसोहं सर्वोजनः शत्रवाधिकं हुलयुद्धमायुः प्रायुयाङ् ॥ ५८ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(स्थिराः सन्त्वायुधा०) इस मंत्र का अर्थ प्रार्थनादि विषय में कर दिया है ॥ १५ ॥ (ते सभाश) इस लिये सब सभासद् सब राजाओं को राजा परमेश्वर को जान के सब सभाओं में सभाध्यक्ष का अभिषेक करें (सांमतिनम्) सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर और सर्व एकरस धर्म का ही आश्रय करके युद्ध करें तथा (सेना च) जो सेना सेनापति और सभाध्यक्ष हैं वे सब सभा के आश्रय से विचारपूर्वक उत्तम सेना को बना के सदैव प्रकाशमान और युद्ध करें ॥ १६ ॥ ईश्वर सब मनुष्यों को उपदेश करता है कि (सखायः) हे बन्धु लोगो (इमं वीरं) हे शूरवीर लोगो न्याय और वृद्ध भक्ति से अनन्त बलवान् परमेश्वर को स्तुत करो (अनुहर्षध्वं) शूरवीर लोगों को सदा आनन्द में रक्खो। (उग्रमिन्द्रं) तुमलोग अत्यन्त उग्र परमेश्वर के सहाय से एक सम्मति होकर (अनुसंरभध्वं) दुष्टों को युद्ध में जीतने का उपाय रचा करो (यःमिश्रितं) जिसने सब शूरोंको तथा (गोजितं) सब के मन और इन्द्रियों को जीत रक्खा है (बाहुशर्धानं) बाहु जिस के बाहु और (जयन्तं) जो हम सब को जिताने वाला है (उग्रं) उसी को स्तुत्य जान के हम लोग अपना राजा मानें (भक्षणमोजसा) जो अपने अनंत पराक्रम से दुष्टों का पराजय करके हम को सुख देता है ॥ १७ ॥ (सभ्यसभां मे पाहि) हे सभा के योग्य परमेश्वर आप हम लोगों की राजसभा की रक्षा कीजिये (ये ते सभ्याः सभासदः) हम लोग जो सभा के सभासद हैं सो आप की कृपा से सभ्यता युक्त होकर सर्वदा एकरस से सत्य न्याय की रक्षा करें (त्वयेदृतः पुरुहूत०) हे सबके उपास्य देव (विश्वमायुरशीय-स्वयम्) हम लोग आपही के सहाय से आप की आज्ञा को पालन करते रहें जिससे संपूर्ण आयु को सुख से भोगें ॥ १८ ॥

जानिष्ठा उग्रः सहसे तुरायेति सूक्तमुग्रवत्सच स्वात्मरक्षण रूपं मन्त्र ओजिष्ठ इत्योजस्वत्सत्यस्य रूपम् ॥ १ ॥ बृहत्पृष्ठं भवति वज्रं वै बृहत्तेनैव तत्सत्रं समर्धयत्यथोवज्रं वै बृहद्वज्रेणा यजमानस्य निष्टेवर्त्यं तद्बृहत्पृष्ठं भवति ॥ २ ॥ ब्रह्म वै रथन्तरं क्षत्रं बृहद्ब्रह्मणि खलु वै क्षत्रं प्रतिष्ठितं क्षत्रे ब्रह्म ॥ ३ ॥ ओजोवा इन्द्रियं वीर्यं पंचदश ओजः क्षत्रं वीर्यं राजन्यस्यैवौजसा क्षत्रे ॥ वीर्यं ॥ समर्धयति तद्वारद्वाजं भारद्वाजं वै बृहत् ॥ ४ ॥ ऐ० पं० ८ कं० ६ । ३ । तानाह मनुराज्याय साम्राज्याय भौज्याय स्वा-

राज्याय वैराज्याय पारमेष्ठ्याय राज्याय माहाराज्यायाधिपत्याय स्वावश्यायान्तिष्ठायां रोहामीति ॥ ५ ॥ नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मणे नमो ब्रह्मण इति विष्कृत्वो ब्रह्मणे नमस्करोति । ब्रह्मण एव तत्क्षत्रं वशमेति तद्यत्र वै ब्रह्मणः क्षत्रं वशमेति तद्राष्ट्रं सप्तहं तद्दीरव-दाशास्मिन् वीरो जायते ॥ ६ ॥ ऐ० पंचि० ८ । कं० ६ । ७ ॥

॥ भाष्यम् ॥

इयं राजधर्मव्याख्या वेदरीत्या संक्षेपेण लिखिता अतोऽग्रे शतपथब्राह्मणादिग्रन्थरीत्या संक्षेपतो लिख्यते । तद्यथा । (अनिष्ठा उग्रः०) राजसभायां अनिष्ठाः अतिशयेन जना विद्वांसो धर्मात्मानः श्रेष्ठगुणकर्मस्वभावान् मनुष्यान्प्रति सदा सुखदास्सोम्या भवेयुः । तथा दुष्टान्प्रत्युग्रोऽयमहारो यार्य्यहति कुलो यद्राजकर्म्मास्ति तद्विविधं भवत्येकं सहस्थदृद्वितीयमुप-शमदर्शात्कचिद्वैषकालवस्त्वनुसारेण सहनं कर्त्तव्यम् । क्वचित्तद्विपर्य्यये राजपुरुषैर्दुष्टेषूद्वेगो निपातनीयश्चैतत्क्षत्रस्यधर्मस्यस्वरूपं भवति तथा (मन्द्र चोजिष्ठः०) उन्मत्तकनेकारिभ्य आनन्दकरो दुष्टेभ्यो दुःखप्रदश्चात्यु-त्तमधीरपुरुषसेनादिपदार्थसामग्र्यासहितो यो राजधर्मोस्ति सच क्षत्रस्य स्वरूपमस्ति ॥ ४ ॥ (बृहन्पृष्ठं०) यत्क्षत्रं कर्म तत्सर्वेभ्यः कृत्येभ्यो बृह-न्महदस्ति तथा पृष्ठ्यर्थान्निर्वेलानां रक्षकं सत् पुनरुत्तममुत्तमकारकं भवति । एतेनोक्तेन च क्षत्रराजकर्म्मणा मनुष्यो राजकर्म्म वर्द्धयति नासौ अन्यथा क्षत्रधर्मस्य वृद्धिर्भवितुमर्हति । तस्मात्क्षत्रं सर्वस्मात्कर्मणो बृहद्यजमानस्य प्रजास्थस्य जनस्य राजपुरुषस्य चात्मात्मवदानन्दप्रदं भवति तथा सर्वस्य संसारस्य निष्क्लेशत्वं निरंतरं केवलसुखं संपादयितुं यतः समर्थं भवति त-स्मात्क्षत्रकर्म सर्वेभ्यो महत्तरं भवतीति ॥ ३ ॥ (ब्रह्मवै रथन्तरं०) ब्रह्म-शब्देन सर्वविद्यायुक्तो ब्राह्मणवर्णो गृह्यते तस्मिन् खलु क्षत्रधर्मः प्रतिष्ठितो भवति नैव कदाचित्सत्यविद्यायाविना क्षत्रधर्मस्य वृद्धिरक्षणे भवतः तथा (क्षत्रे ब्रह्म) राजन्ये ब्रह्मा ऽर्थात् सत्यविद्याप्रतिष्ठिता भवति । नैवास्माद्विना कदाचिद्विद्याया वृद्धिरक्षणे संभवतस्तस्माद्विद्या राजव्यहारो मिलित्वैव राष्ट्रसुखोन्नतिं कर्तुं शक्नुतइति ॥ २ ॥ (ओजो वा इन्द्रियं०) राजपुरुषैर्बलपराक्रमवत्सेन्द्रियाणि सदैव रक्षणीयान्यर्थः-जितेन्द्रियतयैव सदैव वर्त्तितव्यम् । कुत ओजएव क्षत्रं वीर्य्यमेव

राजन्यस्यत्युत्तरत्वात् । सतस्यादोजसा बलेन वीर्य्येण राजन्येनेनं राजधर्मे मनुष्यः समर्द्धयति सर्वैस्तुष्टैरेधमानं क्षत्रोदयेव भारद्वाजं सरणीयं बृहदर्थान्महत्कर्मास्तीति ॥ ४ ॥ (सानाह मनुराज्याय०) सर्वे मनुष्या शक्तिमिच्छां कृत्वा पुरुषार्थं कुर्युः । परमेश्वरानुग्रहेणाहमनुराज्याय सभाध्यक्षत्वप्राप्तये तथा माण्डलिकानां राज्ञामुपरि राजसभाप्राप्तये (साम्राज्याय) सार्वभौमराजशब्दार्थाय (भौज्याय) धर्मन्यायेन राज्यपालनायोत्तमभोगाय च (स्वाराज्याय) स्वस्मै राज्यप्राप्तये (वैराज्याय) विविधानां राज्ञांमध्ये महत्त्वेन प्रकाशाय (पारमेष्ठ्याय) परमराज्यस्थितये (माहाराज्याय) महाराज्यसुखभोगाय तथा (आधिपत्याय) अधिष्ठातृत्वकरणाय (स्वावश्याय) स्वार्थप्रजावशत्वकरणाय च । (आतिष्ठायां) यत्पुनरयं विद्वांसमतिष्ठन्ति यस्यां सा आतिष्ठा तस्यां सर्वैर्गुणैः सुखैश्च रोहाम्यहं वर्द्धमानो यशसामीति ॥ ५ ॥ (नमो ब्रह्मणे०) परमेश्वराय स्वाधीनं चतुर्थेरं सदा नमस्कृत्य राजकर्मारम्भं कुर्य्यात् । यत् खलु ब्रह्मणः परमेश्वरस्य बलमेति तद्धृवं सद्धृवं सम्यक् वर्द्धियुक्तं वीरवद् भवति । तस्मिन्नेव राष्ट्रे वीरपुरुषो जायते नान्यत्रेत्याह परमेश्वरः ॥ ६ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

इस प्रकार वेदरीति से राजा और प्रजा के धर्म संक्षेप से कह चुके इस के आगे वेद की सनातन व्याख्या जो सेनापति और शतपथब्राह्मणादि ग्रंथ हैं उन की साक्षी भी यहां लिखते हैं (जानिष्ठाः क्षत्रः) राजाओं की सेना और सभा में जो पुरुष हों, वे सब दुष्टों पर तेजधारी श्रेष्ठों पर ज्ञानरूप सुख दुःख के सहन करने वाले और धन के लिये अत्यंत पुरुषार्थी हों क्योंकि दुष्टों पर क्रूर स्वभाव और श्रेष्ठों पर सहनशील होना यही राज्य का स्वरूप है ॥ १ ॥ (मन्द्र जानिष्ठ०) जो आनंदित और पराक्रम युक्त होना है यही राज्य का स्वरूप है क्योंकि राजपरिवार सब से बड़ा है इस में शूर और आदि गुणयुक्त पुरुषों की सभा और सेना रख कर अच्छी प्रकार राज्य को बढ़ाना चाहिये ॥ २ ॥ (ब्रह्मणे स्वस्तरं०) ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर और वेदविद्या से युक्त जो पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण है यही राज्य की सर्वथा में सुख प्राप्ति का हेतु होता है इस लिये अच्छे राज्य के होने यही सत्यविद्या प्रकाश को पास होती है । उत्तम विद्या और न्याय युक्त राज्य का नाम ओज है जिस को दुःख के भय से उल्लंघन वा अन्यथा कोई नहीं कर सकता क्योंकि ओज अर्थात् बल का नाम सत्य और पराक्रम का नाम राजन्य है ये दोनों जब परस्पर मिलते हैं तभी संसार की उन्नति होती है इस के होने और परमेश्वर की कृपा से मनुष्य के राजकर्म चक्रवर्त्ति राज्य, भोग का राज्य, स्वपना राज्य, विविध राज्य, परमेष्ठि राज्य, ब्रह्मरूप राज्य, महा राज्य, राजों का अधिपतित्व

राज्य, और अपने सदृश का राज्य वर्त्यादि उत्तम २ सुख बढ़ते हैं इस लिये उस परमात्मा को मेरा बारंबार नमस्कार है कि जिस के अनुग्रह से हम लोग इन राज्यों के अधिकारी होते हैं ॥ ८ ॥

स प्रजापतिका० अयं वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतम इममेवाभिषिंचा सहा इति सहैतदिन्द्रमेव ॥ ७ ॥ सम्राजं साम्राज्यं भोजं भोज्यिनरं स्वराजं स्वाराज्यं विराजं वैराज्यं राजानं राज्यिनरं परमेष्ठिनं पारमेष्ठ्यं चषमजनि चर्चियेऽजनि विश्वस्य भूतस्याधिपति रजनि विशामत्ता जनि पुरांभेत्ता जन्यसुराणां हन्ता जनि ब्रह्मणो गोप्ता जनि धर्मस्य गोप्ता जनीति । ऐ० पं० ८ कं० १२ ॥ स परमेष्ठी प्राजापत्यो ऽभवत् ॥ ८ ॥ ऐत० पं० ८ कं० १५ ॥ स एतेनैन्द्रेण महाभिषेकेणाभिषिक्तः क्षत्रियः सर्वा जितीर्जयति सर्वान् लोकान् विंदति सर्वेषांराज्ञां श्रेष्ठ्यप्रतिष्ठां परमतां गच्छति साम्राज्यं भौराज्यं स्वाराज्यं वै राज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं माहाराज्यमाधिपत्यं जित्वास्मिंल्लोके स्वयंभूः स्वराडक्षुतो ऽमुस्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्नामृतः संभवति यमेतेनैन्द्रेण महाभिषेकेण क्षत्रियं शापयित्वा ऽभिषिंचति ॥ ९ ॥ ऐत० पं० ८ कं० १९ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(स प्रजापतिका०) सर्वे सभासदः प्रजास्थमनुष्याः स्वामिनेष्टेन पूज्यतमेन परमेश्वरेणैव सह वर्त्तमाना भवेयुः । सर्वे मिलित्वैवं विचारं कुर्युर्यतो न कदाचित्स्वस्वहानिपराजयौ स्याताम् । यो देवानां विदुषांमध्ये (ओजिष्ठः) पराक्रमयुक्तमः (बलिष्ठः) सर्वोत्कृष्टबलसहितः (सहिष्ठः) अतिशयेन सहनशीलः (सत्तमः) सर्वैर्गुणैरत्यन्तश्रेष्ठः (पारयिष्णुतमः) सर्वेभ्यो दुष्टादिदुःखेभ्यो ऽतिशयेन सर्वोत्तारयितृतमोविजयकारकतमोऽस्माकं मध्ये श्रेष्ठतमोऽस्तीति यं निश्चित्य तमेव पुरुषमभिषेचाम इतीच्छेयुः । तथैव खल्वस्तिष्ठति सर्वे इति जानीयुरेवं भूतस्योत्तमपुरुषस्याभिषेककरणं सर्वैश्वर्य्यप्रापकत्वादिन्द्रमित्याहुः ॥ ७ ॥ (सम्रा-

र्वभौमराजानं (साम्राज्याय) सार्वभौमराज्ये (भौजाय) उत्तमभोगवत्यर्थं (भौज्यपितरं) उत्तमभोगानां रक्षकं (स्वाराजे) राजकर्मसु प्रकाशमानं सद्विद्यादिगुणैरभ्युदयाय देदीप्यमानं (स्वाराज्याय) स्वकीयराज्यपालनं (वैराजाय) विविधानां राज्ञां प्रकाशकं (वैराज्याय) विविधराजप्राप्तिकरं (राजानं) सर्वैश्वर्य्येण प्रकाशमानं (राजपितरं) राज्ञां रक्षकं (परमेष्ठिने) परमोत्कृष्टराज्ये स्थापयितुं योग्यं (पारमेष्ठ्याय) परमेष्ठिगुणयुक्तं सर्वोत्कृष्टं पुरुषं वयमभिषिंचामहे । यदभिषिक्तस्य पुरुषस्य पुत्रपशूनां क्षत्रमजनि प्रादुर्भवतीति । अजनीति छन्दसिलुङ् लङ्लिट् र्लुटि धर्त्तमानकाले लुङ् (क्षत्रियो जनि) तथा क्षत्रियो वीरपुरुषः (विशः०) सर्वस्य प्राणिमात्रस्याधिपतिः सभाध्यक्षः (विशामत्ता०) दुष्टप्रजानाशका विनाशकः (पुरांभे०) शत्रूणां पुराणां विनाशकः (असुरहन्ता) दुष्टानां हन्ता हननकर्त्ता (ब्रह्मणो०) वेदस्य रक्षकः (धर्मस्य गो०) धर्मस्य च रक्षकः। जनि प्रादुर्भवतीति (स परमेष्ठी प्रा०) स राजधर्मः सभाध्यक्षादिमनुष्यैः (प्राजापत्यः) अर्थात् परमेश्वरेण कृतः करणीयः । स तद्विज्ञेयः कैश्चिन्मनुष्यैरेतुं योग्योभवति सर्वे मनुष्याः परमेश्वरपूजकाभवेयुः ॥ ८ ॥ यो मनुष्यो राज्यं कर्त्तुमिच्छेत्स (एतेनैन्द्रेण०) पूर्वोक्तेन सर्वैश्वर्य्याभिनिमित्तेन (महाभिषेकेणा०) अभिषिक्तः स्वीकृतः (क्षत्रियः) क्षत्रधर्मवान् (सर्व०) सर्वेषु शत्रुषु जयति सर्वं विजयं तथा सर्वानुत्तमान्लोकांश्च विन्दति प्राप्नोति सर्वेषां राज्ञां मध्ये श्रेष्ठं सर्वोत्तमत्वं पूर्वोक्तामनिष्टां या परेषु शत्रुषु विजयेन दुर्वनिमित्ता तथा परेषां शत्रूणां दीनत्वनिमित्ता सा परमनाशमा तां वा गच्छति प्राप्नोति तथा सत्यया पूर्वोक्तं साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं महाराज्यमाधिपत्यं राज्यं च जित्वाऽस्मिन् लोके मनुष्ये सार्वभौमो महाराजाधिराजो भवति तथा शरीरं त्यक्त्वामुष्मिन्स्वर्गे सुखस्वरूपे लोके परब्रह्मणि स्वयंभूः स्वार्थेनः (स्वराट्) स्वप्रकाशः (अमृतः) प्रापयोवसुजः सन्सर्वान्कामान्प्राप्नोति (आप्नामृतः) पूर्णोऽक्षोऽजरामरः संभवति (परमेनैन्द्रेण) एतेनोक्तेन सर्वैश्वर्य्येण (शापयित्वा) प्रतिज्ञां कारयित्वा सकलगुणोत्कृष्टं क्षत्रियं (महाभिषेक०) अभिषिंचेति सभासदः सभायां स्वीकुर्वंति तस्य राष्ट्रे कदाचिदनिष्टं न प्रसक्ष्यतइति विज्ञेयम् ॥ ९ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

तो उस अर्थात् राज्य परमेश्वर आर्यों और विद्वानों के प्रबंध में होता है यह सब सुखकारक पदार्थ और वीरपुरुषों से अत्यंत प्रकाशित होता

है (स प्रजापतिरका०) और वे विद्वान् एक अद्वितीय परमेश्वर ही की उपासना करते हैं क्योंकि वही एक परमात्मा सब देवों के बीच में अनंत विद्यायुक्त और अपार बलवान् है तथा अत्यंत सहन स्वभाव और सब से उत्तम है वही हम को सब दुःखों के पार उतार के सब सुखों को प्राप्त करानेवाला है उसी परमात्मा को हम लोग अपने राज्य और सभा में अभिषेक करके अपना न्यायकारी राजा सभा के लिये मानते हैं तथा जिस का नाम इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्य युक्त है वही हमारा सम्राट् अर्थात् चक्रवर्त्ती राजा और वही हम को भी चक्रवर्त्ति राज्य देनेवाला है जो पिता के सदृश सब प्रकार से हमारा पालन करनेवाला स्वराट् अर्थात् स्वयं प्रकाशस्वरूप और प्रकाशरूप राज्य का देनेवाला है तथा जो विराट् अर्थात् सबका प्रकाशक विविध राज्य का देने वाला है उसी को हम राजा और सब राजाओं का पिता मानते हैं क्योंकि वही परमेष्ठी सर्वोत्तम राज्य का भी देनेवाला है ॥ उसी की कृपा से मैं ने राज्य को प्रसिद्ध किया अर्थात् मैं क्षत्रिय और सब प्राणियों का अधिपति हुआ तथा प्रजाओं का संयम दुष्टों के नगरों का भेदन असुर अर्थात् चोर डाकुओं का ताड़न क्षत्र अर्थात् वेद विद्या का पालन और धर्म की रक्षा करनेवाला हुआ हूं । जो क्षत्रिय इस प्रकार के गुण और सत्य कर्मों से अभिविक्त अर्थात् युक्त होता है वह सब शत्रुओं को जीत लेता है तथा सब उत्तम सुख और लोकों का अधिकारी बन कर सब राजाओं के बीच में अत्यंत उत्तमता को प्राप्त होता है जिस से इस लोक में चक्रवर्त्ति राज्य और लक्ष्मी को भोग के मरणानंतर परमेश्वर के समीप सब सुखों को भोगता है क्योंकि ऐन्द्र अर्थात् महा ऐश्वर्ययुक्त अभिषेक से क्षत्रिय को प्रतिज्ञापूर्वक राज्याधिकार मिलता है इसलिये जिस देश में इस प्रकार का राज्यप्रबंध किया जाता है वह देश अत्यंत सुख को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

क्षत्रं वै स्रि ष्टक्॥ क्षत्रं वै साम ॥ साम्राज्यं वै साम ॥ शा० कां० १२ अ० ८ ॥ ब्रा० २ ॥ ब्रह्म वै ब्राह्मणः क्षत्रꣳ राजन्यस्तदस्य ब्रह्मणा च क्षत्रेण चोभयतः श्रीः परिगृहीता भवति । युद्धं वै राजन्यस्य वीर्य्यम् शा० कां० १३ । अ० १ । ब्रा० ५ ॥ राष्ट्रं वा अश्वमेधः ॥ शा० कां० १३ । अ० १ । ब्रा० ६ ॥ राजन्य एव शौर्य्यं महिमानं दधाति तस्मात्पुरा राजन्यः शूर इषव्योति व्याधी मतारयो जघ्ने । शा० कां० १३ अ० १ ॥ ब्रा० ९ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(क्षत्रं वै०) क्षत्रमर्थाद्राजसभाप्रबंधे यद्यथावत्प्रजापालनं क्रियते

तदेव स्विष्टकृदर्थादिग्रसुखकारि (सत्यं वै साम०) यद्वै दुष्टकर्मणामन्तकारि तद्वा सर्वस्याः प्रजायाः सांत्वप्रयोगकर्तृ च भवति (साम्राज्यं वै०) तदेव श्रेष्ठं राज्यं धर्मयन्ति (ब्रह्म वै०) ब्रह्मार्थाद्वेदं परमेश्वरं च वेत्ति स एव ब्राह्मणो भवितुमर्हति । (क्षत्र०) यो जितेन्द्रियो विद्वान् शौर्यादिगुणयुक्तो महाशौर्यपुरुषः क्षत्रधर्मं स्वीकरोति स राजन्यो भवितुमर्हति । (तदस्य ब्रह्मणा०) तादृशैर्ब्राह्मणो राजन्यैश्च सहास्य राष्ट्रस्य सभासदः सोराज्यलक्ष्मीः सहितः सर्वतो गृहीता भवति नैवं राजधर्मोज्झितेभ्यः श्रियः कदाचिद्वासान्यत्वं भवतः । (युद्धं वै०) यच्चेदं वै व्यं युद्धकरणमेव राजन्यस्य वीर्यं बलं भवति नानेन विना महाधनसुखयोः कदाचित्प्राप्तिर्भवति । कुतः । निघं० अ० २ खं० १७ । संग्रामस्यैव महाधनसंज्ञत्वात् । महान्ति धनानि प्राप्नोति यस्मिन्स महाधनः संग्रामो वाऽस्माद्विना तादृशी महती प्रतिष्ठा महाधनं च प्राप्नुतः । (राष्ट्रं वा अश्वमेधः) राष्ट्रपालनमेव क्षत्रियाणामश्वमेधाख्यो यज्ञो भवति चाश्वं हत्वा तद्वालं होमकरणं वेत्ति ॥ (राजन्य ब्रह्म०) पुरा पूर्वोक्तैर्गुणैर्युक्तो राजन्यो यदा शौर्यं महिमानं दधाति तदा सार्वभौमं राज्यं कर्तुं समर्थो भवति तस्मात्कारणाद्राजन्यः शूरो युद्धोत्सुको निर्भयः (इषव्यः) शस्त्रास्त्रप्रक्षेपणे कुशलः (शक्तिव्याधी) अत्यंताश्वाधाः शत्रूणां हिंसकायोद्धारो यस्य (महारथः) महान्तो भूबलान्तरङ्गगमनाय रथा यस्येति । यस्मिन् राष्ट्रे ईदृशो राजन्यो जन्ये जातोऽस्ति नैव कदाचित्तस्मिन्भगदुःखे संभवतः ॥ १३ ॥ ॥ आर्याभिविनय ॥

(सत्यं वै०) राजसभाप्रबंध में जो यथावत् प्रजा का पालन किया जाता है वही स्विष्टकृत् अर्थात् अच्छी प्रकार चाहे हुए सुख का करनेवाला होता है (सत्यं वै सा०) जो राजकर्म दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों का पालन करनेवाला है वही साम्राज्यकारी अर्थात् राजसुख कारक होता है । (ब्रह्म वै०) जो मनुष्य ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर और वेद का जाननेवाला है वही ब्राह्मण होने के योग्य है (क्षत्र०) जो इन्द्रियों का जीतनेवाला पण्डित शूरतादि गुणयुक्त श्रेष्ठ वीरपुरुष क्षत्रधर्म को स्वीकार करता है सो क्षत्रिय होने के योग्य है (तदस्य ब्रह्मणा०) ऐसे ब्राह्मण और क्षत्रियों के साथ न्यायशासन राजा को अनेक प्रकार से लक्ष्मी प्राप्त होती है और उस के राज्य की हानि कभी नहीं होती । (युद्धं वै०) यहां इस बात को जानना चाहिये कि जो राजा को युद्ध करना है वही उस का बल होता है उस के विना बहुत धन और सुख की प्राप्ति कभी नहीं होती क्योंकि निघंटु में संग्राम ही का नाम महाधन है सो उस को महाधन इस लिये कहते हैं कि उस से

बड़े २ उत्तम पदार्थ प्राप्त होते हैं क्योंकि विना संग्राम के अत्यंत प्रतिष्ठा और धन कभी नहीं प्राप्त होता और जो न्याय से राज्य का पालन करना है वही क्षत्रियों का अश्वमेध कहाता है किंतु घोड़े को मार के उस के अंगों का होम करना यह अश्वमेध नहीं है (राजन्यस्य०) पूर्वोक्त राजा जब शूरतारूप कीर्त्ति को धारण करता है तभी संपूर्ण पृथिवी के राज्य करने को समर्थ होता है इस लिये जिस देश में युद्ध को अत्यंत चाहनेवाला निर्भय शस्त्र अस्त्र चलाने में अति चतुर और विश का रथ पृथिवी समुद्र और अंतरिक्ष में जाने आनेवाला हो ऐसा राजा होता है वहां भय और दुःख नहीं होते ॥

श्रीर्वै राष्ट्रम् ॥ श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः । श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यम् ॥ क्षेमो वै राष्ट्रस्य प्रीतम् ॥ विड्वैगभेराष्ट्रं पशोराष्ट्रमेव विश्या हन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः ॥ विशमेव राज्ञा याचां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुमत्यत्ति । श० कां० १३ अ० २ ॥ ब्रा० ३ ॥

(श्रीर्वै राष्ट्रम्) या विद्याद्भुतमयगुणाढ्या नीतिः सैव राष्ट्रं भवति (श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः) सैव राज्यधारराष्ट्रस्य संभारो भवति (श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यम्) राष्ट्रस्य मध्यभागोऽपि श्रीरेवास्ति (क्षेमो वै रा०) क्षेमो यद्वत्तत्तदेव राष्ट्रस्य प्रियतमनिरुपद्रवं सुखं भवति (विड्वैगभेरा०) विड्या प्रजा सा गर्भाख्येति (राष्ट्रं पशो०) राष्ट्रं सत्यसाक्ष्यं भवति तस्माद्राष्ट्रसंबन्धिकर्म तद्विशाप्रजायामाविश्यतामाहन्त्यासमन्तात्करग्रहणेन प्रजाया उत्तमपदार्थानां हरणं करोति (तस्माद्राष्ट्री वि०) यस्मात्सभया विनैकाकी पुरुषो भवति तत्र प्रजा सदा पीडिता भवति तस्मादेकः पुरुषो राजा नैव कर्त्तव्यो नैकस्य पुरुषस्य राजधर्मानुष्ठाने यथावत् सामर्थ्यं भवति तस्मात्सभयैव राज्यव्यवस्थाः कर्त्तुं शक्योस्ति (विशमेव राज्ञाया०) यथैको राजास्ति तत्र राष्ट्राय विशं प्रजामाद्यां भक्षणीयां भोज्यवस्तुविनां करोति । यस्मात्स्वसुखार्थं प्रजाया उत्तमान्पदार्थान् गृह्णन्सन् प्रजायै पीडां ददाति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति (न पुष्टं पशुम०) यथा मांसाहारी पुष्टं पशुं दृष्ट्वा हन्तुमिच्छति तथैको राजा न मन्यः कश्चिदधिको भवेदिति व्यवस्थैव प्रजास्थस्य कस्य चिन्मनुष्यस्योत्कर्षं सहते तस्मात्सभाप्रबंधयुक्तेन राज्यव्यवहारेणैव भद्रमित्येतं राजधर्मव्यवहारप्रतिपादकाभिप्रायं बहवः सन्तीति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(श्रीर्वै राष्ट्रं) श्री जो है सभी वही राज्य का स्वरूप सामग्री और अन्न है तथा राज्य का जो रक्षण करना है वही शोभा अर्थात् श्रेष्ठ भाग कहाता है राज्य के लिये एक को राजा कभी नहीं मानना चाहिये क्योंकि सभा एक को राजा मानते हैं वहां सब प्रजा दुःखी और उस के उत्तम पदार्थों का अभाव हो जाता है इसी से किसी की उन्नति नहीं होती इसी प्रकार सभा करके राज्य का प्रबंध आर्यों में श्रीमत्महाराज युधिष्ठिर पर्यन्त बराबर चला आया है कि जिस की साक्षी महाभारत के राजधर्म आदि ग्रंथ तथा मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्रों में यथावत् लिखी है उन में जो कुछ क्षेपक किया है उस को छोड़ के बाकी सब अच्छा है क्योंकि वह वेदों के अनुकूल है और आर्यों की यह एक बात बड़ी उत्तम थी कि जिस सभा का न्यायाधीश के सामने अन्याय हो वह प्रजा का दोष नहीं मानते थे किंतु वह दोष सभाध्यक्ष सभासद और न्यायाधीश का ही गिना जाता था इस लिये वे लोग सत्यन्याय करने में अत्यंत पुरुषार्थ करते थे कि जिस से आर्यावर्त्त के न्यायघर में कभी अन्याय नहीं होता था और जहां होता था वहां उन्हीं न्यायाधीशों को दोष देते थे यही सब आर्यों का सिद्धांत है अर्थात् इन्हीं वेदादि शास्त्रों की रीति से आर्यों ने भूगोल में करोड़ों वर्ष राज्य किया है इस में कुछ संदेह नहीं ॥ इति संक्षेपतो राजप्रजाधर्मविषयः ॥

॥ अथ वर्णाश्रमविषयः संक्षेपतः ॥

सच वर्णविषयो मन्त्रो ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदित्युक्तस्तद-र्थश्च तस्यायं शेषः ॥ वर्णो वृणोतेः ॥ १ ॥ नि० अ० २ खं० ३ । ब्रह्म हि ब्राह्मणः ॥ क्षत्रं क्षत्रियः ॥ २ ॥ श० कां० ५ अ० १ ॥ ब्रा० १ ॥ ब्राह्मं वै मित्रावरुणौ पुरुषो गर्त्तः ॥ वीर्यं वा एतद्राजन्यस्य यद्बाहू वीर्यं वा एतदपारुरुः ॥ श० कां० ५ । अ० ४ । ब्रा० ३ ॥ ऊरुवो वै विशवः ॥ ३ ॥ श० कां० ५ अ० ४ ॥ ब्रा० ४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

वर्णोवृणोतेरिति निरुक्तप्रामाण्याद्वृणीया वरीतुमर्हो गुणकर्मभि च दृष्ट्वा यथायोग्यं त्रियन्ते येते वर्णाः ॥ १ ॥ (ब्रह्म हि ब्राह्मणः) ब्रह्मणा वेदेन परमेश्वरस्योपासनेन च यद्वर्त्तमानो विद्याद्युत्तमगुणयुक्तः पुरुषो ब्राह्मणो भवितुमर्हति । तथैव (क्षत्रं क्षत्रियः०) क्षत्रं क्षत्रिय-

कुलम् । यः पुरुषश्चन्द्रः परमेश्वर्यवान् भवति सः क्षत्रियः कथ्यते । कुतः क्षयकरणादुद्दोस्तुकत्वाच्च प्रजापालनतत्परः (राजन्यः) क्षत्रियो भवितुमर्हति ॥ २ ॥ (मित्रः) सर्वेभ्यः सुखदाता (वसुः) उत्तमगुणकर्मधारणेन श्रेष्ठः । इमावेव क्षत्रियस्य द्वौ बाहुवद् भवेताम् (वा) अथवा वीर्य्यं पराक्रमो वसुः चेत्तदुभयं राजन्यस्य क्षत्रियस्य बाहू भवतः । अपां प्राणानां यो रस आनन्दस्तं प्रजाभ्यः प्रयच्छतः क्षत्रियस्य वीर्य्यं वर्धते तस्य (इषवः) बाणाः शस्त्रास्त्राणामुपलक्षणमेतत् । (दिव्यः) प्रकाशकाः सदा भवेयुः ॥ ३ ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब वर्णाश्रम विषय लिखा जाता है, इस में यह विशेष जानना चाहिये कि प्रथम मनुष्यजाति सब की एक है सोभी वेदों से सिद्ध है इस विषय का प्रमाण सृष्टिविषय में लिखदिया है तथा (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्) यह मंत्र सृष्टिविषय में लिख चुके हैं वर्णों के प्रतिपादन करनेवाले वेद मंत्रों की जो व्याख्या ब्राह्मण और निरुक्तादि ग्रंथों में लिखी है वह कुछ यहां भी लिखते हैं मनुष्यजाति के ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये वर्ण कहाते हैं वेदरीति से इन के दो भेद हैं एक आर्य्य और दूसरा दस्यु इस विषय में यह प्रमाण है कि (जिज्ञानीहार्य्यान्ये च दस्यवः०) अर्थात् इस मंत्र से परमेश्वर उपदेश करता है कि हे जीव तू आर्य्य अर्थात् श्रेष्ठ और दस्यु अर्थात् दुष्ट स्वभाव युक्त डाकू आदि नामों से प्रसिद्ध मनुष्यों के ये दो भेद जानले तथा (उत शूद्रे उत आर्य्ये) इस मंत्र से भी आर्य्य ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी जो कि शूद्र कहाते हैं ये दो भेद जाने गये हैं तथा (असुर्या-नामसे लोका०) इस मंत्र से भी देव और असुर अर्थात् विद्वान् और मूर्ख ये दो दो भेद जाने जाते हैं और इन्हीं दोनों के विरोध को देवासुर संग्राम कहते हैं ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चार भेद गुण कर्मों से किये गये हैं (वर्णो०) इस का नाम वर्ण इसलिये है कि जैसे जिस के गुण कर्म हों वैसा ही उस को अधिकार देना चाहिये (ब्रह्मवर्हा ब्रा०) ब्रह्म अर्थात् उत्तम कर्म करने से उत्तम विद्वान् ब्राह्मणवर्ण होता है (ब्रह्मवर्हा०) परमैश्वर्य (बाहू०) अत्र वीर्य्य के होने से मनुष्य क्षत्रिय वर्ण होता है जैसा कि राजधर्म में लिख आये हैं ॥

आश्रमा अपि चत्वारः सन्ति । ब्रह्मचर्य्यं गृहस्थं वानप्रस्थं सन्यासमेतेषाम् । ब्रह्मचर्य्येण सद्विद्या शिक्षा च ग्राह्या । गृहाश्रमेणोत्तमाचरणानां श्रेष्ठानां पदार्थानां चोन्नतिः कार्य्या । वानप्रस्थेनैकान्तसेवनं ब्रह्मोपासनं विद्याफलविचारणादि च कार्य्यम् । सन्यासेन परब्रह्ममोक्षपरमानन्दप्राप्तयं क्रियते सदुपदेशेन सर्वस्मा आनन्ददानं चेत्यादि चतुर्भिराश्रमैर्धर्मा-

त्रयाणामेषामाणां सम्यक् सिद्धिः संपादनीया । एतेषां मुख्यतया ब्रह्मचर्य्येण सद्विद्यासुशिक्षादयः शुभगुणाः सम्यग्ग्राह्याः । अत्र ब्रह्मचर्य्याश्रमे प्रमाणम् ॥

आचार्य्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः । तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्त्ति तं जातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः ॥ १ ॥ इयं समित्पृथिवी द्यौर्द्वितीयोताऽन्तरिक्षं समिधा पृणाति । ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्त्ति ॥ २ ॥ पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् । तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्मज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ ३ ॥ अथर्व० कां० ११ अनु० ३ व० ५ मं० । ३ । ४ । ५ ॥ ॥ साष्टम् ॥

(आचार्य्य इ०) आचार्य्यो विद्याध्यापको ब्रह्मचारिणमुपनयमानो विद्याध्ययनार्थमुपदीक्षां गच्छन्तर्गर्भमिव कृणुते करोति । तं तिस्रो रात्रीस्त्रिदिनपर्य्यन्तमुदरे बिभर्त्ति । अर्थात् सर्वां चिन्तां करोति पठनस्याचरीतिमुपदिशति । यदा विद्यायुक्तो विद्वान् जायते तदा तं विद्यासु जातं प्रादुर्भूतं देवा विद्वांसो द्रष्टुमभिसंयन्ति प्रसन्नतया तस्य मानं कुर्वन्ति । अस्माकं मध्ये महाभाग्योदयेनेश्वरानुग्रहेण च सर्वमनुष्योपकारार्थं त्वं विद्वान् जातइति प्रशंसन्ति ॥ १ ॥ (इयं समित्०) इयं पृथिवी द्यौः प्रकाशोन्तरिक्षं यानया समिधा स ब्रह्मचारी पृणाति तत्स्थान्सर्वान्प्राणिनो विद्यया हेतुना च प्रसन्नान् करोति (समिधा) अग्निहोत्रादिना मेखलया ब्रह्मचर्य्यचिह्नधारणेन च (श्रमेण) परिश्रमेण (तपसा) धर्मानुष्ठानेनाध्यापनेनोपदेशेन च (लोकां०) सर्वान्प्राणिनः पिपर्त्ति पुष्टान्प्रसन्नान्करोति ॥ २ ॥ (पूर्वो जातो ब्रह्म०) ब्रह्मणि वेदे चरितुं शीलं यस्य स ब्रह्मचारी (घर्मं वसानः) अत्यन्तं तपश्चरन् । ब्राह्मणो ब्रह्मविद्यां परमेश्वरं च विदन् पूर्वैः सर्वेषामाश्रमाणामादिमः सर्वाश्रमसूचकः (तपसा) धर्मानुष्ठानेन (उदतिष्ठत्) ऊर्ध्वं उत्कृष्टबोधे व्यवहारे च तिष्ठति तस्मात्कारणात् (ब्रह्म ज्येष्ठं) ब्रह्मैव परमेश्वरोविद्या वा ज्येष्ठा सर्वोत्कृष्टा यस्य तं ब्रह्मज्येष्ठम् । अमृतेन परमेश्वरमोक्षबोधेन परमानन्देन साकं सहवर्तमानं (ब्राह्मणं) । ब्रह्मविदं (जातं) प्रसिद्धं (देवाः) सर्वे विद्वांसः प्रशंसन्ति ॥ ३ ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब आगे चार आश्रमों का वर्णन किया जाता है ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ये चार आश्रम कहाते हैं इन में से पांच वा आठ वर्ष की उमर से अड़तालीस वर्ष पर्य्यंत प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम का समय है इस के विभाग पितृयज्ञ में करेंगे वह सुशिक्षा और सत्यविद्यादि गुण ग्रहण करने के लिये होता है दूसरा गृहाश्रम जो कि उत्तम गुणों के प्रचार और श्रेष्ठ पदार्थों की उन्नति से सन्तानों की उत्पत्ति और उन को सुशिक्षित करने के लिये किया जाता है तीसरा वानप्रस्थ जिस से ब्रह्मविद्यादि सात्त्वात् साधन करने के लिये एकांत में परमेश्वर का सेवन किया जाता है चौथा संन्यास जो कि परमेश्वर अर्थात् मोक्षसुख की प्राप्ति और सत्योपदेश से सब संसार के उपकार के अर्थ किया जाता है। धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति के लिये इन चार आश्रमों का सेवन करना सब मनुष्यों को उचित है इन में से प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम जो कि सब आश्रमों का मूल है उस के ठीक २ सुधरने से सब आश्रम सुगम और बिगड़ने से नष्ट हो जाते हैं इस आश्रम के विषय में वेदों के अनेक प्रमाण हैं इन में से कुछ यहां भी लिखते हैं (आचार्य्य उ०) अर्थात् जो गर्भ में वस के माता और पिता के संबंध से मनुष्य का जन्म होता है वह प्रथम जन्म कहाता है और दूसरा यह है कि जिस में आचार्य्य पिता और विद्या माता होती है इस दूसरे जन्म के न होने से मनुष्य को मनुष्यपन नहीं प्राप्त होता इस लिये उस को प्राप्त होना मनुष्यों को अवश्य चाहिये। जब आठवें वर्ष पाठशाला में आकर आचार्य अर्थात् विद्या पढ़ानेवाले के समीप रहते हैं तभी से उन का नाम ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी हो जाता है क्योंकि वे ब्रह्म वेद और परमेश्वर के विचार में तत्पर होते हैं उन को आचार्य तीन रात्रि पर्य्यंत गर्भ में रखता है अर्थात् ईश्वर की उपासना धर्म परस्पर विद्या के पढ़ने और विचारने की युक्ति आदि जो मुख्य २ बातें हैं वे सब तीन दिन में उन को सिखाई जाती हैं। तीन दिन के उपरांत उन को देखने के लिये अध्यापक अर्थात् विद्वान् लोग आते हैं ॥ १ ॥ (इयं समित्०) फिर उस दिन होम कर के उन को प्रतिज्ञा कराते हैं कि जो ब्रह्मचारी पृथिवी सूर्य्य और आत्मा इन तीनों प्रकार की विद्याओं का पालन और पूर्ण करने की इच्छा करता है। सो इन समिधाओं से पुरुषार्थ कर के सब लोकों को धर्मानुष्ठान से पूर्ण आनंदित कर देता है ॥ २ ॥ (पूर्वो जातो ब्र०) जो ब्रह्मचारी पूर्ण पढ़ के ब्राह्मण होता है वह धर्मानुष्ठान से अत्यंत पुरुषार्थी होकर सब मनुष्यों का कल्याण करता है (ब्रह्म ज्येष्ठं) फिर उस पूर्ण विद्वान् ब्राह्मण को जो कि अमृत अर्थात् परमेश्वर की पूर्ण भक्ति और धर्मानुष्ठान से युक्त होता है देखने के लिये सब विद्वान् आते हैं ॥ ३ ॥

ब्रह्मचार्य्येति समिधा सम्मृष्टः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः । स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृह्य मुहुराचरिक्रत् ॥ ४ ॥ ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् । गर्भो भूत्वा मृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वा असुरान्ललाटे ॥ ५ ॥ ब्रह्मचर्य्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति । आचार्य्यो ब्रह्मचर्य्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ ६ ॥ ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् । अनड्वान् ब्रह्मचर्य्येणाश्वो घासं जिगीषति ॥ ७ ॥ ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत । इन्द्रो ह ब्रह्मचर्य्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ ८ ॥ अथर्व० कां० ११ अनु० ३ मं० ६ । ७ । १७ । १८ । १९ ॥ ॥ आष्टम् ॥

(ब्रह्मचार्य्येति०) स ब्रह्मचारी पूर्वोक्तया (समिधा) विद्यया (समिद्धः) प्रकाशितः (कार्ष्णं) मृगचर्मादिकं (वसानः) आच्छादयन् (दीर्घश्मश्रुः) दीर्घकालपर्य्यन्तं केशश्मश्रूणि धारिष्यामि येन स (दीक्षितः) प्राप्तदीक्षः (एति) परमानन्दं प्राप्नोति । तथा (पूर्वस्मात्) ब्रह्मचर्य्यानुष्ठानभूतान्त्समुद्रात् (उत्तरं) गृहाश्रमं समुद्रं (सद्य एति) शीघ्रं प्राप्नोति । सर्वं निशामयेत्यान्त्सर्वान् (लोकान्त्संग्रह्य) संगृह्य सुष्ठुवारंवारं (आचरिक्रत्) धर्मोपदेशमेव करोति ॥ ४ ॥ (ब्रह्मचारी०) स ब्रह्मचारी (ब्रह्म) वेदविद्यां पठन् (अपः) प्राणान् (लोकं) दर्शनं (परमेष्ठिनं) प्रजापतिं (विराजं) विशिष्टप्रकाशकं परमेश्वरं (जनयन्) प्रकटयन् (अमृतस्य) मोक्षस्य (योनौ) विद्यायां (गर्भो भूत्वा) गर्भवन्नियमेन स्थित्वा यथावद्विद्यां गृहीत्वा (इन्द्रो ह भूत्वा) सूर्य्यवत्प्रकाशकः सन् (असुरान्) दुष्टकर्मकारिणो मूर्खान्प्राणविडलोजनान्दैत्यस्वभावान् (ललाटे) शिरस्करोति सर्वान्निवारयति यथेन्द्रः सूर्य्योऽसुरान्मेघान् रात्रिं च निवारयति तथैव ब्रह्मचारी सर्वशुभगुणप्रकाशको दुष्टगुणनाशकश्च भवतीति ॥ ५ ॥ (ब्रह्मचर्य्येण०) तपसा ब्रह्मचर्य्येण कृतेन राजा राष्ट्रं विरक्षति विशिष्टतया प्रजा रक्षितुं योग्यो भवति । आचार्य्योऽपि कृतेन ब्रह्मचर्य्येणैव विद्यां प्राप्य ब्रह्मचारिणमिच्छते स्वीकुर्य्यान्नान्यथेति ॥ ६ ॥ अत्र प्रमाणम् । आचार्य्यः

कस्मादाचारं गाहयत्याचिनोत्यर्थानाचिनोति बुद्धिमिति वा । निरुक्त अ० १ खं० ४ ॥ ब्रह्मचर्य्येण०) एवमेव कृतेन ब्रह्मचर्य्येणैव कन्या युवतिः पतिं युवानं स्वसदृशं पतिं विन्दते नान्यथा न चातः पूर्वमसदृशं वा । अनड्वान्नित्युपलक्षणं वेगवतां पशूनां ये पशवो ऽश्वश्च चाशु यथा तथा कृतेन ब्रह्मचर्य्येण स्वधिरोधिनः पशून् जिगीषन्ति युद्धेन जेतुमिच्छन्ति । अतो मनुष्यैस्तथेदं ब्रह्मचर्य्यं कर्तव्यमित्यभिप्रायः ॥ ७ ॥ (ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा०) देवा विद्वांसो ब्रह्मचर्य्येण वेदाध्ययनेन ब्रह्मविज्ञानेन तपसा धर्मानुष्ठानेन च मृत्युं जन्ममृत्युप्रभवदुःखमुपघ्नत नित्यं घ्नन्ति नान्यथा । ब्रह्मचर्य्येण सुनियमेन (हेतिकिलार्थे) यथा इन्द्रः सूर्य्यो देवेभ्यश्चन्द्रादिभ्यः स्वःसुखं प्रकाशं चाभरद्धरयति । तथा विना ब्रह्मचर्य्येण कस्यापि नैव विद्यासुखं च यथावद्भवति । अतो ब्रह्मचर्य्यानुष्ठानपूर्वका एव गृहाश्रमादयस्तस्य आश्रमाः सुखमेधन्ते । अन्यथा मूलाभावे कुतः शाखाः किंतु मूले रूढे शाखापुष्पफलच्छायादयः सिद्धा भवन्त्येवेति ॥ ८ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(ब्रह्मचर्य्येति०) जो ब्रह्मचारी होता है सही ज्ञान से प्रकाशित सब ओर अड़े २ केश श्मश्रुओं से युक्त होता जो प्राप्त होके विद्या को प्राप्त होता है तथा जो कि शीघ्र ही विद्या को ग्रहण करके पूर्व समुद्र जो ब्रह्मचर्य्याश्रम का अनुष्ठान है उस के पार उतर के उत्तर समुद्र स्वरूप गृहाश्रम को प्राप्त होता है और अच्छी प्रकार विद्या का संग्रह करके विचारपूर्वक अपने उपदेश का सौभाग्य बढ़ाता है ॥ ४ ॥ (ब्रह्मचारी स०) वह ब्रह्मचारी वेदविद्या को यथार्थ जान के प्राण विद्या लोक विद्या तथा प्रजापति परमेश्वर जो कि सब से बड़ा और सब का प्रकाशक है उस का जानना इन विद्याओं में गर्भ रूप और इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्य्य युक्त होके असुर अर्थात् मूर्खों की अविद्या का छेदन कर देता है ॥ ५ ॥ (ब्रह्मचर्य्येण त०) पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ के और सत्य धर्म के अनुष्ठान से राजा राज्य करने को और आचार्य्य विद्या पढ़ाने को समर्थ होता है आचार्य्य उसको कहते हैं कि जो असत्याचार को छुड़ा के सत्याचार का और अनर्थों को छुड़ाके अर्थों का ग्रहण कराके ज्ञान को बढ़ा देता है ॥ ६ ॥ (ब्रह्मचर्य्येण क०) अर्थात् जब यह कन्या ब्रह्मचर्य्याश्रम से पूर्ण विद्या पढ़ चुके तब अपनी युवावस्था में पूर्ण जवान पुरुष को अपना पति करे इसी प्रकार पुरुष भी सुशील धर्मात्मा स्त्री के साथ प्रसन्नता से विवाह करके दोनों परस्पर सुख दुःख में सहायकारी हों क्योंकि अनड्वान् अर्थात् पशु भी जो पूरी जवानी पर्य्यंत ब्रह्मचर्य्य अर्थात् सुनियम में रक्खा जाय तो अत्यंत बलवान् हो के निर्बल जीवों को जीत लेता है ॥ ८ ॥

(ब्रह्मचर्य्येण स०) ब्रह्मचर्य्य और धर्मानुष्ठान से ही विद्वान् लोग जन्म मरण और जीव के मोक्ष सुख को प्राप्त होते जाते हैं जैसे इन्द्र अर्थात् सूर्य्य परमेश्वर के नियम में स्थित होके सब लोकों का प्रकाश करनेवाला हुआ है वैसे ही मनुष्य का आत्मा ब्रह्मचर्य्य से प्रकाशित होके सब को प्रकाशित कर देता है इस से ब्रह्मचर्य्याश्रम ही सब आश्रमों से उत्तम है ॥ इति ब्रह्मचर्य्याश्रमविषयः संक्षेपतः ॥

॥ अथ गृहाश्रमविषयः ॥

यद्ग्राम्ये यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यदेनश्चकृमा वयमिदं तदव यजामहे स्वाहा ॥ ९ ॥ देहि मे ददामि ते निधेहि निते दधे । निचारं च चरासि मे निचारं निचराणि ते स्वाहा ॥ १० ॥ यत्ते मातर्विभीतमाधेपश्चद्भुज विश्वन्त एमसि । उर्ज्जं विश्वद्भः । सुभगाः सुमेधाग्नेच नेमि मनसा मोदमानः ॥ ११ ॥ येषां श्रध्येति प्रवसन्येषु सौमनसोबहुः । गृहानुपह्वयामहे तेनो जानन्तु जानतः ॥ १२ ॥ उपहूता इह गावउपहूताअजावयः । अथो अन्नस्यकीलाल-उपहूतोगृहेषु नः ॥ शेमांयज्ञःशान्त्यैप्रपद्ये शिवं शग्मंशूयोः शूयोः ॥ १३ ॥ य० अ० ३ मं० ४५ । ५० । ४१ । ४२ । ४३ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(यद्ग्राम्ये०) एतेषु गृहाश्रमविधानं क्रियतवति । (यद्ग्राम्ये०) यद्ग्राम्ये गृहाश्रमे वसन्तो वयं पुराये विद्याप्रचारं सन्तानोत्पत्तिमत्युत्तमसामाजिकनियमं सर्वोपकारकं तथैवारण्ये वानप्रस्थाश्रमे ब्रह्मविचारं विद्याध्ययनं तपश्चरणं सभासंबन्धे यच्छ्रोत्रं इन्द्रिये मानसव्यवहारे च यदुत्तमं कर्म च कुर्मस्तत्सर्वमीश्वरमोक्षाप्राप्त्यर्थमस्तु । यच्च प्रमादेन: पापं च कृतं तत्सर्वमिदं पापमवयजामहे आश्रमानुष्ठानेन नाशयामः ॥ ९ ॥ (देहि मे०) परमेश्वर आज्ञापयति हे जीव त्वमेवं वद मे मह्यं देहि मत्सुखार्थं विद्यां द्रव्यादिकं च त्वं देहि । अहमपि ते तुभ्यं ददामि मे मह्यं मदर्थं त्वमुत्तमस्वभावदानमुदारतां सुशीलतां च धेहि धारय । ते तुभ्यं त्वदर्थमहमप्येवं च दधे । तथैव धर्मव्यवहारे ऋणदानादानाख्यं च हरासि प्रयच्छ । तथैवाहमपि ते तुभ्यं त्वदर्थं निहराणि नित्यं प्रयच्छानि ददानि । स्वाहेति

सत्यभाषणं सत्यमाने सत्याचरणं सत्यवचनश्रवणं च सर्वैरयं मिलित्वा कुर्य्यामेति सत्येनैव सर्वे व्यवहारं कुर्य्युः ॥ १० ॥ (गृहा०) हे गृहाश्रममिच्छन्तो मनुष्याः स्वयंवरं विवाहं कृत्वा यूयं गृहाणि प्राप्नुत गृहाश्रमानुष्ठाने (मा बिभीत) भयं मा प्राप्नुत तथा (मावेपध्वं) माकंपध्वं (ऊर्जं बिभ्रत यमसि) ऊर्जं बलं पराक्रमं च बिभ्रतः पदार्थानेमसि वयं प्राप्नुम इतीच्छत (ऊर्जं बिभ्रद्वः) वो युष्माकं मध्येह मूर्जं बिभ्रत्सन् (सुमनाः) शुद्धमनाः सुमेधोत्तमबुद्धियुक्तः (मनसा मोदमानः) प्राप्तानन्दः (गृहानैमि) गृहाणि प्राप्नोमि ॥ ११ ॥ (येषामध्येति प्र०) येषु गृहेषु प्रवसतो मनुष्यस्य (बहुः) अधिकः (सौमनसः) आनन्दो भवति । तत्र प्रवसन् येषां यान्पदार्थान्सुखकारकान्स (अध्येति) स्मरति (गृहानुपह्वयामहे) वयं गृहेषु विवाहादिषु सत्कारार्थं तान् गृहसंबंधिनः सखिश्वश्र्वाचार्य्यादीन्नमंचयामहे । (तेनः) विवाहनियमेषु कृतप्रतिज्ञानस्मान् (जानतः) प्रौढज्ञानान् युवावस्थास्थान्स्वेच्छया कृतविवाहान् ते (जानन्तु) अस्माकं साक्षिणः सन्त्विति ॥ १२ ॥ (उपहूता वह०) हे परमेश्वर भवत्कृपया वह्यस्मिन् गृहाश्रमे (गावः) पशुपृथिवीन्द्रियविद्याप्रकाशान्हादादयः (उपहूताः) अर्थात्सम्यक् प्राप्ता भवन्तु तथा (अजावयः) उपहूता अस्मदनुकूला भवन्तु (अधो अन्नस्य की०) अधो इति पूर्वोक्तपदार्थप्राप्त्यनन्तरं नोऽस्माकं गृहेष्वन्नस्य भोक्तव्यपदार्थसमूहस्य कीलालो विशेषेणोत्तमरस उपहूतः सम्यक् प्राप्तो भवतु (क्षेमाय वः शान्त्यै०) वो युष्मानहं पुरुषव्यत्ययेनास्मि तान्युक्तान्प्रत्यक्षान्पदार्थान् (क्षेमाय) रक्षणाय (शान्त्यै) सुखाय प्रपद्ये प्राप्नोमि तत्प्राप्त्या (शिवे) निश्चयेनसंकल्याणं पारमार्थिकंसुखं (शर्म) सांसारिकमाभ्युदयिकंसुखं च प्राप्नुयाम् । शंयोः शमिति निघंटौ पदनामास्ति । परोपकाराय गृहाश्रमे स्थित्वा पूर्वोक्तस्य द्विविधस्य सुखस्योन्नतिं कुर्य्याम् ॥ १३ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(यद्गार्हमे०) गृहाश्रमी को उचित है कि जब वह पूर्ण विद्या को पढ़चुके तब अपने तुल्य स्त्री से स्वयंवर करे और ये दोनों यथावत् उन विवाह के नियमों में चलें जो कि विवाह और नियोग के प्रकरणों में लिख आये हैं परंतु उन से जो विशेष कहना है सो यहां लिखते हैं गृहस्थ स्त्री पुरुषों को धर्म उन्नति और ग्रामवासियों के हित के लिये जो२ काम करना है तथा (यद्वनवासे) वनवासियों के साथ हित और (यत्सभायाम्) सभा के बीच में सत्य विचार और अपने सामर्थ्य से संसार को सुख देने के लिये (यदिन्द्रिये०)

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बनाये पुस्तकों की सूचना ॥

अन्योपायन पैकमहसूलरजिस्ट्री मे० ८)॥ डाक महसूल सहित अनारस डा० खर्च ९ साढ़े ४ । आर्य्यसमाज सदौर का पं० स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास से मिलेंगे ।

	मूल्य पुस्तक प्रति	महसूल
१ सत्यार्थप्रकाश का	३॥)	⅝)
१ संस्कारविधि का	१॥=)	⅜)
१ आर्य्याभिविनय का	॥)	⅛)

इनमें से सत्यार्थप्रकाश का पुस्तक राजा जयकृष्णदास जी के पास शहर मुरादाबाद में अथवा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास किंवा मुंबई हाईकोर्ट कालिछा टैंक की सड़क पर साम्बाड़ी के सामने केशवलाल निर्भयराम जी के पास भी मिलता है ।

संस्कारविधि—स्वामी द० जी के पास और पंडित सुन्दरलाल जी के पास पत्राबाबाद में पेन्शनमास्टर अनरल की कचहरी के ठिकाने से किंवा रईस ठाकुर तुलसीसिंह मुरादाबाद के पास जिला अलीगढ़ परगना सोरयल के ठिकाने से मिलता है।

आर्य्याभिविनय—स्वामी द० जी के पास और पूर्वोक्त पंडित सुन्दरलाल के ठिकाने से मिलता है ॥

☞ जो सज्जन मनुष्य पुस्तक पाचुके उनको प्रसन्नतापूर्वक यथोचित मिलय दृष्ट पत्र भेज का लाभदायक यथेष्ट कामना के पात्र आशा यर्थात् अनारस में भेज देना चाहिये ।

REGISTERED No. 8.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां समन्विता ॥

अस्येकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशानां डाकव्यय-
मूल्येन सहितं ।≈) अस्य द्वादशमासानां मिलित्वा
वार्षिकं ४॥) रूप्यकाणि ॥

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक नंबर का मूल्य भारतखंड के भीतर
डाकमाशूल सहित ।≈) और वार्षिक मूल्य ४॥)

अस्य ग्रन्थस्य ग्रहणस्येच्छा यस्य भवेत्सकार्य्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य
वा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपे वार्षिकं मूल्यं
प्रेषयेत्स प्रतिमासमेकं प्राप्स्यति ॥

अंक (११)

॥ अयं ग्रंथः काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य यंत्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९३४ ।

॥ अस्य ग्रन्थस्याधिकारो भाष्यकर्त्रा सर्वथा स्वाधीन एव रक्षितः ॥

विदित हो कि सं० १९३४ माघ मास से अंत पर्य्यन्त पंजाब देश के फीरोजाबाद
नगर में स्थित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे ।
इस अंक में एक नवीन विज्ञापन दिया गया है उस को सब सज्जन ग्राहक पढ़ लेवें ॥

कौन से खंड से लेंगे	संख्या ग्राहक	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	संख्या एकक	मूल्य नगद	मूल्य उधार
	५५२	रिवरेंड पिटरसन मार्ड-फ़ोर्स	छिन्दवारा—सी॰ पी॰ ..	४	१८)॰	
	५५३	लाला ज्वालाप्रसाद	फर्स्ट डिपार्टमेन्ट जेहलम। डिविजन जेहलम ..	१	४०)	
	५५४	पंडित पूरणनरायण	मंगू ज़ि॰ सहारनपुर ..	१	४॥)॰	
	३०	ठाकुर गोपालसिंह	ज़ि॰ मुर्सट अवध प॰ डिवाई रईस जगोवास ..	५	२२३)॰	
	५५६	लाला मन्नानन्दराम भवानीशंकर मुंशीलाल ..	फ़रुखाबाद	१	४॥)॰	
	५५५	लाला जगपतराय	सरिश्तेदार पब्लिसिटी कमि-श्नर। पंजाब—गुजरात	१	४॥)	
	५५८	लाला नन्दगोपाल	ओवरसियर जेहलम सब डि-विजन। पंजाब—जेहलम	१	४॥)	
	६६	पंडित रामबख्श ..	सुनसरीम। मोहल्ला नख्खास पुरा। मुरादाबाद। ..	१	४॥)	
	३९	कार रघुनाथराव ..	कारभारी महाराजे सुखकर इंदौर	५	२२॥)॰	

जितेन्द्रियता से ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिये और सब काम अपने पूर्ण पुरुषार्थ के साथ यथावत् करें और (यदेनश्च इत्यं०) पाप करने की बुद्धि को हम लोग मन वचन और कर्म से छोड़ कर सर्वथा सब के हितकारी बनें ॥ ९ ॥ परमेश्वर उपदेश करता है कि (देहि मे०) जो सामाजिक नियमों की व्यवस्था के अनुसार ठीक २ चलना है यही गृहस्थ की परम उन्नति का कारण है जो वस्तु किसी से लेवें अथवा देवें सो भी सत्यव्यवहार के साथ करें (निमे धेहि नित इधे) अर्थात् मैं तेरे साथ यह काम करूंगा और तू मेरे साथ ऐसा करना ऐसे व्यवहार को भी सत्यता से करना चाहिये (निहारं च हरासि मे नि०) यह वस्तु मेरे लिये तू दे वा तेरे लिये मैं दूंगा इस को भी यथावत् पूरा करें अर्थात् किसी प्रकार का मिथ्या व्यवहार किसी से न करें इस प्रकार गृहस्थ लोगों के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं क्योंकि जो गृहस्थ विचार पूर्वक सब के हितकारी काम करते हैं उन की सदा उन्नति होती है ॥ १० ॥ (गृहानाभिभौम०) हे गृहाश्रम की इच्छा करनेवाले मनुष्य लोगो तुम लोग स्वयंवर अर्थात् अपनी इच्छा के अनुकूल विवाह करके गृहाश्रम को प्राप्त हो और उससे डरो वा कंपो मत किंतु उसमें अत्र पराक्रम करनेवाले पदार्थों को प्राप्त होने की इच्छा करो तथा गृहाश्रमी पुरुषों से ऐसा कहो कि मैं परमात्मा की कृपा से आप लोगों के बीच पराक्रम, शुद्ध मन, उत्तम बुद्धि और आनन्द को प्राप्त हो कर गृहाश्रम करूं ॥ ११ ॥ (येषामध्येति०) जिन घरों में बसते हुए मनुष्यों को अधिक आनन्द होता है उन में ये मनुष्य अपने संबंधि मित्र बंधु और आचार्य्य आदि का स्मरण करते हैं और उन्हीं लोगों को विवाहादि शुभ कार्य्यों में सत्कार से बुला कर उन से यह इच्छा करते हैं कि ये सब हम को युक्त सम्मायुक्त और विवाहादि नियमों में ठीक २ प्रतिज्ञा करनेवाले जानें अर्थात् हमारे साक्षी हों ॥ १२ ॥ (उपहू०) हे परमेश्वर आप की कृपा से हम लोगों को गृहाश्रम में पशु, पृथिवी, इच्छा, प्रकाश, आनंद, बकरी, और भेड़, आदि पदार्थ अच्छी प्रकार से प्राप्त हों तथा हमारे घरों में उत्तम रस युक्त खाने, पीने, के योग्य पदार्थ सदा बने रहें (घः) यह पद पुरुष व्यत्यय से सिद्ध होता है हम लोग उन पदार्थों को उनकी रक्षा और अपने सुख के लिये प्राप्त हों फिर उस प्राप्ति से हम को परमार्थ और संसार का सुख मिले (शंयोः) यह निघंटु में प्रतिष्ठा अर्थात् सांसारिक सुख का नाम है ॥ १३ ॥

इति गृहाश्रमविषयः संक्षेपतः ॥

॥ अथ वानप्रस्थविषयः संक्षेपतः ॥

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति प्रथमस्तप एव द्वितीयो ब्रह्मचार्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुलेऽवसादयन्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति ॥ छान्दोग्य० प्र० २ खं० २३ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(त्रयो धर्म०) अत्र सर्वेष्वाश्रमेषु धर्मस्य स्कन्धा अवयवास्त्रयः सन्ति । अध्ययनं यज्ञः क्रियाकाण्डं दानं च । तत्र प्रथमे ब्रह्मचारी सपः सुशिक्षा धर्मानुष्ठानेनाचार्य्यकुले वसति । द्वितीयो गृहाश्रमी । तृतीयो ऽत्यन्तमात्मानमशक्तमवगम्य हृदये विचार्य्यैकान्तदेशं प्राप्य सत्यासत्ये निश्चिनुयात्स वानप्रस्थाश्रमी । एते सर्वे ब्रह्मचर्य्यादयस्त्रय आश्रमाः पुण्यलोकाः सुखनिवासाः सुखयुक्ता भवन्ति पुण्यानुष्ठानादेषामसंख्या जायते ॥ ब्रह्मचर्य्याश्रमेण गृहीतविद्यो धर्मेश्वरादिसम्यङ्निश्चित्य गृहाश्रमेण सद्धर्मानुष्ठानं तद्विज्ञानवृद्धिं च कृत्वा ततो वनमेकान्तं गत्वा सम्यक् सत्यासत्यवस्तुव्यवहारान्निश्चित्य वानप्रस्थाश्रमं समाप्य सन्यासी भवेत् । अर्थाद् ब्रह्मचर्य्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृहीभूत्वा वनीभवेद्वनीभूत्वा प्रव्रजेदित्येकः पक्षः । (यदहरेव विरजेत तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा) अस्मिन्पक्षे वानप्रस्थाश्रममकृत्वा गृहाश्रमानंतरं संन्यासं गृह्णीयादिति द्वितीयः पक्षः । ब्रह्मचर्य्यादेव प्रव्रजेत्सम्यग्ब्रह्मचर्य्याश्रमं कृत्वा गृहस्थवानप्रस्थाश्रमावकृत्वा संन्यासाश्रमं गृह्णीयादिति तृतीयः पक्षः । सर्वेषान्त्याश्रमविकल्प उक्तः परंतु ब्रह्मचर्य्याश्रममनुष्ठाने नित्यमेव कर्त्तव्यमित्यर्थोऽस्ति । कुतः । ब्रह्मचर्य्याश्रमेणविना ऽन्याश्रमानुत्पत्तेः ॥

॥ भाषार्थ ॥

(त्रयो धर्म०) धर्म के तीन स्कंध हैं एक विद्या का अध्ययन दूसरा यज्ञ अर्थात् उत्तम क्रियाओं का करना । तीसरा दान अर्थात् विद्यादि उत्तम गुणों का देना तथा प्रथम तप अर्थात् वेदोक्तधर्म के अनुष्ठानपूर्वक विद्या पढ़ाना दूसरा आचार्य्यकुल में धर्म के विद्या पढ़ना और तीसरा परमेश्वर का ठीक २ विचार करके सब विद्याओं को जानलेना इन बातों से सब प्रकार की उन्नति करना मनुष्यों का धर्म है तथा संन्यासाश्रम के तीन पक्ष हैं उन में एक पक्ष है कि जो विषय भोग किया चाहे वह ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ और वानप्रस्थ इन आश्रमों को करके संन्यास ग्रहण करे दूसरा (यदहरेव प्र०) जिस समय वैराग्य अर्थात् पूरे कामों से चित्त हट कर ठीक २ सत्य मार्ग में निश्चित होजाय उस समय गृहाश्रम से भी संन्यास हो सकता है और तीसरा तो पूर्ण विद्वान् होकर सब प्राणियों का शीघ्र उपकार किया चाहे तो ब्रह्मचर्य्याश्रम से ही संन्यास ग्रहण करले ॥

ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति । छान्दो० प्रपा० २ खं० २३ ॥ तमेतं वेदानुवचनेन विविदिषन्ति । ब्रह्मचर्य्येण तपसा श्रद्धया यज्ञेनाना-

अनेन चैतमेव विदित्वा मुनिर्भवत्येतमेव प्रव्राजिनो लोकमीप्सन्तः प्रव्रजन्ति । एतद्धस्मैतत्पूर्वे ब्राह्मणाः । अनूचाना विद्वांसः प्रजां न कामयन्ते किं प्रजया करिष्यामो येषां नोऽयमात्मायं लोक इति ते ह स्मपुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथभिक्षाचर्यं चरन्ति याह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतः । भ० कां० १४ अ० ७ ॥ आ० २

॥ भाष्यम् ॥

(ब्रह्मसंस्थः०) चतुर्थेऽब्रह्मसंस्थः संन्यासी (अमृतत्वं) मोक्षं प्राप्नोति (तमेतं वेदा०) सर्वेऽप्याश्रमिणो विशेषतः संन्यासिनमेतं परमेश्वरं सर्वैर्मन्त्रार्थविद्यैः वेदानुवचनेन तदध्ययनेन तच्छ्रवणेन तद्विज्ञानानुष्ठानेन च वेदयितुमिच्छन्ति । (ब्रह्मचर्येण०) ब्रह्मचर्येण तपसा धर्मानुष्ठानेन श्रद्धया-ऽत्यन्तप्रेम्णा यज्ञेन जागरहितेन विज्ञानेन धर्मक्रियावयवेन चैतं परमेश्वरं विदित्वैव मुनिर्भवति ॥ प्रव्राजिनः संन्यासिन एतं यथोक्तं लोकं द्रष्टुं एतमेश्वरमेवेप्सन्तः प्रव्रजन्ति संन्यासाश्रमं गृह्णन्ति (एतद्ध स्म०) ये एतद्विच्छन्तः सन्तः पूर्वे सत्यनिष्ठा ब्राह्मणा ब्रह्मविदो ऽनूचाना निश्शङ्काः पूर्णज्ञानिनो ऽन्येषां शंकानिवारका विद्वांसः प्रजां गृहाश्रमं न कामयन्ते नेच्छन्ति (ते ह स्म०) हेति स्पष्टे स्मेति स्मये ते प्राक्तना: प्रकाशमाना वदन्ति वयं प्रजया किंकरिष्यामः किमपि नेत्यर्थः । येषां नो ऽस्माकमयमात्मा परमेश्वरः प्राप्योलोको ऽयमेनीयश्चास्ति । यमं ते (पुत्रैषणायाश्च) पुत्रोत्पादनेच्छायाः (वित्तैषणायाश्च) जडधनप्राप्त्यनुष्ठानेच्छायाः (लोकैषणायाश्च) लोके स्वस्य प्रतिष्ठास्तुतिनिन्देच्छायाश्च (व्युत्थाय) विरज्य (भिक्षाचर्यं च०) संन्यासाश्रमानुष्ठानं कुर्वन्ति । यस्य पुत्रैषणा पुत्रप्राप्त्येषणेच्छा भवति तस्यावश्यं वित्तैषणापि भवति यस्य वित्तैषणा तस्य निश्चयेन लोकैषणा भवतीति विज्ञायते । तथा यस्यैका लोकैषणा भवति तस्योभे पूर्वे पुत्रैषणालोकैषणे भवतः । यस्यचपरमेश्वरप्राप्त्येषणेच्छास्तितस्यैताश्चिच्छेदनिवर्तते । नैव ब्रह्मानन्दविज्ञेन तुल्यं लोकत्रितं कदाचिद् भवितुमर्हति । यस्य परमेश्वरे प्रतिष्ठास्ति तस्यान्याः सर्वाः प्रतिष्ठाश्चैव संचिता भवन्ति । सर्वान्मनुष्याननुगृह्णन् सर्वत्र सत्योपदेशेन सुखयति । तस्य केवलं परोपकारमात्रं सत्प्रयत्नेन प्रयोजनं भवतीति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(तमेते) जो कि वेद को पढ़ के परमेश्वर को जानने की इच्छा करते हैं । (ब्रह्मसंस्थ) वे संन्यासी लोग मोक्ष मार्ग को प्राप्त होते हैं तथा (ब्रह्मचर्य) जो सत्पुरुष ब्रह्मचर्य्य, धर्मानुष्ठान, श्रद्धायज्ञ और ज्ञान से परमेश्वर को जान के मुनि अर्थात् विचारशील होते हैं वेही ब्रह्मलोक अर्थात् संन्यासियों के प्राप्तिस्थान को प्राप्त होने के लिये संन्यास लेते हैं जो उन में उत्तम पूर्ण विद्वान् हैं वे गृहाश्रम और वानप्रस्थ के विना ब्रह्मचर्य्य आश्रम से ही संन्यासी हो जाते हैं और उन के उपदेश से जो पुत्र होते हैं उन्हीं को सब से उत्तम मानकर (पुत्रैषणा) अर्थात् संतानोत्पत्ति की इच्छा (वित्तैषणा) अर्थात् धन का लोभ (लोकैषणा) अर्थात् लोक में प्रतिष्ठा की इच्छा करना इस तीन प्रकार की इच्छा को छोड़ के वे भिक्षाचरण करते हैं अर्थात् सर्व गुरु सब के अधिष्ठि होके विचरते हुए संसार को अज्ञानरूपी अंधकार से छुड़ा के सत्यविद्या के उपदेशरूप प्रकाश से प्रकाशित कर देते हैं ॥

प्राजापत्यामिष्टिं निरूप्य तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेदितिशतपथे श्रुत्यक्षराणि ॥ यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्वः कामयते यांश्च कामान् । तं तं लोकं जयते तांश्च कामां-स्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥ १ ॥ मुंडकोपनि० मुण्डके ३ खं० १ मं० १० ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(प्राजापत्या०) सच संन्यासी प्राजापत्यां परमेश्वरदेवतां कामिष्टिं कृत्वा हृदये सर्वमेतन्निश्चित्य तस्यां (सर्ववेदसं) गवाश्वभूम्यादिकं हुत्वा मुनिर्मननशीलः सन्प्रव्रजति संन्यासं गृह्णाति । परंत्वयं पूर्णविद्यावतां रागद्वेषरहितानां सर्वमनुष्योपकारबुद्धीनां संन्यासग्रहणेऽधिकारो भवति नाल्पविदुषामिति । तेषां संन्यासिनां प्राणोपानहोमो द्वेषेभ्य इन्द्रियाणां मनसश्च सदा निवर्त्तनं सत्यधर्मानुष्ठानं चैवाग्निहोत्रम् । किंतु पूर्वेषां चयानामेवाग्निहोत्रमनुष्ठातुं योग्यं यद्वा क्रियामयमस्ति संन्यासिनां तन्न । सत्योपदेश एव संन्यासिनां ब्रह्मयज्ञः । देवयज्ञो ब्रह्मोपासनम् । विद्वांसां प्रतिष्ठाकरणं पितृयज्ञः । ह्यद्भ्यो ज्ञानदानं सर्वेषां भूतानामुपर्य्यनुग्रहोऽपीडनं च भूतयज्ञः । सर्वमनुष्योपकारायैव भ्रमणमभिमानशून्यतासत्योपदेशकरणेन सर्वमनुष्याणां सत्कारानुष्ठानं चातिथियज्ञः । एवं लक्षणाः पंचमहायज्ञा विज्ञानधर्मानुष्ठानमया भवन्तीति विज्ञेयम् । परं त्वेकस्याद्वितीयस्य सर्वशक्तिमदादिविशेषणयुक्तस्य परब्रह्मणऽउपासनासत्यधर्मानुष्ठानं च

सर्वेषामाप्तानामेकमेव भवतीत्ययं विशेषः ॥ (विशुद्धस०) शुद्धान्तःकरणो मनुष्यः (यं यं लोकं मनसा) ध्यानेन संविभाति इच्छति (कामयते यांश्च कामान्) यांश्च मनोरथानिच्छति तं तं लोकं तांश्च कामान् (जायते) प्राप्नोति तस्मात्कारणाद् (भूतिकामः) ऐश्वर्य्यकामो मनुष्यः (आत्मज्ञं) आत्मानं परमेश्वरं जानाति तं संन्यासिनमेव सर्वदार्चयेत्सत्कुर्य्यात् । तस्यैव संगेन सत्कारेण च मनुष्याणां सुखप्रदा लोकाः कामाश्च सिद्धा भवन्तीति । तदभिज्ञान् मिथ्योपदेशकान् स्वार्थसाधनतत्परान्पाखंडिनः कोपि नैवार्चयेत् । कुतः । तेषां सत्कारस्य निष्फलत्वाद्दुःखफलत्वाच्चेति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(प्राजापत्या०) अर्थात् इस दृष्टि में शिखा सूत्रादि का होम करके गृहस्थ आश्रम को छोड़ के विरक्त होकर संन्यास ग्रहण करे । (यं यं लोकं०) वह शुद्ध मन से जिस २ लोक और कामना की इच्छा करता है वे सब उस को सिद्ध हो जाती हैं इस लिये जिस को ऐश्वर्य की इच्छा हो वह आत्मज्ञ अर्थात् ब्रह्मवेत्ता संन्यासी की सेवा करे ये चारों आश्रम वेदों और युक्तियों से सिद्ध हैं क्योंकि सब मनुष्यों को अपनी आयु का प्रथम भाग विद्या पढ़ने में व्यतीत करना चाहिये और पूर्ण विद्या को पढ़ कर उस से संसार की उन्नति करने के लिये गृहाश्रम भी अवश्य करे तथा विद्या और संसार के उपकार के लिये एकांत में बैठकर सब जगत् का अधिष्ठाता जो ईश्वर है उस का ज्ञान अच्छी प्रकार करे और मनुष्यों को सब व्यवहारों का उपदेश करे फिर उन के सब संदेहों का छेदन और सत्य बातों में निश्चय कराने के लिये संन्यास आश्रम भी अवश्य ग्रहण करे क्योंकि इस के विना संपूर्ण पक्षपात छूटना बहुत कठिन है ॥ संन्यासाश्रमविषयः संक्षेपतः ॥

॥ अथ पंचमहायज्ञविषयः संक्षेपतः ॥

ये पंचमहायज्ञा मनुष्यैर्नित्यं कर्त्तव्याः सन्ति तेषां विधानं संक्षेपतोऽत्र लिख्यते । तत्र ब्रह्मयज्ञस्यायं प्रकारः साङ्गानां वेदादिशास्त्राणां सम्यगध्ययनमध्यापनं संध्योपासनं च सर्वैः कर्त्तव्यम् । तत्राध्ययनाध्यापनक्रमौ यादृशौ पठनपाठनविषयौ उक्तस्तादृशौ ज्ञेयौ । संध्योपासनविधिश्च पंचमहायज्ञविधाने यादृशउक्तस्तादृशः कर्त्तव्यः । तथाग्निहोत्रविधिश्च यादृशस्चोक्तस्तादृशश्च कर्त्तव्यः । अत्र ब्रह्मयज्ञाग्निहोत्रप्रमाणं लिख्यते ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ १ ॥ य० अ० ३ मं० १ ॥ अग्निं दूतं पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे ।

मुपब्रुवे ॥ देवा २ ॥ आसादयादिह ॥ २ ॥ य० अ० २२ मं० १७ ॥ सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनस्सो दाता । वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयंत्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ ३ ॥ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्सो दाता । वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम ॥ ४ ॥ अथर्व० कां० १९ अनु० ७ मं० ६ । ४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(समिधाग्निं०) हेमनुष्या यास्योषधि वृष्टिजलशुद्ध्या परोपकाराय (घृतैः) घृतादिमिश्रैरोषधिसमूहैर्होमैः समिधा चातिथिमग्निं यूयं बोधयत नित्यं प्रदीपयत (अस्मिन्) अग्नौ (हव्या) होतुमर्हाणि पुष्टिमधुरसुगन्धरोगनाशकरैर्गुणैर्युक्तानि सम्यक् शोधितानि द्रव्याणि (आ जुहोतन) आसमन्ताज्जुहुत । एवमग्निहोत्रं नित्यं (जुवस्यत) परिचरत । अनेन कर्मणा सर्वोपकारं कुरुत ॥ १ ॥ (अग्निं दूतं०) अग्निहोत्रकर्तेवमिच्छेद्यहं वायौ मेघमंडले च भूतद्रव्यस्य प्रापणार्थमग्निं दूतं भृत्यवत् (पुरोदधे) सन्मुखतःस्थापये कार्यभूतमग्निं (हव्यवाहं) हव्यं द्रव्यं देशान्तरं प्रापयतीति हव्यवाट् तं (उपब्रुवे) अन्यान् जिज्ञासून्प्रत्युपदिशामि (देवां २ ॥ ७) सोग्निरेतदग्निहोत्रकर्मणा देवान् दिव्यगुणान् वायुवृष्टिजलशुद्धिद्वारेहास्मिन्संसारआसादयादासमन्तात्प्रापयति यद्वा हेपरमेश्वर (दूतं सर्वस्य सत्योपदेशकं (अग्निं) अग्निसंज्ञकं त्वां (पुरोदधे) दृष्ट्वेनोपास्यं मन्ये तथा (हव्यवाहं) यद्गृहीतुं योग्यं शुभगुणमयं विज्ञानं हव्यं तद् वहति प्रापयतीति तं त्वां (उपब्रुवे) उपदिशामि स भवान् कृपया (इह) अस्मिन्संसारे (देवान्) दिव्यगुणान् (आसादयात्) आसमन्तात्प्रापयतु ॥ २ ॥ (नः) अस्माकमयं (अग्निः) भौतिकः परमेश्वरश्च गृहपतिर्गृहात्मपालकः प्रातः सायं परिचरितः सुपासितश्च । (सौमनस्य दाता) आरोग्यस्यानन्दस्य च दातास्ति तथा (वसोर्व०) उत्तमोत्तमपदार्थस्य च दातास्ति । अतएव परमेश्वरः (वसुदानः) इति नाम्नाख्यायते हे परमेश्वरैवं भूतस्त्वमस्माकं राज्यादिव्यवहारे हृदये च (एधि) प्रकाशो भव । तथा भौतिकोग्निरत्र ग्राह्यः (वयंत्वे०) हेपरमेश्वर वयं (त्वा) त्वामिन्धानाः प्रकाशमाना वयं (तन्वं) शरीरं (पुषेम) पुष्टं कुर्याम । तथाग्निहोत्रादिकर्मणा भौतिकमग्निमिन्धानाः प्रदीपयितारः सन्तः सर्वे वयं पुष्यामः ॥ ३ ॥ (प्रा-

नः प्रातर्हवनिरो०) अस्यार्थः घृतैर्षड्भिर्होमः । अत्र विशेषस्त्वयं । यत्र-मग्निहोत्रमीश्वरोपासनं च कुर्वन्तः सन्तः (यत्तहिमा०) यत्तं हिमा हेमन्त-शैत्ये गच्छन्ति येषु संवत्सरेषु ते यत्तहिमा यावत्स्युस्तावत् (शतेभिः) शतमिह । यत्तं शतेन कर्मणा नोऽस्माकं कदाचिद्वानिर्न संवेदिनीच्छामः ॥ ४ ॥ अग्निहोत्रकरणार्थं तात्पर्य मृतिक्षायाश्चैकां वेदिं संपाद्य काष्ठस्य रजतसुवर्णयोर्वा चमससमाज्यस्थाल्यौ च संगृह्य तत्र वेद्यां पलाशादिस-मिधः संस्थाप्याग्निं प्रज्वाल्य तत्र पूर्वोक्तद्रव्यस्य प्रातः सायंकालयोः प्रात-रेव वोक्तमंत्रैर्नित्यं होमं कुर्य्यात् ॥ ॥ भाषार्थ ॥

अब पंचमहायज्ञ अर्थात् जो कर्म मनुष्यों को नित्य करने चाहियें उन का विधान संक्षेप से लिखते हैं उन में से प्रथम ब्रह्मयज्ञ कहाता है जिस में अंगों के सहित वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना तथा संध्योपासन अर्थात् प्रातःकाल और सायंकाल में ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना सब म-नुष्यों को करनी चाहिये इस में पठन पाठन की व्यवस्था तो जैसी पठन पाठन विषय में विस्तारपूर्वक लिख आये हैं वहां देख लेना तथा संध्योपासन और अग्निहोत्र का विधान जैसा पंचमहायज्ञविधि पुस्तक में लिख चुके हैं वैसा जान अब आगे ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का प्रमाण लिखते हैं (समिधाग्निं०) हे मनुष्यो तुम लोग वायु औषधी और वर्षा जल की शुद्धि से सब को उपकार के अर्थ घृतादि शुद्ध वस्तुओं और समिधा अर्थात् आमवाङ्क आदि काष्ठों से अग्निरूप अग्नि को नित्य प्रकाशमान करो फिर उस अग्नि में होम करने के योग्य पुष्ट मधुर सुगंधित अर्थात् दुग्ध घृत शक्कर गुड़ केशर कस्तूरी आदि और रोग नाशक जो सोमलता आदि सब प्रकार से शुद्ध द्रव्य हैं उन का अच्छी प्रकार नित्य अग्निहोत्र करके सब को उपकार करो ॥ ५ ॥ (अग्निं दूतं०) अग्निहोत्र करनेवाला मनुष्य ऐसी इच्छा करे कि मैं प्राणियों के उप-कार करनेवाले पदार्थों को पवन और मेघमंडल में पहुंचाने के लिये अग्नि को संप्रेरक जो मानें अपने सामने स्थापन करता हूं क्योंकि वह अग्नि हव्य अ-र्थात् होम करने के योग्य वस्तुओं को अन्य देश में पहुंचानेवाला है इसी से उस का नाम हव्यवाट् है जो उस अग्निहोत्र को जानना चाहें उन को मैं उपदेश करता हूं कि यह अग्नि उस अग्निहोत्र आदि में पवन और वर्षा जल की शुद्धि से (इह) इस संसार में (देवां २ ॥ ०) श्रेष्ठ गुणों को पहुंचाता है दूसरा अर्थ है सब प्राणियों को सत्य उपदेश करके परमेश्वर जो कि आप अग्नि नाम से प्रसिद्ध है मैं इच्छापूर्वक आप को उपासना करने के योग्य मानता हूं ऐसी कृपा करो कि और आप को जानने की इच्छा करनेवालों के लिये भी मैं आप का शुभगुणयुक्त विशेष ज्ञानदायक उपदेश करूं तथा आप भी कृपा कर के इस संसार में श्रेष्ठ गुणों को पहुंचावें ॥ ६ ॥ (सायं सायं०) अग्निर्दिव्य प्रातःकाल

श्रेष्ठ उपासना को प्राप्त यह गृहपति अर्थात् घर और आत्मा का रक्षक भौतिक अग्नि और परमेश्वर (सौमनस्य दा०) आरोग्य, आनन्द, और वसु अर्थात् धन का देनेवाला है इसी से परमेश्वर (वसुदानः) अर्थात् धनदाता प्रसिद्ध है हे परमेश्वर आप मेरे राज्य आदि व्यवहार और चित्त में सदा प्रकाशित रहो यहां भौतिक अग्नि भी ग्रहण करने के योग्य है (अग्ने त्वे०) हे परमेश्वर जैसे पूर्वोक्त प्रकार से हम आप को मान करते हुए अपने शरीर से (एधेम) पुष्ट होते हैं वैसे ही भौतिक अग्नि को भी प्रज्वलित करते हुए पुष्ट हों ॥ ३ ॥ (शतः शतहेमन्तेभि०) इस मंत्र का अर्थ पूर्व मंत्र के तुल्य जानो परन्तु इस में इतना विशेष भी है कि अग्निहोत्र और ईश्वर की उपासना करते हुए हमलोग (शतहिमाः) सौ हेमंत ऋतु व्यतीत हो जाने पर्य्यन्त अर्थात् सौ वर्ष तक धनादि पदार्थों से (वर्धेम) वृद्धि को प्राप्त हों ॥ ४ ॥ अग्निहोत्र करने के लिये लाख वा मिट्टी की वेदी बना के काष्ठ चांदी वा सोने का चमसा अर्थात् अग्नि में पदार्थ डालने का पात्र और आज्यस्थाली अर्थात् घृतादि पदार्थ रखने का पात्र लेके उस वेदी में ढांक वा आम्र आदि वृक्षों की समिधा स्थापन करके अग्नि को प्रज्वलित करके पूर्वोक्त पदार्थों का प्रातःकाल और सायंकाल अथवा प्रातःकाल ही नित्य होम करें ॥

॥ अथाग्निहोत्रे होमकरणमंत्राः ॥

सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा । सूर्य्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्यो ज्योतिः स्वाहा । सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ॥ जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ॥ इति प्रातःकालमंत्राः ॥ अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ अग्निर्ज्योतिरिति मंत्रं मनसोच्चार्य्य हृत्वोच्चार्य्य जुहुयाच्छुतिदृष्ट्या ॥ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या । जुषाणोऽग्निर्वेतु स्वाहा ॥ य० अ० ३ मं० ८ ॥ १० ॥ इति सायंकालमंत्राः ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(सूर्य्यो०) यश्चराचरात्मा ज्योतिषां प्रकाशकानां ज्योतिः प्रकाशकः सूर्य्यः सर्वप्राणः परमेश्वरोऽस्ति तस्मै स्वाहा इयं सदाचारपालनेन सर्वजगदुपकारायैकाहुतिः इदमः ॥ १ ॥ (सूर्य्यो व०) योऽयं वर्चः सर्वविदां ज्योतिषां ज्ञानवतां जीवानां वर्चो ऽन्तर्यामितया सत्योपदेष्टा सर्वात्मा सूर्य्यः परमेश्वरोऽस्ति तस्मै० ॥ २ ॥ (ज्योतिः सू०) यः स्वयंप्रकाशः सर्वजगत्प्रकाशकः सूर्य्यो जगदीश्वरोऽस्ति तस्मै० ॥ ३ ॥ (सजू०) योऽयं देवेन

द्योतकेन सवित्रा सूर्य्यलोकेन चक्षुषेन च सह तथा (इन्द्रवत्या) सूर्य्यप्रकाशवत्योषधयश्च जीववत्या मानसवृत्त्या (सजूः) सह वर्त्तमानः परमेश्वरोऽस्ति सः (जुषाणः) संप्रीत्या वर्त्तमानः सन् (सूर्य्यः) सर्वात्मा कृपाकटाक्षेणास्मान् वेतु विद्यादिसद्गुणेषु ज्ञानविज्ञानान् करोतु तस्मै० ॥ ४ ॥ इमा चतस्रआहुतीः प्रातरग्निहोत्रे कुर्वन्ति ॥ अथ सायंकालाहुतयः (अग्निर्ज्योतिः०) यो ज्ञानस्वरूपो ज्योतिषां ज्योतिरग्निः परमेश्वरोऽस्ति तस्मै० ॥ १ ॥ (अग्निर्वर्च्चो०) यः पूर्वोक्तोग्निः परमेश्वरोऽस्ति तस्मै० ॥ २ ॥ अग्निर्ज्योतिरित्यनेनैव तृतीयाहुतिर्देया तदर्थश्च पूर्ववत् ३ ॥ (सजूर्देवे०) यः पूर्वोक्तेन देवेन सवित्रा सह परमेश्वरः सजूरस्ति । यश्चेन्द्रवत्या वायुचन्द्रवत्यारात्र्या सह वर्त्तते सोग्निः (जुषाणः) संप्रीतोऽस्मान् वेतु नित्यानन्दमोक्षसुखाय स्वकृपया कामयतु तस्मै जगदीश्वराय स्वाहेति पूर्ववत् ॥ ४ ॥ यस्मिन्कालेग्निहोत्रिणो जुह्वति । यस्मिन्काले सर्वाभिर्वा (सर्वेवै०) हे जगदीश्वर यदिदमस्माभिः परोपकारार्थं कर्म क्रियते तद्यावत्कृष्णाऽलं भवत्तिनिहेतोरेतत्कर्म तुभ्यं समर्प्यते तथैतरेयब्राह्मणे पंचमपंचिकायामेकत्रिंशतमायां कंडिकायां च सायं प्रातरग्निहोत्रमंत्रा भूर्भुवः स्वरोमित्यादयो दर्शिताः ॥

॥ भाषार्थ ॥

(सूर्य्योज्यो०) जो चराचर का आत्मा प्रकाशस्वरूप और सूर्य्यादि प्रकाशक लोकों का भी प्रकाशकरनेवाला है उस की प्रसन्नता के लिये हम लोग होम करते हैं ॥ १ ॥ सूर्य्यावर्च्चो०) सूर्य्य जो परमेश्वर है वह हम लोगों को सब विद्याओं का देनेवाला और हम से उन का प्रचार कराने वाला है उसी के अनुग्रह से हमलोग अग्निहोत्र करते हैं ॥ २ ॥ (ज्योतिः सू०) जो आप प्रकाशमान और जगत् का प्रकाशकरनेवाला सूर्य्य अर्थात् संसार का ईश्वर है उस की प्रसन्नता के अर्थ हमलोग होम करते हैं ॥ ३ ॥ (सजूर्देवेन०) जो परमेश्वर सूर्य्यादि लोकों में व्याप्त वायु और दिन के साथ संसार का परम हितकारक है वह हमलोगों को प्रसिद्ध होकर हमारे किये हुए होम को ग्रहण करे इन चार आहुतियों से प्रातःकाल अग्निहोत्री लोग होम करते हैं ॥ ४ ॥ अब सायंकाल की आहुति के मंत्र कहते हैं (अग्निर्ज्यो०) अग्नि जो ज्योतिस्वरूप परमेश्वर है उस की आज्ञा से हमलोग परोपकार के लिये होम करते हैं और उस का रचा हुआ यह भौतिक अग्नि इस लिये है कि यह उन द्रव्यों को परमाणुरूप करके वायु और वर्षा जल के साथ मिला के शुद्ध करदे जिस से सब संसार को सुख और आरोग्यता की वृद्धि हो ॥ १ ॥ (अग्निर्वर्च्चो०) अग्नि परमेश्वर वर्च्च अर्थात् सब विद्याओं का देनेवाला

और भौतिक अग्नि आरोग्यता और वृष्टि का बढ़ानेवाला है इस लिये इस होम से परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं यह दूसरी आहुति है तीसरी मौन होके प्रथम मंत्र से करनी । और चौथी (सञ्जूर्देवेभ्य०) से अग्नि परमेश्वर भूम्यादि लोकों में व्याप्त, वायु और रात्रि के साथ संसार का परम हितकारक है वह हम को विदित होकर हमारे किये हुए होम का ग्रहण करे ॥

अथोभयोः कालयोरग्निहोत्रे होमकरणार्थाः समानमंत्राः ॥ ओम्भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ १ ॥ ओम्भुवर्वायवे ऽपानाय स्वाहा २ ॥ ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ३ ॥ ओम्भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ४ ॥ ओमापोज्योतीरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरों स्वाहा ५ ॥ ओं सर्वं वै पूर्ण स्वाहा ६ ॥ इति सर्वेचास्तैत्तिरीयोपनिषदाशयेनैकीकृताः ॥ ॥ भाष्यम् ॥

यद्यु मंत्रेषु भूरित्यादीनि सर्वाणीश्वरस्य नामान्येव वेदानि यथार्थो गायत्र्यर्थे द्रष्टव्याः । अग्नये परमेश्वराय जलवायुशुद्धिकरणाय च होत्रं हवनं दानं यस्मिन्कर्मणि क्रियते तदग्निहोत्रम् । ईश्वराज्ञापालनार्थं वा । सुगंधि, पुष्टि, मिष्ट, वृद्धिवृद्धि, शौर्य्य, धैर्य्य, बल, रोगनाशकरैर्गुणैर्युक्तानां द्रव्याणां होमकरणेन वायुवृष्टिजलयोः शुद्धया पृथिव्यादिस्थपदार्थानां सर्वेषां शुद्धवायुजलयोगात्सर्वेषां जीवानां परमसुखं भवत्येव । अतस्तत्कर्मकर्तॄणां जनानां तदुपकारेणात्यन्तसुखमीश्वरानुग्रहश्च भवत्येतदाद्यर्थमग्निहोत्रकरणम् ॥ ॥ भाषार्थ ॥

इन मंत्रों में जो भूः इत्यादि नाम हैं वे सब ईश्वर के ही जानो गायत्री मंत्र के अर्थ में इन के अर्थ कर दिये हैं इस प्रकार प्रातःकाल और सायंकाल संध्योपासन के पीछे इन मंत्रों से होम कर के अधिक होम करने की इच्छा हो तो स्वाहा शब्द अन्त में पढ़ कर गायत्री मंत्र से करे जिस कर्म में अग्नि वा परमेश्वर के लिये जल और पवन की शुद्धि वा ईश्वर की आज्ञापालन के अर्थ होत्र हवन अर्थात् दान करते हैं उसे अग्निहोत्र कहते हैं जो = केशरि कस्तूरी आदि सुगंधि घृत दुग्ध आदि पुष्ट गुड़ शर्करा आदि मिष्ट वृद्धि बल तथा धैर्यवर्धक और रोगनाशक पदार्थ हैं इन का होम करने से पवन और वर्षा जल की शुद्धि से पृथिवी के सब पदार्थों की जो अत्यंत उत्तमता होती है उसी से सब जीवों को परम सुख होता है इस कारण अग्निहोत्र करनेवाले मनुष्यों को उस उपकार से अत्यंत सुख जो

लाभ होता है और ईश्वर उन पर अनुग्रह करता है ऐसे २ लाभों के अर्थ अग्निहोत्र का करना अवश्य उचित है ॥ इत्यग्निहोत्रविधिः समाप्तः ॥

॥ अथ तृतीयः पितृयज्ञः ॥

तस्य द्वौ भेदौस्तः सत्कर्मपैण्याख्यो द्वितीयः आद्धाख्यश्च । तत्र येन कर्मणा विदुषो देवानृषीन् पितॄंश्च तर्पयन्ति सुखयन्ति तत्तर्पणम् । तथा यत्तेषां श्रद्धया सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धं वेदितव्यम् । तत्र विद्वत्सु विद्यमानेष्वेतत्कर्म संघट्यते नैव मृतकेषु । कुतः । तेषां प्राप्त्यभावेन सेवनाभ्यत्वात् । तदर्थकृतकर्मणः प्राप्त्यभावश्च व्यर्थतापत्तेश्च । तस्माद्विद्यमानाभिप्रायेणैतत्कर्मोपदिश्यते । सेव्यसेवकसंनिकर्षात्सर्वसेवनसंज्ञानं भवतीति । तत्र सत्कर्मव्याख्याः सन्ति । देवाः ऋषयः पितरश्च तत्र देवेषु प्रमाणम् ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वभूतानि जातवेदः पुनाहि मा ॥ १ ॥ य० अ० १९ । मं० ३९ इदं वा इदं न इतरेवस्ति । सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या उपजीवन्त्यनृतात्त्यमुपैतीति तत्मनुष्येभ्यो देवानुपैति ॥ स वै सत्यमेव वदेत् । एतद्वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यम् । तस्मात्ते यशोऽर्चाऽभवन्ति य एवं विद्वान्त्सत्यं वदति ॥ श० का० १ अ० १ ब्रा० १ ॥ विद्वांसो हि देवाः श० का० ३ अ० ७ ब्रा० ६ ॥ अथर्षिप्रमाणम् ॥ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ॥ तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ २ ॥ य० अ० ३१ मं० ९ । अथ यदेषानुब्रुवीत । तेनर्षिभ्य ऋणं जायते तद्भ्य एतत् करोत्यृषीणां निधिगोपायति त्वमूचानमाहुः । श० का० १ अ० ७ ब्रा० ५ ॥ कण्डिका ३ । अथार्षेयं प्रवृणीते । ऋषिभ्यश्चैवैनमेतद्देवेभ्यश्च निवेदयत्यवं मन्वानोऽयो वै यज्ञं प्रापदिति तस्मादार्षेयं प्रवृणीते । श० का० १ अ० ४ ब्रा० ५ कं० ३ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(जातवेदः) हे परमेश्वर (मा) मां पुनीहि सर्वथा पवित्रं कुरु । भवद्विद्याभवद्दात्रापालिनो (देवजनाः) विद्वांसः श्रेष्ठा ज्ञानिनो विद्यादानेन (मा) मां (पुनन्तु) पवित्रं कुर्वन्तु तथा (पुनन्तु मन०) भवद्दत्तविज्ञानेन भवद्विषयकथ्यानेन वा अस्माकं बुद्धयः पुनन्तु पवित्रा भवन्तु । तथा (पुनन्तु विश्वाभूतानि) विश्वानि सर्वाणि संसारस्थानि भूतानि पुनन्तु भवत्कृपया सुखानन्दयुक्तानि पवित्राणि भवन्तु ॥ (द्वयं वा०) मनुष्याणां द्वाभ्यां लक्षणाभ्यां द्वे एव संज्ञे भवतः । देवो मनुष्यश्चेति तत्र (सत्यं चैवानृतं च) कारणोक्तः (सत्यमेव०) यत्सत्यवचनं सत्यमानं सत्यकर्म तदेव देवा आचरन्ति । तद्विपरीतमनृतवचनमनृतमानमनृतकर्म चेति मनुष्याश्चेति । अत एव यो ऽनृतं त्यक्त्वा सत्यमुपैति सदेवः परिगण्यते । यश्च सत्यं त्यक्त्वा ऽनृतमुपैति स मनुष्यश्च अतः सत्यमेव सर्वदा यदेनमन्येत कुर्य्याच्च यः सत्यव्रतो देवैरस्ति स एव यशस्विनां मध्ये यशस्वी भवति तद्विपरीतो मनुष्यश्च तस्मादहं विद्वांस एव देवाः सन्ति ॥ सं गच्छामिति सृष्टिविद्याविषये व्याख्यातः । (अथ यदेवा०) अथेत्यनन्तरं सर्वविद्यां पठित्वा यदनुष्ठचनमध्यापनं कर्मानुष्ठानमस्ति तदधिकृत्य विज्ञाप्यते । तेनाध्ययनाध्यापनकर्मणोर्वर्त्तयः सेवनीया जायन्ते । यतेषां प्रियमाचरन्ति तदेतेभ्यः सेवा कर्त्तृभ्य एव सुखकारी भवति । यः सर्वविद्याविद्भूत्वाऽध्यापयति तमेवानूचानमृषिमाहुः । (अथार्षेयं प्रवृ०) यो मनुष्यः पाठनं कर्म प्रवृणोति सदार्षेयं कर्म कथ्यते य ऋषिभ्यो देवेभ्यो विद्यार्थिभ्यश्च प्रियं वस्तु निवेदयित्वा नित्यं विद्यामधीते स विद्वान् महाचीर्य्यो भूत्वा यज्ञं विज्ञानाख्यं (आयन्) प्राप्नोति तस्मादिदमार्षेयं कर्म सर्वैर्मनुष्यैः स्वीकार्य्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब तीसरा पितृयज्ञ कहते हैं उस के दो भेद हैं एक तर्पण और दूसरा श्राद्ध उन में से जिस कर्म करके विद्वानरूप देव ऋषि और पितरों को सुख युक्त करते हैं सो तर्पण कहाता है तथा जो उन लोगों की श्रद्धापूर्वक सेवा करना है उसी को श्राद्ध जानना चाहिये यह तर्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जीते हुए जो प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता है मरे हुओं में नहीं क्योंकि मृतकों का प्रत्यक्ष होना असंभव है इस लिये उन की सेवा नहीं हो सकती तथा जो उन के लिये कोई पदार्थ दिया जाये वह भी उन को नहीं मिल सकता इस से केवल विद्यमानों की ही श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध वेदों में कहा है क्योंकि सेवा करने योग्य और सेवा करने वाले इन दोनों ही के प्रत्यक्ष होने से यह सब काम हो सकता है दूसरे

प्रकार से नहीं सो तर्पण आदि कर्म से सत्कार करने योग्य तीन हैं देव ऋषि और पितर इनों में प्रमाण (पुनन्तु०) हे ज्ञानवेद परमेश्वर आप सब प्रकार से मुझे पवित्र कीजिये और जो आप के उपासक आप की आज्ञा पालते हैं अथवा जोकि विद्वान् ज्ञानी पुरुष कहाते हैं वे मुझको विद्यादान से पवित्र करें और आप से दिये विशेष ज्ञान वा आप के विषय के ध्यान से हमारी बुद्धियां पवित्र हों तथा (पुनन्तु विश्वाभूतानि) सब संसारी जीव आप की कृपा से पवित्र होकर आनंद में रहें (द्वये वा०) दो लक्षणों के पाये जाने से मनुष्यों की दो संज्ञा होती हैं अर्थात् एक देव और दूसरी मनुष्य इन में भेद होने के सत्य और झूंठ दो कारण हैं (सत्यमेव) जो कोई सत्यभाषण सत्यस्वीकार और सत्यकर्म करते हैं वे देव तथा जो झूंठ बोलने झूंठ मानने और झूंठ कर्म करते हैं वे मनुष्य कहाते हैं इस लिये झूंठ को छोड़कर सत्य को प्राप्त होना सब को उचित है इस कारण से बुद्धिमान लोग निरंतर सत्य ही कहें मानें और करें क्योंकि सत्यव्रत आचरण करनेवाले जो देव हैं वे तो कीर्त्तिमानों में भी कीर्त्तिमान होके सदा आनंद में रहते हैं परंतु उन से विपरीत चलनेवाले मनुष्य दुःख को प्राप्त होकर सब दिन पीड़ित ही रहते हैं इस से सत्यधारी विद्वान् ही देव कहाते हैं ॥ (सं यञ्जं०) इस मंत्र का व्याख्यान सृष्टिविद्याविषय में कर दिया है ॥ (अथ यदेवा०) जो सब विद्याओं को पढ़ के औरों को पढ़ाना है यह ऋषिकर्म कहाता है और जो मनुष्यों पर ऋषियों का ऋण होता है इस सब की निवृत्ति उन की सेवा करने से होती है । इस में जो नित्य विद्यादान यज्ञ और सेवाकर्म करना है । वही परस्पर आनन्दकारक है और यही व्यवहार (निधि गोप०) अर्थात् विद्याकोश का रक्षक है ॥ (अर्षेयं प्रभृ०) विद्या पढ़ के सबों को पढ़ानेवाले ऋषियों और देवों की प्रिय पदार्थों से सेवा करनेवाला विद्वान् वह पराक्रमयुक्त होकर विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है इस से आर्षेय अर्थात् ऋषि कर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥

॥ अथ पितृषु प्रमाणम् ॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ १ ॥ यजु० अ० २ मं० ३४ ॥ आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ २ ॥ य० अ० १९ मं० ५८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(ऊर्जं वहन्ती०) सर्वे मनुष्याः सर्वान्नात्येषं जानीयुश्चत्वेषुः

(मे पितॄन्) मम पितृपितामहादीनाचार्य्यादींश्च सर्वे यूयं तर्पयत सेवया प्रसन्नान् कुरुतेति तथा (स्वधास्थ) सत्यविद्याभक्तिस्वपदार्थधारिणो भवत । केन केन पदार्थेन ते सेवनीयास्तानाह (ऊर्जं०) पराक्रमं प्रापिकाः सुगन्धिताः प्रिया हृद्या अपः (अमृतं) अमृतात्मकमनेकविधं रसं (घृतं) आज्यं (पयः) दुग्धं (कीलालं) संस्कारैः संपादितमनेकविधमन्नं (परिस्रुतम्) माक्षिकं मधुकालपक्वं फलादिकं च निवेद्य पितॄन् प्रसन्नान्कुर्य्यात् ॥ १ ॥ ये (सोम्यासः) सोमगुणाः शान्ताः सोमवल्यादिरसनिष्पादने चतुराः (अग्निष्वात्ताः) अग्निः परमेश्वरो ऽभ्युदयाय सुष्ठुतया ऽत्तो गृहीतो यैस्ते ऽग्निष्वात्ताः । तथा होमकरणार्थं शिल्पविद्यासिद्धये च भौतिकोऽग्निरत्तो गृहीतो यैस्ते पितरो विज्ञानवन्तः पालकाः सन्ति (आयन्तु नः) ते अस्मत्समीपमागच्छन्तु । वयं च तत्सामीप्यं नित्यं गच्छेम । (पथिभिर्दे०) तान् विदुन्मार्गदृष्टिपथमागतान् दृष्ट्वा ऽभ्युत्थाय हे पितरो भवन्त आयन्त्वित्युक्त्वा प्रीत्या ऽऽसनादिकं निवेद्य नित्यं सत्कुर्य्याम (अस्मिन्०) हे पितरो ऽस्मिन्सत्कारकृते यज्ञे (स्वधया) अमृतरूपया सेवया (मदन्तो) हृष्यन्तो ऽस्मादधिकारः सन्तः सत्यविद्यामधिकुर्वन्तूपदिशन्तु ॥ २ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(ऊर्ज्जं वह०) पिता वा स्वामी अपने पुत्र पाँच स्त्री और नौकरों को इस प्रकार आज्ञा देवे कि (तर्पयत मे०) जो २ हमारे मान्य पिता पितामहादि माता मातामहादि और आचार्य्य तथा इन से भिन्न भी विद्वान् लोग जो अवस्था वा ज्ञान में बड़े और मान्य करने योग्य हैं तुमलोग उन को (ऊर्जं०) उत्तम २ अन्न (अमृतं) रोग नाश करनेवाले उत्तम जल (परिस्रुतं) सब प्रकार के उत्तम फलों के रस आदि पदार्थों से नित्य सेवा किया करो कि जिस से वे प्रसन्न होके तुमलोगों को सदा शिक्षा देते रहें क्योंकि ऐसा करने से तुमलोग भी सदा प्रसन्न रहोगे (स्वधास्थ०) और ऐसा नित्य सदा रक्खो। कि हे पूर्वोक्त पितर लोगो आप हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से तृप्त हूजिये और हमलोग जो २ पदार्थ आप लोगों की इच्छा के अनुकूल निवेदन कर सकें उन २ की आज्ञा किया कीजिये हमलोग मन वचन और कर्म से आप के सुख करने में स्थित हैं आप किसी प्रकार का दुःख न पाइये क्योंकि जैसे आपलोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्य्याश्रम में हमलोगों को सुख दिया है वैसे ही हम को भी आपलोगों का प्रत्युपकार करना अवश्य चाहिये कि जिस से हमलोगों को कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो ॥ १ ॥ (आयन्तु नः) पितृ शब्द से सब के रक्षक श्रेष्ठ स्वभाववाले ज्ञानियों का ग्रहण होता

है क्योंकि जैसी रक्षा मनुष्यों की शिक्षा और विद्या से हो सकती है वैसी किसी दूसरे प्रकार से नहीं इसी लिये जो विद्वान् लोग मनुष्यों को ज्ञान-चक्षु देकर उन के अविद्यारूपी अंधकार के नाश करनेवाले हैं उन को पितर कहते हैं उन के सत्कार के लिये मनुष्यमात्र को ईश्वर की यह आज्ञा है कि वे उन आते हुए पितरलोगों को देख कर अभ्युत्थान अर्थात् उठ के प्रीतिपूर्वक कहें कि आइये बैठिये कुछ जलपान कीजिये फिर आने योग्य को आज्ञा दीजिये अर्थात् जो २ आने उपदेश करने के योग्य हैं सो २ प्रीतिपूर्वक समझावें कि जिस से हमलोग भी सत्यविद्या युक्त होके सब मनुष्यों को पितर कहावें और सदा ऐसी प्रार्थना करें कि हे परमेश्वर आप के अनुग्रह से (सोम्यासः) जो शांत स्वभाव और सब को सुख देनेवाले विद्वान लोग (अग्निष्वात्ताः) अग्नि नाम परमेश्वर और रूप गुण वाले भौतिक अग्नि को अलग २ करने वाले विद्युत् रूप विद्या को यथावत् जाननेवाले हैं वे इस विद्या और शिक्षा यज्ञ में (स्वधया मदन्तः) अपनी शिक्षा विद्या के दान और स्वीकार से अत्यंत प्रसन्न होके (बर्हिषत्वान्) हमारी सदा रक्षा करें तथा इन विद्याविरोधी और सबको दुःख देनेवालों के लिये भी ईश्वर की आज्ञा है कि जब २ ये आवें वा जहां तहां २ इन को प्रत्यक्ष नमस्कार और प्रियवचन आदि से संतुष्ट रक्खें तथा फिर ये लोग भी अपने सत्यभाषण में निर्भरता और अनुग्रह आदि सद्गुणों में युक्त होकर अन्य मनुष्यों को उसी मार्ग में चलावें और आप भी दृढ़ता के साथ उसी में चलें ऐसे सब लोग छल और लोभादि रहित होकर परोपकार के अर्थ अपना सत्य व्यवहार रक्खें (बर्हिभिर्देवयानैः) इस भेद से विद्वानों के दो मार्ग होते हैं एक देवयान और दूसरा पितृयान अर्थात् जो विद्यामार्ग है वह देवयान और जो कर्मोपासनामार्ग है वह पितृयान कहाता है सब लोग इन दोनों प्रकार के पुरुषार्थ को सदा करते रहें ॥

अहं पितरो सादयध्वं यथा भागमावृषायध्वम् । अमी-मदन्त पितरो यथा भागमावृषायिषत ॥ ६ ॥ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै । नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वः । गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मै तद्वः पितरो वासु आधत्त ॥ ७ ॥ आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् ॥ ८ ॥ य० अ० २ मं० ३२ । ३३ । ३५ ।

॥ भाष्यम् ॥

(अत्र पितरो०) हेपितरोऽस्यां सभायां पाठशालायां वा अस्मान् विद्याविज्ञानदानेनानन्दयुक्तान् कुरुत (यथा भाग०) भजनीयं स्वं स्वं विद्याहृपं भागं (आवृषायध्वं) विद्वद्वत्स्थीकृत्य (अमीमदन्त) अस्मिन्सत्येऽहेशे विद्यादानकर्मणि हर्षेण सदोत्साहयन्तो भवत । (यथा भागमा०) तथा यथायोग्यं सत्कारं प्राप्य श्रेष्ठाचारेण प्रसन्नाः सन्तो विचरत ॥ ३ ॥ (नमो वः) हे पितरः । रसाय सोमलतादिरसविज्ञानानन्दयहणाय (नमो वः पितरः०) शोषायाग्निवायुविद्या प्राप्तये (नमो वः पितरो जी०) जीवनार्थं विद्याजीविकाप्राप्तये (नमो वः पितरः स्व०) मोक्षविद्याप्राप्तये (नमो वः०) आपत्कालनिवारणाय (नमो वः०) दुष्टानामुपरि क्रोधधारणाय क्रोधस्य निवारणाय च (नमो वः पितरः०) सर्वविद्याप्राप्तये च युष्मभ्यं वारंवारं नमोस्तु (गृहान्नः०) हे पितरो गृहान् गृहसंबन्धिव्यवहारबोधाद्योऽस्मभ्यं यूयं दत्त (सतो वः०) हे पितरो येऽस्माकमधिकारे विद्यमानाः पदार्थाः सन्ति तान् वयं वो युष्मभ्यं ददमो यतो वयं (द्वेष्मः) कदाचिद्वद्वद्भ्यो विद्यां प्राप्य क्षीणा न भवेम (मतदुः पितरः) हे पितरोऽस्माभिर्यद्वासो वस्त्रादिकं वस्तु युष्मभ्यं दीयते मतद्यूयं प्रीत्या गृह्णीत ॥ ४ ॥ (आधत्त पितरो०) हे पितरो यूयं मनुष्येषु विद्यागर्भमाधत्त धारयत । तथा विद्यादानार्थं (पुष्करस्रजं) पुष्पमालाधारिणं कुमारं ब्रह्मचारिणं यूयं धारयत (यथेह०) येन प्रकारेणेहास्मिन्संसारे विद्यासु शिक्षायुक्तः पुरुषोऽसत्स्यात् । येन च मनुष्येषूत्तमविद्वोऽस्तिर्भवेत्तथैव प्रयतध्वम् ॥ ५ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(अत्र पितरो मा०) हे पितरलोगो आप यहां हमारे स्थान में आनंद कीजिये (यथा भागमाद०) अपनी इच्छा के अनुकूल भोजन वस्त्रादि भोग से आनंदित हूजिये (अमीमदन्त पितरः०) आप यहां विद्या के प्रचार से सब को आनंदयुक्त कीजिये (यथा भागमा०) हमलोगों से यथायोग्य सत्कार को प्राप्त होकर अपनी प्रसन्नता के प्रकाश से हमको भी आनंदित कीजिये ॥ ३ ॥ (नमो वः) हे पितरलोगो हमलोग आप को नमस्कार करते हैं इस लिये कि आप के द्वारा हमको रस अर्थात् विज्ञानंद ओषधि और जल विद्या का यथावत् ज्ञान हो तथा (नमो वः०) शोष अर्थात् अग्नि और वायु की विद्या कि जिससे ओषधि और जल शुद्ध जाने जाते हैं उस के बोध होने के लिये भी हम आप को नमस्कार करते हैं (नमो वः०) हे पितरलोगो आप की सत्यशिक्षा से हमलोग प्रमादरहित और जितेन्द्रिय होके पूर्ण उमर को भोगें इसलिये हम आप को नमस्कार करते हैं (नमो वः०) हे विद्वान् लोगो अमृत

कर मोक्षविद्या की प्राप्ति के लिये हम आप को नमस्कार करते हैं (नमो वः०) हे पितरो ! और विषय अर्थात् आपत्काल में निरोध करने की विद्याओं को जानने की इच्छा से दुःखों के पार उतरने के लिये हमलोग आप की सेवा करते हैं (नमो वः०) हे पितरो ! दुष्ट चोर और दुष्ट कर्मों पर नित्य अप्रीति करने की विद्या सीखने के लिये हम आप को नमस्कार करते हैं (नमो वः०) हम आपलोगों को बारंबार नमस्कार इस लिये करते हैं कि एतदाप्त्यादि करने के लिये जो २ विद्या अवश्य हैं सो २ सब आपलोग हम को देवें (नमो वः०) हे पितरलोगो ! आप सब सुखों और सब संसारी सुखों के देनेवाले हैं इस लिये हम लोग आप को उत्तम २ पदार्थ देते हैं इन को आप प्रीति से लीजिये तथा प्रतिष्ठा के लिये उत्तम २ वस्त्र भी देते हैं इन को आप धारण कीजिये और प्रसन्न होके सब के सुख के अर्थ संसार में सत्यविद्या का प्रचार कीजिये ॥ ४ ॥ (आयन्तु पितरो०) हे विद्या के देनेवाले पितरलोगो ! इस कुमार ब्रह्मचारी को गर्भ के समान रक्षा करके उत्तम विद्या दीजिये कि जिस से यह विद्वान् होके (पुष्कारस्रं०) जैसे पुष्पों की माला धारण करके मनुष्य शोभा को प्राप्त होता है वैसे ही यह भी विद्या पाकर सुन्दरशोभायुक्त होवे । (यथेह पुरुषोऽसत्) अर्थात् जिस प्रकार इस संसार में मनुष्यों की विद्यादि शुभगुणों से उत्तम कीर्ति और सब मनुष्यों को सुख प्राप्त हो सके वैसा ही प्रयत्न आपलोग सदा कीजिये यह ईश्वर की आज्ञा विद्वानों के प्रति है इसलिये सब मनुष्यों को उचित है कि इस का पालन सदा करते रहैं ॥ ५ ॥

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः । तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिँल्लोके शतꣳ समाः ॥ ६ ॥ य० अ० १९ मं० ४६ । उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं यईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नो वन्तु पितरो हवेषु ॥ ७ ॥ अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः । तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ८ ॥ य० अ० १९ मं० ४९ । ५० ॥ ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ ९ ॥ य० अ० १९ । मं० ४५ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(ये समानाः) ये मामका मदीया आचार्योदयः (जीवाः) विद्यमानजीवनाः (समनसः) धर्मेश्वरसर्वमनुष्यहितकरणेऽनिष्ठाः (समानाः) धर्मेश्वरसत्यविद्यादिशुभगुणेषु समानत्वेन वर्तमानाः (जीवेषु) उपदेश्येषु

शिष्येषु सत्यविद्यादानाय कलादिदोषरहितत्वेन वर्त्तमानाविद्वांसः सन्ति (तेषां०) विदुषां या श्रीः सत्यविद्यादिगुणाढ्या शोभास्ति (अस्मिन् लोके शतं०) सामयिकी लक्ष्मीः शतवर्षपर्य्यन्ते (कल्पताम्) स्थिरा भवतु यतो वयं नित्यं सुखिनः स्याम ॥ ६ ॥ (उदीरतामवर०) ये पितरो उत्कृष्टगुणाः (उत्परासः) उत्कृष्टगुणाः (उन्मध्यमाः) मध्यस्थगुणाः (सोम्यासः) सोम्यगुणाः (अङ्गिरसः) अङ्गानामवयवः (घर्मसदः) ब्रह्मविदो वेदविदश्च ते ज्ञानिनः पितरो हवेषु देयग्राह्यव्यवहारेषु विज्ञानदानेन (नोऽवन्तु) अस्मान् सदा रक्षन्तु तथा (असुंयवेयुः) येऽसुं प्राणमीयुः प्राप्नुयुरर्थाद् द्वाभ्यां जन्मभ्यां विद्वांसो भूत्वा विद्यमानजीवनास्ते यत्र सर्वैः सेवनीया नैव मृताश्चेति कुलस्त्रेषां देशान्तरप्राप्या सन्निकर्षाभावात् सेवाग्रहणेऽसमर्थाः सेवितुमशक्याश्च ॥ ७ ॥ (आङ्गिरसो नः) ये इन्द्रेषु रसभूतस्य प्राणाख्यस्य परमेश्वरस्य ज्ञातारः (नवग्वाः) सर्वासु विद्यासूत्तमकर्मसु च नवीनागमयो येषां ते (अथर्वाणः) अथर्ववेदविदो धनुर्वेदविदश्च (भृगवः) परिपक्वज्ञानाः शुद्धाः (सोम्यासः) शान्ताः सन्ति (तेषां वयं सुमतौ) वयं तेषां यज्ञानां यज्ञादिसत्कर्मसु कुशलानामर्पणेति निश्चयेन सुमतौ विद्यादिशुभगुणदर्शने (भद्रे) कल्याणकरे व्यवहारे (सौमनसे) यत्र विज्ञानन्तयुक्तं मनो भवति तस्मिन् (स्याम) अर्थाद्वयं सत्कारादुपदेशं गृहीत्वा धर्मार्थकाममोक्षप्राप्ता भवेम ॥ ८ ॥ (ये समानाः) (समनसः) अनयोरर्थउक्तः । ये(यमराज्ये) राजसभायां न्यायाधीशत्वेनाधिकृताः (पितरः) विद्वांसः सन्ति (तेषां लोकः) यो न्यायदर्शने स्वधा अमृतात्मको लोको भवतीति (यज्ञो०) यश्च प्रजापालनाख्यो राजधर्मव्यवहारो देवेषु विद्वत्सु प्रसिद्धोऽस्ति । सोऽस्माकं मध्ये (कल्पताम्) समर्थतां प्रसिद्धो भवतु । य एव सत्यन्यायकारिणः सन्ति तेभ्यो (नमः) नमोऽस्तु अर्थाद्ये सत्यन्यायाधीशास्ते सदैवास्माकं मध्ये सिद्धन्तु ॥ ९ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(ये समानाः) जो आपस में (जीवाः) जीते हुए (समनसः) धर्म देखकर और सर्वहित करने में उद्यत (समानाः) सत्यविद्यादि शुभगुणों के प्रचार में ठीक २ विचार और (जीवेषु) उपदेश करने योग्य शिष्यों में सर्व विद्यादान के लिये कल कपटादि दोषरहित होकर प्रीति करनेवाले विद्वान् हैं (तेषां) उन की जो श्री अर्थात् सत्यविद्यादि श्रेष्ठ गुणयुक्त शोभा और राज्यलक्ष्मी है सो मेरे लिये (अस्मिंल्लोके शतं समाः) इस लोक में १०० सौ वर्ष पर्य्यन्त स्थिर रहै जिस से हमलोग नित्य सुख संयुक्त होके पुरुषार्थ करते रहैं ॥ ६ ॥

(उदीरताम०) जो विद्वान् लोग (अवरे) कनिष्ठ (उन्मध्यमाः) मध्यम और (उत्त्वरासः) उत्तम (पितरः सोम्यासः) चन्द्रमा के समान सब प्रजाओं को आनन्द करनेवाले (अमीमदन्त) प्राणविद्यानिधान, (अपक्षाः) पक्षपात रहित अर्थात् सब के प्रिय । एकपक्ष छोड़ के सत्यमार्ग में चलनेवाले तथा (ऋतज्ञाः) जो कि ऋत अर्थात् ब्रह्म, यथार्थ धर्म, और सत्यविद्या के जाननेवाले हैं (तेभिर्वन्तु पितरो हवेषु) वे पितरलोग युद्धादि व्यवहारों में हमारे साथ होके अथवा उन की विद्या हमें सदा रक्षा करे ॥ ७ ॥ (अंगिरसो नः) जो ब्रह्माण्ड भर के पृथिव्यादि सब अंगों की मर्म विद्या के जाननेवाले (नवग्वा) नवीन २ विद्याओं के यत्न करते और करानेवाले (अथर्वाणः) अथर्ववेद और धनुर्वेद विद्या में चतुर तथा दुष्ट शत्रु और दोषों के निवारण करने में प्रवीण (भृगवः) परिपक्व ज्ञानी और तेजस्वी (सोम्यासः) जो परमेश्वर की उपासना और अपनी विद्या के गुणों में शान्ति स्वरूप (तेषां वयमपि सुमतौ०) तथा यज्ञ के जानने और करनेवाले (पितरः) जो पितर हैं तथा जिस अत्यन्त कारक विद्या से उन की सुमति, (भद्रे) कल्याण और (सौमनसे) मन की पुष्टि होती है उस में (अपि स्याम) हमलोग भी स्थिर हों कि जिस के बोध से व्यवहार और परमार्थ के सुखों को प्राप्त होके सदा आनंदित रहें ॥ ८ ॥ (ये समा०) जो पितर अर्थात् विद्वान् लोग यमराज्य अर्थात् परमेश्वर के इस राज्य में सभासद वा न्यायाधीश हो के न्याय करनेवाले और (समनसः पितरः०) सब मनुष्य के हित करने में समान बुद्धि हैं (तेषां लोकः स्वधा०) जिन का लोक अर्थात् देश सत्य न्याय को प्राप्त होके सुखी रहना है (नमः) उन को हमलोग नमस्कार करते हैं क्योंकि वे पक्षपात रहित होके सत्य व्यवस्था में चल के अपने दृष्टांत से औरों को भी उसी मार्ग में चलानेवाले हैं (यज्ञो देवेषु कल्पताम्) यह सत्यधर्मसम्बन्धी प्रजापालनरूप जो अश्वमेध यज्ञ है सो परमात्मा की कृपा से विद्वानों के बीच में सत्य व्यवस्था की उन्नति के लिये सदा समर्थ अर्थात् प्रकाशमान बना रहे ॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवीष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकामलत्तु ॥ १० ॥
बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आगता अवसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ११ ॥ आर्क्षे पितृष्वस्रीया ३ ॥ अधिलिनयाने च विक्रमणे च विष्णोः । बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥ १२ ॥ य० अ० १९ मं० ५१ । ५५ । ५६ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(ये) (सोम्यासः) सोमं वदाःसपादिनः (वसिष्ठाः) सर्वविद्यागुणसमुद्रेष्वतिशयेन रममाणाः (सोमपीथं) सोमविद्यारक्षणं (अनूहिरे) पूर्वं सर्वविद्याः पठित्वाऽध्याप्य तांस्ता अनुप्रापयन्ति ते (नः पूर्वे पितरः) ये ऽस्माकं पूर्वे पितरः सन्ति (तेभिः) तैः (उशद्भिः) परमेश्वरं धर्मं च कामयमानैः पितृभिः सह समागमेनैव (सश्चराणाः) सत्यविद्यायाः सम्यग्ज्ञानकर्त्ता (यमः) सत्यविद्याव्यवस्थास्थापकः परमेश्वरो विदितो भवति किं कुर्वन् । (इषोऽसि०) विज्ञानादीन्युशन् सर्वेभ्यो दातुं कामयन् सन् । अतः सर्वैर्जनैरेवमाचरन् सन् । (प्रतिकाममत्तु) सर्वान् कामान्प्राप्नोतु ॥ १० ॥ (बर्हिषदः) ये बर्हिषि सर्वोत्तमे ब्रह्मणि विद्यायां च निषण्णास्ते (पितरः) विद्वांसः (अवसा शंतमेन) अतिशयेन कल्याणरूपेण रक्षणेन सह वर्त्तमानाः (आगत) अस्माकं समीपमागच्छन्तु आगतान् तान्प्रत्येवं वयं ब्रूमहे हे विद्वांसः यूयमागत्य (अवोक्) पश्चात् (इदा) इमानि इदानीं ग्राह्यदेयानि वस्तूनि (जुषध्वं) संप्रत्या सेवध्वम् । हे पितरः वयं (ऊत्या) भवद्रक्षणेन वो युष्माकं सेवां (चकृम) नित्यं कुर्य्याम । (अथानः शं०) अथेति सेवाग्रहणानन्तरं यूयं नोऽस्माकं शंयोर्विज्ञानरूपं सुखं दधात । क्लेशविद्यारूपं पापं दूरीकृत्य (अरं०) निष्पापतां दधात । येन वयमपि निष्पापा भवेमेति ॥ ११ ॥ (आहं पितॄन्सु०) ये बर्हिषदः स्वधयाऽन्नेन सुतस्य सोमवल्ल्यादिभ्यो निष्पादितस्य रसस्य भागं (भजन्ते) सेवन्ते (पित्वः) तत्पानं कृत्वा (तदहागं०) अस्मिन्नस्मत्सं निहितदेशे ते पितरश्चागच्छन्तु । यदेदृशाः पितरः सन्ति तान् विद्यादिशुभगुणानां दानकर्त्तनहं (आ अर्वाञ्चि) आसमन्ताद्वेद्मि । अत्र व्यत्ययेनात्मनेपदमिडभावश्च । तान् विदित्वा संगम्य च (विष्णोः) सर्वव्याप्तस्य परमेश्वरस्य (विक्रमणं च) विविधक्रमेण जगद्रचनं तथा (न पातं च) न विद्यते पातो विनाशो यस्य तन्मोक्षाख्यं पदं च वेद्मि यत्प्राप्य मुक्तानां सदाः पातो न विद्यते तदेतत्सर्वं विदुषां संगेनैव प्राप्तं भवति । तस्मात्सर्वैर्विदुषां समागमः सदा कर्त्तव्यइति ॥ १२ ॥

॥ भाषार्थ ॥

(येनः पूर्वे पितरः०) जो कि हमारे पूर्व पितर अर्थात् पिता पितामह और अध्यापकलोग शांतात्मा तथा (अनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः) जो सोमपान के करने कराने और वसिष्ठ अर्थात् सब विद्या में रमण करनेवाले हैं (तेभि-

यमः सञ्चर) ऐसे महात्माओं के साथ समागम करके विद्वान् होने से यम अर्थात् न्यायकारी अन्तर्यामी परमेश्वर निस्सन्देह जाना जाता है (हविः) जो सत्यभक्ति आदि पदार्थों की कामना और (उशद्भिः प्रनिका०) सब कामों के जीव में सत्यसेवन डालनेवाले तथा जिन का आधारभूत परमेश्वरहो है । हे मनुष्यलोगो ऐसे धर्मात्मा पुरुषों के सत्सङ्ग से तुम भी उसी परमात्मा के आनन्द से तृप्त हो इस में निरुक्तकार का प्रमाण अ० ११ खं० १८ निरुक्त में लिखा है (अङ्गिरसो सवगतयो इत्यादि) वहां देख लेना ॥ ५० ॥ (बर्हिषदः पि०) जो ब्रह्म और सत्यविद्या में स्थित पितरलोग हैं वे हमारी रक्षा के लिये सदा तत्पर रहें इस प्रकार से कि हमलोग सदा उन की सेवा करें और वे लोग हम को प्रीतिपूर्वक विद्यादि दान से प्रसन्न करदेवें (न आगताभ्या०) हे पितरलोगो हम प्रार्थना करते हैं कि जब २ आप हमारे वा हम आप के पास आवें जावें तब २ (इमा हव्या०) हमलोग उत्तम २ पदार्थों से आपलोगों की सेवा करें और आपलोग भी उन को प्रीतिपूर्वक ग्रहण करें (अद्भ०) अर्थात् हमलोग जो अन्नादि पदार्थों से और आपलोग (शंत०) हमारे कल्याणकारी गुणों के उपदेश से (अथानः शंयो०) इस के पीछे हमारे कल्याण के विधान में (अरपः) अर्थात् जिस से हमलोग पाप न करें ऐसी बातों का धारण कराइये ॥ ५१ ॥ (अहं पितॄन्) मैं जानता हूं कि पितर लोग अपनी उत्तम विद्या और उपदेश से सुख देनेवाले हैं (नभसि च विष्णोः) जो मैं सब में व्यापक परमेश्वर का विक्रमण अर्थात् सृष्टि का धारण और न पाद अर्थात् उस के अविनाशी पद को भी (आ) (अक्षिष्णि) ठीक २ जानता हूं (बर्हिषदो ये०) यह ज्ञान मुझ को उन्हीं पितरलोगों की कृपा से हुआ है जिन को देवयान कहते हैं और जिस की प्राप्ति से जीव पुनर्जन्म में कभी नहीं गिरता तथा जिस में पूर्ण सुख प्राप्त होता है उन दोनों मार्गों को भी मैं विद्वानों के ही संग से जानता हूं (स्वधा०) जो विद्वान् अपने आहुत रूप उपदेश से पुत्र की भावना के साथ विद्यादान करते हैं । तथा उस में आप्त भी (पितरः) आनन्दित होकर संसार में सब सुखों के देनेवाले होते हैं वे सर्व हितकारी पुरुष हमारे पास भी सदा आया करें कि जिस से हमलोगों में नित्य ज्ञान की उन्नति हुआ करे ॥ ५२ ॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु॥ तेभ्यो गमन्तु तइहश्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ १३ ॥ अग्निष्वात्ताः पितर एहगच्छत सदःसदः सदतसुप्रणीतयः । अत्ताहवीँषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳसर्ववीरं दधातन ॥ १४ ॥ ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्येदिवः स्वधया मादयन्ते । तेभ्यः स्वराडसुं

नीतिमेतां वंधा वृञन्त्वृक्वत्पयाति ॥ १५ ॥ य० अ० १९ मं० ५७ । ५८ । ६० ॥ ॥ भाष्यम् ॥

(सौम्यासः) ये प्रतिग्राहाः पितरस्ते (बर्हिष्येषु) प्रकृष्टेषु (निधिषु) उत्तमवस्तुस्थापनार्हेषु (प्रियेषु) प्रीत्युत्पादकेषु आसनेषु (उपहूताः) निमंत्रिताः सन्तः सीदन्तु (आगमन्तु) सत्कारं प्राप्यास्मत्समीपं वारंवारमागच्छन्तु (तदह) तदहरागत्यास्मत्पुत्रान् (शृण्वन्तु) शृण्वन्तु श्रुत्वा तदुन्नतीः (अधिब्रुवन्तु) कथयन्तु । यत्रं विद्यादानेन व्यवहारोपदेशेन च (तेऽवन्त्वस्मान्) सदाऽस्मान् रक्षन्तु ॥ १३ ॥ (अग्निष्वात्ता: पितर इह गच्छत) हे पूर्वोक्ता अग्निष्वात्ताः पितरः अस्मत्संनिधौ प्रीत्या आगच्छत आगत्य (सुप्रणीतयः) शोभना प्रकृष्टा नीतिर्येषांतएवंभूताभवन्तः यूयम् सन्तः (सदः सदः सदत) प्रतिगृहं प्रतिसभायांचोपदेशार्थे स्थितिं भ्रमणं च कुरुत (अनाहवीषि) प्रयत्नयुक्तानि कर्माणि देययोग्यान्युत्तमान्नानि वा यूयं स्वीकुरुत (बर्हिष्यया०) अत्रेत्यनन्तरं बर्हिषि सदसि गृहे वा स्थित्वा (रयिं सर्ववीरं) सर्ववीरैर्युक्तं विद्यादिधनं यूयं दधातन यतोऽस्मासु बुद्धिशरीरबलयुक्तावीराः स्थिरा भवेयुः सत्यविद्याकीर्तयश्च ॥ १४ ॥ (ये अग्निष्वात्ता०) ये अग्निविद्यायुक्ताः (अनग्निष्वात्ताः) ये वायुजलभूगर्भादिविद्यानिष्ठाः (मध्ये दिवः) द्योतनात्मकस्य परमेश्वरस्य सद्विद्याप्रकाशकस्य च मध्ये (स्वधया) अन्नविद्यया शरीरबुद्धिबलधारणेन च (मादयन्ते) आनन्दिता भूत्वा अस्मान्सर्वान् आनानन्दयन्ति (तेभ्यः) तेभ्यो विद्वद्भ्यो वयं नित्यं संदृशां । तथा (असुनीतिमेतां) सत्यन्याययुक्तामेतां प्रत्यक्षनीतिं च गृह्णीयाम (यथा वयं) ते विद्वांसो वयं च विद्याविज्ञानप्राप्त्या सर्वोपकारेषु नियमेषु स्वतन्त्राः प्रत्येकप्रियेषु च परतन्त्रा भवन्तु यतः । (स्वराट्) स्वयं राजते प्रकाशते स्वान् राजयति प्रकाशयति वा स स्वराट् परमेश्वरः (तन्वं कल्पयाति) तनुं विद्वच्छरीरमस्मदर्थं कृपया कल्पयाति कल्पयतु निष्पादयतु यतोऽस्माकं मध्ये बहवो विद्वांसो भवेयुः ॥ १५ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(उपहूताः पितरः) इन पितरों को हमलोग निमंत्रण देते हैं कि वे हमारे समीप आवें (बर्हिष्येषु) उत्तम आसनों पर बैठकर जो कि बहुमूल्य और देखने में प्रिय हों हम को उपदेश करें (तत्रागमन्तु०) जब वे पितर आवें तब सब लोग उन का इस प्रकार से सन्मान करें कि आप आइये

उत्तम आसन पर बैठिये (इह शृण्वन्तु) यहां हमारी विद्या की बातें और प्रश्न सुनिये (अधि ब्रुवन्तु) इन प्रश्नों के उत्तर दीजिये और मनुष्यों को ज्ञान देके इन की रक्षा कीजिये ॥ १३ (अग्निष्वात्ताः पितरः०) हे अग्निविद्या के जाननेवाले पितरलोगो आप उपदेशक होकर हमारे घरों में आकर उपदेश और निवास कीजिये फिर वे पितर कैसे होने चाहियें कि (सुमनीतयः) उत्तम २ गुणयुक्त होके (अहंपि०) सभा के बीच में सत्य २ न्याय करने के योग्य हों तथा (बर्हिः) बैठने दान और ग्रहण के योग्य विद्यादि गुणों का दान और ग्रहण करानेवाले हों (रयिम्सर्ववीरं उपासते) विद्यादि जो उत्तम धन है कि जिस में शौर पुरुष युक्त सेना की प्राप्ति होती है उस के उपदेश से हम को युक्त करें ऐसे जो उन विद्वानों के प्रति भी ईश्वर का यह उपदेश है कि वे लोग देश २ और घर २ में जाके सब मनुष्यों को सत्योपदेश का उपदेश करें ॥ १४ ॥ (ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ताः) जो पितर अग्नि विद्या और सोम विद्या के जाननेवाले तथा (मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते) जो कि दिव अर्थात् विज्ञानरूप प्रकाश के बीच में सुख भोग से आनन्दित रहते हैं (तेभ्यः स्वराडसु०) उन के लिये स्वराट् जो स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर है वह (असुनीति) अर्थात् ब्रह्मविद्या का प्रकाश कर देता है इस लिये हम प्रार्थना करते हैं कि (यथा व अनन्तं कल्पयाति) हे परमेश्वर आप अपनी कृपा से उन के शरीर सदा सुखी तेजस्वी और रोगरहित रखिये कि जिस से हम को उन के द्वारा ज्ञान प्राप्त होता रहे ॥ १५ ॥

अग्निष्वात्ता ऋतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथे यज्ञा-
शुः । तेनो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳस्यामसनेरो रयीणाम् ॥ १६ ॥
ये चेह पितरो येचेने चेयाꣳश्च विद्मया २ ॥ उ चन प्रविद्म ॥ त्वं वेत्थ
यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुहवꣳ जुषस्व ॥ १७ ॥ इदं पितृभ्यो
नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरासईयुः । ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता
ये वा नूनꣳसुवृजनासु विक्षु ॥ १८ ॥ य० अ० १९ मं० ६१ । ६० ।
६८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(अग्निष्वात्ता०) हे मनुष्याः । यथा वयं ऋतुविद्याबलोऽर्थोद्यया समयमुद्योगकारिणोऽग्निष्वात्ताः पितरः सन्ति तान् (हवामहे) आह्वयामहे तथैव युष्माभिरपि तत्सेवनायाह्वानं नित्यं कार्य्यम् । (सोमपीथं यज्ञाशुः) ये सोम पानमस्यन्ति ये च (नाराशꣳसे) नरैः प्रशस्येऽनुष्ठातव्यक-

मेधिन कुशला: सन्ति (तेनो विप्राः) ते विप्रा मेधाविनो नोऽस्मान् (सु-हवा०) सुष्ठुतया ग्रहीतारो भवन्तु (सोमपीथे०) ये सोमविद्यादानयज्ञाभ्यां तृप्ताः । अर्थ संगेन । (वयꣳस्यामपतयो०) सत्यविद्याचक्रवर्ति-राज्यश्रीणां पतयः पालकाः स्वामिनो भवेम ॥ १६ ॥ (ये चेह पितरो०) ये पितरो विद्वांस इहास्मत्सन्निधौ वर्त्तन्ते ये चेहास्मत्समक्षेन सत्यश्री-द्वेषान्तरे तिष्ठन्ति (यांश्च विद्म) यान् वयं जानीमः (यां उ ॥ उचन०) दूरदेशस्थत्वाद्यांश्च वयं न जानीमस्तान्सर्वान् हे (जातवेदः) परमेश्वर (त्वं वेत्थ) त्वं यथावज्जानास्यतो भवान् तेषामस्माकं च संगं निष्पा-दय (स्वधा०) योऽस्माभिस्तु कृतः सम्यगनुष्ठितो यज्ञोऽस्ति त्वं स्वधाभि-रन्नाद्यैभिः सामर्थ्यैभिः सर्वादरं यज्ञं सदा जुषस्व सेवस्व येनास्माकमभ्यु-दयनिःश्रेयसकरं क्रियाकाण्डं सम्यक् सिध्येत् (यति ते) ये यावन्तः परोक्षा विद्यमाना विद्वांसः सन्ति तानस्मान्प्रापय ॥ १७ ॥ (इदं पितृभ्यः) ये पितरोऽद्येदानीमस्मत्समीपेऽध्ययनाध्यापनैकमनसि वर्त्तन्ते (पूर्वासः) पूर्वमधीत्य विद्वांसः सन्ति (ये पार्थिवे रजसि) ये पृथिवीसंबन्धिभूगर्भ-विद्यायां (आनिषत्ता) आसमन्तान्निषण्णाः सन्ति (ये वावृधन्त०) ये च वृद्धबलयुक्तासु प्रजासभाध्यक्षाः सभासदो भूत्वा न्यायाधीशत्वादिकर्मसु धिकृताः सन्ति ते चास्मानीयुः प्राप्नुयुः इत्यमूतेभ्यः पितृभ्योऽस्माक-मिदं सत्यं नमोस्तु ॥ १८ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(अग्निस्वात्ता वृतुमतो०) हे मनुष्यलोगो जैसे हमलोग अग्निविद्या और सत्य विद्या के जाननेवाले पितरों को सत्य से बुलाते हैं वैसे ही तुम लोग भी उन के पास जाने और उन को अपने पास सदा बुलाते रहो जिससे तुम्हारे सब दिन विद्या बढ़ती रहे ॥ (नाराशꣳसे सोमपीथाय वाचः) जो सोमलतादि ओषधियों के रस पान तथा रक्षा से मनुष्यों को श्रेष्ठ करनेवाले हैं उन से हमलोग सत्य शिक्षा लेके आनन्दित हों (तेनो विप्राः सुहवा०) वे विद्वान् लोग हम को सत्य विद्या का ग्रहण प्रीतिपूर्वक सदा कराते रहें । (वयꣳस्यामपतयो रयीणाम्) जिससे कि हमलोग सुविद्या से चक्रवर्त्ति राज्य की श्री आदि उत्तम पदार्थों को प्राप्त तथा उन की रक्षा और उन्नति करने में भी समर्थ हों ॥ १६ ॥ (ये चेह पितरो०) हे जातवेद परमेश्वर जो पितर लोग हमारे समीप और दूर देश में हैं (यांश्च विद्म) जिन को समीप होने से हमलोग जानते और (यां उ ॥ उचन०) जिनको दूर होने के कारण नहीं भी जानते हैं (यति ते०) जो इस संसार के बीच में वर्त्तमान हैं (त्वं वेत्थ) उन सब को आप यथावत् जानते हैं । कृपा करके उन का और हमारा परस्पर संबन्ध

विज्ञापन ।

सब सज्जनों को विदित हो कि आगे भूमिका के अंक संख्या १२ । १३ और १४ छपने को बाकी रही हैं । सो फाल्गुण चैत्र और वैशाख में छप जायेंगे । इस के आगे ज्येष्ठ महिने से लेकर अंक १ ऋग और अंक १ यजुर्वेद के मंत्रभाष्य के छपा करेंगे । इस में एक २ अंक का एक डेढ़ में डेढ़पै डाक महसूल सहित ।) आना पड़ेगा । जो एक ऋग्वेद का अंक लिया चाहें सो ५) रु० आर्यसमाज कंचनी काशी या स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास भेज देवें और जो कोई यजुर्वेद का ही १ अंक लिया चाहें सो ४) रु० गत वर्ष के और ४) रु० चलते वर्ष के भेज देवें । उन को आरंभ से आज पर्यन्त और विक्रम के संवत् १९३५ के माघ पर्यन्त प्रति मास एक २ अंक मिलता जायगा । और जो दोनों वेद को लिया चाहें वे ९) रु० भेज देवें परंतु जो ऋग्वेद का अंक लेते हैं और दूसरे यजुर्वेद का भी भूमिका सहित लिया चाहें वे १२) रु० आगे के वर्ष के भेज देवें । ऐसे ही जो २ एक वेद के नवीन ग्राहक हों वे भी ९) रु० दोनों वर्ष के भेजें । और जो भूमिका एक तथा मंत्रभाष्य दोनों लेवें । वे १०) रु० भेज देवें । और जो दो भूमिका सहित दोनों अंक लिया चाहें वे दोनों वर्ष के १५) रु० भेजें । और जो केवल भूमिका मात्र लिया चाहें वे ४॥) रु० देकर लेवें । ऋग्वेद के १० मण्डल पर्यन्त और यजुर्वेद के ९ अध्याय पर्यन्त का भाष्य सं० १९३४ वि० माघ वदि १३ गुरुवार तक छप चुका है और भूमिका भी छप कर तैयार हो गई आगे प्रति दिन मंत्रभाष्य छपाया जाता है ।

दूसरा विज्ञापन ।

जिन ग्राहकों ने पुस्तक लेके अब तक दाम नहीं भेजे हैं उन को उचित है कि शीघ्र भेज देवें । नहीं तो उन के पास दाम लेने के लिये एक या मनुष्य भेजा जायगा और उस का मार्ग खर्च भी उन से लिया जायगा । इस से उचित है कि वे शीघ्र भेज देवें । आगे जैसा फाल्गुन मास में अब लगाया जाता है । उस से भी उत्तम मंत्रभाष्य में लगाया जायगा ॥

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बनाये पुस्तकों की सूचना ॥

—:o:—

सत्यार्थप्रकाश पेंचमहाफ़ज़िलिथि मो० ।=)॥ डाक महसूल सहित बनारस डा० लाज़रस काशङ्ग। आर्य्यसमाज लाहौर वा पं० स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास से मिलेंगी।

	मूल्य पुस्तक प्रति	महसूल
१ सत्यार्थप्रकाश का	॥)	।)
१ संस्कारविधि का	१॥=)	=)
१ आर्य्याभिविनय का	॥)	=)
१ आर्य्योद्देश्यरत्नमाला	=)॥ डा० म० अलग	

इनमें से सत्यार्थप्रकाश की पुस्तक राजा लक्ष्मणदास जी के पास शहर मुरादाबाद में अथवा स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास किंवा मुंशी बाबूकोट कालिका देवी की सड़क पर रामभाई के सामने केशवलाल निर्भयराम जी के पास भी मिलता है।

संस्कारविधि—स्वामी द० जी के पास और पंडित सुन्दरलाल जी के पास इलाहाबाद में पोस्टमास्टर जनरल की कचहरी के ठिकाने से किंवा रईस ठाकुर मुकुन्दसिंह मुजफ्फरसिंह के पास किंवा अलीगढ़ परगना मेरठ के ठिकाने से मिलता है।

आर्य्याभिविनय—स्वामी द० जी के पास और पूर्वोक्त पंडित सुन्दरलाल के ठिकाने से मिलता है।

आर्य्योद्देश्यरत्नमाला—स्वामी द० जी के पास अथवा ऊपर लिखे हुए सब ठिकानों से मिलेगा॥

☞ जो सज्जन मनुष्य पुस्तक चाहते उनको प्रसन्नतापूर्वक यथोचित मोल्य इस यन्त्रालय का लाज़रस साहिब कम्पनी के पास काशी अर्थात् बनारस में भेज देना चाहिये

REGISTERED No. 8.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्थभाषाभ्यां समन्विता ॥

अस्यैकैकाङ्कस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशानां डाकव्यय-
मूल्येन सहितं ।≈) एतत् द्वादशमासानां मिलित्वा
वार्षिकं ४॥) एतावद्भवति ।

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक नंबर का मूल्य भारतवर्ष के भीतर
डाकमाशूल सहित ≈) और वार्षिक मूल्य ४॥)

अत्र ग्रन्थस्य ग्रहणार्थेच्छा यस्य सत्येन्द्रप्रेस्याध्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य
सा दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपं वार्षिकं मूल्यं
प्रेषयेत्स प्रतिमासमेकं प्राप्स्यति ॥

अंक (१२)

॥ अत्र यत्रः काश्यां लाजरसकंपन्याख्यस्य यंत्रालये मुद्रितः ॥

संवत् १९३७ ।

॥ अथ पठनपाठनाधिकारिविषयः भाष्यकर्त्रा यथा सर्वेषां स्वार्थाय अत्र रचितः ॥

विदित हो कि सं० १९३४ चैत्र मास के अंत पर्यन्त पेशावर देश के मुलतान
नगर में पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती जी निवास करेंगे ।

जीवन की अंक से लेंग	संख्या ग्राहक	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	संख्या पुस्तक	मोल्य नगद	मोल्य उधार
	५१७	लाला लक्ष्मीराम ‥	असिस्टेंट इंजिनियर जि० गुजरनवाला; वज़ीराबाद।	१	४६)	
	५१८	बाबू आत्माराम ‥	हैड मास्टर सिटी स्कूल फिरोज़पुर। पंजाब ‥	१	४॥)	
	५०६	बाबू मथुरालाल ‥	हिन्दू सभा। दादापुर ‥		३०)*	
	१६	महाराजा हुसकेर ‥	ईटौर। ‥ ‥ ‥ ‥	१७	६५)*	
	१२३	बाबू शिवनाथ प्रसाद	असिस्टेंट जी० टी० सर्वे देहरादून	१	४)*	
	९६६	समर्थदानश्रमण ‥	बाबू स्टूडेंट ऑफ़ द्वास गवर्नमेंट कालेज। अजमेर‥		८)*	
	२२४	मुन्शी गणेश प्रसाद	डिपुटी इंस्पेक्टर स्कूल राज दरभंगा। विज़ीटर पैठी-टैल्सी दरभंगा। ‥ ‥	२	३॥)*	

सत्य] के लिये कीजिये (स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुधृतं) और आप अपनी धारणादि शक्तियों से अङ्गीकार और परमार्थरूप श्रेष्ठ यज्ञों को प्रीतिपूर्वक सेवन कीजिये कि जिससे हमलोगों को सब सुख प्राप्त होते रहें ॥ १७ ॥ (इह पितरः स०) हमलोग उन सब पितरों को नमस्कार करते हैं (अद्य पूर्वेभ्य उपरासएषु) जो कि प्रथम आप विद्वान् होके हमलोगों को भी विद्या देते हैं अथवा जो कि विद्वान् और संन्यासी होके सर्वत्र विचरते हुए उपदेश करते हैं तथा (ये पार्थिवे रजस्यनिषत्ताः) जो कि पार्थिव अर्थात् भूगर्भ विद्या और मूर्त्यादिकों के ज्ञानवाले हैं तथा (येषामुरःसु०) जो कि निश्चय करके प्रजाओं के बीच में उत्तम और उत्तम सेनाओं के बीच में बड़े वीर हैं उन सभी को हमलोग नमस्कार करते हैं इसलिये कि वे सब दिन हमारी उन्नति करते रहें ॥ १८ ॥

उशन्तस्त्वानिधीमह्युशन्तः समिधीमहि । उशन्नुशत आवह पितॄन्हविषे अत्तवे ॥ १९ ॥ य० अ० १९ मं० ७० ॥ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः ॥ पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधायुधः पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः । अर्चन्त पितरोऽमीमदन्त पितरोऽमीमृजन्त पितरः पुनन्धध्वम् ॥ २० ॥ पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा । पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ २१ ॥ य० अ० १९ मं० ६६ । ६० ॥

॥ भाष्यम् ॥

(उशन्तस्त्वानिधीमहि) हेश्वरेश्वर वयं त्वां कामयमाना वह्नित्वेन हृदयाकाशे न्यायाधीशत्वेन राष्ट्रे सदा स्थापयामः (उशन्तः समिधीमहि) हे जगदीश्वर त्वां कामयन्तः आवयन्तः सम्यक् प्रकाययेमहि कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह (हविषे अत्तवे०) सद्विद्यायज्ञाय तेभ्यो धनान्नपदार्थदानाय नन्दयेमाय च (उशन्नुशत आवह पितॄन्) सत्योपदेशेनाविद्यान्धकारक्षयमिच्छमानान् कामयमानस्तत्त्वमप्यानावह्नासयन्तान्नाशय ॥ १९ ॥ (पितृभ्यः) त्वां स्वकीयामृताख्यां वेदविद्यां कर्तुं शीलं येषां तेभ्यो ब्रह्मचर्येण विद्याग्रहणेभ्यो जनेभ्यश्च (स्वधा) अन्न द्युत्तमवस्तुदद्मः ये ब्रह्मचर्येणाविद्यानिवृत्यर्थमन्येन अन्नादिना विद्यामधीत्याध्यापयन्ति ते ब्रह्म-

संज्ञकाः (पितामहेभ्यः) ये चतुश्चत्वारिंशद्वर्षपर्य्यन्तेन ब्रह्मचर्य्येण विद्या पठित्वा पाठयन्ति ते पितामहाः (प्रपितामहेभ्यः) ये ऽष्टाचत्वारिंश द्वर्षप्रमितेन ब्रह्मचर्य्येण विद्यावारःशरं प्राप्याध्यापयन्तित आदित्याख्या अर्थात् सत्यविद्याद्योतकाः (नमः) तेभ्योऽस्माकं सततं नमोस्तु । (अक्षन् पितरः) हे पितरो भवन्तोऽक्षन्नेव भोजनाच्छादनादिकं कुर्वीरन् । अमीमदन्त पितरइति पूर्वं व्याख्यातम् (अतृपन्त पितरः) हे पितरोऽस्मत्सेवया ऽतृप्ता भूत्वा तृप्ता भवत (पितरः शुन्धध्वं) हे पितरो यूयमुपदेशेन विद्या विद्योपबृंहणाद्दस्मान् शुन्धध्वं पवित्रान्कुरुत ॥ २० ॥ (पुनन्तु मा पितरः) मां पितरः पितामहाः प्रपितामहाश्च भवन्तो मां मनः कर्मवचनद्वारा वारंवारं पुनन्तु पवित्रव्यवहारकारिणं कुर्वन्तु केन पुनन्त्वित्याह (पवित्रेण०) पवित्रकमानुष्ठानकारोपदेशेन (शतायुषा) शतवर्षपर्य्यन्तजीवननिमित्तेन ब्रह्मचर्य्येण मां पुनन्तु अये पुनन्त्विति क्रियापदं योजनीयम् । येनाहं (विश्वमायुर्व्यश्नवै) संपूर्णमायुः प्राप्नुयाम् । अत्र पुरुषोव्यश्नवदित्याकारकेण छान्दोग्योपनिषत्प्रमाणेन विदुषां वसुरुद्रादित्यसंज्ञा वेदितव्याः ॥ २१ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(उशन्तस्त्वानिधीमहि) हे सबसे परमेश्वर हमलोग आप की प्राप्ति की कामना करके आप को अपने हृदय में निहित अर्थात् स्थापित और (उशन्तः समिधीमहि) आपका ही सर्वत्र प्रकाश करते रहें (वसुरुशन्त आवहपितॄन्) हे भगवन् आप हमारे कल्याण के अर्थ पूर्वोक्त पितरों को नित्य प्राप्त कीजिये कि (इडिये अत्तवे) हमलोग उन की सेवा में विद्या लेने के लिये स्थिर रहैं ॥ १९ ॥ (पितृभ्यः स्वधा०) जो चौबीस वर्ष ब्रह्मचर्य्याश्रम से वेदादि विद्याओं को पढ़ के सब को पढ़ाते हैं उन पितरों को हमारा नमस्कार है (पितामहेभ्यः०) जो बयालीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम से वेदादि विद्याओं को पढ़ के सब के उपकारी और यथार्थरूप ज्ञान के देने वाले होते हैं (प्रपितामहेभ्यः०) जिन्होंने बहत्तालीस वर्ष पर्य्यन्त जितेन्द्रियता के साथ संपूर्ण विद्याओं को पढ़ के शुभक्रियाओं से भी सब विद्या के दृष्टान्त साक्षात् देख के दिखलाये । और जो सब के सुखी होने के लिये सदा प्रयत्न करते रहते हैं उन का मान भी सब लोगों को करना उचित है । पिताओं का नाम वसु है क्योंकि वे सब विद्याओं में वास करने के लिये योग्य होते हैं । ऐसे ही पितामहों का नाम रुद्र है क्योंकि वे वसु संज्ञक पितरों से दूनी अथवा अनुत्तम विद्या और बलवाले होते हैं । तथा प्रपितामहों का नाम आदित्य है क्योंकि वे सब विद्याओं और सब गुणों में सूर्य्य के समान प्रकाशमान होके सब विद्या और लोगों को प्रकाशमान करते हैं इन तीनों

का नाम वसु रुद्र और आदित्य इसलिये है कि वे किसी प्रकार की दुष्टता मनुष्यों में रहने नहीं देते। इस में (पुनन्तु वा यजत्र०) यह छान्दोग्य उपनिषद् प्रमाण लिख दिया है सो देख लेना (अवन्तु पितरः) हे पितर लोगो तुम विद्यारूप यज्ञ को फैलाके सुख भोगो तथा (यमीमदन्तपितरः) हमारी सेवा से अत्यंत प्रसन्न रहो (अनीनृपन्तपितरः) हमारी सेवा से तृप्त होकर हम को भी आनंदित और तृप्त करते रहो तथा जिस पदार्थ को तुम चाहो अवश्य हम आप की सेवा में धरे सो आप लेना हम को शिक्षा करो (पितरः शुन्धध्वम्) हे पितर लोगो आप हम को धर्मोपदेश और सत्य विद्याओं से शुद्ध करें कि जिस से हम लोग आप के साथ मिल के सनातन परमात्मा की भक्ति आपकी शुद्धि के अर्थ प्रेम से करें ॥ २० ॥ (पुनन्तु मा पितरः) जो पितर लोग आप्तात्मा और दयालु हैं वे मुझ को विद्यादान से पवित्र करें (पुनन्तु मा पितामहाः) इसी प्रकार पितामह और प्रपितामह भी मुझ को अपनी उत्तम विद्या पढ़ा के पवित्र करें इस लिये कि उन की शिक्षा और सुख के ब्रह्मचर्य्य धारण करने में मेरा सर्व पर्य्यन्त आनन्द युक्त उमर होती रहे इस मंत्र में दो बार पाठ केवल आदर के लिये है इत्यादि अन्य मंत्र भी इन्हीं विषयों के पुष्टिकारक हैं उन सभों का अर्थ सर्वत्र इसी प्रकार से समझ लेना चाहिये तथा जहां कहीं अमावास्या में पितृयज्ञ करना लिखा है वहां भी इसी अभिप्राय से है कि जो कदाचित् नित्य उन की सेवा न बन सके तो महीने २ अर्थात् अमावास्या में अवश्य हो जाती है उस में उन लोगों को भूखा के अवश्य सत्कार करें ॥ २१ ॥ इति पितृयज्ञः समाप्तः ॥

॥ अथ बलिवैश्वदेवविधिर्लिख्यते ॥

यद्यन्नं पञ्चसूनारलक्षणं भवेत्तेनैव बलिवैश्वदेवकर्मकार्य्यम् । वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् ॥ आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ १ ॥ मनुस्मृतौ अ० ३ श्लोकः ८४ ।

॥ अथ बलिवैश्वदेवकर्मणि प्रमाणम् ॥

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तो ऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने । रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ १ ॥ अथर्व० कां० १९ अनु० ७ मं० ७ ॥ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ॥ पुनन्तु विश्वभूतानि जातवेदः पुनीहि मा त्वाचा ॥ २ ॥ य० अ० १९ मं० ६९ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(अग्ने) हेपरमेश्वर (ते) तुभ्यं त्वदाज्ञापालनार्थं (हत्) एव (तिष्ठतेऽश्वाय) (घासं) यथाऽश्वस्यार्थे पुष्कलः पदार्थः स्थाप्यते तद्वच (इव) (अहरहः) नित्यंप्रति (बलिं) (हरन्तः) भौतिकमग्निमग्निहोत्रादींश्च बलीन् प्रापयन्तः (समिधा) सम्यगिध्यते या सा समिद्रूपया श्रद्धया (राय स्पोषेण) चक्रवर्तिराज्यलक्ष्म्या (मदन्तः) हृष्यन्तो वयं (अग्ने) हेपरमात्मन् (ते) तव (प्रतिवेशाः) प्रतिकूला भूत्वा सृष्टिस्थान्प्राणिनः (मारिषाम) मा पीडयेम किंतु भवत्कृपया सर्वेजीवा अस्माकं मित्राणि सन्तु सर्वेषां च वयं सखायः स्म इति ज्ञात्वा परस्परं नित्यमुपकारं कुर्य्याम ॥ १ ॥ (पुनन्तु मा०) अस्य मंत्रस्यार्थेस्तर्पणाविषयउक्तः ॥ भाषार्थ ॥

(अग्ने) हेपरमेश्वर जैसे खाने योग्य पुष्कल पदार्थ घोड़े के आगे रखते हैं वैसे ही आप की आज्ञा पालन के लिये (अहरहः) प्रति दिन भौतिक अग्नि में होम करते और बलिवैश्वों को (बलिं) अर्थात् भोजन देते हुए हम लोग अच्छी प्रकार इच्छित चक्रवर्त्ति राज्य की लक्ष्मी से आनन्द को प्राप्त होके (अग्ने) हे परमात्मन् ! (प्रतिवेशाः) आप की आज्ञा से उलटे होके आप के उत्पन्न किये हुए प्राणियों को (मारिषाम) अन्याय से दुःख कभी न देवें किंतु आप की कृपा से सब जीव हमारे मित्र और हम सब जीवों के मित्र रहें ऐसा जान कर परस्पर उपकार सदा करते रहें ॥ १ ॥ (पुनन्तु मा०) इस मंत्र का अर्थ तर्पण विषय में कह दिया है ॥ २ ॥

ओमग्नये स्वाहा ॥ ओं सोमाय स्वाहा ॥ ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ओं विश्वेभ्योदेवेभ्यः स्वाहा ॥ ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥ ओं कुह्वै स्वाहा ॥ ओमनुमत्यै स्वाहा ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ओं सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥ भाष्यम् ॥

(ओमग्नये०) अस्यार्थउक्तः (ओं सो०) सर्वानन्दप्रदो यः सर्वजगदुत्पादकईश्वरः सोऽत्र ग्राह्यः (ओमग्नीषो०) प्राणापानाभ्यामन्नेरौषधस्यार्थायमंत्रार्थेशक्तः (ओं वि०) विश्वेदेवा विश्वप्रकाशकाईश्वरगुणाः सर्वे विद्वांसो वा । (ओं ध०) सर्वरोगनाशक ईश्वरोऽत्र गृह्यते । (ओं कु०) दर्शेष्ट्यंगयागारम्भः । अमावास्येष्टिप्रतिपादितायै चितिशक्तये वा (ओमनु०) पौर्णमास्येष्ट्यंगयागारम्भः । विद्यापठनानन्तरं मतिर्मनने ज्ञानं यस्यादिचितिशक्तेः साऽनुमतिस्तस्यै (ओं प्र०) सर्वजगतः स्वामीश्वरकईश्वरः (ओं सह०) ईश्वरेण

प्रकृतयुक्तैः सहोच्चादिताभ्याग्निभ्यां सर्वोपकारा याह्याः । एतदर्थो यज्ञोऽस्य ॥ (ओं स्विष्टकृ०) यः सुष्ठ्वीमनसिष्टं सुखं करोति स ईश्वरः । एतैर्होमैः कृत्वा इत्थं बलिदानं कुर्य्यात् ॥ ॥ आचार्य ॥

(ओंअ०) अग्नि शब्दका अर्थ नीचे लिख आये हैं (ओं सो०) अर्थात् शुद्ध बल देनेवाला और सुख देनेवाला (ओंअ०) जो सब प्राणियों के जीवन का हेतु प्राण तथा जो दुःख नाश का हेतु अपान (ओं वि०) संसार का प्रकाश करनेवाले ईश्वर के गुण अथवा विद्वान् लोग (ओं ध०) जन्ममरणादि रोगों का नाश करनेवाला परमात्मा (ओं कु०) आभाव-रूपेष्टि का जानना (ओंअ०) पौर्णमासेष्टि वा सर्वशास्त्र प्रतिपादित परमेश्वर की विशिष्टेष्टि (ओं प्र०) सब जगत् का स्वामी जगदीश्वर (ओं स०) पशुविद्या के प्रकाश के लिये एतद्देशी का राज्य और अग्नि तथा भूमि से अनेक उपकारों का ग्रहण । (ओं स्वि०) इष्ट सुख का करनेवाला परमेश्वर इन इन मंत्रों के अर्थों से ये १० प्रयोजन जान लेना अब आगे बलिदान के मंत्र लिखते हैं ॥

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ॥ १ ॥ ओं सानुगाय यमाय नमः ॥ २ ॥ ओं सानुगाय वरुणाय नमः ॥ ३ ॥ ओं सानुगाय सोमाय नमः ॥ ४ ॥ ओं सहद्भ्यो नमः ॥ ५ ॥ ओंमद्भ्यो नमः ॥ ६ ॥ ओं सलग्नेभ्यो नमः ॥ ७ ॥ ओं श्रियै नमः ॥ ८ ॥ ओं भद्रकाल्यै नमः ॥ ९ ॥ ओं ब्रह्मपतये नमः ॥ १० ॥ ओं वास्तुपतये नमः ॥ ११ ॥ ओं विश्वे-भ्यो देवेभ्यो नमः ॥ १२ ॥ ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः ॥ १३ ॥ ओं नक्तंचारिभ्यो नमः ॥ १४ ॥ ओं सर्वात्मभूतये नमः ॥ १५ ॥ ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥ १६ ॥ इति नित्यश्राद्धम् ॥

॥ आप्तदर्श ॥

(ओं सा०) यज्ञशब्देनात्रेश्वरादिदेवानां पूजनेन मनुष्यादिभिः परस्परविचारेण मनुष्याणां यथार्थं विज्ञानं भवतीति वेद्यम् । नित्यैर्युक्तैः सहवर्तमानः परमेश्वर्यवानीश्वरोऽत्र गृह्यते (ओं सानु०) पक्षपातरहितो न्यायकारित्वादिगुणयुक्तः परमात्माऽत्र वेद्यः (ओं सा०) विद्यादियुक्तगुणैर्विशिष्टा याह्याः सर्वोत्तमः परमेश्वरोऽत्र ग्रहीतव्यः (ओं सानुगाय०) अस्यार्थउक्तः (ओंअ०) य ईश्वराधारेण सकलं विश्वं धारयन्ति चेष्टयन्ति च ते मरुतः (ओंम०)

अस्यार्थः शन्नोदेवीरित्यत्रोक्तः (ओं वनः) वनानां लोकानां पतयश्चेश्वरो-वाग्नेयादयः पदार्था अत्र राह्याः । यद्वातरगुणयोगेनेश्वरोत्पादितेभ्यो महावृक्षेभ्यश्चेत्यकारग्रहणं सदा कार्य्यमिति बोध्यम् (ओं श्रि०) श्रीयते सेव्यते सर्वैर्जनैरस्मात्परीश्वरः सर्वसुखशोभाहेतुत्वात् । यद्वेश्वरेणोत्पादिता विश्वशोभा च (ओं भ०) या भद्रं कल्याणं सुखं कलयति । सा भद्रकाली-श्वरशक्तिः (ओं ब्रह्म०) ब्रह्मणः सर्वशास्त्रवेदाख्यस्य वेदस्य ब्रह्मणश्च सा पतिरीश्वरः (ओं वास्तु०) वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिन् स्याद्वास्त्वाकाशं तस्यपतिरीश्वरः (ओं वि०) अस्यार्थ उक्तः (ओं दिवा०) (ओं नक्तं) ईश्वरकृ-पयैव मनवः दिवसे यानि भूतानि विचरन्ति रात्रौ च तानि विघ्नं मा कुर्वन्तु तेः सहाधिरोधोऽस्तु नः । यतश्चैतौ यमारम्भः (ओंसर्व०) सर्वेषां जीवात्मनां भूतिर्भवनं सत्तेश्वरोच ग्राह्यः । (ओं पि०) अस्यार्थउक्तः पितृनमस्ये । नमइत्यस्य निरभिमानद्योतनार्थैः परस्योत्कृष्टताभान्यस्वापनार्थश्चारम्भः ॥

॥ भावार्थ ॥

(ओं मानु०) सर्वैश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर और उस के गुण (ओं सा०) सत्य-न्याय करनेवाला और उस की सृष्टि में सत्यन्याय के करनेवाले सभासद (ओं सा०) सब से उत्तम परमात्मा और उस के धार्मिक भक्त जन । (ओं सा०) पुण्यात्माओं को आनंद करानेहारा परमात्मा और वे लोग (ओं मरुत्०) अर्थात् प्राण जिन के रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है उन की रक्षा करना (ओंमहीं०) इस का अर्थ शन्नोदेवी इस मंत्र में लिख दिया है (ओं व०) ईश्वर के उत्पन्न किये हुए वायु और मेघ आदि सब के पालन के हेतु सब पदार्थ तथा जिन से अधिक अन्न और जिन के फलों से जगत् का उप-कार होता है उन की रक्षा करनी (ओं श्रि०) जो सेवा करने के योग्य पर-मात्मा और पुरुषार्थ से राज्य श्री की प्राप्ति करने में सदा उद्योग करना । (ओं भ०) जो कल्याण करनेहारी परमात्मा की शक्ति अर्थात् सामर्थ्य है उस का सदा आश्रय करना (ओं ब्र०) जो वेद के स्वामी ईश्वर की प्रार्थना विद्या के लिये करना (ओं वा० । वास्तुपति अर्थात् जो गृहसंबन्धी पदार्थों का पालन करनेहारा ईश्वर (ओं क्षेत्र०) क्षेत्र शस्य का रक्षक जगदीश्वर । (ओं वि०) इस का अर्थ कह दिया है (ओं दि०) जो दिन में और (ओं नक्तं०) रात्रि में विचरनेवाले प्राणि हैं उन से उपकार लेना और उनको सुखदेना (सर्वात्म०) सब में व्याप्त परमेश्वर की सत्ता को सदा ध्यान में रखना (ओं पि०) माता पिता और आचार्य्य आदि को प्रथम भोजनादि से सेवा करके पश्चात् स्वयं भोजनादि करना स्वाहा शब्द का अर्थ

पूर्व कर दिया है और नमः शब्द का अर्थ यह है कि आप अभिमान रहित होना और दूसरे का मान्य करना । इस के पीछे ये छः भाग करना चाहिये ॥

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ॥ वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ १ ॥

अनेन षष्ठं भागं भूमौ दद्यात् । एवं सर्वेभ्यो भागान् विभज्य दत्त्वा च तेषां प्रसन्नतां संपादयेत् ॥ ॥ भाषार्थ ॥

शुनों कुत्तानों कुष्ठी आदि रोगियों काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिये भी छः भाग अलग २ बांट के दे देना और उन की प्रसन्नता करना अर्थात् सब प्राणियों को मनुष्यों से सुख होना चाहिये यह वेद और मनुस्मृति की रीति से पञ्चमहायज्ञ पूरा हुआ ॥ इति बलिवैश्वदेवविधिः समाप्तः ॥

अब पंचमोऽतिथियज्ञः प्रोच्यते । यथातिथीनां सेवनं यथावत् क्रियते । तेन सर्वेषि सुखानि भवन्तीति अस्य को अतिथयः ॥ ये पूर्णविद्याधर्मयुक्ताः परोपकारिणो जितेन्द्रिया धार्मिकाः सत्यवादिनश्छलादिदोषरहिताः निरभिमानकारिणो मनुष्यास्तानतिथय इति कथयन्ति । अयमेकः प्रकाशभूतो वैदिकमार्गः सोस्ति । परन्त्वथ संक्षेपतो द्वावेव लिख्यामः ॥

तद्यः पूर्वैर्विद्वान् ज्ञात्यो अतिथिर्महाननूचान् ॥ १ ॥ स्वयमेनमभ्युत्थाय ब्रूयाद्ब्रात्य क्वावात्सीरित्योदकं ब्रात्य तर्पयन्तु ब्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु ब्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु ब्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ २ ॥ अथ० कां० १५ अनु० २ व० ११ मं० १ । २ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(तद्यः०) यः पूर्वैरुक्तविशेषणयुक्तो विद्वान् (ब्रात्यः) महोत्तमगुणविशिष्टः सेवनीयो अतिथिरथैनमस्य गमनाममनयोरन्यतिथिः किं नु खल्वेच्छया कस्मादागच्छेदुच्यते ॥ १ ॥ स यदा यदा गृहस्थानां गृहेषु प्राप्नुयात् (स्वयमेन स०) तदा गृहस्थोऽत्यन्तप्रेमोत्थाय नमस्कृत्य च तं महोत्तमासने निवेदयेत् । ततो यथायोग्यं सेवां कृत्वा तदनन्तरं तं पृच्छेत् । (ब्रात्य क्वावात्सीः) हे पुरुषोत्तम त्वं कुत्र निवासे कृतवान् (ब्रात्योदकं) हे अतिथे जलेनास्माकं (ब्रात्य तर्पयन्तु) यथा भवन्तः स्वकीयसत्योप-

देशेनास्मानस्माकं मित्राद्यांश्च तर्पयन्ति तथा ऽस्मदीया भवन्तं च (ब्रात्य यथा०) हेविद्वन् यथा भवतः प्रसन्नतास्यात्तथा वयं कुर्य्याम । यद्वस्तु भवत् प्रियमस्ति तस्यात्तां कुरु (ब्रात्य यथा ते) हे अतिथे भवान् यथेच्छति तथैव वयं तदनुकूलतया भवत्सेवाकरणे निश्चिनुयाम (ब्रात्य यथा ते) यथा भवदिच्छापूर्तिः स्यात्तथा सेवां वयं कुर्य्याम यतो भवान् वयं च परस्परं सेवासत्संगपूर्वकया विद्यावृद्ध्या सदा सुखे सिद्ध्येम ॥ भाषार्थ ॥

अब पांचवा अतिथियज्ञ अर्थात् जिसमें अतिथियों की यथावत् सेवा करनी होती है उस को लिखते हैं जो मनुष्य पूर्ण विद्वान् परोपकारी जितेन्द्रिय धर्मात्मा सत्यवादी छल कपट रहित और नित्य भ्रमण कर के विद्या धर्म का प्रचार और अविद्या अधर्म की निवृत्ति सदा करते रहते हैं उन को अतिथि कहते हैं इस में वेदमंत्रों के अनेक प्रमाण हैं परंतु उन में से दो मंत्र यहां भी लिखते हैं (तद्यस्यैवं विद्वान्) जिस के घर में पूर्वोक्त विशेषण युक्त (ब्रात्य) उत्तम गुण सहित सेवा करने के योग्य विद्वान् आवे तो उस की यथावत्सेवा करें और अतिथि वह कहाता है कि जिस के आने जाने की कोई तिथि दिन निश्चित न हो ॥ १ ॥ (स्वयमेनम०) इसका लोग ऐसे पुरुष को आते देख कर बड़े प्रेम से उठ के नमस्कार करके उत्तम आसन पर बैठावें पश्चात् पूछें कि आप को अन्न अथवा किसी अन्य वस्तु की इच्छा हो सो कहिये और जब वे स्वस्थ चित्त हो जावें तब पूछें कि (ब्रात्य क्वावात्सीः) हे ब्रात्य अर्थात् उत्तम पुरुष आपने कल के दिन कहां वास किया था (ब्रात्योदकं) हे अतिथे यह जल लीजिये और (ब्रात्यतर्पयन्तु) हम को अपने सत्य उपदेश से तृप्त कीजिये कि जिस से हमारे इष्ट मित्र लोग सब प्रकार हो के आप को भी सेवा से संतुष्ट करें ॥ (ब्रात्य यथा०) हे विद्वन् जिस प्रकार आप को प्रसन्नता हो हमलोग वैसा ही काम करें तथा जो पदार्थ आप को प्रिय हो उस की आज्ञा कीजिये और (ब्रात्य यथा०) जैसे आप की कामना पूर्ण हो वैसी सेवा की जाय कि जिस से आप और हमलोग परस्पर प्रीति और सत्संगपूर्वक विद्या वृद्धि करके सदा आनंद में रहें ॥ २ ॥ इति संक्षेपतः पंचमहायज्ञविषयः ५

॥ अथ ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्यविषयः ॥

सृष्टिप्रारभ्याद्यपर्य्यन्तं येषां येषां स्वतः परतः प्रमाणसिद्धानां ग्रन्थानां पक्षपातरहितैरागद्वेषशून्यैः सत्यधर्मविचारणैः सर्वोपकारकैरार्यैर्विद्वद्भिर्यथाङ्गीकारः कृतस्तथा चोच्यते । यद्यत्रयोक्तान्यन्यास्ते स्वतः प्रमाणं कर्तुं योग्याः सन्ति ये ऽवेदोक्तास्ते परतः प्रमाणार्हाश्च । ईश्वरोक्तत्वान्नित्यत्वाच्चैवेदाः स्वतःप्रमाणम् । कुतः । तद्युक्तौ भ्रमादिदोषाभावात् तस्य सर्व-

सम्बन्धार्थविद्याहेत्वात्सर्वशक्तिमत्त्वाच्च । तत्र वेदेषु वेदानामेव प्रामाण्ये स्वीकार्ये सूर्य्यप्रदीपवत् । यथा सूर्य्यः प्रदीपस्य स्वप्रकाशेनैव प्रकाशितोऽन्यौ सर्वैर्मनुष्यप्रकाशको भवतः । तथैव वेदाः स्वप्रकाशेनैव प्रकाशिताः सन्तः सर्वान्यविद्याप्रकाशान् प्रकाशयन्ति । ये अन्या वेदविरोधिनो वर्त्तन्ते नैव तेषां प्रामाण्यं स्वीकर्त्तुं योग्यमस्ति । वेदानां तु खलु अन्येषां ग्रन्थानां विरोधादप्रामाण्यं न भवति तेषां स्वतःप्रामाण्यात्सिद्धानां अन्यानां वेदाधीनप्रामाण्यत्वात् । ये स्वतः प्रमाणभूता संहितामन्त्रसंहिता व्याख्यत्वारोवेदा इति सिद्धिः सत्यशास्त्राख्यानभूता ब्राह्मणग्रंथा वेदानुकूलतया प्रमाण्यमर्हन्ति तथैवैकादशसहस्राणि षष्टिविंशतिश्च वेदशाखाऽर्थव्याख्यानरूपा अपि वेदानुकूलतयैव प्रमाण्यमर्हन्ति । एवमेव यानि शिक्षाकल्पोव्याकरणं निरुक्तं छन्दोज्योतिषमितिषडङ्गानि । तथाऽयुर्वेदो वैद्यकशास्त्रं । धनुर्वेदः शस्त्रास्त्रविद्या । गांधर्ववेदोगानविद्या । अर्थवेदश्च शिल्पशास्त्रं चत्वार उपवेदा अपि । तत्र चरकसुश्रुतनिघण्टुहृदय आयुर्वेदीयग्रन्थाः । धनुर्वेदस्य ग्रन्था प्रायेण लुप्ताः सन्ति । परं तु तस्य सर्वविद्याक्रियावयवैः सिद्धत्वादिदानीमपि साधयितुं शक्यन्ति यैरिदं प्रभृतिभिर्निर्मिता धनुर्वेदग्रन्था बहव आसन्निति । गान्धर्ववेदश्च सामगानविद्यादिसिद्धः । अर्थवेदश्च विश्वकर्म्मस्वकृतयत्नसकृत्संहिताख्यो ग्राह्यः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

हो २ अब सृष्टि की आदि से लेके आजतक पक्षपात और रागद्वेष रहित सत्यधर्मयुक्त भले लोगों के किये प्राचीन विद्वान् आर्य्य होगये हैं (स्वतःप्रमाणं) अर्थात् अपने आपही प्रमाण परत प्रमाण अर्थात् वेद और प्रत्यक्षानुमानादि से प्रमाणभूत हैं जिन को जिस प्रकार ऋषि जैसा कुछ मानता है उन को आगे कहने हैं इस विषय में उन लोगों का सिद्धान्त यह है कि ईश्वर की कही हुई जो चारों मंत्र संहिता हैं वेही स्वयंप्रमाण होने योग्य हैं अन्य नहीं परंतु उन से भिन्न भी जो २ ऋषियों के रचे हुए ग्रंथ हैं वे भी वेदों के अनुकूल होने से परतःप्रमाण के योग्य होते हैं क्योंकि वेद ईश्वर के रचे हुए हैं और ईश्वर सर्वज्ञ सर्व विद्यायुक्त तथा सर्व शक्तिवाला है इस कारण से उस का कथन ही निर्भ्रम और प्रमाण के योग्य है और ऋषियों के बनाए ग्रंथ स्वतःप्रमाण के योग्य नहीं होते क्योंकि वे सर्वे विद्या और सर्व शक्तिमान् नहीं होते इस लिये उन का कहना स्वतःप्रमाण के योग्य नहीं हो सकता ऊपर के कथन से यह बात सिद्ध होती है कि वेदविषय में जहां कहीं प्रमाण की आवश्यकता हो वहां सूर्य्य और दीपक के समान वेदों का ही प्रमाण लेना उचित है अर्थात् जैसे सूर्य्य और दीपक अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान होके सब

क्रिया वाले द्रव्यों को प्रकाशित कर देते हैं वैसे ही वेद भी अपने प्रकाश से प्रकाशित हो के अन्य सबों का भी प्रकाश करते हैं इस से यह सिद्ध हुआ कि जो २ ग्रंथ वेदों से विरुद्ध हैं वे कभी प्रमाण वा स्वीकार करने के योग्य नहीं होते और वेदों का अन्य ग्रंथों के साथ विरोध भी हो सब भी अप्रमाण के योग्य नहीं ठहर सकते क्योंकि वे तो अपने ही प्रमाण से प्रमाणयुक्त हैं इसी प्रकार ऐतरेय शतपथ ब्राह्मणादि ग्रंथ जो वेदों के अर्थ और इतिहासादि से युक्त बनाये गये हैं वे भी परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल ही होने से प्रमाण और विरुद्ध होने से अप्रमाण हो सकते हैं । मंत्रभाग की चार संहिता कि जिन का नाम वेद है वे सब स्वतः प्रमाण कही जाती हैं और उन से भिन्न ऐतरेयशतपथ आदि प्राचीन अन्य ग्रंथ हैं वे परतः प्रमाण के योग्य हैं तथा ग्यारह सौ सत्तरैंस (११७९) शाखा भी वेदों के व्याख्यान होने से परतः प्रमाण तथा (आयुर्वेदः) अर्थात् जो वैद्यकशास्त्र चरक सुश्रुत और धन्वन्तरिप्रभृत निघंटु आदि ये सब मिलकर ऋग्वेद का उपवेद कहाता है (धनुर्वेदः) अर्थात् जिस में शस्त्र अस्त्र विद्या के विधानयुक्त अंगिरा आदि ऋषियों के बनाये ग्रंथ जो कि अंगिराभरद्वाजादिकृत संहिता हैं जिन से राजविद्या सिद्ध है सो है परंतु वे ग्रंथ प्रायः लुप्त से हो गये हैं । जो पुरुषार्थ से इन को सिद्ध किया चाहे तो वेदादि विद्या पुस्तकों से साक्षात् कर सकता है ॥ (गान्धर्ववेदः) जो कि सामगान और नारदसंहिता आदि गानविद्या के ग्रन्थ हैं (अथर्ववेदः) अर्थात् शिल्पशास्त्र जिस के प्रतिपादन में विश्वकर्मा त्वष्टा देवज्ञ और मयकृत संहिता रची गई हैं ये चारों उपवेद कहाते हैं ॥

शिक्षा पाणिन्यादिमुनिकृता । कल्पोमानशाकल्यसूत्रादिः । व्याकरणमष्टाध्यायी महाभाष्यं धातुपाठोणादिगणप्रातिपदिकगणपाठाख्यम् । निरुक्तं यास्कमुनिकृतं निघण्टुसहितं चतुर्थं वेदाङ्गं मन्तव्यम् । छन्दः पिङ्गलाचार्यकृतसूत्रभाष्यम् । ज्योतिषं चन्द्रार्कादिप्रणीतं रेखागणितसमेतं चेति वेदानां षडङ्गानि सन्ति । तथा षडुपाङ्गानि । तत्राद्यं कर्मकाण्डविधायकं धर्मधर्मिव्याख्यासमेतं व्यासमुन्यादिकृतभाष्यसहितं जैमिनिमुनिकृतसूत्रं पूर्वमीमांसाशास्त्राख्यं ग्राह्यम् । द्वितीयं विशेषतया धर्मधर्मिविधायकं प्रशस्तपादकृतभाष्यसहितं कणादमुनिकृतं वैशेषिकशास्त्रं तृतीयं पदार्थविद्याविधायकं वात्स्यायनभाष्यसहितं गोतममुनिकृतं न्यायशास्त्रं । चतुर्थं यत्रिभिर्मीमांसावैशेषिकन्यायशास्त्रैः सर्वपदार्थानां सम्यगमननेनानुमानिकं ज्ञानतया निश्चयो भवति । तेषां साक्षाज्ज्ञानसाधनमुपासनाविधायकं व्यासमुनिकृतभाष्यसहितं पतंजलिमुनिकृतं योगशास्त्रम् ।

तथा पंचमं तत्त्वपरिगणनविषेशार्थं भागुरिमुनिकृतभाष्यसहितं कपिलमुनिकृतं सांख्यशास्त्रं षष्ठं बौद्धायन कृत्यादि व्याख्यानसहितं आत्रेयमुनिकृतं वेदान्तशास्त्रम् । तथैव ईश केन कठ प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य तैत्तिरीय ऐतरेयछान्दोग्य बृहदारण्यकादयोपनिषदश्चोपांगानि च गृह्यन्ते । एवं चत्वारोवेदाः स व्याख्याख्यानसहिताश्चत्वार उपवेदाः षड् वेदाङ्गानि षट् च वेदोपाङ्गानि मिलित्वा एतद् भवन्ति । एतैरेव चतुर्दशविद्या मनुष्यैर्ज्ञाता भवन्तीति वेदम् ॥ ॥ भाषार्थ ॥

इसी प्रकार मन्वादिकृत मानवकल्पसूत्रादि याज्ञवल्क्यादिकृत धौतसूत्रादि, पाणिनिमुनिकृत अष्टाध्यायी धातुपाठ गणपाठ उणादिपाठ और पतंजलिमुनिकृत महाभाष्यसहित व्याकरण ॥ तथा यास्कमुनिकृत निरुक्त और निघंटु वसिष्ठमुनि आदि कृत ज्योतिष सूर्यसिद्धान्त आदि और (छन्दः) पिंगलाचार्यकृत सूत्रभाष्य आदि ये वेदों के छः अंग भी परतः प्रमाण के योग्य और ऐसे वेदों के छः अंग अर्थात् जिनका नाम षडङ्गशास्त्र है उनमें से एक व्यासमुनि आदि कृत भाष्यसहित जैमिनिमुनिकृत पूर्वमीमांसा जिस में कर्मकाण्ड का विधान और धर्म धर्मि दो पदार्थ हैं सब पदार्थों की व्याख्या की है दूसरा वैशेषिक शास्त्र जो कि कणादमुनिकृत सूत्र और गौतममुनिकृत न्यायशास्त्र पर भाष्यादिव्याख्या सहित सांख्य न्यायशास्त्र जो कि गौतममुनि पर्यन्त सूत्र और व्यासमुनिकृतभाष्य सहित पातञ्जल योगशास्त्र जो कि पतंजलिमुनि कृत सूत्र और व्यासमुनिकृतभाष्य सहित पातञ्जल योगशास्त्र जो कि कणादमुनिकृत सूत्र और भागुरिमुनिकृत भाष्य सहित और छठा वेदान्तशास्त्र जो कि ईश केन कठ प्रश्न मुण्डक माण्डूक्य तैत्तिरीय ऐतरेय छान्दोग्य और बृहदारण्यक ये दश उपनिषद् तथा व्यासमुनिकृत सूत्र जो कि बौद्धायन कृत्यादि व्याख्या सहित वेदान्तशास्त्र है ये छः वेदों के उपांग कहाते हैं इस का यह अभिप्राय है कि जो शाखा शाखांतरव्याख्यासहित चार वेद चार उपवेद छः अंग और उपांग हैं ये सब मिलके चौदह विद्या के ग्रंथ हैं ॥

यतोऽयं पठनाद्यर्थे शिक्षितस्तदभ्यासप्रवाह्यज्ञानक्रियाजाखण्डसंस्कारकरणात् महाविद्वान् भवतीति निश्चेतव्यम् । यत ईश्वरोक्ता वेदास्तद्व्याख्यानमया आप्तैरार्षग्रन्था अर्थं वेदानुकूलाः सत्यधर्मविद्यायुक्तयुक्तिप्रमाणसिद्धा एव माननीयाः सन्ति । नैतेभ्यो भिन्नाः पक्षपातक्षुद्रविचारस्वल्पविद्याधर्माचरणाप्तिपादका अनाप्तोक्ता वेदार्थविरुद्धा युक्तिप्रमाणविरहा ग्रन्थाः केनापि कदाचिद्ग्राह्या इति । ते च संक्षेपतः परिगण्यन्ते । कुदृग्गलाद्यस्तंत्रग्रन्थाः ॥ ब्रह्मवैवर्ताद्यानि पुराणानि च । प्रक्षिप्तश्लोकत्यागाद्यामनुस्मृत्यतिरिक्ताः स्मृतयः । सारस्वतचन्द्रिका-

कौमुद्यादयो व्याकरणाभासग्रन्थाः । मीमांसाशास्त्रादिविरुद्धनिर्णयसिन्ध्वादयोग्रन्थाः ॥ वैशेषिकन्यायशास्त्रविरुद्धास्तर्कसंग्रहमारभ्य जागदीशन्यायाभासग्रन्थाः ॥ योगशास्त्रविरुद्धा हठप्रदीपिकादयोग्रंथाः । सांख्यशास्त्रविरुद्धाः सांख्यतत्त्वकौमुद्यादयः । वेदान्तशास्त्रविरुद्धा वेदान्तसारपंचदशीयोगवासिष्ठादयोग्रन्थाः । ज्योतिषशास्त्रविरुद्धा । मुहूर्तचिन्तामण्यादयो मुहूर्तजन्मपत्रफलादेशविधायकाग्रन्थाः । तथैव शौनसूत्रविरुद्धा । स्त्रिक्षणिडकास्नानसूत्रपरिशिष्टादयोग्रन्थाः । मार्गशीर्षैकादशीकार्त्तिकशुक्लजलशयनव्याकरणादर्शननामस्मरणस्नानजडमूर्त्तिपूजाकरणादयोग्रन्थाश्चैव मुक्तिभावनाप्रतिबन्धकारणमाहात्म्यविधायकाः सर्वे ग्रन्थाः । तथैव पाषण्डिसंप्रदायिनिर्मितानि सर्वाणि पुस्तकानि च नास्तिकत्वविधायकाग्रन्थाश्चोपदेशाश्च ते सर्वे वेदादिशास्त्रविरुद्धा युक्तिप्रमाणपरीक्षाहीनाः सन्त्यतः शिष्टैरयाह्या भवन्ति ॥

॥ भाषार्थ ॥

इन ग्रंथों का तो पूर्वोक्त प्रकार से स्वतः परतः प्रमाण करना सुनना और पढ़ना सब को उचित है इस में भिन्नों का नहीं क्योंकि जितने ग्रंथ पक्षपाती दुष्टबुद्धि कम विद्यावाले अधर्मात्मा असत्यग्रादियों के करे वेदार्थ से विरुद्ध और युक्ति प्रमाणरहित हैं उन को स्वीकार करना योग्य नहीं आगे उन में से मुख्य २ मिथ्या ग्रंथों के नाम भी लिखते हैं जैसे रुद्रयामल आदि सब ग्रंथ, ब्रह्मवैवर्त्त श्रीमद् भागवत आदि पुराण । मूर्खगाथा आदि उपपुराण । मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और उससे पृथक् सब स्मृति ग्रंथ । व्याकरण विरुद्ध सारस्वतचन्द्रिका कौमुद्यादि ग्रंथ । धर्मशास्त्र विरुद्ध निर्णयसिन्धु आदि तथा वैशेषिक न्यायशास्त्र विरुद्ध तर्कसंग्रह मुक्तावल्यादि ग्रंथ । हठदीपिका आदि ग्रंथ जो कि योगशास्त्र से विरुद्ध हैं । तथा सांख्यशास्त्र विरुद्ध सांख्यतत्त्वकौमुदी आदि ग्रंथ, वेदान्तशास्त्र विरुद्ध वेदान्तसार पंचदशी योगवासिष्ठादि ग्रंथ । तथा ज्योतिष शास्त्र से विरुद्ध मुहूर्तचिन्तामण्यादि मुहूर्तजन्मपत्रफलादेशविधायक पुस्तक, ऐसे ही शौनसूत्रादि विरुद्ध त्रिकंडिका स्नानविधायकादि सूत्र । तथा मार्गशीर्ष एकादश्यादि शुक्ल कार्त्तिकादि शयन पुष्कर गंगादि जल यात्रा माहात्म्य विधायक पुस्तक तथा दर्शन नामस्मरण जडमूर्त्तिपूजा करने में मुक्ति विधायक ग्रंथ । ऐसी प्रकार पाप निवारण विधायक और ईश्वर के अवतार वा पुत्र आदि वा इन प्रतिपादक वेद विरुद्ध शैव पाशुपत वैष्णवादि मत के ग्रंथ तथा नास्तिक मत के पुस्तक और उन के उपदेश ये सब वेद युक्ति प्रमाण और परीक्षा से विरुद्ध ग्रंथ हैं । इस लिये सब मनुष्यों को उक्त अशुद्ध ग्रंथ त्याग कर देने योग्य हैं ॥

प्र० किंतु बहूनामेतेषु किञ्चित्सत्यमप्यस्त्याहोस्विन्नेति । कि-ञ्चिदस्तीत्युत्तरम् । उ० यथा पाकविषसंयुक्तमन्नतुल्यमन्नं परीक्ष्य त्यजन्ति तद्वत् प्रमाणाप्रमाणग्रन्था अपि त्याज्याः । कुतः । तेषां प्रचारेण वेदानां सत्या-र्थप्रवृत्तिरोधस्तुल्यत्वात् सत्यार्थप्रकाशविरोधान्धकारस्य च प्राबल्याद्भ-वत्येवेति । अथ तन्त्रग्रन्थानां मिथ्यात्वं प्रदर्श्यते । तत्र पञ्चम-कारसेवने मुक्तिरिति वाममार्गिणः । तेषां मतं यथैते श्लोकाः सन्ति ॥ मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ॥ एते पञ्चमकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे ॥ १ ॥ पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले ॥ उत्थाय च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥ २ ॥ प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥ निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक् ॥ ३ ॥ मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत्सर्वयोनिषु ॥ लिङ्गं योन्यां तु संस्थाप्य जपेन्मन्त्रमतन्द्रितः ॥ ४ ॥ मातरमपि न त्यजेत् । इत्यादयोऽनेकविधा-स्वकपोलकल्पितार्थमिथ्याभिहितयुक्तिप्रमाणरहितं वेदादिभ्योऽत्यन्तवि-रुद्धमनार्षत्वं तेनेदृशं सच्छास्त्रैर्न कदापि ग्राह्यमस्ति । मद्यादिसेवनेन बुद्धिविनाशात्तु सत्त्वं न जायते किं तु नरकप्राप्तिरेव सर्वलोकनिन्दितत्वं प्रसिद्धं च । एवमेव ब्रह्मवैवर्तादिषु मिथ्या पुराणसंज्ञासु किं च नवीनेषु मिथ्याभूता बहवः कथा लिखितास्तासां स्थालीपुलाकन्यायेन स्वल्पाः प्रदर्श्यन्ते । तत्रैवमेका कथा लिखिता प्रजापतिर्ब्रह्मा चतुर्मुखो देहधारी स्वां सरस्वतीं दुहितरं मैथुनाय कल्पयेति । सा मिथ्यैवास्ति कुतः । ब्रह्मणः कायया कलङ्कासिद्धत्वात् । तद्यथा । ॥ भाषार्थ ॥

कदाचित् इन ग्रंथों के विषय में कोई ऐसा प्रश्न करे कि इन अप्रमाण ग्रंथों में भी जो २ सत्य बात हैं उन का ग्रहण करना चाहिये वा नहीं ? इस का उत्तर यह है कि जैसे अमृत तुल्य अन्न में विष मिला हो तो उस को छोड़ देते हैं क्योंकि उन के अन्य ग्रहण की आशा करने से सत्यार्थप्रकाशक वेदादि ग्रंथों का लोप हो जाता है इस लिये इन सत्य ... प्रकार के अर्थ युक्त मिथ्या ग्रंथों को छोड़ देना अवश्य चाहिये ॥ क्योंकि बिना सत्यविद्या के ज्ञान नहीं । बिना ज्ञान के उन्नति कैसी और उन्नति के न होने से मनुष्य सदा दुःखसागर ही में डूबे रहते हैं । अब आगे उन पूर्वोक्त तन्त्रादि ग्रंथों का अल्प से एकदेश दोष भी दिखलाते जाते हैं कि जैसे तन्त्र ग्रंथों में ऐसे २ श्लोक लिखे हुए हैं कि (मद्यं मांसं०) मद्य पीना मांस खाना मीन अर्थात् मछली खाना मुद्रा अर्थात् सब के साथ इकट्ठे बैठ के रोटी बड़े आदि खाना और माता और पुत्रवधू आदि के साथ भी मैथुन कर लेना इन पांच मकारों से

सेवन से मद्य की मुक्ति होना ॥ १ ॥ (पीत्वा पीत्वा०) किसी मकान के चार आलयों में मद्य के पात्र धर के एक कोने में खड़े २ मद्य पीने का आरम्भ कर के दूसरे में जाना दूसरे से पीते हुए तीसरे में और तीसरे से चौथे में जाकर पीना यहां तक कि जब पर्य्यन्त पीते २ वे धोम होकर लकड़ी के समान भूमि में न गिर पड़े तब तक बराबर पीने ही चले जाना इस प्रकार बारंबार पीके अनेक बार उठ २ कर भूमि में गिर जाने से मनुष्य जन्म मरणादि दुःखों से छूट कर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥ (प्रथमे भैरवी चक्रे०) जब कभी वाममार्गी लोग रात्रि के समय किसी स्थान में इकट्ठे होते हैं तब उन में ब्राह्मण से लेके चाण्डाल पर्य्यन्त सब स्त्री पुरुष आते हैं फिर वे लोग एक स्त्री को नंगी कर के वहां उस की योनि की पूजा करते हैं सो केवल इतना ही नहीं किंतु कभी २ पुरुष को भी नंगा कर के स्त्री लोग भी उस के लिंग की पूजा करती हैं । तदनंतर मद्य के पात्र में से एक पात्र अर्थात् प्याला भर के उस स्त्री और पुरुष दोनों को पिलाते हैं फिर उसी पात्र से सब वाममार्गी लोग क्रम से मद्य पीते और अकथनीयादिक खाते चले जाते हैं । यहां तक कि जब तक उन्मत्त न हो जायं तब तक खाना पीना बंद नहीं करते हैं फिर एक स्त्री के साथ एक पुरुष अथवा एक के साथ अनेक भी मैथुन कर लेते हैं जब उस स्थान से बाहर निकलते हैं तब कहते हैं कि अब हम लोग अलग २ वर्णवाले हो गये ॥ ३ ॥ (मातृयोनिं०) उन के किसी २ श्लोक में तो ऐसा लिखा है कि माता को छोड़ के सब स्त्रियों से मैथुन कर लेवे इस में कुछ दोष नहीं और (मातरमपि न त्यजेत्) किसी २ का यह भी मत है कि माता को भी न छोड़ना तथा किसी में लिखा है कि योनि में लिंग प्रवेश करके आलस्य छोड़कर मंत्र को जपे तो यह शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है इत्यादि अनेक अनर्थ रूप कथा तंत्र ग्रंथों में लिखी हैं वे सब वेदादि शास्त्र । युक्ति प्रमाणों से विरुद्ध होने के कारण श्रेष्ठ पुरुषों के ग्रहण करने योग्य नहीं क्योंकि मद्यादि सेवन से मुक्ति तो कभी नहीं हो सकती परंतु ज्ञान का नाश और दुःखरूप नरक की प्राप्ति दीर्घकाल तक होती है ॥ ४ ॥ इसी प्रकार ब्रह्मवैवर्त्त और श्रीमद्भागवतादि ग्रंथ जो कि व्यास जी के नाम से संप्रदायी लोगों ने रच लिये हैं उन का नाम पुराण कभी नहीं हो सकता किंतु उन को नवीन कहना उचित है अब उन की मिथ्यात्व परीक्षा के लिये कुछ कथा यहां भी लिखते हैं ॥

प्रजापतिर्वै स्वां दुहितरमभ्यध्यायद्दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्येताम्रश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्यत् ॥ तस्य यद्रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्यो भवत् ॥ ऐ० पं० ३ कं० डि० ३३ । ३४ ॥

प्रजापतिर्वै सुपर्णो गरुत्मानेष सविता । ऋग्० ऋ० १० अ० २ अ० ७ मं० ४ ॥ तच्च पिता दुहितुर्गर्भं दधाति पर्जन्यः पृथिव्याः । निरु० अ० ४ खं० २१ । द्यौर्मे पिता जनिताभिरत्र बन्धुर्मे नाभा पृथिवी महीयम् ॥ उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ १ ॥ ऋ० मं० १ सू० १६४ मं० ३३ ॥ आदह्नं दुहितुर्नप्तीरुषसो वहन्ति रथ्यो न देवीः । पितायत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सद्यश्चिन्नि दधौ मनसा दधन्वे ॥ २ ॥ ऋ० मं० ३ सू० ३१ मं० १ ॥

॥ भाष्यम् ॥

सविता सूर्यः सूर्यलोकः प्रजापतिसंज्ञकोऽस्ति तस्य दुहिता कन्या द्यौरुषा चास्ति । यस्माद्दुह्यते तनयाकन्यावत् स तस्य पितृशब्दितो रूपकालंकारोक्तिः ॥ स च पिता सां रोहितां लिं चित्रकगुणप्रायां स्वां दुहितरं किरणैर्वैद्युतयज्ञीयमन्त्रध्यायत् प्राप्नोति । यत्र प्रभाः प्रकाशा अस्मादित्यपुत्रमजोजनदुत्पादयति । अस्य पुत्रस्य मातृवद्द्यौः पितृवत्सूर्यश्च । कुतः । तस्यामुषसि दुहितरि किरणाख्येण वीर्येण सूर्योद्दिवसस्य पुत्रस्योत्पन्नत्वात् यस्मिन् भूप्रदेशे प्रातः पंचघटिकायां रात्रौ स्थितायां सिं चित्सूर्यप्रकाशेन रक्तता भवति । तस्योषा इति संज्ञा । तयोः पितादुहित्रोः सप्रकाशदुल्कटदीप्तिः प्रकाशाख्य आदित्यपुत्रो जातः । यथा मातापितृभ्यां सन्तानोत्पत्तिर्भवति । तथैषावपि बोध्यम् । यत्रमेव पर्जन्यपृथिव्योः पितादुहितृत्वम् । कुतः पर्जन्याद्भूम्याः पृथिव्या उत्पत्तेः अतः पृथ्वी तस्य दुहितृवदस्ति । स पर्जन्यो वृष्टिद्वारा तस्यां वीर्यबीजं जलप्रदेपणेन गर्भं दधाति तस्माद्भूमेरोषध्यादयोऽपत्यानि जायन्ते । अयमपि रूपकालङ्कारः । अत्र वेदप्रमाणम् (द्यौर्मे पिता०) प्रकाशो मम पिता पालयितास्ति (जनिता) सर्वेषामन्नाहाराद्युत्पादकः । अत्र द्वयोः संबंधत्वात् । तथेयं पृथिवी माता मानकर्त्री द्वयोरनयोः पर्जन्यपृथिव्योः सेनावदुत्तानयोरूर्ध्वतानयोरुत्तानशयितयोरलंकारः । अत्र पिता पर्जन्यो दुहितुः पृथिव्या गर्भं जलसमूहमाधात् । आसमन्ताद्धारयतीति रूपकालङ्कारो मन्तव्यः ॥ १ ॥ (आसदुहि०) अयमपि मंत्रोऽस्येवालंकारस्य विषायकोऽस्ति । वाग्विशब्देन सूर्यो दुहिता ऽस्य पूर्वोक्तेव च पिता स्वस्या उषसो दुहितुः सेकं किरणाख्यवीर्यस्थापनेन गर्भाधानं

कृत्वा द्वितीयपुत्रमजनयदिति ॥ २ ॥ अस्यां परमेश्वरायां रूपकालंकार-विद्यायिन्यां निरुक्तब्राह्मणेषु व्याख्यातायां कथायां सत्यामपि ब्रह्मत्वेव लौकिषु भ्रान्त्याया: कथा अन्यथा निरूपितास्तानैव कदाचित्केनापि सत्या मन्तव्या इति ॥

॥ भाषार्थ ॥

नवीन ग्रंथकारों ने एक यह कथा भ्रान्ति से मिथ्या करके लिखी है जो कि प्रथम रूपकालंकार की थी (प्रजापतिर्वै स्वांदुहितरम०) अर्थात् यहां प्रजापति कहते हैं सूर्य्य को जिस की दो कन्या एक प्रकाश और दूसरी उषा क्योंकि जो जिस में उत्पन्न होता है वह उस का ही संतान कहाता है इस लिये उषा जो कि तीन चार घड़ी रात्रि शेष रहने पर पूर्व दिशा में रक्तता दीख पड़ती है वह सूर्य्य की किरण में उत्पन्न होने के कारण उस की कन्या कहाती है उन में से उषा के सन्मुख जो प्रथम सूर्य्य की किरण जाके पड़ती है वही वीर्य्यस्थापन के समान है उन दोनों के समागम से पुत्र अर्थात् दिवस उत्पन्न होता है प्रजापति और सविता ये शतपथ में सूर्य्य के नाम हैं तथा निरुक्त में भी रूपकालंकार की कथा लिखी है कि पिता के समान पर्जन्य अर्थात् जलरूप जो मेघ है उस की पृथिवी रूप दुहिता अर्थात् कन्या है क्योंकि पृथिवी की उत्पत्ति जल से ही है जब वह उस कन्या में सृष्टिद्वारा जलरूप वीर्य को धारण करता है तब उस से गर्भ रह कर ओषध्यादि अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं इस कथा का मूल ऋग्वेद है कि (यद्दौर्मे पिता०) द्यौ जो सूर्य्य का प्रकाश है सो सब सुखों का हेतु होने से मेरे पिता के समान और पृथिवी बड़ा स्थान और मान्य का हेतु होने से मेरी माता के तुल्य है (उत्तानं०) जैसे ऊपर नीचे वस्त्र की दो चांदनी तान देते हैं अथवा आमने सामने दो सेना होती हैं इसी प्रकार सूर्य्य और पृथिवी अर्थात् ऊपर की चांदनी के समान सूर्य्य और नीचे के बिछौने के समान पृथिवी है तथा जैसे दो सेना आमने सामने खड़ी हों इसी प्रकार सब लोगों का परस्पर संबन्ध है इस में योनि अर्थात् गर्भस्थापन का स्थान पृथिवी और गर्भस्थापन करनेवाला पति के समान मेघ है वह अपने शिवरूप वीर्य्य के स्थापन से उस को गर्भधारण कराने से ओषध्यादि अनेक संतान उत्पन्न करता है कि जिन से सब जगत् का पालन होता है ॥ १ ॥ (शमद्यौः०) सब का सहन अर्थात् प्राप्ति कराने वाले परमेश्वर ने मनुष्यों की ज्ञानवृद्धि के लिये रूपकालंकार कथाओं का उपदेश किया है । तथा यही (ऋतस्य) जल के धारण करने वाला (सप्तेक्षवः०) जगत् में पुत्र पौत्रादि का पालन और उपदेश करता है (पिता यत्र दुहितुः०) जिस सुखरूप व्यवहार में स्थित होके पिता दुहिता में वीर्य्यस्थापन करता है जैसा कि पूर्व लिख आये हैं इसी प्रकार यहां भी जान लेना । जिस ने इस प्रकार के पदार्थ और उन के संबन्ध रचे

हैं इस को हम नमस्कार करते हैं ॥ २ ॥ लो यह रूपकालंकार की कथा अच्छी प्रकार लेढ ब्राह्मण और निरुक्तादि सत्यग्रंथों में प्रसिद्ध है इस को अश्लील वर्त्तने भागवतादि मिथ्या ग्रंथों में धूर्त्तों ने बिगाड़ के लिख दिया है तथा ऐसी २ अन्य कथा भी लिखी हैं इन सब को विद्वान् लोग मन से त्याग के सत्य कथाओं को कभी न भूलें ॥

तथा च कश्चिद्ब्रह्मधारीन्द्रो देवराज असीत्स गोतमस्तस्यां जारकर्मं कृतवान् तस्यै गोतमेन शापो दत्तस्त्वं सहस्रभगो भवेति । तस्यै अहल्यायै शापो दत्तस्त्वं पाषाणशिला भवेति । तस्या रामपादरजःस्पर्शेन शापस्य मोक्षणं कृतमिति । सर्वेऽपीमे मिथ्यैव कथाः सन्ति । कुतः । आसामप्यलङ्कारार्थत्वात् ॥ तद्यथा

कृष्णो गच्छतीति : गौरादित्यस्मिन्नहल्यायै जारेति । तस्माच्चेवाद्य च रणानि नैवैवैनमेतत्प्रसुप्तोऽहिषयति ॥ शत० कां० ३ अ० ३ ब्रा० १ कं० १८ ॥ इतः सोमः । श० कां० ३ । अ० ३ । ब्रा० ५ । कं० १ ॥ रात्रिरादित्यस्याहिन्योदये उल्लुप्यते : निरु० अ० १२ खं० ११ । सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रलावन्धर्व इत्यपि निगमो भवति सोपि गौरुच्यते । निरु० अ० २ खं० ६ । जार आभगः । जारइव भगसादित्योच जार उच्यते रात्रेर्जरयिता । निरु० अ० ३ खं० । एष एवेन्द्रोय एव तपति । श० कां० १ अ० ६ । ब्रा० ३ कं० १८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

इन्द्रः सूर्य्यो य एष तपति भूमिस्थान्पदार्थांश्च प्रकाशयति । अस्येन्द्रेति नाम परमैश्वर्य्यप्राप्तेर्हेतुत्वात् । स अहल्यायां जारोऽस्ति । सा गोतमस्य स्त्री तस्य गोतमेति नाम । गच्छतीति गौरतिभयेन गौरिति गोतमश्चन्द्रः तयोः स्त्रीपुरुषवत् संबन्धोऽस्ति । रात्रिरहल्या कस्मादहर्दिनं लीयते अस्यां तस्मादात्रिरहल्योच्यते । स चन्द्रमाः सर्वाणि भूतानि प्रमोदयति तस्मिन्या अहल्यया मुह्यति । अत्र स सूर्य्य इन्द्रो रात्रेरहल्यायां गोतमस्य चन्द्रस्य स्त्रियां जार उच्यते । कुतः । अयं रात्रेर्जरयिता । जॄष्वयोहानार्थीति धात्वर्थोऽभिप्रेतोऽस्ति । रात्रेरायुषो विनाशकश्चन्द्रः सूर्य्य एतेन

मन्तव्यम् । यश्च सद्विद्योपदेशार्थालंकारायां भूषणरूपायां सच्छास्त्रेषु प्रशंसितायां कथायां सत्यां या नवीनग्रंथेषु पूर्वोक्ता मिथ्या कथा लिखितास्ति सा केन चिदपि नैव मन्तव्या श्रोतादृश्यो ऽन्याश्चापि ॥ ॥ भाषार्थ ॥

अब जो दूसरी कथा इन्द्र और अहल्या की है कि जिसको मूढ़ लोगों ने अनेक प्रकार बिगाड़ के लिखा है सो इस को ऐसे मान रक्खा है कि देवों का राजा इन्द्र देवलोक में देहधारी देव था वह गौतम ऋषि की स्त्री अहल्या के साथ जारकर्म किया करता था एक दिन जब उन दोनों को गौतम ने देखलिया तब इस प्रकार शाप दिया कि हे इन्द्र तू हजार भग वाला होजा तथा अहल्या को शाप दिया कि तू पाषाणरूप होजा परंतु जब उन्हों ने गौतम की प्रार्थना की कि हमारे शाप का मोचन कैसे वा कब होगा तब इन्द्र से तो कहा कि तुम्हारे हजार भगके स्थान में हजार नेत्र हो जायं और अहल्या को वचन दिया कि जिस समय रामचन्द्र अवतार लेकर तेरे पर अपना चरण लगावेंगे उस समय तू फिर अपने स्वरूप में आजावेगी इस प्रकार पुराणों में यह कथा बिगाड़ कर लिखी है सत्य ग्रंथों में ऐसे नहीं है तथाया (इन्द्रागच्छेति) अर्थात् उन में इस रीति से है कि ॥ सूर्य्य का नाम इंद्र रात्रि का अहल्या तथा चन्द्रमा का गौतम है यहां रात्रि और चन्द्रमा का स्त्री पुरुष के समान रूपकालंकार है चन्द्रमा अपनी स्त्री रात्रि से सब प्राणियों को आनंद कराता है और उस रात्रि का जार आदित्य है अर्थात् जिस के उदय होने से रात्रि अन्तर्धान हो जाती है और जार अर्थात् यह सूर्यही रात्रि के वर्त्तमान रूप शृंगार को बिगाड़ने वाला है इसलिये यह स्त्रीपुरुष का रूपकालंकार बांधा है कि जैसे स्त्रीपुरुष मिलकर रहते हैं वैसेही चन्द्रमा और रात्रि भी साथ २ रहते हैं । चन्द्रमा का नाम गौतम इसलिये है कि वह अत्यंत वेग से चलता है और रात्रि को अहल्या इसलिये कहते हैं कि उस में दिन लय हो जाता है तथा सूर्य्य रात्रि को निवृत्त कर देता है इसलिये वह उस का जार कहाता है इस उत्तम रूपकालंकार विद्या को अल्प बुद्धि पुरुषों ने बिगाड़ के सब मनुष्यों में हानिकारक कर धर दिया है इसलिये सब सज्जन लोग पुराणोक्त मिथ्या कथाओं का मूल से ही त्याग कर दें ॥

एवमेवेन्द्रः कश्चिद्वेहधारी देवराज आसीत्तस्य त्वष्टुरपत्येन वृत्रासुरेण सह युद्धमभूत् । वृत्रासुरेणेन्द्रो निगलितो ऽतो देवानां महद्दुःखमभूत् । ते विष्णुशरणंगता विष्णुरुपायं वर्णितवान् मया प्रविष्टेन समुद्रफेनेनायं हतो भविष्यतीति । ईदृश्यः प्रमत्तगीतवत् प्रलपिताः कथाः पुराणभाषादिषु नवीनेषु ग्रंथेषु मिथ्यैव सन्तीति मद्बुद्धिमद्भिर्मन्तव्यम् । कुतः । यतासामप्यलङ्कारत्वात् । तदर्था ॥

इन्द्रस्य नु वीर्य्याणि प्रवोचं यानि चकारं प्रथमानि वज्री ॥ अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्रवक्षणा अभिनत्पर्वतानाम् ॥ १ ॥ अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टास्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष ॥ वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अंशः समुद्रमव जग्मुरापः ॥ २ ॥ ऋ० मंडल १ सूक्त० ३२ मं० १ । २ । ॥ भाष्यम् ॥

इन्द्रस्य सूर्य्यस्य परमेश्वरस्य वीर्य्याणि पराक्रमयुक्तानि प्रवोचं कथयामि यानि प्रथमानि पूर्वे (नु) इति वितर्के वज्री चकार (वज्री) वज्रः प्रकाशः प्राणोवास्यास्तीति । अर्च्यं वै वज्रः । श० कां० ७ अ० ४ । स चार्हिं मेघमहन् हतवान् सं इत्था पृथिव्यामनुष्वाद्यस्तत्तर्द विस्तारितवान् । त्वाष्टिरहिः प्रवक्षणा नदीस्तत्तर्दजलप्रवाहेण हिंसितवान् । तदानीं च तेन कारितशब्दात् सोदृष्यस्ता अद्रयः पर्वतानां मेघानां सकाशादुत्पद्यमानाः यज्जलमुत्सारिवाद्रिं सित्वा निपात्यते तदृषस्य शरीरमेव विज्ञेयम् ॥ ५ ॥ अथ मेघानां संक्षेपतो ऽर्थो वर्ण्यते । (त्वष्टा) सूर्य्यः (अहन्त्वहिं) तं मेघमहन् हतवान् । कथं हतवानित्यत्राह (अस्मै) अहये वृत्रायाभ्रमेघाय (पर्वते शिश्रियाणं) मेघे श्रितं (स्वर्यं) प्रकाशमयं (वज्रं) स्वकिरणजन्यं विद्युत् प्रक्षिपति । येन वृत्रासुरं मेघं (ततक्ष) क्षीणीकृत्य भूमौ पातयति । पुनर्भूमिगतमपि जलं क्षीणीकृत्याकाशं गमयति । ता आपः सस्रुवः (स्यन्दमानाः) गच्छन्ति कथंभूता आपः (अंशवः) व्याप्ताः (स्यन्दमानाः) द्रवणशीलाः । ता इव वाश्राबत्सोपेच्छवो गावइव । आप एव वृत्रासुरस्य शरीरम् । यदिदं वृत्रशरीराख्यजलस्य भूमौ निपातनं तदिदं सूर्यस्य स्वोत्तमत्वं कर्मोक्तम् ॥ ६ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

तीसरी इन्द्र और वृत्रासुर की कथा है इस को भी पुराण वालों ने ऐसा बिगाड़ा है कि सब प्रमाण और युक्ति इन दोनों में विरुद्ध जा पड़ी है देखो कि त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर ने देवों के राजा इन्द्र को निगल लिया तब सब देवता लोग बड़े भययुक्त होकर विष्णु के शरण गये और विष्णु ने उस के मारने का उपाय बतलाया कि मैं समुद्र के फेन में प्रविष्ट होऊंगा तुम लोग उस फेन को उठा के वृत्रासुर के मारना वह मर जायगा यह पागलों की सी बनाई हुई पुराण ग्रंथों की कथा सब मिथ्या है श्रेष्ठ लोगों को उचित है कि इन को कभी न मानें देखो सत्य ग्रंथों में यह कथा इस प्रकार से लिखी है कि (इन्द्रस्य नु०) यहां सूर्य्य का इन्द्र नाम है उस के किये हुए

पराक्रमों को हम लोग कहते हैं । जो कि परमैश्वर्य्य होने का हेतु अर्थात् बड़ा तेजधारी है वह अपनी किरणों से वृत्र अर्थात् मेघ को मारता है जब वह मरके पृथिवी में गिर पड़ता है तब अपने जलरूप शरीर को सब पृथिवी में फैला देता है फिर उससे अनेक बड़ी २ नदी परिपूर्ण होके समुद्र में जा मिलती हैं कैसी वे नदी हैं कि पर्वत अर्थात् मेघों से उत्पन्न होके जलही बहने के लिये होती हैं जिस समय इन्द्र मेघरूप वृत्रासुर को मार के आकाश से पृथिवी में गिरा देता है तब वह पृथिवी में सो जाता है ॥ १ ॥ फिर वही मेघ आकाश में से नीचे गिरके पर्वत अर्थात् मेघमंडल का पुनः आश्रय लेता है जिस को सूर्य्य अपनी किरणों से फिर हनन करता है जैसे कोई लकड़ी को कील के सूक्ष्म कर देता है वैसेही वह मेघ को भी बिंदु २ करके पृथिवी में गिरादेता है और उस के शरीररूप जल सिमट २ कर नदियों के द्वारा समुद्र को ऐसे प्राप्त होते हैं कि जैसे अपने बछड़ों को गाय दौड़के मिलती हैं ॥ २ ॥

अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन। स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृक्णाहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः ॥ ३ ॥ अपादहस्तो अपृतन्यादिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान। वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १ सू० ३२ मं० ॥ भाष्यम् ॥

अहिरिति मेघनामसु पठितम् निघं० अ० १ खं० १० । इन्द्रशत्रुरिन्द्रोस्य शमयिता वा शातयिता वा तस्मादिन्द्रशत्रुस्तत्को वृत्रो मेघ इति नैरुक्तास्त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः । वृत्रं जघ्निवानपवार तद्वृत्रो वृणोतेर्वा वर्ततेर्वा वर्धतेर्वा यद्वृणोत्तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते यदवर्तत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते यदवर्धत तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते निरु० अ० २ खं० १७ ॥ (इन्द्रः) सूर्य्यः (वज्रेण) विद्युत् किरणाख्येन (महता व०) सीघ्रातिसीघ्रेण (वृत्रं) मेघं (वृत्रतरं) अत्यन्तबलयुक्तं (व्यंसं) छिन्नस्कंधं छेदितघनजालं यथास्यातथा (अहन्) हतवान् ॥ ३ ॥ स (अहिः) मेघः (कुलिशेन) (विवृक्णा) विविधछेदनसाधनेन वज्रेण (पृथिव्या उपपृक्) यथा कस्य चिन्मनुष्यादेरसिनाछिन्नं सदङ्गं पृथिव्यां पतति तथैव स मेघोऽपि (अशयत) छन्दसि लुङ् लङ् लिट इति सामान्यकाले लङ् पृथिव्यां शयान इवेन्द्रेण सूर्य्येणापादहस्तो अस्तो मिन्नाङ्गकृतो वृत्रो

मेघो भूमा वधयन् शयानं शरोपीति ॥ ४ ॥ निघण्टौ वृत्र इति मेघस्य नाम । इन्द्रः शत्रुर्यस्य स इन्द्रशत्रुरिन्द्रोस्य निवारकः । त्वष्टा सूर्य्यस्तस्यापत्यमसुरो मेघः । कुतः । सूर्य्यकिरणाद्वारि रसजलमुदायभेदेन यत् क्षणीभूतं जलमुपरि गच्छति । तत्पुनर्मिलित्वा मेघरूपं भवति तस्मेदासुर इति संज्ञात्वात् । पुनश्च तं सूर्य्यो हत्वा भूमौ निपातयति । स च भूमिं प्रविशति नदीर्गच्छति । तद्द्वारा समुद्रमयं कृत्वा तिष्ठति पुनश्चोपरि गच्छति । मं वृत्रमिन्द्रः सूर्य्यो जघान पदशार निवारितवान् । वृत्रो वृणोतेः स्वीकरणीयः । मेघस्य यद्वृत्रस्यमावरकत्वं तद्वर्त्तमानत्वाद्वर्धमानत्वाच्च सिद्धमिति विज्ञेयम् ॥ ॥ भाषार्थ ॥

जब सूर्य्य उस अत्यंत गर्जित मेघ को छिन्न भिन्न करके पृथिवी में ऐसे गिरा देता है कि जैसे कोई किसी मनुष्य आदि के शरीर को काट २ कर गिराता है तब वह वृत्रासुर भी पृथिवी पर गिरा हुआ मृतक के समान शयन करने वाला होजाता है ॥ ३ ॥ निघंटु में मेघ का नाम वृत्र है । (इन्द्रशत्रु०) वृत्र का शत्रु अर्थात् निवारक सूर्य्य है सूर्य्य का नाम त्वष्टा है उस का संतान मेघ है क्योंकि सूर्य्य की किरणों के द्वारा जल कण २ होकर ऊपर को जाकर वहां मिल के मेघरूप हो जाता है तथा मेघ का वृत्र नाम इसलिये है कि (वृञो वृणोतेः) वह स्वीकार करने योग्य और प्रकाश का आवरण करने वाला है ॥

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् । वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः ॥ ५ ॥ काष्ठा विद्युत्तन्वन्तः सिषेधदया मिहमकिरद्द्यामुतेमाम् च ॥ इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोत्तापरीभ्यो अधवा विजिग्ये ॥ ६ ॥ ऋ० मं० १ सू० ३२ मं० १० । १३ ॥ ॥ अष्टमम् ॥

इत्यादय अनेकविधया वेदेषु बहवोर्थाः सन्ति । वृत्रोहता इदं सर्वं वृत्वा शिष्ये । यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी स यदिदं सर्वं वृत्वा शिष्ये तस्माद्वृत्रो नाम ॥ ४ ॥ तमिन्द्रो जघान । सहतः पूतिः सर्वत्र गवाशीभि सुस्राव सर्वत इत इमाश्च समुद्रस्तस्माद्वृत्रेका आपोबीभत्सां चक्रिरेता उपर्युपर्य्यतिषुप्रुविरेत इमे दर्भास्ताइता अनापूयिता आपोस्ति वा इतरासुसश्च सृष्टमिव यदेतावृषः पूतिरभिप्राप्रवतदेषामेताभ्यामपहन्त्यथ मेध्या-

मिरेवाद्रिः श्रोतति तस्माद्वा एताभ्यामुत्स्यन्दते ॥ ५ । १ । श० का० १ अ० १ ब्रा० ३ कण्डि० ४ । ५ ॥ तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः । अग्निः पृथिवीस्थानो वायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्षस्थानः सूर्य्योद्युस्थान इति । निरु० अ० ७ खं० ५ । (अतिष्ठन्तीनाम् ०) वृत्रस्य शरीरमापो द्यौश्च समश्नुवन्ति । अत एवेन्द्रशत्रुर्वृत्रो मेघो भूमा वर्णयत् । आसमन्ताच्छेते ॥ ५ ॥ (नास्मै विद्युत् ०) वृत्रेण मायारूपयुक्ता विद्युतस्यतुश्चास्मै सूर्य्यायेन्द्राय न सिषेध निषेद्धुं न शक्नोति । अहिर्मेघो इन्द्रः सूर्य्यश्च द्वौ परस्परं युयुधाते । यदा वृत्रो वर्धते तदा सूर्य्यप्रकाशं निवारयति । यदा सूर्य्यस्य तापरूपसेना वर्धते तदा वृत्रं मेघं निवारयति । परंतु मघवा इन्द्रः सूर्य्यस्तं वृत्रं मेघं विजिग्ये जितवान् भवति । अन्तर्तोऽस्यैव विजयो भवति न मेघस्येति । ६ ॥ (वृत्रोहत्वा इति०) स-वृत्र इदं सर्वं विश्वं वृत्वा ऽऽवृत्य शिश्ये शयनं करोति । तस्माद्वृत्रो नाम । तं वृत्रं मेघमिन्द्रः सूर्य्यो जघान हतवान् । सहसः सन् पृथिवीं प्राप्य सर्वतः काष्ठतृणादिभिः संयुक्तः पूतिदुर्गंधो भवति । स पुरा कायस्थो भूत्वा सर्वतो ऽपोभिस्राव तासां वर्षणं करोति । अयं हतो वृत्रः समुद्रं प्राप्य तत्रापि भयंकरो भवति । अत एव तत्स्था आपो भयप्रदा भवन्ति । इत्थं पुनः पुनस्तास्ता नदी समुद्रपृथिवीगता आपः सूर्य्यद्वारेणोपर्य्युपर्य्यन्तरिक्षं पुप्लुविरे गच्छन्ति ततोभिवर्षन्ति च । ताभ्य एवेमे दर्भाद्योषधिसमूहा जायन्ते । यो वा य्विन्द्रो सूर्य्यवत्रावान्तरिक्षस्थानो सूर्य्यश्च द्युस्थाने अर्थात् प्रकाशस्थः । एवं सत्यप्यस्मिंस्तु परमोत्तमायामलङ्कारयुक्तायां कथायां सत्यां ब्रह्मवैवर्तादिनवीनग्रन्थेषु पुराणाभासेष्वेता अन्यथा कथा उक्तास्ताः शिष्टैः कदाचित्तेषां ग्रहीतव्या इति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(अतिष्ठन्तीनाम्) वृत्र के इस जलरूप शरीर से बड़ी २ नदियां उत्पन्न होके अर्थात् समुद्र में जाकर मिलती हैं और जितना जल तलाव वा कूप आदि में रहजाता है वह मानो पृथिवी में शयन कर रहा है ॥ ५ ॥ (नास्मै०) अर्थात् वह वृत्र अपने बिजली और गर्जनरूप भय से भी इन्द्र को कभी नहीं जीत सकता इस प्रकार अलंकाररूप वर्णन से इन्द्र और वृत्र ये दोनों परस्पर युद्ध के समान करते हैं अर्थात् जब मेघ बढ़ता है तब तो वह सूर्य्य के प्रकाश को हटाता है और जब सूर्य्य का ताप अर्थात् तेज बढ़ता है तब वह वृत्र नाम मेघ को हटा देता है परन्तु इस युद्ध के अन्त में इन्द्र नाम सूर्य्यही का विजय होता है ॥ ६ ॥ (वृत्रोहत्वा०) जब २ मेघ वृष्टि

को प्राप्त होकर पृथिवी और आकाश में विस्तृत होके फैलता है तब २ उस को सूर्य्य अपने कर से पृथिवी में गिरा दिया करता है पश्चात् वह शुद्ध भूमि । खड़े हुए वनस्पति । काष्ठ । सुगंध तथा मलमूत्रादि युक्त होने से कहीं २ दुर्गंध रूप भी हो जाता है फिर उसी मेघ का जल समुद्र में जाता है तब समुद्र का जल देखने में भयंकर मालूम पड़ने लगता है इसी प्रकार बारंबार मेघ वर्षता रहता है (उपर्युपर्यति०) अर्थात् सब स्थानों से जल बढ़ २ कर आकाश में बढ़ता है वहां इकट्ठा होकर फिर २ वर्षा किया करता है उसी जल और पृथिवी के संयोग से ओषध्यादि अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं उसी मेघ को वृत्रासुर के नाम से बोलते हैं वायु और सूर्य्य का नाम इन्द्र है वायु अन्तरिक्ष में और सूर्य्य प्रकाश स्थान में स्थित है इन्हीं वृत्रासुर और इन्द्र का आकाश में युद्ध हुआ करता है कि जिस के अन्त में मेघ का पराजय और सूर्य्य का विजय निःसंदेह होता है इस सत्य बातों को अनेकार्थरूप कथा को छोड़ के लोगों के समान अल्प बुद्धि वाले लोगोंने ब्रह्मवैवर्त्त और श्रीमद्भागवतादि ग्रंथों में मिथ्या कथा लिख रक्खी हैं उनको श्रेष्ठ पुरुष कभी न मानें ॥

अथवेद तथेतिहासेषु ग्रंथेषूक्ता अनेकविधा देवासुरसंग्रामकथा अन्यथैव सन्ति ता अपि बुद्धिमद्भिर्मनुष्यैरितरैश्च नैव मन्तव्याः । कुतः । तासामत्यलङ्कारयोगात् । तद्यथा । देवासुराः संयत्ता आसन् । १ । य० कां० १३ अ० ३ मं० ८ सं० १ ॥ असुरानभिप्रक्षेम देवा असुरा असुराः स्थानेष्वस्ताः स्थानेभ्य इति यापि वासुरिति प्राणनामास्तः शरीरे भवति तेन तद्वन्तः ये द्वेषानसृजत तत्सुराणां सुरत्वमसोरसुरानसृजत तदसुराणामसुरत्वं विज्ञायते ॥ निरु० अ० ३ खं० ८ ॥ देवानामसुरत्वमेकत्वं प्रज्ञावत्त्वं वा नशत्त्वं यापि वासुरिति प्रज्ञानामास्यत्यनर्थानस्ताश्चास्यामर्थो असुरत्वमाहिलुप्तम् ॥ निरु० अ० १० खं० ३४ ॥ सोऽचेक्लाम्यंश्चचार प्रजाकामः । स आत्मन्येव प्रजापतिमधत्त स आत्मनैव देशानसृजत ते देवाटिशमभिपद्या सृज्यन्त रुद्रेशानां देशत्वं यद्विषमभिपद्यासृज्यन्त तस्मै रुद्रसृजाना यद्विवेशासत-देशदेवानां देवत्वं यदस्मै रुद्रसृजाना यदि वेशाय । अथ योऽसवादृज्यतः । तेनासुरानसृजत इदमेव पृथिवीमभिसंपद्यासृज्यन्त तस्मै वसुसृजानाय तदद्दधाव । सोवेत् । पाप्मा नं वा अस्त्रियस्मै ये सदृजानाय सम दृशाभूदिति स्तनयत्नु पाप्मना विध्यते तत एव पराभवं स्वयाद्वा दुर्नमन्ति यदेवासुरं यद्विद्यन्वाख्याने तद्वदानहतिहासे स्वतनोरुत्तान् प्रजापतिः पाप्मा विध्यते तत एव पराभवन्ति । सस्राद्देसदृविणाभ्यनूक्षत् । तत्वं

युयुत्सेकतमश्च नाहनेतेऽभिवो मघवन् क्रश्चनास्ति । मायेत्सातेयानि युद्धान्याहुनोघगृभं ननु पुरा युयुत्स इति । स यदस्मै देवान्त्ससृजानाय दिवे वाशतदहरकुरुताथ यदस्मा असुरान्त्ससृजानाय समहधासतांरात्रिमकुरुत ते अहोरात्रे । स एवेतं प्रजापतिः । श० कां० १२ अ० १ ब्रा० ६ कं० ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १२ । देवाश्च वा असुराश्च । उभये प्राजापत्याः प्रजापतेः पितुर्दायमुपेयुः । श० कां० ५ अ० ५ ब्रा० ५ क० २२ ॥ द्वयाह प्राजापत्याः । देवाश्चासुराश्च तमः क्रानीयसा एव देवाज्यायसा असुराः । यदेवेदमप्रतिरूपं जिघ्रति स एव स पाप्मा । श० कां० १४ अ० ३ ब्रा० ४ कं० १ । ४ । ऊर्गिति देवामायेत्यसुराः । श० कां० १० अ० ५ ब्रा० ६ कं० २० ॥ प्राणादेवाः । श० कां० ६ अ० २ ब्रा० ३ कं० १४ ॥ प्राणो वा असुस्तस्यैषामाया । श० कां० ६ अ० ६ ब्रा० ४ कं० ६ । (देवासुराः०) देवा असुराश्च संयत्ता सञ्चायुद्धं कर्तुं तत्पराः आसन् भवन्तीति शेषः । कोते देवासुरा इत्युच्यते । विद्वांसो हि देवाः श० कां० ३ अ० ७ ब्रा० ६ कं० १० । इतीति निश्चयेन विद्वांसो देवास्तद्विपरीता अविद्वांसोऽसुराः । ये देवास्ते विद्यावत्त्वात्प्रकाशवन्तो भवन्ति । येऽविद्वांसस्ते स्वल्पविद्यावत्त्वाज्ज्ञानरहितान्यकारिणो भवन्ति । यथामुभयेषां परस्परं युद्धमिव वर्त्तते उयमेव दैवासुरसंग्रामः । द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति । स वै सत्यमेव वदेत् । यद्वै देवाव्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मात्ते यशोयशोह भवति । य एवं विद्वान्त्सत्यं वदति मनोहवै देवा मनुष्यस्य । श० कां० ५ अ० ५ ब्रा० ५ कं० ४ । ५ । ७ । ये सत्यवादिनः सत्यमानिनः सत्यकारिणश्च ते देवाः । ये चानृतवादिनोऽनृतकारिणोऽनृतमानिनश्च ते मनुष्या असुरा एव । तयोरपि परस्परं विरोधो युद्धमिव भवत्येव । मनुष्यस्य यन्मनस्तद्देवाः प्राणा असुरा यतयोरपि विरोधो भवति । मनसा विज्ञानबलेन प्राणानां निग्रहो भवति प्राणबलेन मनसश्चेति युद्धमिव प्रवर्त्तते । प्रकाशाख्यात्सोदेवान्मनः पञ्चानीन्द्रियाणीश्वरोऽसृजत । अतस्ते प्रकाशकारकाः । अमेरन्धकाराख्यात्पृथिव्यादेरसुरान्येवक्रमेन्द्रियाणि प्राणांश्चासृजत । तयोरपि प्रकाशाप्रकाशसाधकत्वमत्वारोधेन संग्रामवदनयोर्वर्त्तमानमस्तीति विज्ञेयम् (सोचैक्षाम्यंश्चचार०) प्रजाकामः परमेश्वर आत्मेनाग्निपरमाणुमयात् कारणात् सूर्य्यादीन्प्रकाशवतो लोकान् मुख्यगुणकर्मभ्यो यानसृजत ते देवा द्योतमानादिवं प्रकाशं परमेश्वरप्रेरित-

			रुपया पैसे
श्री धन गोपालजी के प्रताप से मस्त जनवरी में आया।			
सिस्टर गोपालमंत्र। भाजेश्वरकार और शिरोधार मंत्रवर	..	..	४०)
अनुष्ठानकर्ता शिक्षार्थी अजमेर कालिज। रामगढ़ वाली	..	..	५)

विज्ञापन

एक विज्ञापन जो कलकत्ता के अंक १९ में मंत्रशास्त्र के विषय विषय में दिया गया था उसमें कुछ भाषा भूमिका के विषय कहन दिये गये थे। परंतु उसमें अशुद्धता सम्बन्धों को ध्यान होकर से लोग इस भाव्यकार के भाषण से विरुद्ध कुछ का कुछ ही समझ गये थे अर्थात् यह दिखा कि शुद्धता की भूमिका पृथक् दूसरी होगी इस लेखा के निवारण करने के अर्थ यह विज्ञापन फिर दिया जाता है कि भूमिका जाने वैसी की वैसी है और कि कुछ इस पर कहने से ग्राहकों के पास पहुँच चुकी और जाती रही हुई थी। विशेष यह कुछ अब भाषण से जानेगी इसी एक भूमिका के सम्बन्धित कोई भी लेख या पुस्तक प्रकाश किए जिसे भाषा जिसी दूसरे विचार से अलग होगी और में भाषा व समझ हो तो उस के लिये मंत्रवादा विषय थाँ की वापस दिया जाएगा है हमारी भूमिका संशोधित जाती नहीं बदली है। आशा जिसे जैसे अंक १९ के विज्ञापन में छपे हैं वैसे ही ठीक व समझ लेवा॥

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बनाये पुस्तकों की सूचना ॥

सन्ध्योपासन पंचमहायज्ञविधि मे० ।=) डाक महसूल -) बनारस डा० लाजरस साहब। आर्य्यसमाज लाहौर वा पं० स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास से मिलेंगी।

	मूल्य पुस्तक प्रति	महसूल
१ सत्यार्थप्रकाश का	॥)	1)
१ संस्कारविधि का	१॥=)	=)
१ आर्य्याभिविनय का	॥)	-)
१ आर्य्योद्देश्यरत्नमाला	-)॥ डा० म०	-)

इनमें से सत्यार्थप्रकाश का पुस्तक राजा जयकृष्णदास बहादुर सी० एस० आई के पास आहर मुराटाबाद ॥ तथा सत्या० संस्कार० आर्याभि० आर्योद्देश्य० और संध्योपासन से सब पुस्तकें स्वामी दया० जी और लाला अल्लभदास भजानन्दी आर्य्यसमाज लाहौर के पास से मिलता है ॥

वेदभाष्य लाजरस साहब बनारस वेदालय। लाला अल्लभदास भजानन्दी उक्त समाज। लाला हरिश्चन्द्र चिन्तामणि प्रधान आर्य्यसमाज बंबई के पास में और स्वामी जी से मिलता है ॥ संध्योपासन डा० लाजरस साहब के पास से भी मिलता है ॥

जो कोई संध्योपासन मंगावेंगे उनको सौ १००) रु० की पुस्तकों पर २०) रु० कमीशन छोड़ दिया जावेगा। परंतु ५०) रु० पर ५) छूटेंगे ॥

REGISTERED No. B.

॥ गद्यपद्यभारतीभूषणम् ॥

श्रीमद्भ्रमरचन्द्रसरस्वतीस्वामिभिः निर्मितम् ।

॥ संस्कृतार्थिनां कृते समर्पितम् ॥

अस्यैकैकप्रतिस्य मूल्यम् आरतवर्षीयमुद्रांकेन द्वादशाणकमात्रेण सार्धम् ।
डाकमाशुलं च) प्रत्येकं प्रतिशतं देयम् ॥

इस ग्रंथ के प्रतिसैकड़ा गत्ता सहित नमूने का मूल्य भारतवर्ष के भीतर डाकमाशुल सहित १८) सैकड़ा और वार्षिक मूल्य ४०)

अस्य ग्रन्थस्य गद्यभागेषु यस्य संस्कृतकाव्यस्य नाटकस्य वा दृश्यश्रव्यस्य वा उदाहरणमुद्धृतं तेषां सर्वेषां वार्षिकं मूल्यं प्रत्येकस्य प्रतिशतमेकं ज्ञातव्यम् ॥

मूल्य (१५)

॥ अस्य ग्रन्थस्य कार्यं लाजारसंस्कृतपाठशालायां वेदान्ताचार्यैः सुहृद्भिः ॥

संवत् १९३४ ।

॥ अस्य ग्रन्थस्याधिकारी आत्मकर्तृः यदा शर्तेषां स्वाधीनं एव सर्वदा ॥

विशेष — जो कि ऐक्ट १८५७ ईस्वी सालके अनुसार रजिस्टर होकर छपा है इसलिये इसमें कोई मनुष्य अथवा प्रेसवाले मरम्मती की शिकायत करेंगे ।

क्रॉस से पॅाइंट से लेने	क्रमांक ग्राहक	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	संख्या पार्सल	मोल्य नगद	मोल्य उधार
	४	पंडित कालूराम ...	जोधपुर की तलैटी, एनाका गॉर्डर,) मेरठ का रामायण । ...)	१	४)	
	७७	पं. गंगाधर डिलारवि	जेड जिलसे रेलवे पो० भावलपुर।	१	०।४।०)	
	८३	पंडित जगन्नाथ ...	सब पोस्टमास्टर जैसलमेर। सि) सिंदरी घरसी, सावलपुर। ...)	१	३)	
	८९	पंडित गोकलचन्द ...	हेड मास्टर मथुरासिंह स्कूल कोट,	१	४)	
	९०७	मिस्टर रंगीला मॉडल	मॉडिलाकाम जिलसेर सागर ऐजेन्सी	१	३)	
	५१८	पंडित हालियान ...	जिला अमृतसर	१		
	५२०	चौधरी लालचन्दास	सार्दलेरा बाजार रामनगर। ...	१		
	५२१	गोपाल प्रसाद एडम	रायल मर्चेण्ट पाला कलौन्ल) जिला जालोन। ...)	१	४)	
	५२२	बाबू ज्वालाप्रसादजी	बाबा टीचर नार्मलस्कूल। गवर्नमे-) न्ट पोस्ट ग्रेजुएट कलैजन।)	१	७)	
	५२३	लाला कुन्दनलाल	चीफ्ट आफिस जिला पंजाब) दिल्ली रेलवे। लाहौर। ...)	१	४)	
	५२४	लाला कौशलराम ...	कैशर आफ आर्यसमाज लाहौर।	१	४)	
	५२५	लाला लालचन्दास ...	एकाउन्टस आफिस। लाहौर। ...	१	२)	
	५२६	लाला जीवनदास ...	सैक्रेटरी आर्यसमाज। लाहौर।	१		
	५२७	लाला दीपचन्दास ...	सिविल इंजीनियर कैशर आफ) आर्यसमाज। लाहौर। ...)	१		
	५२८	ईश्वरदास	सैक्रेटरी आर्यसमाज। लाहौर।	१		
	५२९	लाला मंगूमल ...	पी० डब्लू० जैनरल आफिस लाहौर।	१		
	५३०	लाला गोकलदास ...	आगरा बैंक। लाहौर। ...	१		
	५३१	लाला विष्णुदास ...	डेपार्टमेन्ट आफ पोलिस। गुरदासपुर	१		
	५३२	लाला रामशरणदास	प्लीडर। गुरदासपुर	१		
	५३३	लाला रामसिंह ...	सुपरिंटेन्डेन्ट जुडिशल डिस्ट्रीक्ट) कोर्ट। गुरदासपुर। ...)	१		
	५३४	लाला हरिचरणदास	रीडर एण्ड्रू कामिस्टेण्ट मजि) स्ट्रेट कोर्ट। गुरदासपुर...)	१		
	५३५	डाक्टर हरिकृष्ण	जनाचारी पो० जिला गुरदासपुर। ...	१		
	५३६	आर्यसमाज	गुरदासपुर, पंजाब।	१		
	५३७	राय अमरसिंह ...	जनरल मैनिजिंग अखबार गुरु) दासपुर। पंजाब। ...)	१		
	५३८	लाला आत्मस्वरूप	असिस्टेन्ट इंजीनियर। लाहौर।	१		
	५३९	लाला हरिचरणदास	चीफ्ट आफिस कैशर कुलालः) धीवनदास सैक्रेटरी आर्या-) समाज। लाहौर। ...)	१		
	५४०	लाला भगतराम ...	कैशर ब० ह० जीवनदास सैक्रेटरी) आर्यसमाज। लाहौर। ...)	१		
	५४१	लाला भवानीदास	गवर्नमेन्ट कालिज। लाहौर। ...	१		
	५४२	ठाकुर बलदेवसिंह जी सरदार सिंघ ...	बोर्डिंग इन्स्पिक्टर आफ। जनाब।	१	४)	
	५४३	बाबू सालगराम	रेल जिलसे डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर) आफिस। शाहजहांपुर ...)	१		

मभिपद्य प्रकाशादिव्यवहारानसृजन्त । तदेव देवानां देवत्वं यत्ते दिवि प्रकाशे रमन्ते । अथेश्वरस्यान्तरङ्गशक्तेर्योगं प्राप्योषायुः पृथिव्यादिलोकरचनेश्वरेण सृष्टस्तेनैवासुरान्प्रकाशरहितानसृजत सृष्टवानभूत् । ते पृथिव्यादिभिरिष्टेभ्योऽन्यदार्थानसृज्यन्त । ते सर्वे स कार्य्याः प्रकाशरहिताः स्तथोस्तयोः प्रकाशतदितरयोरन्योन्यं विरोधो युद्धमिव वर्त्तते तस्मादिदमपि देवासुरं युद्धमिति विज्ञेयम् । तथैव पुण्यात्मा मनुष्यो देवोऽस्ति । पापात्मा ह्यसुरश्च । तयोरपि परस्परं विरुद्धस्वभावाद्युद्धमिव प्रतिदिनं भवति तस्मादेतदपि देवासुरसंग्रामोऽस्तीति विज्ञेयम् । यथैव दिनं देवैरावृतं सुरैः । तयोरपि परस्परं युद्धमिव प्रवर्त्तते । तथैव उभये पूर्वोक्ताः प्रजापतेः परमेश्वरस्य पुत्रा इव वर्त्तन्ते अत एव ते परमेश्वरस्य पदार्थानुत्पन्नाः सन्ति । तेषां मध्येऽसुराः प्राणादयो ज्येष्ठाः सन्ति । यतोः पूर्वोत्पन्नत्वात्प्राणानां तन्मयत्वात्तु । तथैव जन्मतो मनुष्याः सर्वे अविद्वांसो भवन्ति । पुनर्विद्वांसश्च । तथैव यतोः सकाशादग्नेरुत्पत्तिः प्रकृतेरिन्द्रियाणां च तस्मादसुरा ज्येष्ठा देवाश्च कनिष्ठाः । एकत्र देवाः सूर्य्यादयो ज्येष्ठाः पृथिव्यादयोऽसुराः कनिष्ठाश्च ते सर्वे प्रजापतेः सकाशादुत्पन्नत्वात्तस्यापत्यानीवसन्तीति विज्ञेयम् । एषामपि परस्परं युद्धमिव प्रवर्त्तत इति ज्ञातव्यम् । ये प्राणोपकाराः स्वार्थसाधनतत्पराभायाविनः कपटिनो मनुष्यास्ते ह्यसुराः । ये च परोपकारकाः परदुःखभञ्जनानिष्कपटिनोऽधर्मिका मनुष्यास्ते देवाश्च विज्ञेयाः एतयोरपि परस्परं विरोधात्संग्राम इव भवति । इत्यादिप्रकारकं देवासुरं युद्धमिति बोध्यम् । एवं परमोत्तमायां सिद्धान्तशिक्षणाख्यायां रूपकालंकारेणान्वितायां सत्यार्थप्रकाशाख्यायां कृतायां स्वसिद्धान्तव्यवस्थासमन्वितायां सुप्रमाणयुक्तायां सर्वतन्त्रसिद्धान्तसंग्रहेषु सर्वेषु सत्येषु सत्यार्थप्रकाशादिषु ग्रन्थेषु च या मिथ्यैव कथा वर्णिताः सन्ति विद्वद्भिर्नैताः कथाः कदाचिदपि सत्या मन्तव्या इति ॥

॥ भाषार्थ ॥

जो चौथी देवासुर संग्राम की कथा रूपकालंकार की है इस को भी किसी स्वार्थी प्रमादी लोगों ने बिगाड़ दिया है ॥ जैसे एक दैत्यों की सेना थी कि जिन का शुक्राचार्य्य पुरोहित था और वे दक्षिण देश में रहते थे तथा दूसरी देवों की सेना थी कि जिन का राजा इन्द्र । सेनापति अग्नि और पुरोहित बृहस्पति था उन देवों के विजय कराने के लिये आर्य्यावर्त्त के राजा भी जाया करते थे असुर लोग सब करके अलग विष्णु और महादेवादि से डर भाग गये थे और उन को मारने के लिये विष्णु अवतार धारण करके पृथिवी का

भार उतारा करते थे यह सब पुराणों की गप्पें अर्थ जान कर छोड़ देना और सत्य गंथों की कथा जो नीचे लिखते हैं उन का ग्रहण करना सब को उचित है तथाया (देवासुराः सं०) देव और असुर अपने २ ज्ञान में सज्जन मत दिन युद्ध किया करते हैं तथा इन्द्र और वृत्रासुर की जो कथा ऊपर लिख आये सो भी देवासुर संग्रामरूप जानो क्योंकि सूर्य्य की किरण देवसंज्ञक और मेघ के अवयव अर्थात् बादल असुर संज्ञक हैं उन का परस्पर युद्ध वर्णन पूर्व कर दिया है निघंटु आदि सत्य शास्त्रों में सूर्य्य देव और मेघ असुर करके प्रसिद्ध है इन सब वचनों का अभिप्राय यह है कि मनुष्य लोग देवासुर संग्राम का स्वरूप यथावत् जानलेवें जैसे जो लोग विद्वान् सत्यवादी सत्य-मानी और सत्यकर्म करनेवाले हैं वे तो देव और जो अविद्वान् झूंठ बोलने झूंठ मानने और मिथ्याचार करनेवाले हैं वे असुर कहाते हैं उन का परस्पर नित्य विरोध होना यही उन के युद्ध के समान है । इसी प्रकार मनुष्य का मन और ज्ञान इन्द्रिय भी देव कहाते हैं उन में राजा मन और सेना इन्द्रिय हैं तथा सब प्राणियों का नाम असुर है उन में राजा प्राण और अपानादि सेना हैं इन का भी परस्पर विरोधरूप युद्ध हुआ करता है मन के खिन्नान बढ़ने से प्राणों का जय और प्राणों के बढ़ने में मन का विजय हो जाता है. (सोर्ट्रे०) सु अर्थात् प्रकाश के परमाणुओं से मन और पांच ज्ञानेंद्रिय इन के परस्पर संयोग तथा सूर्य्य आदि की दिव्यरचना है और (तमो०) अंधकाररूप परमाणुओं से पांच कर्मेन्द्रिय शरीर प्राण और पृथिवी आदि की रचना है जो कि प्रकाश-रहित होने से असुर कहाते हैं प्रकाश और अप्रकाश के विरुद्ध गुण होने से इन की भी संग्राम संज्ञा मानी है । तथा पुण्यात्मा मनुष्य देव और पापात्मा दुष्ट-लोग असुर कहाते हैं उन का भी परस्पर विरोधरूप युद्ध नित्य होता रहता है तथा दिन का नाम देव और रात्रि का नाम असुर है इन का भी परस्पर विरोधरूप युद्ध हो रहा है तथा शुक्लपक्ष का नाम देव और कृष्णपक्ष का नाम असुर है तथा उत्तरायण की देवसंज्ञा और दक्षिणायन की असुरसंज्ञा है इन सभों का भी परस्पर विरोधरूप युद्ध हो रहा है इसी प्रकार अन्यत्र भी जहां २ ऐसे लक्षण घट सकें वहां २ देवासुर संग्राम का रूपकालंकार जान लेना ये सब देव और असुर प्राजापत्य अर्थात् ईश्वर के पुत्र के समान कहे जाते हैं और संसार के सब पदार्थ इन्हीं के अधिकार में रहते हैं इन में से जो २ असुर अर्थात् प्राण आदि हैं वे श्रेष्ठ कहाते हैं क्योंकि ये प्रथम उत्पन्न हुए हैं तथा बाल्यावस्था में सब मनुष्य भी अविद्वान् होते हैं तथा सूर्य्य ज्ञानेंद्रिय और विद्वान् आदि पश्चात् प्रकाश होने से कनिष्ठ बोले जाते हैं उनमें से जो २ मनुष्य स्वार्थी और अपने प्राण को पुष्ट करने वाले तथा कपट छल आदि दोषों से युक्त हैं वे असुर और जो लोग परोपकारी पर दुःख भंजन तथा धर्मात्मा हैं वे देव कहाते हैं इस सत्य विद्या के प्रकाश करने

वाली कथा को प्रीतिपूर्वक श्रवण करके सर्वत्र प्रचार करना और मिथ्या कथाओं का मन कर्म और वचन से त्याग कर देना सब को उचित है ॥

यत्रैव काश्यपमत्रिर्वसिष्ठकश्यपाविति सप्तस्वेतेषु ऋषिषु वेदादिसत्यशास्त्रेषु विरुद्धा उक्ताः सन्ति । तद्यथा । मरीचिपुत्रः काश्यपऋषिरदितिमपि पत्नीं दक्षप्रजापतिना विवाहविधानेन दत्ताः । तस्यामपि दितेर्दैत्या अदितेरादित्याः दनोर्दानवाः । एवमेव कद्रूः सर्पाः । विनतायाः पक्षिणः । तथा इत्यादि सकलाद्वानरच्छायाबलाहयं उत्पन्नं इत्यादयः अन्धकारमयाः प्रमाणयुक्तिविद्याविरुद्धा असंभवयुक्ताः कथा उक्तास्ताः सर्वथा मिथ्या एव सन्तीति विशेषम् ॥ तद्यथा ॥

स यत्कूर्मो नाम । प्रजापतिः प्रजा असृजत यदसृजताकरोत्तद्यदकरोत्तस्मात्कूर्मः कश्यपो वै कूर्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्य इति ॥ श० कां० ७ अ० ५ ब्रा० १ कं० ५ ॥ भाष्यम् ॥

(स यत्कूर्मः) परमेश्वरेणेदं सकलं जगत् क्रियते तस्मात्तस्य कूर्मइति संज्ञा । कश्यपो वै कूर्म इत्यनेन परमेश्वरस्यैव कश्यपइति नामास्ति । तेनैवेयं सर्वाः प्रजा इत्यादितास्तस्मात्तस्यैव इमाः प्रजाः काश्यप्य इत्युच्यन्ते । कश्यपः कस्मात्पश्यको भवतीति निरुक्तया पश्यतीति पश्यः सर्वज्ञतया सकलं जगद्विजानाति स पश्यः पश्य एव निर्भ्रमतयातिसूक्ष्ममपि वस्तु यथार्थं जानात्येवातः पश्यकइति । आद्यक्षरविपर्ययमाद्विवेः सिद्धः कृतेस्तर्कुरित्यादिवत्कश्यप इति ह्यधराट् इत्येतस्योपरि महाभाष्यप्रमाणेन पदं सिध्यति । अतः सुष्ठु वेद्यायते काश्यप्यः प्रजा इति ॥

॥ भाषार्थ ॥

जो पांचवीं काश्यप और गधा पुच्छतीर्थादि कथा लोगों ने विरुद्ध के प्रसिद्ध की हैं जैसे ऐसा कि मरीचि के पुत्र एक कश्यप ऋषि हुए थे उन को दक्षप्रजापति ने विवाहविधान से तेरह कन्या दीं कि जिन से सब संसार की उत्पत्ति हुई अर्थात् दिति से दैत्य, अदिति से आदित्य, दनु से दानव, कद्रू से सर्प और विनता से पक्षी तथा वानरों से बानर रूप घास आदि पदार्थ और उत्पन्न हुए इसी प्रकार चन्द्रमा को सत्ताईस कन्या दीं इत्यादि प्रमाण और युक्ति से विरुद्ध अनेक असंभव कथा लिखि रक्खी हैं उन को मानना किसी मनुष्य को उचित नहीं देखिये ऐसी कथा अन्य शास्त्रों में किस प्रकार की उत्पन्न कथा लिखी हैं . स यत्कूर्मो०) प्रजा को उत्पन्न करने से कूर्म तथा उस

को अपने ज्ञान से देखने के कारण परमेश्वर को कश्यप भी कहते हैं (कश्यप) यह शब्द (पश्यकः) इस शब्द के आद्यंतालर विपर्यय से बनता है । इस प्रकार की उत्तम कथा को समझ के उन मिथ्या कथाओं को सब लोग छोड़ देवें कि जिस से सब का कल्याण हो सब ऐसी गयातीर्थों की कथाओं को ॥

प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्बलं सत्यादोजीय इत्येवं वेद। गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता: ॥ साहैषा गयांस्तत्रे । प्राणा वै गयास्तत्प्राणां स्तत्रेतद्गयांस्तत्रेतस्माद्गायत्रीनाम । श० कां० १४ अ० ८ ब्रा० १ कं० ६ । ७ ॥ तीर्थमेव प्रायणीयो प्रतिरावस्तीर्थे नहि प्रस्खलन्ति ॥ तीर्थमेवोदयनीयो प्रतिरावस्तीर्थेन स्खलन्ति । श० कां० १२ अ० २ ब्रा० ५ कं० १ । ५ ॥ गय इत्यपत्यनाम सुपठितम् । निघं० अ० २ खं० ४ । अहिंसन्सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्य इति छान्दोग्योपनि० ॥ समानतीर्थेवासी । इत्यष्टाध्याय्याम् । अ० ४ पा० । ४ सू० १०८ । स तीर्थो ब्रह्मचारीत्युदाहरणम् । अथ: स्नातका भवन्ति । विद्यास्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातकश्चेति ॥ यो विद्यां समाप्य व्रतमसमाप्य समावर्तते स व्रतस्नातकस्तस्यादि पारस्करगृह्यसूत्रे । नमस्तीर्थ्याय च ॥ ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्तानिषङ्गिण: । इति शुक्लयजुर्वेदसंहितायाम् ॥ अ० १६ । अयमेव गयायां श्राद्धं कर्तव्यमित्येवोच्यते । तदाह । प्राण एव बलमिति विज्ञायते बलमोजीय: । सत्येव सत्यं प्राणेध्यात्मं प्रतिष्ठितं तत्र च परमेश्वर: प्रतिष्ठितस्तद्वाचकत्वात् । गायत्र्यपि ब्रह्मविद्यायामध्यात्मं प्रतिष्ठितेति गायत्री गयामाह । प्राणानां गयेति संज्ञा । प्राणा वै गया इत्युक्तत्वात् । तत्र गयायां श्राद्धं कर्तव्यम् । अर्थात् गयाख्येषु प्राणेषु श्रद्धया समाधिविधानेन परमेश्वरप्राप्तयर्थं श्रद्धयानाजीवा अनुतिष्ठेयुरित्येकं गयाश्राद्धविधानम् । गयान् प्राणान् त्रायते सा गायत्री इत्यभिधीयते । अयमेव गृहस्थापत्यस्य प्रज्ञायाश्च गयेति नामास्ति। अत्रापि सर्वैर्मनुष्यै: श्रद्धातव्यम् । गृहकृत्येषु श्रद्धास्वयं विधेया । मातु: पितुराचार्य्यस्यातिथेश्चान्येषां मान्यानां च श्रद्धया सेवाकरणं गयाश्राद्धमित्युच्यते । तथैवास्यापत्येषु प्रजायां चोत्तमशिक्षाकरणे ह्युपकारे च श्रद्धास्वयं सदै: कार्य्येति । अत्र श्रद्धाकरणेन विद्याप्राप्या दीक्षायां विष्णुपदं लभ्यत इति निश्चीयते । अत्रैव भ्रान्त्या विष्णुगयेति च पदद्वयेनार्थविज्ञानाभावात् । मागधदेशैकदेशे पाषाणस्योपरि शिल्पिद्वारा मनुष्यपादचिन्हं कारयित्वा तत्रैव केचित्स्वार्थसाधनतत्परैरदरंभरैर्विष्णुपदमिति नाम रचितम् । तस्य स्थलस्य गयेति च तदुच्यतेमेव ।

मुनः । विष्णुपदं मोक्षस्य नामास्ति प्राणगृह्यज्ञानां चातोऽत्रयं तेषां भ्रान्तिर्जातेति बोध्यम् । अत्र प्रमाणम् ॥

पूर्वं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥ १ ॥ यजु० अ० ५ मं० १५ ॥ यदिदं किंच तद्विक्रमते विष्णुस्त्रेधा निधत्ते पदम् । त्रेधा भावाय पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीत्यौर्णवाभः । समूढमस्य पांसुरेऽप्यवेल्लन्तरिक्षे पदं न दृश्यते ऽपि शेषमार्षे स्यात् समूढमस्य पांसुल इव पदं न दृश्यतइति पांसवः पादैः सूयंत इति वा पद्याः शेरत इति वा पंसनीया भवन्तीति सा । निरु० अ० १२ खं० १८ ॥

यस्यार्थं यथावद्विचिन्त्य भ्रमेणेयं कथा प्रचारिता । तद्यथा । विष्णुर्ऋग्यजुः परमेश्वरः सर्वजगत्कर्त्ता तस्य पूर्वेसि नाम । अवाङ् निरुक्तकारः ।

पूर्वेत्यथ यद्विचिनोति भवति तद्विष्णुर्भवति विष्णुर्विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा तथैवा भवति । इदं विष्णुरित्यृक् । निरु० अ० १२ खं० १० ॥ ॥ भाष्यम् ॥

येन चराचरं जगत् व्याप्तं व्याप्नोति वा स विष्णुर्नैराकारत्वात्सर्वगतत्वेश्वरोस्ति । यत्तदर्थमाचिकेयमृक् । इदं सकलं जगत्त्रयं विक्रमारब्धं विचक्रमे विक्रान्तवान् । क्रमुपादविक्षेपे । पादैः प्रकृतिपरमाण्वादिभिः स्वसामर्थ्यांशैर्यद्विदं पदं प्राप्यं सर्वं वस्तुजातं त्रिषु स्थानेषु (निधत्ते) निदधे स्थापितवान् । अर्थात् यावद् गुणत्रयादियुक्तं प्रकाशरहितं तत्सर्वं जगत् पृथिव्याम् । यल्लघुत्वादियुक्तं वायुपरमाण्वादिकं तत्सर्वमन्तरिक्षे । यच्च प्रकाशमयं सूर्यचक्षुरिन्द्रियजीवादिकं च तत्सर्वं दिवि द्योतनात्मके प्रकाशमये ऽग्नौ वेति विज्ञेयम् । सर्वं विविधं जगदीश्वरेण रचितमेषां मध्ये यत्समूढं मोहेन सह वर्तमानं ज्ञानवर्जितं जडं तत्पांसुरे ऽन्तरिक्षे परमाणुमयं रचितवान् । यच्च

लोकाः अन्तरिक्षस्थाः सन्तीति बोध्यम् । तदिदमस्य परमेश्वरस्य धन्यवादार्हं स्तोतव्यं कर्मास्तीति बोध्यम् । अयमेवार्थः (यदिदं किंच०) इत्यनेन यास्काचार्येण वर्णितः । यदिदं किञ्चिज्जगद्दृश्यते तत्सर्वं विष्णुर्व्याप्यकर्त्रीश्वरो विश्रमते रचितवान् । (त्रिधा निधत्ते पदं) त्रेधा भावाय त्रिप्रकारकस्य जगतो भवनाय तदुक्तं पूर्वमेव तस्मिन् विष्णुपदे मोक्षाख्ये समारोहणे समारोढुमर्हं गयशिरसीति प्राणानां प्रजानां च यदुत्तमाङ्गं प्रकृत्यात्मकं शिरो यथा भवति तथैवेश्वरस्यापि सामर्थ्यं गयशिरः प्रजाप्राणयोरुपरिभागे वर्तते । यदीश्वरस्यानन्तं सामर्थ्यं वर्तते । तस्मिन् गयशिरसि विष्णुपदे हीश्वरसामर्थ्यमस्तीति । कुतः । व्याप्यस्य सर्वस्य जगतो व्यापके परमेश्वरे वर्तमानत्वात् । पांसुरेव्यायने ऽन्तरिक्षे पदं पदनीयं परमाणाख्यं यज्जगच्चक्षुषा न दृश्यते । ये च पांसवः परमाणुसंघाताः पार्थिवैस्तद्दृश्यावयवैः सूर्यप्रकाशाद्यैः सूर्यते उत्पद्यन्ते । अत एवमुत्पन्नाः सर्वे पदार्था दृश्या भूत्वेश्वरे शेरतइति विज्ञायते । इममर्थमविज्ञाय मिथ्याकथाव्यवहारः पण्डितंमन्यैः प्रचारितइति बोद्धव्यम् । तथैव वेदाद्युक्तरीत्या ऽऽर्य्यैश्चानुष्ठितानि तीर्थान्यन्यान्येव सन्ति । यानि सर्वदुःखेभ्यः पृथक्कृत्वा जीवेभ्यः सर्वसुखानि प्रापयन्ति तानि तीर्थानि मतानि । यानि च भ्रान्तैरविद्वत्पुस्तकेषु जलस्थलमयानि तीर्थसंज्ञान्युक्तानि तानि वेदाद्योक्तिप्रमाणानि नैव सन्तीति मन्तव्यम् । तद्यथा । (तीर्थमेव प्राय०) यत्प्रायणीययज्ञस्याङ्गमभिरावाख्यं व्रतं समाप्य स्नानं क्रियते तदेव तीर्थमिति वेदम् । येन तीर्थेन मनुष्याः प्लवाय शुद्धा भवन्ति । तथैव यदुदयनीयाख्ये यज्ञसंबन्धिसर्वोपकारकं कर्म समाप्य स्नान्ति । तदेव दुःखसमुद्तारकत्वात्तीर्थमिति मन्तव्यम् । यथैव (अहिंसया०) मनुष्याः सर्वाणि भूतान्यहिंसन् सर्वभूतैर्वैरमकुर्वाणाः सन् वर्तन्त । परं तु तीर्थेभ्यो वेदादिसत्यशास्त्रविहितेभ्यो ऽन्यत्राहिंसाधर्मो मन्तव्यः । तद्यथा । यत्र यत्रापराधिनामुपरि हिंसनं विहितं तत्तु कर्त्तव्यमेव । ये पाखण्डिनो वेदसत्यधर्मानुष्ठानयज्ञयज्ञेशादयश्च ते तु यथापराधं हिंसनीया एव । अत्र वेदादिसत्यशास्त्राणां तीर्थसंज्ञास्ति । तेषामध्ययनाध्यापनेन तदुक्तधर्मैकर्मविज्ञानानुष्ठानेन च दुःखसमुद्तारस्त्येव । तेषु सम्यक् स्नात्वा मनुष्याः शुद्धा भवन्त्यतः ॥ तथैव समानतीर्थवासीत्यनेन समानो द्वयोर्विद्यार्थिनोरेक आचार्यः समानमेकशास्त्राध्ययनं चाचार्यशास्त्रयोस्तीर्थसंज्ञास्ति । मातापित्रतिथीनां सम्यक् सेवनेन सुशिक्षया विद्याप्राप्त्या

दुःखसमुद्रान्मनुष्यास्तरन्त्येभिस्तानि तीर्थानि दुःखतारकत्वादेव मन्तव्यानि । यतोऽपि स्नात्वा मनुष्यैः शुद्धिः संपादनीयेति । (यत्रः स्नाः) यत्र यत्र तीर्थेषु कृतस्नानाः शुद्धा भवन्ति । तदाह । यः सुनियमेन शुचौ विद्यां पठति स ब्रह्मचर्य्याश्रममसमाप्यापि विद्यातीर्थे स्नाति स शुद्धो भवति । यस्तु खलु द्वितीयः । यत्पूर्वोक्तं ब्रह्मचर्य्यं सुनियमाचरणेन समाप्य विद्यामसमाप्य समावर्त्तते स स्नातको भवति । यश्च सुनियमेन ब्रह्मचर्य्याश्रमं समाप्य वेदशास्त्रादिविद्यां च समापयति सोऽध्यस्मिन्सत्यतीर्थे सम्यक् स्नात्वा यथावच्छुद्धात्मा शुद्धान्तःकरणः सत्यधर्माचारी परमविद्वान् सर्वोपकारको भवतीति विज्ञातव्यम् । (नमस्तीर्थाय च) तेषु प्राणवेदविज्ञानतीर्थेषु पूर्वोक्तेषु भवः स तीर्थस्तस्मै तीर्थाय परमेश्वराय नमोऽस्तु । ये विद्वांसस्तीर्थानि वेदाध्ययनसत्यभाषणादीनि पूर्वोक्तानि प्रचरन्ति व्यवहरन्ति । ये च पूर्वोक्तब्रह्मचर्य्यसेविनो वृद्धा महाबलाः (सूक्ताश्वस्ताः) विद्या विज्ञाने श्वस्तो येषांते (निषङ्गिणः) निषंगः संशयच्छेदक उपदेशाख्यः खड्गे येषांते सन्त्योपदेशाः । तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामीति ब्राह्मणश्च्यत् । उपनिषत्सु भवं प्रतिपाद्यं विज्ञापनीयं परमेश्वरमाहुः । अस्य यज्ञोऽस्तीर्थ इति । सर्वेषां तारकाणां तीर्थानामात्मकत्वात् परमतीर्थाख्यो धर्मात्मनां स्वयंस्नानां सदातारकत्वात् परमेश्वर एवास्ति यत एतानि तीर्थानि व्याख्यानानि (प्रश्नः) येस्तरन्ति नरास्तानि जलस्थलादीनि तीर्थानि कुतो न भवन्ति । अथोच्यते । नैव जलं स्थलं च तारकं कदाचिद्भवितुमर्हति तच्च सामर्थ्याभावात् करणकारकव्युत्पत्त्यभावाच्च ॥ जलस्थलादीनि नौकादिभिर्यानैः पद्भ्यां बाहुभ्यां च जनास्तरन्ति । तानि च कर्मकारकान्वितानि भवन्ति करणकारकान्वितानि तु नौकादीनि । यदि पद्भ्यां गमनं बाहुभ्यां जले न कुर्य्याद्व च नौकादिषु स्थितेषु तच्छक्यं तच्च मनुष्यो मज्जेन्महद्दुःखं च प्राप्नुयात् । तस्माद्वेदानुयायिनामार्य्याणां मते काशीप्रयागपुष्करगंगायमुनादिनदीनां सागराणां च नैव तीर्थसंज्ञा सिध्यति । किंतु वेदविज्ञानरहितैस्तदरम्भैः संप्रदायस्थैर्लौकिकार्थानिर्वेदमार्गविरोधिभिरल्पज्ञैर्लौकिकार्थं स्वकीयरक्षितयर्थेषु तीर्थसंज्ञया प्रसिद्धीकृतानि सन्तीति । ननु । इदमेव गङ्गे यमुने सरस्वतीति गंगादिनदीनां वेदेषु प्रतिपादनं कृतमस्ति त्वया कथं न मन्यते । अथोच्यते । मन्यते तु मया सार्वा नदीसंज्ञेति ता गंगादयोमद्याः सन्ति । ताभ्यो यथायोग्यं जलशुद्धादिगुणैर्यावानुपकारो भवति तावत्तासां मान्यं करोमि । नच

पापनाशकत्वं दुःखनिवारकत्वं च । कुतः । जलस्थलादीनां सत्सामर्थ्याभावात् । इदं सामर्थ्यं तु पूर्वोक्तेष्वेव तीर्थेषु गम्यते नान्यत्रेति । अन्यच्च । इडा पिंगला सुषुम्णाः कूर्म्म नाड्यादीनां गंगादिसंज्ञास्तीति । तासां योगसमाधौ परमेश्वरस्य ग्रहणात् । तस्य ध्यानं दुःखनाशकं मुक्तिप्रदं च भवत्येव । तासामिडादीनां धारणासिध्यर्थं चित्तस्य स्थिरीकरणार्थं स्वीकरणमस्तीति तच्च ग्रहणात् । एतन्मंत्रप्रकरणे परमेश्वरस्यानुवर्त्तनात् । एवमेव । (सितासिते यत्र संगथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति०) एतेन परिशिष्टवचनेन केचिद्गंगायमुनयोर्यत्रसंगं कुर्वन्ति । संगथे इतिपदेन गंगायमुनयोः संयोगस्य प्रयागतीर्थमिति संज्ञां कुर्वन्ति । तत्र संगच्छते । कुतः । नैव तत्राप्लुत्य स्नानं कृत्वा दिवं द्योतनात्मकं परमेश्वरं मुख्यलोकं वा ते यतन्ति । गच्छन्ति किंतु पुनः स्वकीयं स्वकीयं गृहमागच्छन्त्येव । अत्रापि सितशब्दे नेडायाः । असितशब्देन पिंगलायाश्च ग्रहणं यत्र तु खल्वेतयोर्नाड्योः सुषुम्णायां समागमो मेलनं भवति तत्र कृतस्नानाः परमयोगिनो दिवं परमेश्वरं प्रकाशमयं मोक्षाख्यं सत्यविज्ञानं चोत्पतन्ति सम्यगाप्नुवन्ति प्राप्नुवन्ति । अतोऽनयोरेवात्र ग्रहणं नत्र तयोः ॥ अत्र प्रमाणम् । सितासितमिति वर्णानाम तत्प्रतिषेधोसितम् । निरु० अ० १ खं० २ । सितं शुक्लवर्णमसितं तस्य निषेधः । तयोः प्रकाशान्धकारयोः मुख्यं दिवुद्योतव्यादिपदार्थयोर्योगेश्वरसामर्थ्यं समागमोस्ति तत्र कृतस्नानास्तद्विज्ञानवन्तो दिवं पूर्वोक्तं गच्छन्त्येव ॥

॥ भावार्थ ॥

कहीं यह कथा है कि जो गया को तीर्थ बना रक्खा है जोगोंने मगध देश में एक स्थान है वहां फल्गु नदी के तीर पाषाण पर मनुष्य के पग का चिन्ह बना के उस का विष्णुपद नाम रखदिया है और यह बात प्रसिद्ध करदी है कि यहां श्राद्ध करने से पितरों की मुक्ति हो जाती है जो लोग आंख के अंधे गांठ के पूरे उन के जान में आ फसते हैं उन को गयावाले उलटे उस्तरे से खूब हजामत बनाते हैं इत्यादि प्रमाद से उन के धन का नाश कराते हैं वह परधन हरण पेटपालक टगलीला केवल झूंठही की गठरी है जैसा कि सत्य शास्त्रों में लिखी हुई आगे की कथा देखने से सब को प्रगट हो जावेगा (प्राणश्च बलं०) इस वचनों का अभिप्राय यह है कि अत्यंत श्रद्धा से गया संज्ञक प्राण आदि में परमेश्वर की उपासना करने से जीव की मुक्ति हो जाती है प्राण में बल और सत्य प्रतिष्ठित है क्योंकि परमेश्वर प्राण का भी प्राण है और उस का प्रतिपादन करने वाला गायत्री मंत्र है कि जिस को गया कहते हैं किसलिये कि उस का अर्थ ज्ञान के श्रद्धा सहित परमेश्वर की

भक्ति करने से जीव सब दुःखों से छूट कर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। तथा प्राण का भी नाम गया है उस को प्रायायाम की रीति से रोक के परमेश्वर की भक्ति के प्रताप से पितर अर्थात् ज्ञानी लोग सब दुःखों से रहित होकर मुक्त हो जाते हैं क्योंकि परमेश्वर प्राणों की रक्षा करने वाला है इसलिये ईश्वर का नाम गायत्री और गायत्री का नाम गया है तथा तिघंटु में घर मकान और प्रजा इन सबों का नाम भी गया है मनुष्यों के हित में अत्यंत यत्न करना चाहिये इसी प्रकार माता पिता आचार्य और अतिथि की सेवा तथा सब प्रकार और उन्नति के कामों की सिद्धि करने में जो अत्यंत यत्न करना है इस का नाम गयाशाद्ध है तथा अपने सेवकों को सुशिक्षा से विद्वान् देना और उन के पालन में अत्यंत प्रीति करनी इस का नाम भी गयाशाद्ध है तथा धर्म से प्रजा का पालन सुख की उन्नति विद्या का प्रचार श्रेष्ठों की रक्षा दुष्टों को दण्ड देना और सब की उन्नति आदि धर्म के काम करना ये सब मिलकर अथवा पृथक २ भी गयाशाद्ध कहाते हैं इस अत्यंत श्रेष्ठ कथा को छोड़ के जिन मूर्खों ने जो मिथ्या कथा बना रक्खी है उस को कभी न मानना और जो वहां पाषाण से ऊपर मनुष्य के पग का चिन्ह बना कर उस का नाम विष्णुपद रक्खा है सो सब मूलमें ही मिथ्या है क्योंकि व्यापक परमेश्वर जो सब जगत् का करने वाला है उसी का नाम विष्णु है देखो यास्क निरुक्तकार ने कहा है कि (पृषोदरा०) विष्लृ धातु का अर्थ व्यापक होने अर्थात् सब चराचर जगत् में प्रविष्ट रहना वा जगत् को अपने में स्थापन करलेने का है इसलिये निराकार ईश्वर का नाम विष्णु है (क्रमुयादविलेवे) यह धातु दूसरी वस्तु को पगों से दबाना वा स्थापन करना इस अर्थ को बतलाता है इस का अभिप्राय यह है कि भगवान् अपने पाद अर्थात् प्रकृति परमाणु आदि सामर्थ्य के अंशों से सब जगत् को तीन स्थानों में स्थापन करके धारण कर रहा है अर्थात् भार सहित और प्रकाश रहित जगत् को पृथिवी में, परमाणु आदि सूक्ष्म द्रव्यों को अन्तरिक्ष में तथा प्रकाशमान सूर्य और चक्षुरिंद्रिय आदि को प्रकाश में इस रीति से तीन प्रकार के जगत् को ईश्वर ने रचा है फिर इन्हीं तीन भेदों में एक मृढ़ अर्थात् ज्ञानरहित जो जड़ जगत् है वह अन्तरिक्ष अर्थात् पोल की बीच में स्थित है सो यह केवल परमेश्वर ही का महिमा है कि जिसने ऐसे २ अद्भुत पदार्थ रच के सब को धारण कर रक्खा है (यदिदं किंच०) इस विष्णुपद के विषय में याज्ञवल्क्य ने भी इस प्रकार व्याख्यान किया है कि यह सब जगत् सर्व व्यापक परमेश्वर ने बनाकर (विश्वा०) इस में तीन प्रकार की रचना दिखलाई है जिसमें मोक्ष पद को प्राप्त होते हैं वह समाधिस्थ करता है सो विष्णुपद गयशिर अर्थात् प्राणों के परे है उस को मनुष्य तीन प्राण में स्थिर होके प्राण से प्रिय अन्तर्यामी परमेश्वर को प्राप्त होते हैं अन्य मार्ग से नहीं क्योंकि प्राण का भी प्राण और पीयूषों का आत्मा जो परमेश्वर है उससे दूर जीव वा जीव से दूर वह

कभी नहीं हो सकता उसमें से सूक्ष्म जो जगत् का भाग है सो आंख से दीखने योग्य नहीं हो सकता किन्तु जब कोई पदार्थ परमाणुओं के संयोग से स्थूल हो जाता है तभी वह नेत्रों से देखने में आता है यह दोनों प्रकार का जगत् जिस के बीच में ठहरा रहा है और जो उस में परिपूर्ण हो रहा है ऐसे परमात्मा को विष्णुपद कहते हैं इस सत्य अर्थ को न जान के अविद्वान् लोगों ने पाषाण पर जो मनुष्य के पग का चिन्ह बना कर उस का नाम विष्णुपद रख छोड़ा है सो सब मिथ्या जानें हैं तथा तीर्थ शब्द का अर्थ अन्यथा जानके अज्ञानियों ने जगत् के लूटने और अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये मिथ्याचार कर रक्खा है सो ठीक नहीं क्योंकि जो २ सत्य तीर्थ हैं वे सब नीचे लिखे जाते हैं देखो तीर्थ नाम उन का है कि जिन से नीच दुःखरूप समुद्र को तरके सुख को प्राप्त हो अर्थात् जो २ वेदादि शास्त्र प्रतिपादित तीर्थ हैं तथा जिन का आर्य्यों ने अनुष्ठान किया है जो कि औरों के दुःखों से छुड़ाके उन को सुखों के साधन हैं उनही को तीर्थ कहते हैं वेदोक्त तीर्थ ये हैं (तीर्थमेव प्राय०) अग्निहोत्र से लेके अश्वमेध पर्य्यन्त किसी यज्ञ की समाप्ति करके जो स्नान किया जाता है उस को तीर्थ कहते हैं क्योंकि उस कर्म से वायु और वृष्टि जल की शुद्धिद्वारा सब मनुष्यों को सुख प्राप्त होता है इस कारण उन कर्मों के करने वाले मनुष्यों को भी सुख और शुद्धि प्राप्त होती है तथा (अहिंसयन्त०) सब मनुष्यों को इस तीर्थ का सेवन करना उचित है कि अपने मनमें वैरभाव को छोड़ के सब के सुख करने में प्रवृत्त होना और किसी संसारी व्यवहार के वर्त्तावों में दुःख न देना परंतु (अन्यत्र तीर्थेभ्यः०) जो २ व्यवहार वेदादि शास्त्रों में निषिद्ध माने हैं उन के करने में दण्ड का होना अवश्य है अर्थात् जो २ मनुष्य अपराधी पापबुद्धी अर्थात् वेदशास्त्रोक्त धर्मानुष्ठान के शत्रु अपने सुख में प्रवृत्त और परपीड़ा में प्रवर्त्तमान हैं वे सदैव दण्ड पाने के योग्य हैं इस से वेदादि सत्य शास्त्रों का नाम तीर्थ है कि जिनके पढ़ने पढ़ाने और उन में कहे हुए मार्गों में चलने से मनुष्य लोग दुःख सागर को तरके सुखों को प्राप्त होते हैं (समानतीर्थे०) इस सूत्र का अभिप्राय यह है कि वेदादि शास्त्रों को पढ़ाने वाला जो आचार्य्य है उस का वेदादि शास्त्रों तथा माता पिता और अतिथि का भी नाम तीर्थ है क्योंकि उन की सेवा करने से जीवात्मा शुद्ध हो कर दुःखों से पार हो जाता है इस से इन का भी तीर्थ नाम है (त्रयः स्नातका०) इन तीर्थों में स्नान करने के योग्य तीन पुरुष होते हैं एक सो वह कि जो उत्तम नियमों से वेदविद्या को पढ़ के ब्रह्मचर्य्य को विना समाप्त करे भी विद्या का पढ़ना पूरा कर के ज्ञान रूपी तीर्थ में स्नान करके शुद्ध हो जाता है दूसरा जो कि पच्चीस तीस छत्तीस चवालीस अथवा अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त नियम के साथ पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य्य को समाप्त करके और विद्या को विना समाप्त किये भी विवाह

करता है वह ब्रतस्नातक अर्थात् उस ब्रह्मचर्य्यतीर्थ में स्नान करके शुद्ध हो जाता है । यह तीसरा यज्ञ है कि नियम से ब्रह्मचर्य्याश्रम तथा वेदादि शास्त्रविद्या को समाप्त करके समावर्त्तन अर्थात् उसीके जलरूपी उत्तम तीर्थ में भले प्रकार स्नान करके यथायोग्य पवित्र देह शुद्ध अन्तःकरण श्रेष्ठ विद्वान्वत और परोपकार को प्राप्त होता है (नमस्तीर्थ्यायः०) उक्त तीर्थों से प्राप्त होने वाला परमेश्वर भी तीर्थ ही है उस तीर्थ को हमारा नमस्कार है जो विद्वान् लोग वेद का पढ़ना पढ़ाना और सत्य कथनरूप तीर्थों का प्रचार करते हैं तथा जो सैंतालीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम सेवन करते हैं वे बड़े बलवाले हो कर शूर कहाते हैं (शूरेभ्यस्तः०) जिन के सकाश अर्थात् विज्ञानरूप हस्त तथा निर्मल संशय का काटनेवाली उपदेशरूप तलवार है वे सत्य के उपदेश करने वाले शूर कहाते हैं तथा उपनिषदों से परिपाटन किया हुआ उपदेश करने योग्य जो परमेश्वर है उस को परम तीर्थ कहते हैं क्योंकि उसी की कृपा और प्राप्ति से जीव सब दुःखों से तर जाते हैं (प्रश्न) जिन से मनुष्य लोग तर जाते हैं अर्थात् जल और स्थानविशेष वे क्या तीर्थ नहीं हो सकते (उत्तर) नहीं क्योंकि उन में तारने का सामर्थ्य ही नहीं और तीर्थ शब्द करण कारक में युक्त किया जाता है जो जल वा स्थानविशेष अधिकरण वा कर्मकारक होते हैं उन में नाव आदि अथवा हाथ और पग से तरते हैं इससे जल वा स्थल तारने वाले कभी नहीं हो सकते किस लिये कि जो जल में हाथ वा पग न चलावें वा नौका आदि पर न बैठें तो कभी नहीं तर सकते इस युक्ति से भी काशी प्रयाग गंगा यमुना समुद्र आदि तीर्थ सिद्ध नहीं हो सकते इस कारण से सत्य शास्त्रोक्त जो तीर्थ हैं उन्हीं को मानना चाहिये जल और स्थानविशेष को नहीं (प्रश्न) (इमं मे गंगे०) यह मंत्र गंगा आदि नदियों को तीर्थविधान करने वाला है फिर इन को तीर्थ क्यों नहीं मानते (उत्तर) हम लोग उन को नहीं मानते हैं और उन के जल में जो २ गुण हैं उन को भी मानते हैं परंतु पाप छुड़ाना और दुःखों से तारना यह उन का सामर्थ्य नहीं किंतु यह सामर्थ्य तो केवल पूर्वोक्त तीर्थों में ही है तथा इस मंत्र में गंगा आदि नाम इड़ा पिंगला सुषुम्णा कर्म्म और आठ प्राण की नाड़ियों के नाम हैं उन में योगाभ्यास से परमेश्वर की उपासना करने से मनुष्य लोग सब दुःखों से तर जाते हैं क्योंकि उपासना नाड़ियों ही के द्वारा धारण करनी होती है इस हेतु से इस मंत्र में उन की गणना की है इसलिये उक्त नामों से नाड़ियों का ही ग्रहण करना योग्य है (सितासिते०) सित इड़ा और असित पिंगला ये दोनों जहां मिली हैं उस को सुषुम्णा कहते हैं उस में योगाभ्यास से स्नान करके जीव शुद्ध हो जाते हैं फिर शुद्ध रूप परमेश्वर को प्राप्त हो के सदा आनन्द में रहते हैं इस में निरुक्तकार का भी प्रमाण है कि सित और असित शब्द शुक्ल और कृष्ण अर्थ के वाची हैं इस अभिप्राय से किसी

मिथ्या अर्थ करके लोगों ने नदी आदियों का तीर्थ नाम से ग्रहण कर लिया है ॥

तथैव यत्तेषुपुराणादिग्रंथेषु मूर्त्तिपूजानामस्मरणादिविधानं कृतमस्ति तदपि मिथ्येवास्तीति वेद्यम् । कुतः । वेदादिषु सत्येषु ग्रंथेषु तस्य विधानाभावात् । तत्र तु प्रत्युतनिषेधो वरीवर्त्तते । तद्यथा ।

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः । हिरण्यगर्भ इत्येषमामाहिꣳसीदित्येषा यस्मान्न जात इत्येषः ॥ १ यजुः० अ० ३२ मं० ३ ।

यस्य पूर्णस्य पुरुषस्याजस्य निराकारस्य परमेश्वरस्य (महद्यशः) यस्याचापालनाख्यं महाकीर्त्तिकरं धर्म्यं सत्यभाषणादिकर्त्तुमर्हं कर्माचरणं नामस्मरणमस्ति (हिरण्यगर्भः) यो हिरण्यानां सूर्य्यादीनां तेजस्विनां गर्भउत्पत्तिस्थानम् । यस्य सर्वैर्मनुष्यैरामाहिꣳसीदित्येषा प्रार्थना कार्य्या । (यस्मान्नः) यो यतः कारणान्नैवैषः कस्य चित्सकाशात्कदाचिदुत्पन्नो नैव कदाचिच्छरीरं धारणं करोति । नैव तस्य प्रतिमाऽस्ति प्रतिनिधिः प्रतिकृतिः प्रतिमानं तोलनसाधनं परिमाणं मूर्त्त्यादिकल्पनं किंचिदप्यस्ति परमेश्वरस्यानुपमेय स्वादमूर्त्तत्वात्परि मेय त्वादिराकारत्वात्सर्वत्राभिव्याप्तत्वाच्च । इत्यनेन प्रमाणेन मूर्त्तिपूजननिषेधः ॥

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धमपापविद्धम् । कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥ य० अ० ४० मं० ८ । ॥ भाष्यम् ॥

यः कविः सर्वज्ञः । मनीषी सर्वेषां बोद्धा । परिभूः सर्वोपरिविराजमानः । स्वयंभूरनादिस्वरूपः परमेश्वरः शाश्वतीभ्यो नित्याभ्यः समाभ्यः प्रजाभ्यो वेदद्वाराऽन्तर्यामितया च याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात् विहितवानस्ति सत्यार्थोपदेशात्सर्वज्ञोऽस्ति । यत् (शुक्रं) वीर्य्यवत्तमं (अकायं) मूर्त्तिजन्मधारणरहितम् (अव्रणं) क्षतभेदरहितं (अस्नाविरं) नाडीबंधनादिविरहं (शुद्धं) निर्दोषं (अपापविद्धं) पापात्मगुणयुतं यदीदृशलक्षणं ब्रह्म सर्वैरुपासनीयमिति मन्तव्यम् । इत्यनेनापि शरीरजन्ममरणरहितत्वेश्वरः प्रतिपाद्यते तस्मादयं नैव केनापि मूर्त्तिपूजने योजयितुं शक्यतीति । प्रश्नः ।

वेदेषु प्रतिमाशब्दोऽस्ति नवा । उत्तरम् । अस्ति । प्र० पुनः किमर्थो निषेधः । उ० नैव प्रतिमार्थं न मूर्तयो गृह्णन्ते । किं तर्हि परिमाणार्थो गृह्णन्ते । अत्र प्रमाणानि ॥

संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वा रात्र्युपास्महे । सानुरावृष्मतीं प्रजां राय स्पोषेण संसृज ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ३ व० १० मं० ३ । मुहूर्तानां प्रतिमा ता दश च सहस्राण्यष्टौ च शतानि सवल्क्येनावल्क्याच्च संवत्सरस्य मुहूर्ताः ॥ श० कां० १० प्र० ३ ब्रा० २ कं० ६० । यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ १ ॥ सामवेदीयतवलकारोपनिषदि । खंड० १ मं० ४ । ॥ भाष्यम् ॥

इत्यादिमंत्रपंचकमूर्त्यादिनिषेधकमस्ति बोध्यम् । विद्वांसः संवत्सरस्य यां प्रतिमां परिमाणमुपासते वयमेतां त्वां रात्रिमुपास्महे । अर्थाद्वाः संवत्सरस्य त्रीणि शतानि षष्टिश्च रात्रयो भवन्ति । यत एताभिरेव संवत्सरः परिमीयते तस्मादेतासां प्रतिमामुपासते इति । यथा हेयं रात्रिर्नोऽस्माकं रायस्पोषेण धनपुष्टिभ्यामायुष्मतीं प्रजां संसृज सम्यक् सृजेत् । तथैव सर्वैरेतैर्मुहूर्तैरनुष्ठेयमिति । (मुहूर्तानां) तथा ये संवत्सरस्य दशसहस्राण्यष्टौ शतानि घटिकाद्वयात्मकामुहूर्ताः सन्ति ते ऽपि प्रतिमाशब्दार्था विज्ञेयाः (यद्वाचा०) यद्-स्मृतवाण्या अविषयं येन वाणी विदितास्ति तद् ब्रह्म हे मनुष्यत्वं विद्धि यत् इदं प्रत्यक्षं जगदस्ति नैवे तद् ब्रह्मास्ति । किन्तु विद्वांसो यन्निराकारं सर्वव्यापकमजं सर्वनियन्तृसच्चिदानन्दादिलक्षणं ब्रह्मोपासते त्वमपि तदेवोपासनीयं नेतरदिति । प्र० किंच भोः । मनुस्मृतौ । प्रतिमानां च भेदकः । देवतान्यभिगच्छेत् । देवताभ्यर्चनं चैव । देवतानां च कुत्सनम् । देवतायतनानि च । देवतानां क्रयोल्लंघननिषेधः । प्रदक्षिणानि कुर्वीति । देवब्राह्मणसंनिधौ । देवतागारभेदकान् ॥ उक्तानामेतेषां वचनानां का गतिरिति । उ० अत्र प्रतिमाशब्देन रत्तिकामाषभेटकादीनि तोलनसाधनानि गृह्यन्ते । तदाह । तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ॥ मनु० अ० ८ श्लोकः ४०३ । इत्यनया मनूक्तरीत्यैव प्रतिमाप्रतीमाशब्दयोरेकार्थत्वात्तोलनसाधना गृह्यन्तइति बोध्यम् । अत एव

प्रतिमानामधिकन्यूनकारिणो दण्डा देय इत्युक्तः । विद्वांसो देवास्ते यत्र पीयते ऽध्यापयन्ति निवसन्ति च तानि स्थानानि देवतानीत्युच्यन्ते देवा एव देवस्तेषामिमानि स्थानानि देवतानि देवतायतनानि च सन्तीति बोध्यम् । विद्वत्सु देवेष्वभ्यर्चनं सत्करणं कर्त्तव्यमिति । नैवेतेषां केन चिदपि निन्दाकार्य्योल्लंघनं स्थानविनाशश्च कर्त्तव्यः । किंतु सर्वरेतेषां सामीप्यगमनं न्यायप्राप्तौ दक्षिणपार्श्वे स्थापनं स्तेषां वामपार्श्वे स्थितिश्च कार्य्येति । एवमेव यत्र यत्रान्यत्रापि प्रतिमा देवदेवतायतनादिशब्दाः सन्ति तत्र तत्रैवमर्थो विज्ञेयः । यंत्रभूयस्त्वभिप्रायाच्च ते लेखितुं शक्या इति । एतावतैव मूर्त्तिपूजनकण्ठीमालिकधारणादिनिषेधा बोध्याः ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब इस के आगे जो नवीन कल्पित तंत्र और पुराण ग्रंथ हैं उन में पत्थर आदि की मूर्त्ति पूजन तथा नाना प्रकार के नामस्मरण अर्थात् राम २ कृष्ण २ काष्ठादि माला तिलक इत्यादि का विधान करके उन को अत्यंत प्रीति के साथ जो मुक्ति पाने के साधन मान रक्खे हैं ये सब बातें भी मिथ्या ही जानना चाहिये क्योंकि वेदादि सत्य ग्रंथों में इन बातों का कहीं चिन्ह भी नहीं पाया जाता है किंतु इन का निषेध ही किया है जैसे (न तस्य०) (पूर्ण) जो किसी प्रकार से कम नहीं (अज) जो जन्म नहीं लेता और (निराकार) जिस की किसी प्रकार की मूर्त्ति नहीं इत्यादि लक्षण युक्त जो परमेश्वर है जिस की आज्ञा का ठीक २ पालन और उत्तम कीर्त्तियों के हेतु जो सत्यभाषणादि कर्म हैं उन का करना ही जिस का नामस्मरण कहाता है (हिरण्यगर्भ०) जो परमेश्वर तेज वाले सूर्य्यादि लोकों की उत्पत्ति का कारण है जिस की प्रार्थना इस प्रकार करनी होती है कि (मामाहिꣳसी०) हे परमात्मन् मुझ लोगों की सब प्रकार से रक्षा कीजिये कोई कहे कि इस निराकार सर्व व्यापक परमेश्वर की उपासना क्यों करनी चाहिये तो उत्तर यह है कि (यस्माच्च०) अर्थात् जो परमेश्वर किसी माता पिता के संयोग से कभी न उत्पन्न होता है न होता और न होगा और न वह कभी शरीर धारण करके बालक जवान् और वृद्ध होता है (नतस्य) उस परमेश्वर का प्रतिमा अर्थात् नाप का साधन तथा प्रतिसिद्ध जो सदृश अर्थात् जिस को समझौर करते हैं सो किसी प्रकार नहीं है क्योंकि वह मूर्त्ति रहित, अनन्त सीमा रहित और सब में व्यापक है उससे निराकारही की उपासना सब मनुष्यों को करनी चाहिये कदाचित् कोई शंका करे कि शरीर धारी की उपासना करने में क्या दोष है तो यह बात समझना चाहिये कि जो प्रथम जन्म लेके शरीर धारण करेगा और फिर वह वृद्ध होकर मर जायगा तब जिस की पूजा करोगे इस प्रकार मूर्त्तिपूजन का निषेध हेतु से सिद्ध

होगया। तथा (सपर्य्यगाच्छु०) जो परमेश्वर (कविः) सब का जानने वाला (मनीषी) सब के मन का साक्षी (परिभूः) सब से ऊपर विराजमान और (स्वयंभूः) अनादि स्वरूप है जो अपनी अनादि स्वरूप प्रजा को आत्मरूप से और वेद के द्वारा सब व्यवहारों का उपदेश किया करता है (सपर्य्यगात्) सो सब में व्यापक (शुक्रं) अत्यन्त पराक्रम वाला (अकायं) सब प्रकार के शरीर से रहित (अव्रणं) कटना और सब रोगों से रहित (अस्नाविरं) नाड़ि आदि के बंधन से पृथक् (शुद्धं) सब दोषों से अलग और (अपापविद्धं) सब पापों से न्यारा इत्यादि लक्षण युक्त परमात्मा है वही सब को उपासना के योग्य है ऐसा ही सब को मानना चाहिये क्योंकि इस मंत्र से भी शरीर धारण करके जन्म मरण होना इत्यादि बातों का निषेध स्पष्टतर विषय में पाया ही गया इसमें इस को पत्थर आदि की मूर्त्ति बना के पूजना किसी प्रमाण वा युक्ति से सिद्ध नहीं हो सकता। (संवत्सरस्य०) विद्वान लोग संवत्सर की जिस (प्रतिमां) क्षण आदि काल के विभाग करने वाली रात्री की उपासना करते हैं हम लोग भी उसी का सेवन करें। जो एक वर्ष की ३६० सीधे में साठ राति होती हैं इतनी रात्रियों में संवत्सर का परिभाषा किया है इसलिये इन रात्रियों की भी प्रतिमा कहता है (यास्य०) इन रात्रियों में परमात्मा की कृपा से हम लोग सत्कर्मों के अनुष्ठानपूर्वक संपूर्ण आयु युक्त भोगनों को उत्पन्न करें। इसी मंत्र का भाष्यार्थ कुछ शतपथब्राह्मण में भी है कि (मुहूर्त्तो०) एक संवत्सर के १८०० मुहूर्त्त होते हैं ये भी प्रतिमा शब्द के अर्थ में समझने चाहियें क्योंकि इनसे भी वर्ष का परिमाण होता है (यद्वाना) जो कि अविद्या युक्त वाणी से प्रसिद्ध नहीं हो सकता जो सब की चालियों को जानता है हे मनुष्यो! तुम लोग उसी को परमेश्वर जानो और न कि मूर्त्तिमान जगत् के पदार्थों को जो कि इस के रचे हुए हैं अर्थात् निराकार व्यापक सब पदार्थों का नियम करने वाला और सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त ब्रह्म है उसी की उपासना तुम लोग करो यह उपनिषद् कारक ऋषियों का मत है (प्रश्न) क्यों जी मनुस्मृति में जो (प्रतिमानो०) इत्यादि वचन हैं उनसे तो यह बात मालूम होती है कि जो कोई प्रतिमा को तोड़े उस को राजा दंड देवे तथा देवताओं के पास जाना उन की पूजा करना उन की छाया को उल्लंघन नहीं करना और उन की परिक्रमा करना इत्यादि प्रमाणों से तो मूर्त्तिपूजा अत्यन्त सिद्ध होती है फिर आप कैसे नहीं मानते हैं (उत्तर) क्यों भ्रम में पड़े हुए हो होशमें आओ और आंख खोल कर देखो कि प्रतिमा शब्द से जो तुम लोग पत्थर की मूर्त्ति लेते हो यह बड़ा तुम्हारी अज्ञानता अर्थात् कम समझ है क्योंकि मनुस्मृति में तो प्रतिमाशब्द धरके (तुलामानं०) रत्ति, छटांक, पाव, सेर और धसेरी आदि तोलके साधनों का कहना किया है क्योंकि तुलामान अर्थात् तराजू और

प्रतीमाने वा प्रतिमा अर्थात् बाट इन की परीक्षा राजा लोग छठे २ मास अर्थात् छः २ महिने में एक बार किया करें कि जिससे उन में कोई व्यवहारी किसी प्रकार की छल से बटखरे न धर सकें और कदाचित् कोई करे तो उस को दण्ड देवें फिर (देवतानामभ्यर्चने०) इत्यादि वचनों से यह बात समझ लेनी चाहिये कि शतपथ ब्राह्मण में विद्वान् मनुष्यों का नाम देव कहा है अर्थात् जिन स्थानों में विद्वान् लोग पढ़ने पढ़ाने और निवास करते हैं उन स्थानों को देवत कहते हैं वहां जाना बैठना और उन लोगों का सत्कार करना इत्यादि काम सब को अवश्य करने चाहियें (देवतानां च कुत्सने) उन विद्वानों की निन्दा उन का अपमान और उन के स्थानों में किसी प्रकार का विगाड़ वा उपद्रव आदि दोष की बातें कभी न करना चाहियें किंतु (देवतान्यभि०) सब मनुष्यों को उचित है कि उन के समीप जाकर अच्छी २ बातों को सीखा करें (प्रदक्षिणा०) उन को मान्य के लिये दाहिनी दिशा में बैठाना क्योंकि यह नियम उन की प्रतिष्ठा के लिये सोचा गया है ऐसे ही अन्यत्र भी जहां कहीं प्रतिमा और देवता अथवा उन के स्थानों का वर्णन है उसी प्रकार निर्भयता से वहां समझ लेना चाहिये यहां सब का संग्रह इसलिये नहीं किया कि ग्रंथ बहुत बढ़ जाता ॥ ऐसा ही सत्य शास्त्रों में विरुद्ध कपटी और तिलकधारणादि मिथ्या कल्पित विषयों को भी समझ कर मन कर्म और वचन से त्याग कर देना अवश्य उचित है ॥

यत्रमेव सूर्य्यादिपदार्थान्तरये बालबुद्धिभिराकृष्येत रज्जवेत्यादि मंत्रा गृह्यन्ते । अयमेषां भ्रमणवास्तीति । कुतस्तत्रैषामर्थानामयहणात् । (तद्यथा) तवाकृष्येन रज्जवेति मंत्रस्थयं आकर्षणानुकर्षणाधकरण उक्तः । इमं देवा असपत्नमित्यस्य राजधर्मविषये चेति ॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ॥ १ ॥ य० अ० ३ मं० १२ ॥ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्तेसꣳसृजेथामयं च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥ २ ॥ य० अ० १५ मं० ५४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(अयमग्निः) परमेश्वरो भौतिको वा (दिवः) प्रकाशवतो लोकस्य (पृथिव्याः) प्रकाशरहितस्य च (पतिः) पालयितास्ति (मूर्द्धा) सर्वोपरि विराजमानः (ककुत्) तथा ककुभां दिशां च मध्ये व्यापकतया सर्वपदार्थानां पालयितास्ति । व्यत्ययो बहुलमिति क्षुभ्ना भकारस्थाने तकारः । (अपाꣳरेता-

साणसि) अयमेव जगदीश्वरो मैत्रावरुणश्चाणां प्राणानां बलानां च रक्षांसि शो-र्यांणि (जिन्वति) पुष्णाति । अयं खलिर्थैर्दुरुपेण सूर्य्यरूपेण च पूर्वोक्तस्य रक्षकः पुष्टिकर्त्ता चास्ति ॥ ३ ॥ (उद्वुध्यस्वाग्ने) । हे अग्ने परमेश्वराऽस्माकं हृदये त्वमुद्बुध्यस्व प्रकाशितो भव (प्रतिजागृहि) अविद्यान्धकारनिद्रातस्यान् जीवान् पृथक् कृत्य विद्यार्कप्रकाशे जागृतान् कुरु । (त्वमिदग्ने०) हे जगदीश्वर अयं जीवो मनुष्यदेहधारी धर्मार्थकाममोक्षसाधनाय पूर्त्तिं कुर्वीत बहुत्वादयेत् । त्वमस्येहं मुखं कुरु: । अयं परस्परं दूयोः सङ्गतपुरुषार्थाभ्यामिष्टसुखे भवेताम् (अस्मिन्नक्षरे) अस्मिन् लोके शरीरे च (अध्युत्तरस्मिन्) परलोके द्वितीये जन्मनि च (विश्वे यजमानश्च सीदत) अयं विद्वांसो यजमानो विद्वत्सेवाकर्त्ता च कृपया सदा सीदन्तु वर्त्तन्ताम् । अतोऽस्मात् मध्ये सर्वेऽयं विद्याः प्राप्तिमा अवेयुरिति । व्यत्ययो बहुलमित्यनेन सूत्रेण पुरुषव्यत्ययः ॥ ॥ भाष्यम् ॥

इसी प्रकार से कल्पवृक्ष मनुष्यों ने आहवनीय रक्षसा० इत्यादि मंत्रों का सूर्य्यादि यज्ञपीड़ा की शांति के लिये ग्रहण किया है सो उनको लेख मात्र हुआ है मूल अर्थ से कुछ संबन्ध नहीं क्योंकि उन मंत्रों में यज्ञपीड़ा निवारण करना यह अर्थ ही नहीं है (आहवनीय०) इस मंत्र का अर्थ यज्ञकर्मानुकूलेन प्रकरण में तथा (इमंदेवा०) इस का अर्थ राजधर्म विषय में लिख दिया है । १ । २ ॥ (अग्निना) यह जो अग्नि संज्ञक परमेश्वर वा भौतिक है वह (रयिम्) प्रकाश वाले और (एषियाः) प्रकाशरहित लोकों का पालन करने वाला तथा (मृडीकः) सब पर शिरोमणि और (कविपतिः) विद्वानों के मध्य में अपनी व्याप्यकला से सब पदार्थों का राजा है (अव्ययो बहुलम्) इस सूत्र से (अवधुः) शब्द के ककार को अकारादेश हो गया है (यशसं वीरवत्तमं जिन्वति) वही जगदीश्वर प्राण और बलों से वीर्य्यों को पुष्ट करता है इस प्रकार भौतिक भी विद्युत् और सूर्य्य रूप से पूर्वोक्त पदार्थों का पालन और पुष्टि करने वाला है ॥ ६ ० (उद्वुध्यस्वाग्ने) हे परमेश्वर हमारे हृदय में प्रकाशित हूजिये (प्रति जागृहि) अविद्या की नींद रूप निद्रा से हम सब जीवों को अलग करके विद्यारूप सूर्य्य के प्रकाश से प्रकाशमान कीजिये कि जिस से (त्वमिदग्ने) हे भगवान् मनुष्य देह धारण करने वाला जो जीव है जैसे वह धर्म अर्थ काम और मोक्ष की साधनों की पूर्त्ति कर सके ऐसे आप कृपा सिद्ध कीजिये (अस्मिन्नक्षरे) इस लोक और इस शरीर तथा (अध्युत्तरस्मिन्) परलोक और दूसरे जन्म में (विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत) आप की कृपा से सब विद्वान् और यजमान अर्थात् विद्या के उपदेश का ग्रहण और सेवा करने वाले मनुष्य लोग सुख से वर्त्तमान सदा बने

रहें कि जिस से हम लोग विद्यायुक्त होते रहें (व्यत्ययो बहुलम्) इस सूत्र से (संसृजेयाम्) (संवदन्त) इन प्रयोगों में पुरुष व्यत्यय अर्थात् प्रथम पुरुष की जगह मध्यम पुरुष हुआ है ॥ ४ ॥ —

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु । यद्दीदयच्छवस ऋत प्रजातदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ ५ ॥ य० अ० २६ मं० ३ ॥ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रिय: । इन्द्रं सेमं प्रजापति: । क्षत्रेण सत्यमिन्द्रियं विपानं शुक्रमन्धस: । इन्द्रेन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ६ ॥ यजु० अ० १९ मं० ७१ ॥ भाष्यम् ॥

(बृहस्पते) बृहतां वेदानां पते यजमान (ऋत प्रजात) वेदविद्याप्रतिपादित जगदीश्वरत्वं (जनेषु) मनुष्यकारकेषु विद्वत्सु लोकलोकान्तरेषु वा (क्रतुमत्) बहवो मनुष्या यस्मिंस्तत् (द्युमत्) सत्यव्यवहारप्रकाशो विद्यते यस्मिंस्तत् (दीदयच्छवस:) दानयोग्यं शत्रसो बलस्य प्रापकं (यदर्यो अर्हात्) येन विद्यादिधनेन युक्त: सन् ऋर्य: स्वामी राजा वणिग्जनो वा धार्मिकेषु जनेषु (विभाति) प्रकाशते (चित्रं) यद्भद्रमद्भुतं (अस्मासु द्रविणं धेहि) तदस्मदधीनं द्रविणं धनं कृपया धेहीत्यनेन मन्त्रेणेश्वर: प्रार्थ्यते ॥ ५ ॥ (सत्यं) यच्च यद्राजकर्मक्षत्रियो वा (ब्रह्मणा) वेदविद्विश्च सह (पय:) अमृतात्मकं (सोमं) सोमाद्योषधिसंपादितं (रसं) बुद्धानन्दशौर्यधैर्यबलपराक्रमादिप्रदं (व्यपिबत्) पानं करोति तच्च स सभाध्यक्षो राजन्य: (क्षत्रेण) यथार्थवेदविज्ञानेन (सत्यं) धर्मे राजव्यवहारे च (इन्द्रियं) शुद्धविद्यायुक्तं शान्तं मन: (विपानं) विविधराजधर्मरक्षणं (शुक्रं) आशु सुखकरं (अन्धस:) शुद्धान्नस्य हेतुं (पय:) सर्वपदार्थसारविज्ञानयुक्तं (अमृतं) मोक्षसाधकं (मधु) मधुरं सत्यशीलस्वभावयुक्तं (इन्द्रस्य) परमैश्वर्ययुक्तस्य सर्वव्यापकान्तर्यामिनश्वरस्य कृपया (इन्द्रियं) विज्ञानयुक्तं मन: प्राप्य (इदं) सर्वं व्यवहारक्रियासारमार्यैकं सुखं प्राप्नोति (प्रजापति:) परमेश्वर: सभाध्यक्षमाज्ञापयति य: क्षत्रिय: प्रजापालनाधिकृतो भवेत् । स एवं प्रजापालनं कुर्यात् (अन्नात्परिस्रुत:) स चामृतात्मको रसोऽन्नाद्वीर्यत्यदार्थात्परित: सर्वत: प्लुतस्यन्दितो युक्तो वा कार्य: । यथा प्रजायामत्यन्तं सुखं स्थिरं भवेत्तथैव क्षत्रियेण कर्तव्यम् ॥

(हरसूने) हे वेदविद्याप्रकाशक (ऋतपजात) वेदविद्या से प्रसिद्ध जगदीश्वर वाय (सहस्रासु दक्षिणो घेहि) जो सत्यविद्या रूप अनेक प्रकार का (वित्त) धन है सो हमारे बीच में कृपा करके स्थापन कीजिये कैसा वह धन है कि (जनेषु) विद्वानों और लोकपरोपकारियों में (क्रतुमत्) जिस से बहुत से यज्ञ किये जायें (दक्षवत्) जिस से अन्य व्यवहार के प्रकाश का विधान हो (शवसः) बल को देने वाला और (दक्षपतु) धर्म और सब के सुख का प्रकाश करने वाला तथा (सहस्रिणः) जिस को धर्मयुक्त शोध व्यवहार के द्वारा राजा और वैश्य प्राप्त हों सो (वितरणि) धर्मव्यवहार करने वा धार्मिक शुभ पुरुषों में प्रकाशमान होता है उस बहुत विद्यायुक्त धन को हमारे बीच में निरन्तर धारण की जिये ऐसे इस मंत्र से परमेश्वर की प्रार्थना की जाती है ॥ ५ ॥ (सत्रं) जो राजकर्म करना वा क्षत्रिय है वह पढ़ा न्याय से (ब्रह्मणा) वेदविद्वान् पुरुषों के साथ मिलकर ही राज्यपालन करे (सो प्रकार (पयः) जो अमृतरूप (सोमं) सोमलता आदि ओषधियों का सार तथा (रसं) जो बुद्धि आनन्द शूरता धीरज बल और परब्रह्म आदि उत्तम गुणों का बढ़ाने वाला है उस को (क्षत्रियम्) जो राजपुरुष अथवा प्रजास्थ लोग वेदशास्त्रों की रीति से पीते हैं वे सभासद और प्रजास्थ मनुष्य लोग (दधन्वे) वेदविद्या और व्यवहार ज्ञान के (मन्यवे) धर्म और ज्ञान के लिये (दक्षिणे) शुद्ध विज्ञानयुक्त ज्ञान स्वरूप मन (विपानं) महादेव प्रजा का रक्षण (शुक्रं) शीघ्र सुख करनेवाला (अन्धसः) शुद्ध अन्न की इच्छायुक्त (पयः) सब पदार्थों का सार विज्ञान यहिन (अमृतं) मोक्ष के ज्ञानादि साधन (मधु) मधुरवाणी और गौओं आदि जो अच्छे गुण हैं (इदं) उन सब से परिपूर्ण होकर (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य के व्यापक ईश्वर की कृपा से (इन्द्रियं) विज्ञान को प्राप्त होते हैं (प्रजापतिः) इसलिये परमेश्वर सब मनुष्यों और राजपुरुषों को आज्ञा देता है कि तुम लोग पूर्वोक्त व्यवहार और विज्ञान विद्या को प्राप्त होके धर्म से प्रजा का पालन किया करो और (अथास्यविक्षुतः) इस अमृत स्वरूप रस को उत्तम भोजन के पदार्थों से साथ मिलाकर सेवन किया करो कि जिस से प्रजा में पूर्ण सुख की सिद्धि हो ॥ ६ ॥

अग्नेदेवो रभीष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ ७ ॥ य० अ० ३६ मं १२ । कया नश्चित्र आभुवदूती सदा वृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥ ८ ॥ य० अ० २७ मं० २९ ॥ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे । समुषद्भिरजायथाः ॥ ९ ॥ य० अ० २९ मं० ३७ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(आप्लृव्याप्तौ) अस्माद्धातोः रप्रत्ययः स्त्रियां स नित्यस्त्रीलिंगो बहुवचनान्तश्च । दिवुक्रीडादयार्थः (देवीः) देव्य आपः सर्वप्रकाशकाः सर्वानन्दप्रदाः सर्वव्यापकश्वरीः (अभिष्टये) इष्टानन्दप्राप्तये (पीतये) पूर्णानन्दभोगेन तृप्तये (नः) अस्मभ्यं (यं) कल्याणकारिकाः भवन्तु स ईश्वरो नः कल्याणं भावयतु प्रयच्छतु । ता आपोदेव्यः स चेश्वरो नो अस्माकमुपरि (योनेः) सर्वतः सुखस्य वृष्टिं करोतु ॥ अत्र प्रमाणम् ॥

यच्च लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्म जना विदुः । असच्च यच्च सच्चान्तः स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ अथर्व० कां० १० अ० ४ व० २२ मं० १० ॥ ॥ भाष्यम् ॥

अनेन वेदमंत्रप्रमाणेनाप्शब्देन परमात्मनो ग्रहणं क्रियते । तद्यथा । (आपो ब्रह्मजना विदुः) विदुस्ता आपो ब्रह्मणो नामास्तीति जानन्ति । (यच्च लोकांश्च कोशांश्च) यस्मिन्परमेश्वरे सर्वान् भूगोलान्निधींश्च (असच्च यच्च सच्च) यस्मिंश्चानित्यं कार्यं जगदेतस्य कारणं च स्थितं जानन्ति । (स्कंभं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः) स जगद्धाता सर्वेषां पदार्थानां मध्ये कतमोऽस्ति विद्वँस्त्वं ब्रूहीति पृच्छ्यते । (अन्तः) स जगदीश्वरः सर्वेषां जीवादिपदार्थानामभ्यन्तरे व्याप्यव्यापकरूपेणावस्थितोऽस्तीति भवन्तो जानन्तु ॥ ७ ॥ (कया) उपासनारीत्या (सचिष्ठया) अतिशयेन सत्कर्मानुष्ठानप्रकारया (वृता) शुभगुणेषु वर्तमानया (कया) सर्वोत्तमगुणालंकृत्या सभया प्रकाशितः । (चित्) अद्भुतानन्तशक्तिमान् (सदावृधः) सदानन्देन वर्धमानस्वरूपः परमेश्वरः (नः) अस्माकं सखा मित्रः (आमुवत्) यथावन्मुक्तो भूत्वा (ऊती) स जगदीश्वरः कृपया सर्वदा सहायकरणे नोऽस्माकं रक्षको भवेत् । तस्मादेवा स्वामिनः स सत्यप्रेमभक्त्या सेवनीयोऽस्ति ॥ ८ ॥ हे मर्त्यमनुष्या यद्विद्वः परमेश्वरं कामयमानेस्मद्दोषाणां वर्तमानोर्वद्वित्युष्माभिः सह समागमे कृते सत्येव (अक्रेः) अज्ञानविनाशाय क्रेतुं प्राप्तानं । अपेशसे दारिद्र्यविनाशाय पेशः चक्रवर्तिराज्यादि सुखसंपादकं धनं च कृण्वन् कुर्वन् सन् जगदीश्वरः (अजाथाः) प्रसिद्धो भवसीति वेदितव्यम् ॥ ९ ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(शन्नोदेवी०) आप्लृव्याप्तौ, इस धातु से आप् शब्द सिद्ध होता है सो सदा स्त्रीलिंग और बहुवचनान्त है तथा जिस दिवुधातु के क्रीड़ा

आदि अर्थ हैं उस से देवी शब्द सिद्ध होता है (देवीः) अर्थात् जो ईश्वर सब का प्रकाश और सब को आनन्द देने वाला (आपः) सर्व व्यापक है (अभीष्टये) वह इष्ट आनन्द और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये (नः) हम को सुखी होने के लिये (शं) कल्याणकारी (भवन्तु) हो। वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) वृष्टि करे। इस मंत्र में आप शब्द से परमात्मा के ग्रहण होने में प्रमाण यह है कि (आपो ब्रह्म जना विदुः) अर्थात् विद्वान् लोग ऐसा जानते हैं कि आप परमात्मा का नाम है (यजु) (यच्च लोकाश्च कोशाश्च) सुनो जो जिस में पृथिव्यादि सब लोक, सब पदार्थ स्थित (अमच्च यच्च पच्च) सत्य जिस में अनित्य कार्य्य जगत् और सब वस्तुओं के कारण ये सब स्थित हो रहे हैं (स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः) वह सब लोकों का धारण करने वाला कौन पदार्थ है (उच्यते) (अन्तः) जो सब पृथिवी आदि लोक और जीवों के बीच में अन्तर्यामि रूप से परिपूर्ण भरपूर है ऐसा जानकर आप लोग इस परमेश्वर को अपने ही अन्तःकरण में खोजो ॥ ७ ॥ (कया) जो किस उपासनारीति (मनिष्ठया) और सत्यधर्म के आचरण से प्रमाद रहित (वृता) सत्यविद्यादि गुणों में प्रवर्त्तमान (कया) सुखरूप वृत्ति सहित सभा से प्रकाशित (शचिः) शुद्धस्वरूप (वसुः) आनन्द स्वरूप और आनन्द देनेवाला परमेश्वर है वह (नः) हमारे आत्माओं में (आभुवत्) प्रकाशित हो (कतो) तथा जिस प्रकार वह जगदीश्वर हमारा सदा सहायक होकर कृपा से नित्य रक्षा करे कि (दक्षैः सखायया) हे अपने जगदीश्वर आप की आज्ञा में जो रमण करनेवाले हैं उन्हीं पुरुषों से आप जाने जाते हैं और जिन धार्मिक पुरुषों के अन्तःकरण में आप अच्छे प्रकार प्रकाशित होते रहो ॥ ५८ ॥ हे विज्ञान स्वरूप अज्ञान को दूर करने हारे जगदीश्वर आप (क्रतुं दक्षवत्) हम सब मनुष्यों के आत्माओं में ज्ञान का प्रकाश करते रहिये तथा (अजैतवे) अज्ञान और (अपैतवे) दरिद्रता के दूर करने के लिये विज्ञान धन और चक्रवर्त्तिराज्य धर्मात्माओं को देते रहिये कि जिस से (मघोनः) जो आप के उपासक लोग हैं वे कभी दुःख को न प्राप्त हों ॥ ९ ॥

॥ अथाधिकारानधिकारविषयः संक्षेपतः ॥

वेदादिशास्त्रपठने सर्वेषामधिकारो नास्त्यस्मिन्निति । सर्वेषामस्ति वेदानामीश्वरोक्तत्वात्सर्वमनुष्योपकारार्थत्वात्सत्यविद्याप्रकाशकत्वात्च । यद्यद्धि खलु परमेश्वररचितं वेदत्वास्ति तत्तत्सर्वे सर्वार्थमस्तीति विज्ञायीताः । तत्र प्रमाणम् ॥

यथेमां वाचं कल्याणी मा वदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳशूद्राय चार्य्यायच स्वायचारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुपमादो नमतु ॥ १ ॥ य० अ० २६ मंत्र २ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

अस्याभिप्रायः । परमेश्वरः सर्वमनुष्येभ्यो वेदाः पठनीयाः पाठ्या इत्याज्ञां ददाति । तद्यथा । (यथा) येन प्रकारेण (इमाम्) प्रत्यक्षभूतामृग्वेदादिवेदचतुष्टयीं (कल्याणीं) कल्याणसाधिकां (वाचं) वाणीं (जनेभ्यः) सर्वेभ्यो मनुष्येभ्यो ऽर्थात् सकलजनोपकाराय (आवदानि) आसमन्तादुपदिशानि । तथैव सर्वैर्विद्वद्भिः सर्वमनुष्येभ्यो वेदचतुष्टयी वाग्नुपदेष्टव्येति । अत्र कश्चिदेवं ब्रूयात् । जनेभ्यो द्विजेभ्य इत्यध्याहार्य्यं वेदाध्ययनाध्यापने तेषामेवाधिकारत्वात् नेयं यजुः । उत्तरमंत्रभागार्थविरोधात् । तद्यथा । कस्यचिदस्य वेदाध्ययनकाले ऽधिकारोस्तीत्याकाङ्क्षायामिदमुच्यते (ब्रह्मराजन्याभ्यां) ब्राह्मणक्षत्रियाभ्यां (अर्य्याय) वैश्याय (शूद्राय) (चारणाय) अतिशूद्रायान्त्यजाय स्वाय स्वात्मीयाय पुत्राय भृत्याय च सर्वैः सेवा वेदचतुष्टयी ग्राह्येति । (प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह०) । यथाहमीश्वरः पक्षपातं विहाय सर्वोपकारकरणेन सह वर्त्तमानः सन् देवानां विदुषां प्रियः दातुर्दक्षिणायै सर्वेऽदानाय प्रियश्च (भूयासम्) स्याम् । तथैव भवद्भिः सर्वैर्विद्वद्भिरपि सर्वेषकारं सर्वप्रियाचरणं मत्वा सर्वेभ्यो वेदवाणी ग्राह्येति । यथार्थं मे मम कामः समृध्यते । तथैवैवं कुर्वतां भवतां (अयं कामः समृध्यताम्) इहामुत्र सुखेच्छा समृध्यतां सम्यग्वर्धताम् यथाहः सर्वेमिष्टसुखं मामुपनमति । (उपमादो नमतु) तथैव भवतो ऽपि सर्वेमिष्टसुखमुपनमतु सम्यक् प्राप्नोत्विति । मया युष्मभ्यमयमाशीर्वादो दीयत इति निश्चेतव्यम् । यथा मया वेदविद्या सर्वार्थो प्रकाशिता तथैव युष्माभिरपि सर्वार्थोपकर्त्तव्या नात्र वैषम्यं किंचित्कर्त्तव्यमिति । कुतः । यथा मम सर्वप्रियार्थो पक्षपातरहिता च प्रवृत्तिरस्ति । तथैव युष्माभिराचरणे कृते मम प्रसन्ना भवति नान्यथेति अस्य मन्त्रस्यायमेवार्थोस्ति । कुतः । बृहस्पते अतियदर्य इत्युत्तरस्मिन्मन्त्रे हीश्वरार्थस्यैव प्रतिपादनात् ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(प्रश्न) वेदादिशास्त्रों के पढने पढ़ाने सुनने और सुनाने में सब

मनुष्यों का अधिकार है वा नहीं (उत्तर) सबका है । क्योंकि जो ईश्वर की सृष्टि है उस में किसी का अन अधिकार नहीं रख सकता । देखिये कि जो २ पदार्थ ईश्वर से प्रकाशित हुये हैं सो २ सबके उपकारार्थ हैं (प्रश्न) वेदों को पढ़ने का अधिकार केवल तीन वर्णों को ही है क्योंकि शूद्रादि को वेद वि शास्त्र पढ़ने का निषेध किया है और द्विजों को पढ़ाने में भी केवल ब्राह्मण ही का अधिकार है (उत्तर) यह बात सब मिथ्या है । इस का विवेक और उत्तर वर्णविभाग विषय में कह आये हैं वहां यही निर्णय हुआ है कि मुख का नाम शूद्र और अति मुख का नाम अति शूद्र है उन के पढ़ने पढ़ाने का निषेध इसलिये किया है कि उन को विद्या ग्रहण करने की बुद्धि नहीं होती है ० परंतु क्या सब स्त्री पुरुषों का वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने का अधिकार है ७० सब को है । देखो इस में यजुर्वेद ही का यह प्रमाण लिखते हैं , यथेमां वाचं कल्याणी०) इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि वेदों के पढ़ने पढ़ाने का सब मनुष्यों को अधिकार है और विद्वानों को उन के पढ़ाने का । इसलिये ईश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्य लोगो जिस प्रकार मैं तुमको सत्यों वेदों का उपदेश करता हूं उसी प्रकार से तुम भी उन को पढ़ के सब मनुष्यों को पढ़ाया और सुनाया करो क्योंकि यह चारों वेदरूप वाणी सब की कल्याण करने वाली है तथा (ब्रह्मराजन्याभ्यां) जैसे सब मनुष्यों के लिये मैं वेदों का उपदेश करता हूं वैसे ही सदा तुम भी किया करो (प्रश्न) (जनेभ्यः) इस पद से द्विजों ही का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि जहां कहीं शूद्र और स्त्रियों में पढ़ने का अधिकार लिखा है वहां केवल द्विजों ही का ग्रहण किया है (उत्तर) यह बात ठीक नहीं है क्योंकि जो ईश्वर का अभिप्राय द्विजों ही के ग्रहण करने का होता तो मनुष्य मात्र को उन के पढ़ने का अधिकार कभी न देता । जैसा कि इस मंत्र में प्रत्यक्ष विधान है ; ब्रह्मराजन्याभ्यां० शूद्रायचार्य्याय च स्वायचारणाय) अर्थात् वेदाधिकार जैसा ब्राह्मण वर्ण के लिये है वैसाही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पुच, भृत्य, और अति शूद्र के लिये भी बराबर है क्योंकि वेद ईश्वर प्रकाशित है । जो विद्या का पुस्तक होता है वह सब का हितकारक है और ईश्वर रचित पदार्थों के दायभागी सब मनुष्य अवश्य होते हैं इसलिये उस का जानना सब मनुष्यों को उचित है क्योंकि वह माल सबके पिता का सब पुत्रों के लिये है किसी वर्णविशेष के लिये नहीं (प्रियं देवानाम्) जैसे मैं इस वेदरूप सत्य विद्या का उपदेश करके विद्वानों के आत्माओं में प्रिय हो रहा हूं (प्रियं राजसु मामुषाणं) जैसे दानी वा बलवान पुरुष को प्रिय होता है वैसेही तुम लोग भी मत्सरतारहित हो कर वेद विद्या को सुना कर सब को प्रिय हो (अयं मे कामः समृध्यताम्) जैसे यह वेदों का प्रचार रूप मेरा काम संसार के बीच में यथावत् प्रचरित होता है इसी प्रकार की इच्छा तुम लोग भी करो

कि जिसमें इस विद्या आगे को भी सब मनुष्यों में प्रकाशित होती रहे (उपमादो नमतु) जैसे मुझ में अनन्त विद्या से सब सुख हैं वैसे जो कोई विद्या का ग्रहण और प्रचार करेगा उसको भी मोक्ष तथा संसार का सुख प्राप्त होगा यही इस मंत्र का अर्थ ठीक है क्योंकि इससे अपने मंत्र में भी (बृहदस्मै वनियद्ध्यै०) परमेश्वर ही का ग्रहण किया है । इससे सब के लिये वेदाधिकार है ॥ ५ ॥

यतोऽयमात्मापि गुणकर्मानुसारतो हि भवति । अतोऽह मनुः ॥

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम् । क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ १ ॥ मनु० अ० १० श्लो० ६५ ।

॥ भाष्यम् ॥

शूद्रः पूर्णविद्याशीलतादिब्राह्मणगुणयुक्तश्चेद्ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणाभावे प्राप्नोति योऽस्ति ब्राह्मणस्याधिकारस्तं सर्वं प्राप्नोत्येव । एवमेव कुरुष्वाऽधर्माचरणान्निर्बुद्धिमूर्खत्वपराधीनतापरसेवादिशूद्रगुणैर्युक्तो ब्राह्मणश्चेत् स शूद्रतामेति । शूद्राधिकारं प्राप्नोत्येव । एवमेव क्षत्रियाज्जातं क्षत्रियादुत्पन्नं वैश्यादुत्पन्नं प्रति च योजनीयम् । अर्थाद्यस्य वर्णस्य गुणैर्युक्तो यो वर्णः स तत्तदधिकारं प्राप्नोत्येव । एवमेवोपसम्बसूचेष्यस्ति ॥

धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १ ॥ अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ २ ॥ प्रपाठक २ । पटल० ५ । सू० १० । ११ ॥

॥ भाष्यम् ॥

सत्यधर्माचरणेनैव शूद्रो वैश्यं क्षत्रियं ब्राह्मणं च वर्णमापद्यते । सम्यक्त्वमाप्नोति सर्वाधिकारमित्यर्थः । जातिपरिवृत्तावित्युक्ते जातेर्वर्णस्य परिवृत्तिः सर्वतो या वृत्तिराचरणं तत्सर्वं प्राप्नोति ॥ १ ॥ एवमेव स लक्षणेनाधर्माचरणेन पूर्वो वर्णो ब्राह्मणो जघन्यं स्वस्मादधः स्थितं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ चेति पूर्ववत् । अर्थाद् धर्माचरणमेवोत्तमवर्णाधिकारे कारणमस्ति । एवमेवाधर्माचरणं कनिष्ठवर्णाधिकारप्राप्तेश्चेति । यत्र यत्र शूद्रो नाध्यापनीयो न श्रावणीयश्चेत्युक्तं तत्रायमभिप्रायः । शूद्रस्य प्रज्ञाविरहत्वात् विद्यापठनधारणविचारासमर्थत्वात्तस्याध्यापनं श्रावणं व्यर्थमेवास्ति निष्फलत्वाच्चेति ॥

जिला से भेजने की तारीख	रजिस्टर नम्बर	नाम लेखक	पता लेखक	संख्या पृष्ठों	संख्या शब्द	वेतन रुपया
	५४४	लाला दुर्गाप्रसाद बेटे लाला दुर्गाप्रसाद	कटरा फतूहला । लाहौर	१		०)
	५४५	बाबू केवलराम	सुपरिंटेंडेंट सिलकें । कानपुर	१		०)
	५४६	बाबू पन्नालालजी बरनामा	मैनेजर टीचर आर्यसमाज । लाहौर	१		०)
	५४७	बाबू भवानीसिंह	सेक्रेटरी आर्यसमाज । लाहौर	१		०)
	५४८	बाबू अलखधारीलाल	क्लर्क आफ लाजू इलेक्ट्रीसिटी लाइट वर्क्स कलकी जेल सर्विस । लाहौर	१		०)
	५४९	बाबू बीहारीलाल	क्लर्क श्री बाबू अमरनाथजी ओवरसियर कलकी जेल सर्विस । लाहौर	१		०)
	५५०	लाला गोकलचन्द	सजावटी आर्यसमाज मेंबर	१	०)	८)
	५५१	लाला धनीराम	फार्मेसिस्ट डिस्पेंसरी कैलास	१		१०)
	५५२	सती आर्यसमाज	कैलास	१		१०)
	५५३	लाला गणेशदास	प्रधान आर्यसमाज रावलपिंडी	१		०)
	५५४	भाई हरनामसिंह	क्लर्क श्री कपूरथला स्टेट मेंबर इंडो आर्यसमाज रावलपिंडी	१		१०)
	५५५	लाला अमरदास	रोजनलिस्ट मेंबर वेजीटेबल आर्यसमाज फिरोजपुर	१	०)	
	५५६	लाला मेलाराम	हिस्ट्री सब्जेक्ट्स टीचर फिरोजपुर	१	१०)	
	५५७	पंडित कुंदनलाल	जिला फिरोजपुर	१	१०)	
	५५८	लाला शमसेर सिंह बेटे राय दुलकसेंट	ओवरसीयर इंडस्ट्रीज आफिसर । सुलतान ।	१	१०)	
आरंभ से	५५९	लाला रणजितसिंह जी	हैड क्लर्क असिस्टेंट कमिश्नर साहब सर्किल नं० । सुलतान	१	१०)	
"	५६०	सरदारमल	असिस्टेंट इन्जीनियर सुलतान	१	१०)	
कम्पलेटली	५६१	लाला सज्जानसिंह	मैट्रीकुलेट स्कूल लाहौर	१	४)	
"	५६२	लाला सदानन्द	मैट्रीकुलेट स्कूल लाहौर	१	४)	
	५६३	लाला मुनालालजम-प्रेमचन्द राधवन्द कपूरिया	खजांचकली बाजार मंदिर के पास लाहौर	१	०)	
	५६४	बाबू लालचन्द	लाजवन्ती स्ट्रीट कूचा कोरेटां । फिरोजपुर	१	०)	
	५६५	राय रामसहाय सा-प्रेम	मकड़ा रेलिवेलेट कमियनर । फिरोजपुर	१	१०)	
	५६६	लाला शिवदयाल	रेलिवेलेट इन्जीनियर लैट रेलवे पर्वे कैम्प । लाला लाजपत ।	१	०)	
	५६७	लाला रामरक्खा	पब्लिक मैनेजमेंट आफिस डिं० पं० मेल दिल्ली रेलवे लाहौर ।	१	०)	
	५६८	बाबू आत्मारामजी	हेड मास्टर सिटी स्कूल फिरोजपुर	१	०)	
	६०	बाबू पालमीश्वर मुकुन्दी	ए. टी. एस. सैंट स्कूल अमृतसर	२	१०)	
	३२	बाबू बीरबल्ल सिं०	सेक्रेटरी इंडस्ट्रीज कोर्ट डिपार्टमेंट कोर्ट सेटर	३०	६०)	

श्री धन वेदभाष्य के सहायकों के नाम ।

संख्या	नाम	पता	किंमत रु०
४९३	लाला दयाल प्रसाद ...	सभी आर्यसमाज शीतल । पंजाब ...	१)
"	मुनशी चार्योदास ...	स्टेशन डिपार्टमेंट, सालकृ ...	१)
"	बाबू गा सुदेवप्रसाद ...	ग्रामक । अमीरे ...	१)

The following amounts have been received by Babu Harish Chandra Chintamani of Bombay.

	Rs. A.		Rs. A.
Lakshmi Sunker Parmanand,	4–8	Bhawani Vishwanath,	4–8
Soma Dass Bappu Dalvi,	4–8	Sam Narayan Nar Narayan,	4–8
Nilkant Mahadeo,	[illegible]	Krishnadass Madhowdass,	[illegible]
Sakharam Dinoba,	4–8	Ibrahim Moolji,	4–8
Dr. Atma Dhyeshwar Kosta,	4–8	Seljee Nagoba,	4–8
Mohabha Sunker Joy Sunker,	4–8	Ganeesh Sri Krishna,	4–8
Atma Ram Keswajee,	4–8	Ganesh Vithoba,	4–8
Purjeewandass Morarjee,	4–8	Ranchordass Premjee,	4–8
Javeri Lal Uma Sunker,	[illegible]	Jechangee Nathoobhoy,	4–8

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बनाये पुस्तकों की सूचना ॥

ऋग्वेदादिभाष्य भूमिकाप्रथमांक मू० (५) डाक महसूल =) बनारस लाजरस साहब । आर्यसमाज लाहौर या पं० स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास से मिलेंगे ।

	मूल्य पुस्तक प्रति	महसूल
१ सत्यार्थप्रकाश का	१॥)	१)
२ संस्कारविधि का	१।=)	=)
३ आर्याभिविनय का	॥)	-)
४ आर्योद्देश्यरत्नमाला	-)॥ रा० भ०	-)

इनमें से सत्यार्थप्रकाश का [illegible] तथा [illegible] के [illegible] तथा सत्यार्थ० संस्कार० आर्याभि० [illegible] और [illegible] स्वामी [illegible] आर्यसमाज लाहौर के पास से मिलते हैं ॥

वेदभाष्य [illegible] यन्त्रालय । स्वामी [illegible] समाज । [illegible] आर्यसमाज [illegible] के पास से और [illegible] से मिलता है । [illegible] के [illegible] भी मिलता है ॥

जो कोई [illegible] ग्राहक [illegible] पुस्तकों पर [illegible] रहित [illegible] ॥

[illegible] को सम्पूर्ण [illegible] पुस्तक [illegible] [illegible] मुंशी [illegible] साहब [illegible] के पास काशी अर्थात् बनारस में भेज देना चाहिये ।

REGISTERED No. 8.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

महर्षिदयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिता ।

॥ संस्कृतार्थसहिता सटिप्पणी च समन्विता ॥

अस्यैकैकस्य प्रतिमासे मूल्यम् भारतवर्षीयसर्वदेशीयभाषाभाष्य-
मूल्येन सहितम् ।=) द्वादशवारान् मिलित्वा
वार्षिकं ४) रूप्यकमुद्धरति ॥

इस ग्रंथ के प्रतिमास एक एक नंबर का मूल्य भारतवर्ष के भाषा
डाकमाशूल सहित ।=) फिरे वार्षिक मूल्य ४)

अस्य मन्त्रस्य यज्ञशर्म्मेन्द्रो वस्य मरुत्सु ऋग्वेदे ऋ० ऋ० साङ्गे
हरिश्चन्द्रविद्यालंकारो दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः ऋग्वेद
वार्षिक मन्त्र द्वयोरस्य प्रतिमासिकम् प्राप्स्यति ॥

अंक (१४)

॥ अथ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाः लोकसंकल्पार्थमेव संवत्सरे मुद्रिताः ॥

संवत् १९८४ ।

॥ अथ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाः मयाऽऽर्यभाषायां सर्वेषां स्वार्थाय एव रचिताः ॥

जिसके लिये सं० १९८५ वैशाख मास के अंक पर्यन्त पंजीयन वर्ष के भीतर
नगद मे पंडित स्वामी दयानन्द सरस्वती को निवाप करेंगे ।
वे वार्षिक मूल्य के लिये वे उस को व्यर्थ फेंक देंगे ।

कौन से पंक्ति से लेना	क्रमांक	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	संख्या पुस्तकें	मिलने स्थान	...
	९३५	राजू विद्यालंकार तूरी	अलखमलीगंज मुरादाबाद ..	१	८)-	
	९३८	लुनेसराय साहब ..	कलक्टरेट कलक्टर मुर्शा	१	४७)-	२)
	९३९	लाला नारायणदास	ठेकेदार मार्फत्त रेलवे लाहौर	१		२)
	९४४	तारा कृष्णचन्द्र ..	मार्फत्त पार्सल ऐं. भ. दिल्ली रेलवे लाहौर	१		२)
उत्तमाल	९४५	दलीपसिं	लाल पु. दर्जी ६ ग. कालेज, अमृतसर	१	४)-	
पारस से	९४६	लाला रामलाल ..	दयालसिंह मजीठियावाले मार्फत्त भाई वी. एस. रेलवे मुलतान	१	४)	
..	९४७	लाला शिवबुद्धराज ..	दिलकुश गोदामिलमें मार्फत्त भाई वी. एस. रेलवे मुलतान	१	७)	
पो. ... से	९४८	लाला मुकैलाल ..	कपड़ाकारा रेलवे कोटकाल पसरूर	१		२)
	९५८	बाबू दीनानाथ ..	मिडल स्कूल सारदर रसलनर ..	१		२)
	९५९	बाबू रामनाथ ..	डाकुमेंट मैसर्स ताज गवरमेंट कालेज लाहौर	१	४)-	
	९६७	कुमारी शिवसाहाय ..	डाकुमेंट मैसर्स ताज गवरमेंट कालेज लाहौर	१	४)-	
	९७५	मुंशी गुलाबसिंह ..	मैसर्स्रा पुस्तकफरा रेलवे सुपरवाइ	१	४)-	२)
	९७७	पंडित गौरीशंकर ..	नोटिस ला. मार्फत्त जी रेलवे मुरादाबाद	१	४७	
	९७९	लाला अल्लाभटाय ..	लाहौरवाली ब.सेलसमाज लाहौर ..	१		२)
	९७५	लाला माईदासाय ..	मुर्तिक्लब मोहल्ला डाकखाने रेलवे बजाज लाहौर	१	४)	
	९७७	बाबू मधु दत्त ओ	मकान नं. ६८ जैन ७८० पो. लाहौर	१		२)
	९८८	लाला गणेशदास	मार्फत्त पार्सल दर्जी ८ रेलवे स्टेशन लाहौर	१		२)
	९८९	लाला इलाहाबाद ..	रेलवे मोहल्ला पोस्ट मार्फत्त लाहौर	१		२)
	९९६	बाबू गणेशदास भट्टाचा	रेलवे क्लब दिल्ली छावनी लाहौर	१		२)
	९९७	पंडित रामस्वरूप ..	सिलकें दुकान डाकखाने पास लाहौर	१		२)
	९९८	पंडित रामदत्त ..	दुर्गा मैसर्स मुहल्ला गढ़ी जलंधर ..	१	८)-	
	९९९	बाबू मुकन्दा ..	गुरुद्वारा सिंघसभा गढ़ी जलंधर ..	१	८)-	
	१००	लाला कुलदत्तमल ..	जालंधरसे पार्सल सिंधु मैसर्स्रा मैसर्स दिल्ली रेलवे लाहौर ...	१	४)	
	१०१	लाला कर्मचंदलाल	सिलकें मार्फत्त ... मैसर्स्रा मैसर्स दिल्ली रेलवे लाहौर	१		२)
	१०२	लाला तुलसीराम ..	सिलकें कांग्रेस सेनिटरीवर्दी लाहौर मैसर्स्रा	१		२)
	१०३	भाई निहालसिंह ..	दिलकी दवाखी पोस्ट मैसर्स्रा मार्फत्त लाहौर मैसर्स्रा ..	१		२)
अमृतसर से	१०४	डा० मनोहरलाल ..	ब.स.ए डेन मार्फत्त मैसर्स्रा अमृतसर सिविलसर्जन .. अमृतसर	१	१२)	
	१०५	मास्टरनाजरलाहौर	मैसर्स्रा मार्फत्त मालगुदास अमृतसर	१	४)-	
	१०६	बाबू रामनाथ ..	सिगरेट कंपनीमें मार्फत्त अमृतसर मार्फ	१	४)-	
	१३५	पंडित रामदत्त ..	दर्जी ५ मार्फत्त मैसर्स्रा	१	४)	

॥ भाषार्थ ॥

वर्णाश्रमव्यवस्था भी गुणकर्मों के आधार विभाग से होती है इस में मनुस्मृति का भी प्रमाण है कि (शूद्रो ब्राह्मणता०) शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र हो जाता है अर्थात् गुण कर्मों के अनुकूल ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण रहता है सदा, जो ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र के गुण वाला हो तो वह क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हो जाता है वैसे शूद्र भी गुणी हो तो वह शूद्र रहता और जो इनसे गुणयुक्त हो तो यथायोग्य ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य हो जाता है वैसेही क्षत्रिय और वैश्य के विषय में भी जान लेना जो शूद्र को वेदादि पढ़ने का अधिकार न होता तो वह ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य के अधिकार को कैसे प्राप्त हो सकता इस से यह निश्चित जाना जाता है कि पच्चीसवें वर्ष सबों का अधिकार ठीक २ होता है क्योंकि पच्चीस वर्ष तक बुद्धी बढ़नी है इस लिये तभी समय गुण कर्मों की ठीक २ परीक्षा करके वर्णाधिकार होना उचित है ॥ १ ॥ तथा आपस्तम्बसूत्र में भी ऐसा लिखा है (धर्मचर्य्यया०) वर्णेषु धर्माचरण करने से नीचे के सभी पूर्व २ वर्णों के अधिकार को प्राप्त हो जाते हैं सो केवल जन्मने ही मात्र से नहीं किंतु जिस २ वर्ण को जिन २ वर्णों का अधिकार है उन्हीं के अनुसार (आपद्यसे जातिपरिवृत्तौ) से यथावत् प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ (अधर्मचर्य्यया०) तथा अधर्माचरण करने से पूर्व २ वर्ण नीचे २ के वर्णों के अधिकारों को प्राप्त होते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि वेदों के पढ़ने सुनने का अधिकार सब मनुष्यों को बराबर है ॥ इति संक्षेपतो ऽधिकारानधिकारविषयः ॥

॥ अथ पठनपाठनविषयः संक्षेपतः ॥

तदादौ पठनस्यारम्भे शिक्षारीत्या स्थानप्रयत्नस्वरज्ञानायाक्षरोच्चारणोपदेशः कर्त्तव्यः । येन नैव स्वरवर्णोच्चारणज्ञानविरोधः स्यात् । सदयथा । एतस्योच्चारणस्थानप्रयोगावेव कार्य्यम् । अस्योष्ठौ स्थानं स्पृष्टप्रयत्नइति वेदम् । एवमेव सर्वत्र । अत्र महाभाष्यकारः पतञ्जलिमहामुनिराह ॥

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो नतमर्थमाह । स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥ १ ॥

महाभाष्य० अ० १ पा० १ आ० १ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

अस्य स्थानप्रयत्नयोर्योगेनविनोच्चारणे कृतेऽक्षराणां यथार्थत्वकाणः पदानां लक्षितं च भवति । यथा गानक्षणे षड्जादिस्वरालापने

ऽन्यथोच्चारणं कुर्य्यात्तेत्सत्स्यैवापराधोभवेत् । तद्वद्वेदेष्वपि प्रयत्नेन सह स्वस्वस्थाने खलु स्वरवर्णोच्चारणं कर्त्तव्यम् । अन्यथा दुष्टः शब्दो दुःखदो ऽनर्थकश्च भवति । यथाग्रदुच्चारणमुल्लङ्घ्योच्चारितेशब्दे वक्तुरपराधश्च विज्ञायते । त्वं मिथ्याप्रयोगं कृतवानिति । नैव स मिथ्याप्रयुक्तः शब्दस्तमभिप्रेतमर्थमाह । तद्यथा । सकलं । शकलं । सकृत् शकृदिति । सकल शब्दः संपूर्णार्थवाची । शकलइति खण्डवाची च । एवं सकृदित्येकवारार्थवाची । शकृदिति मलार्थवाची चाच । सकारोच्चारणे कर्त्तव्ये शकारोच्चारणं क्रियते चेदेवं शकारोच्चारणे कर्त्तव्ये सकारोच्चारणं च । तदा स शब्दः स्वविषयं नाभिधत्ते । स वाग्वज्रो भवति । यमर्थं मत्वोच्चारणं क्रियते स शब्दस्तदभिप्रायनाशको भवति । लट्टङ्कारं यजमानं तदधिष्ठातारं च हिनस्ति । तेनार्थेन हीनं करोति । यथेन्द्रशत्रुरयं शब्दः स्वरस्यापराधाद्विपरीतफलोजातः । तद्यथा । इन्द्रः सूर्य्यलोकस्तस्य शत्रुरिव मेघः । अत्र इन्द्रशत्रुशब्दे तत्पुरुषसमासार्थमन्तोदात्ते कर्त्तव्ये आद्युदात्तकरणाद्बहुव्रीहिः समासः कृतो भवति । अस्मिन् विषये तुल्ययोगित्वात्कारेण मेघसूर्य्ययोर्वर्णनं कृतमिति ततो ऽर्थवैपरीत्यं जायते । उत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषो ऽन्यपदार्थप्रधानो बहुव्रीहिः समासो भवति । तत्र यस्येच्छा सूर्य्यस्य हन्तृत्वे ऽस्ति तेनेन्द्रशत्रुशब्दः कर्मधारयसमासेनान्तोदात्त उच्चारणीयः । यस्य च मेघस्य तेन बहुव्रीहिसमासमाश्रित्यादुदात्तस्वरश्चेति नियमोऽस्ति । अत्रान्यथात्वे कृते मनुष्यस्य दोष एव गण्यते । अतःकारणात्स्वरोच्चारणं वर्णोच्चारणं च यथावदेव कर्त्तव्यमिति ॥ १ ॥

॥ भाषार्थ ॥

पठन पाठन की आदि में लड़कों और लड़कियों को ऐसी शिक्षा करनी चाहिये कि वे स्थानप्रयत्न के योग से वर्णों का ऐसा उच्चारण करें कि जिससे सब को प्रिय लगे जैसे (प) इस के उच्चारण में दो प्रकार का ज्ञान होना चाहिये एक स्थान और दूसरा प्रयत्न का पकार का उच्चारण ओठों से होता है परंतु दो ओठों को ठीक २ मिला ही के पकार बोला जाता है इस का ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न है और जो किसी अक्षर के स्थान में कोई स्वर वा व्यंजन मिला हो तो उस को भी उसी २ के स्थान में प्रयत्न से उच्चारण करना उचित है इस का सब विधान व्याकरण और शिक्षा शास्त्र में लिखा है फिर इस विषय में पतंजलि महाभाष्यकार ने भी कहा है कि स्वर और वर्णों के उच्चारण में विपरीत होने से शब्द दुष्ट कहाता है अर्थात् वह मूल अर्थ को नहीं जनाता यथा (स वाग्वज्रो०) जैसे स्थान और प्रयत्न के योग के विना

शब्द का उच्चारण यथावत् करानेवाला नहीं होता वैसे ही स्वर से विपरीत उच्चारण और गानविद्या भी सुन्दर नहीं होती किंतु गान का करने वाला षड्जादि स्वरों के उच्चारण को उलटा कर देवे तो वह अपराध उसी का समझा जाता है इसी प्रकार वेदादि शास्त्रों में भी स्वर और वर्णों का उच्चारण यथा से होना चाहिये और जो उलटा उच्चारण किया जाता है वह (दुष्टः शब्दः) दुःख देने वाला और झूंठ समझा जाता है जिस शब्द का यथावत् उच्चारण न हो किंतु उस से विपरीत किया जाय तो वह बोलने वाले का गिना जाता है और विद्वान् लोग बोलने वाले से कहते हैं कि तूने इस शब्द का अच्छा उच्चारण नहीं किया इस से यह तेरे अभिप्राय को यथार्थ नहीं कह सकता जैसे (सकल) और (शकल) में देख लो अर्थात् (सकल) शब्द संपूर्ण का बोधक और जो उस में तालव्य शकार का उच्चारण किया जाय तो वही खंड का वाचक हो जाता है ॥ ऐसे ही सक्तु और शक्तु में देख सकार के उच्चारण से प्रथम क्रिया और उसी को तालव्य उच्चारण करने से भिन्न का बोध होता है इस लिये शब्दों का उच्चारण यथावत् करने से ही ठीक २ अर्थ का बोध होता है क्योंकि विपरीत उच्चारण से वह वक्ता के समान श्रोता के अभिप्राय का नाश करने वाला होता है सो यह दोष बोलने वाले का ही गिना जाता है जैसे (इन्द्रशत्रुः) यहां इकार में उदात्त स्वर बोलने से बहुव्रीहि समास और अन्यपदार्थ का बोध होता है तथा अन्तोदात्त बोलने में तत्पुरुष समास और उत्तरपदार्थ का बोध हो जाता है सूर्य्य का इन्द्र और मेघ का वृत्रासुर नाम है । इस के संबंध में वृत्रासुर अर्थात् मेघ का अवयव तुल्य योगिता अलंकार से किया है जो इन्द्र अर्थात् सूर्य्य की उत्तमता चाहे वह समास पक्ष के स्थान में अन्तोदात्त उच्चारण करे और जो मेघ की वृद्धि चाहे वह आद्युदात्त उच्चारण करे इसलिये स्वर का उच्चारण भी यथावत् करना चाहिये ॥

तथा भाषणव्यवहारासनगमनोत्थानभोजनाध्ययनविचाराद्यैरोजनादीनामपि शिक्षा कर्त्तव्यैव । अर्थज्ञानेन सहैव पठने क्रमे परमोत्तमं फलं प्राप्नोति । परंतु यो न पठति तस्मात्त्यं पाठमाचक्षाण्यूत्तमो भवति । यस्तु खलु शब्दार्थसंबन्धविज्ञानपुरस्सरमधीते स उत्तमतरः । यश्चैवं वेदान् पठित्वा विज्ञाय च शुभगुणकर्माचरणेन सर्वोपकारी भवति स उत्तमतमः । अथ प्रमाणानि

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ २ ॥
ऋ० मं० १ । सू० १६४ । मं० ३९ ॥ स्थाणुरयं भारहारः किलाभू-

दधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् । योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥ ३ ॥ यस्त्रयीमविज्ञातं निगदेनैव शब्दते । अनम्नाविव शुष्कैधोन तज्ज्वलति कर्हि चित् ॥ ४ ॥ निरु० अ० १ खं० १८ ॥

उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् । उतो त्वस्मै तन्वं१विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ५ ॥ उतत्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु । अधेन्वाचरति मायया३ष वाचं शुश्रुवां२ अफलामपुष्पाम् ॥ ६ ॥ ऋ० मंड० १० सू० ७१ मं ४ । ५ ॥ ॥ भाष्यम् ॥

अमि० अर्थज्ञानेन विनाऽध्ययनस्य निषेधः क्रियत इति (ऋचो अक्षरे०) यस्मिन् विनाशरहिते परमोत्कृष्टे व्योमवद्व्यापके ब्रह्मणि । चत्वारोवेदाः पर्य्यवसितार्थाः सन्ति ऋगुपलक्षणं चतुर्णां वेदानां यदर्थम् । तत् किं ब्रह्मेत्याह । यस्मिन् विश्वेदेवाः सर्वे विद्वांसो मनुष्या इन्द्रियाणि च । सूर्य्योदयश्च सर्वे लोका अधिनिषेदुर्यदा धारेण निषण्णाः स्थितास्तद्वृक्ष विद्धीयम् । (यस्तं न वेद०) यः खलु तं न जानाति सर्वोपकारकरणार्थोयामीश्वराज्ञायां यथावन्न वर्त्तते स पठितयाऽपि ऋचा वेदेन किं करिष्यति नैवायं कदाचिद्वेदार्थविज्ञानलाभं किमपि फलं प्राप्नोतीत्यर्थः । (यस्तद्विदुस्त इमे समासते) ये चैवं तद्वृक्ष विदुस्त इह धर्मार्थकाममोक्षाख्यं फलं सम्यक् प्राप्नुवन्ति । तस्मात्सार्थकमेव वेदादीनामध्ययनं कर्त्तव्यम् ॥ २ ॥ (स्थाणुरयं०) यः पुमान् वेदमधीत्य पाठमात्रं पठित्वाऽर्थं न जानाति स विज्ञायापि धर्मं नाचरति । स मनुष्यः स्थाणुः काष्ठस्तंभवद्वर्त्तते । अर्थाज्ज्ञाद्वर्त्तिष्यो भारवाहश्च । यथा कश्चिन्मनुष्यः पशुश्च भारमात्रं वहं स्तन्न भुङ्क्ते । किं तु तेनोढं घृतमिष्टकस्तूरीकेशरादिकं कश्चिद्भाग्यवानन्यो मनुष्यो भुङ्क्ते । योऽर्थविज्ञानशून्यमध्ययनं करोति स भारवाहवत् । (किलाभूत्) भवतीति मन्तव्यम् । (योऽर्थज्ञ०) योऽर्थस्य ज्ञाता वेदानां शब्दार्थसम्बन्धविद्भूत्वा धर्माचरणो भवति । स वेदार्थज्ञानेन (विधूतपाप्मा) पापरहितः सन्मरणात्प्रागेव (सकलं) संपूर्णं (भद्रं) भजनीयं सुखं (अश्नुते) प्राप्नोति पुनश्च शरीरं त्यक्त्वा (नाकमेति) सर्वं-

दुःखरहितं मोक्षाख्यं ब्रह्मपदं प्राप्नोति । तस्माद्वेदानामर्थज्ञानपूर्वमनुष्ठानपूर्वकमेवाध्ययनं कर्तव्यम् ॥ ३ ॥ (यद्दृष्टान्तमभिप्रेत्य) येन मनुष्येण यदर्थज्ञानशून्यं वेदाध्ययनं क्रियते । किंतु (निगदेन) पाठमात्रेणैव (शब्द्यते) कथ्यते तत् (कर्हिचित्) कदाचिदपि (न ज्वलति) न प्रकाशते । अस्मिन् किंमिव (अनग्नाविव शुष्कैधः) अविद्यमानाग्निकेऽस्थले शुष्कं काष्ठं प्रज्वलनाभिबन्धनमिव । यथा अनग्नौ शुष्काणां काष्ठानां स्थापनेनाग्निर्न प्रकाशो न जायते तादृशमेव तदध्ययनमिति ॥ ४ ॥ (उतत्वः पश्यन्न ददर्श०) अपि खल्वे कोऽपि वाचं शब्दं पश्यन्नर्थं न पश्यति (उतत्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्) उ इति वितर्के कश्चिन्मनुष्यो वाचं शब्दमुच्चारयन्नपि न शृणोति तदर्थं न जानाति । यथा तेनोच्चारिता श्रुताऽपि वाक् अविदिता भवति तथैवार्थज्ञानविरहमध्ययनमिति मंत्रार्द्धेनाविद्वल्लक्षणमुक्तम् । (उतो त्वस्मै) यो मनुष्योऽर्थज्ञानपूर्वकं वेदानामध्ययनं करोति तस्मै (वाक्) विद्या (तन्वं) शरीरं स्वस्वरूपं (विसस्रे) विविधतया प्रकाशयति कस्मै वा किं कुर्वतीव (जायेव पत्य उशतीसु वासः) यथा शोभनानि वासांसि वस्त्राणि धारयन्ती पतिं कामयमाना स्त्री स्वस्वामिने स्वमात्मानं शरीरं प्रकाशयति । तथैवार्थज्ञानपूर्वकाध्ययनकर्त्रे मनुष्याय विद्या स्वमात्मानं स्वस्वरूपमीश्वरमारभ्य पृथिवीपर्यन्तानां पदार्थानां ज्ञानमयं प्रकाशयतीत्यर्थः ॥ ५ ॥ (सख्ये) यथा सर्वेषां प्राणिनां मित्रभावकर्मणि (उतत्वं) अन्यमनुष्यानं पूर्णविद्यायुक्तं (स्थिरपीतं) धर्मानुष्ठानेश्वरप्राप्तिरूपं मोक्षफलं पीतं प्राप्तं येन तं विद्वांसं परमसुखप्रदं मित्रं (आहुः) वदन्ति । (नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु) हेदृशं विद्वांसं कोऽपि मंत्रिचिह्नव्यवहारे कैऽपि नाहिंसन्ति तस्य सर्वप्रियकारकत्वात् । तथैव नैव कैवित्प्रश्नोत्तरादयोव्यवहारा वाजिनेषु विहङ्गवादिषु शुभगुणेष्वपि मनुष्येष्वनर्थविज्ञानसहितस्याध्यापारमनुष्यं हिन्वन्ति तस्य सत्यविद्यान्वितया कामदुघा वाचा सह वर्तमानत्वेन । सत्यविद्यासुमनस्वान्वितत्वात् । इत्यनेन मंत्रपूर्वार्धेन विद्वत्प्रशंसोच्यते । अर्थेतन्मंत्रोत्तरार्द्धेनाविद्वल्लक्षणमाह (अधेन्वा चरति) यतो योऽविद्वान् (अपुष्याम्) कर्मोपासनानुष्ठानाचारविहारहितां (अफलां) धर्मेश्वरविज्ञानाचारविरहां वाचं शृण्वान् श्रुतवान् तथाऽर्थं विचारहितया भ्रमसहितया (मायया) कपटयुक्तया बाधास्मिन्लोके चरति । नैव स मनुष्यजन्मनि स्वार्थपरोपकाराख्यं च फलं किंचिदपि प्राप्नोति । तस्मादर्थज्ञानपूर्वकमेवाध्ययनमुत्तमं भवतीति ॥ ६ ॥

॥ भाषार्थ ॥

ऐसे लड़कों और लड़कियों को बोलने सुनने चलने बैठने उठने खाने पीने पढ़ने विचारने तथा पदार्थों के जानने और खोजने आदि की शिक्षा भी करनी चाहिये क्योंकि अर्थज्ञान के विना पढ़े कोई भी उत्तम फल को प्राप्त नहीं हो सकता परंतु कुछ भी नहीं पढ़ने वाले से तो पाठमात्र जानने वाला ही श्रेष्ठ है जो वेदों को अर्थ सहित यथावत् पढ़ के शुभ गुणों का ग्रहण और उत्तम कर्मों को करता है वही सब से उत्तम होता है इस विषय में वेदमंत्रों के बहुत प्रमाण हैं जैसे (ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्) यहां इन मंत्रों से अर्थज्ञान के विना पढ़ने का निषेध किया जाता है (य०) जिस का विनाश कभी नहीं होता और जो सब से श्रेष्ठ आकाशवत् व्यापक सब में रहने वाला परमेश्वर है जिसने अर्थ सहित चारों वेद विद्यमान तथा जिस का उत्पन्न किया हुआ सब जगत् है वह ब्रह्म क्या वस्तु है (उ०) (यस्मिन्देवा०) जिस में संपूर्ण विद्वान् लोग सब इन्द्रियां मंत्र मनुष्य और सब सूर्य्यादिलोक-स्थित हैं वह परमेश्वर कहाता है जो मनुष्य वेदों को पढ़ के ईश्वर को न जाने तो क्या वेदार्थ जानने का फल उस को प्राप्त हो सकता है। कभी नहीं इस लिये जैसा वेदविषय में लिख आये हैं वैसा व्यवहार करने वाले मनुष्य अत्यंत आनन्द को प्राप्त होते हैं परंतु जो कोई पाठ मात्र ही पढ़ता है वह उत्तम सुख को प्राप्त कभी नहीं हो सकता इस कारण से जो कुछ पढ़ें सो अर्थ ज्ञानपूर्वक ही पढ़ें ॥ २ ॥ (स्थाणु०) जो मनुष्य वेदों को पढ़ के उन के अर्थ को नहीं जानता वह उन के सुख को न पाकर भार उठाने वाले पशु अथवा वृक्ष के समान है जो कि अपने फल फूल डाली आदि को विना गुण बोध के बढ़ा रहे हैं किन्तु जैसे उन के सुख को भोगने वाला कोई दूसरा भाग्यवान् मनुष्य होता है वैसे ही पाठ के पढ़ने वाले भी परिश्रमरूप भार को तो उठाते हैं परन्तु उन के अर्थज्ञान से आनन्द-स्वरूप फल को नहीं भोग सकते (योऽर्थज्ञः) और जो अर्थ का जानने वाला है वह अधर्म से बच कर धर्मात्मा होके जन्म मरण रूप दुःख का त्याग करके संपूर्ण सुख को प्राप्त होता है क्योंकि जो ज्ञान से पवित्रात्मा होता है वह (नाकमेति) सर्व दुःख रहित होके मोक्षसुख को प्राप्त होता है इसी कारण वेदादिशास्त्रों को अर्थज्ञानसहित पढ़ना चाहिये ॥ ३ ॥ (यदक्षीत०) जो मनुष्य केवल पाठ मात्र ही पठन किया करता है उसका वह पढ़ना अन्धकाररूप होता है (अनग्नाविव शुष्कैधो०) जैसे अग्नि के विना सूखे इंधन में दाह और प्रकाश नहीं होता वैसे ही अर्थज्ञान के विना अध्ययन भी ज्ञानप्रकाश रहित रहता है वह पढ़ना अविद्यारूप अन्धकार का नाश कभी नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ (इतस्त्वः पश्यन्न ददर्श वाचम्०) विद्वान् और अविद्वान् का यही लक्षण है कि जिस किसी को पढ़ सुन के भी शब्द अर्थ और संबंध का यथार्थ ज्ञान न हो

वह मूर्ख अर्थात् अविद्वान् है (यस्तोक्षमे०) और जो मनुष्य शब्द अर्थ संबंध तथा विद्या के प्रयोजन को यथावत् जान ले वह पूर्ण विद्वान् कहाता है ऐसे ही श्रेष्ठ पुरुष को विद्या के स्वरूप के ज्ञान से परमानन्दरूप फल भी होता है (जायेव पत्य उशतीसुवासाः) अर्थात् जैसे पतिव्रता स्त्री अपने ही पति को अपना शरीर दिखलाती है वैसे ही सर्व ज्ञानेच्छा से विद्वान् ही को विद्या भी अपने रूप का प्रकाश करती है ॥ ५ ॥ (इमत्वं सख्ये०) सब मनुष्यों को उचित है कि विद्वानों के साथ प्रीति करें अर्थात् जैसे संपूर्ण मनुष्यों के मैत्री करने योग्य मनुष्य को सब लोग सुख देते हैं वैसे ही तू भी जो वेदादि विद्या और विज्ञानयुक्त पुरुष है उस को अच्छी प्रकार सुख दे कि जिस से तुझे विद्यारूप लाभ सदा होता रहे विद्वान् नाम उस का है जो कि अर्थ सहित विद्या को पढ़ के वैसा ही आचरण करे कि जिस से धर्म अर्थ काम मोक्ष और परमेश्वर की प्राप्ति यथावत् हो सके इसी को स्थिरमति कहते हैं ऐसा जो विद्वान् है वह संसार को सुख देनेवाला होता है (नैनं हिन्व०) उस को कोई भी मनुष्य दुःख नहीं दे सकता क्योंकि जिस के हृदय में विद्यारूप सूर्य्य प्रकाशित हो रहा है उस को दुःखरूप और दुःख कभी नहीं दे सकते (यमेन्वत्र०) और जो कोई अविद्यारूप अर्थात् अर्थ और अभिप्राय रहित प्राणी को सुनता और कहता है उस को कभी कुछ भी सुख प्राप्त नहीं हो सकता किंतु शोकरूप शत्रु उस को सब दिन दुःख ही देते रहते हैं क्योंकि विद्याहीन होने से वह उन शत्रुओं को जीतने में समर्थ नहीं हो सकता इसलिये अर्थ ज्ञानसहित ही पढ़ने से मनचाहा सुखलाभ होता है ॥ ६ ॥

मनुष्यैर्वेदार्थविज्ञानाय व्याकरणाष्टाध्यायीमहाभाष्याध्ययनम् । ततो निघण्टुनिरुक्तछन्दोज्योतिषां वेदाङ्गानाम् । ततो मीमांसावैशेषिकन्याय योगसांख्यवेदान्तानां वेदोपाङ्गानां षण्णां शास्त्राणाम् । तत ऐतरेयशतपथसामगोपथब्राह्मणानामध्ययनं च कृत्वा वेदार्थपठनं कर्त्तव्यम् । यद्वा एतत्सर्वमधीतवद्भिः कृतं वेदव्याख्यानं दृष्ट्वा च वेदार्थज्ञानं सदा कर्त्तव्यमिति । कुतः । नाविदन्मनुते तं बृहन्तमिति । यो मनुष्यो वेदार्थान्न वेत्ति सनेव तं बृहन्तं परमेश्वरं यमं विद्यासमूहं वा वेत्तुमर्हति । कुतः सर्वासां विद्यानां वेद एवाधिकरणमस्त्यतः । नहि समधिगतायकस्यचित्सत्यविद्याप्राप्तिर्भवितुमर्हति । यद्यत् किंचिद्भूगोलमध्ये पुस्तकान्तरेषु हृदयान्तरेषु वा सत्यविद्याविज्ञानसमूहं भवति भविष्यति च तत् सर्वं वेदादेव प्रसृतमिति विज्ञेयम् । कुतः । यद्यद्यथार्थं विज्ञानं तत्तदीश्वरेण वेदेष्वधिकृतमस्ति । तद्वारैरान्यैश्च कुतश्चित्सत्यप्रकाशो भवितुं योग्यः । अतो वेदार्थविज्ञानाय सर्वैर्मनुष्यैः प्रयत्नोऽनुष्ठेय इति ॥

॥ भाषार्थ ॥

मनुष्य लोग वेदार्थ जानने के लिये अर्थ योजनासहित व्याकरण अष्टाध्यायी धातु पाठ उणादिगण गणपाठ और महाभाष्य । शिक्षा कल्प निर्घंटु निरुक्त छन्द और ज्योतिष । ये छः वेदों के अंग, मीमांसा वैशेषिक, न्याय, योगसांख्य और वेदान्त । ये छः शास्त्र, जो वेदों के उपांग । अर्थात् जिन से वेदार्थ ठीक २ जानाजाता है । तथा ऐतरेय शतपथ साम और गोपथ । ये चार ब्राह्मण, इन सब ग्रंथों को क्रम से पढ़ के अथवा जिन्हों ने उन संपूर्ण ग्रंथों को पढ़ के जो सत्य २ वेद व्याख्यान किये हों उन को देख के वेद का अर्थ यथावत् जान लेवें क्योंकि (नावेदविन्०) वेदों को नहीं जाननेवाला मनुष्य परमेश्वरादि सब पदार्थ विद्याओं को अच्छी प्रकार से नहीं जान सकता और जो २ जहां २ भूगोलों वा पुस्तकों अथवा मन में सत्यज्ञान प्रकाशित हुआ है और होगा वह सब वेदों में से ही हुआ है क्योंकि जो २ सत्यविज्ञान है सो २ ईश्वर ने वेदों में धर रक्खा है इसी से दूसरा अन्य स्थानों में भी प्रकाश होता है और विद्या के विना पुरुष आंधे के समान होता है इस से संपूर्ण विद्याओं के मूल वेदों को विना पढ़े किसी मनुष्य को यथावत् ज्ञान नहीं हो सकता इसलिये सब मनुष्यों को वेदादि शास्त्र अर्थ ज्ञान सहित अवश्य पढ़ने चाहियें ॥

इति पठनपाठनविषय संक्षेपतः ॥

अथ संक्षेपतो भाष्यकरणशङ्कासमाधानादिविषयः ॥

(प्रश्नः) किंच मो नवीनं भाष्यं त्वया क्रियत आहोस्विन्पूर्वाचार्यैः कृतमेव प्रकाश्यते । यदि पूर्वैः कृतमेव प्रकाश्यते तर्हि तत् पिष्टपेषणदोषेण दूषितत्वान्न केनापि ग्राह्यं भवतीति । (उत्तरं) पूर्वाचार्यैः कृतं प्रकाश्यते । तद्यथा । यानि पूर्वदेवैर्विद्वद्भिर्ब्रह्मणमारभ्य याज्ञवल्क्यान्तैर्याज्ञिकैर्जैमिन्यन्तैर्ऋषिभिश्चैतरेयशतपथादीनि भाष्याणि रचितान्यासन् । तथा । यानि पाणिनिपतञ्जलिव्यासादिमहर्षिभिश्च वेदव्याख्यानानि वेदाङ्गाख्यानि कृतानि । यत्रमेव जैमिन्यादिभिर्वेदोपाङ्गाख्यानि षट् शास्त्राणि । यत्रमुपवेदाख्यानि । तथैव वेदशाखाख्यानि चरचितानि सन्ति । एतेषां संग्रहभावेणैव सत्योऽर्थः प्रकाश्यते । न चाप किंचिदप्रमाणं नवीनं स्वेच्छया रच्यत इति । (प्रश्नः) किमनेन फलं भविष्यतीति (उ०) यानि रावणोवटसायणमहीधरादिभिर्वेदार्थविरुद्धानि भाष्याणि कृतानि यानि चैतदनुसारेणेङ्गलण्डदेशस्थैर्यूरोपखण्डदेशनिवासिभिः स्वदेशभाषया स्वल्पानि व्याख्यानानि कृतानि । तथैवार्य्यावर्त्तदेशस्थैः केश्चित्तदनुसारेण प्राकृतभाषया व्याख्यानानि कृतानि वा क्रियन्ते च तानि सर्वाण्यनर्थगर्भाणीति मन्तव्यम् ।

नानां हृदयेषु यथावत् प्रकाशो भविष्यति दीकानामधिकदोषप्रसिद्धिः स्यागच्च । परंत्वयमस्माभावानेषां दोषाणामत्र स्यालीपुलाकन्यायवत् प्रकाशः क्रियते । तद्यथा । यत् सायणाचार्य्येण वेदानां परममर्थमविज्ञाय सर्ववेदाः क्रियाकाण्डपरत्वेन व्याख्याताः सन्तीत्युक्तम् । तदन्यथास्ति । कुतः । तेषां सर्वेषिद्धान्तितत्वात् । सत्तु पूर्वं संक्षेपतो लिखितमस्ति । यतावतैवास्य कथनं व्यर्थमस्तीत्यवगन्तव्यम् । (इन्द्रं मित्रं०) अस्य मंत्रस्यार्थोऽन्यथैव वर्णितः । तद्यथा । तेन चेन्द्रशब्दो विशेष्यतया गृहीतो मित्रादीनि च विशेषणतया । अत्र खलु विशेष्येऽग्निशब्द इन्द्रादीनां विशेषणानां संगेऽन्वितो भूत्वा पुनः स यत्र यद्गुणप्रकाशविशेषणं भवत्येवमेव विशेष्यं प्रतिविशेषणं पुनः पुनरन्वितं भवतीति । नचैवं विशेषणम् ॥ एवमेव यत्र यानि सप्तसंख्यकान्येकस्य विशेष्यस्य विशेषणानि भवेयुः । तत्र विशेष्यस्य पुनः पुनरुच्चारणं प्रयाति विशेषणस्येच्चारणेनैव सर्वेषाञ्च मंत्रे परमेश्वरेणाग्निशब्दो द्विरुच्चारितो विशेष्यविशेषणाभिप्रायत्वात् । इदं सायणाचार्य्येण नैव क्षुद्रबुद्धिस्थस्य भ्रान्तिरेव जातेति वेद्यम् । निरुक्तकारेणाप्यग्निशब्दो विशेष्यविशेषणत्वेनैव दर्शितः । तद्यथा । इममेवाग्निं सप्तान्तमात्मानमेकमात्मानं बहुधा मेधाविनो वदन्तीन्द्रं मित्रं वरुणमित्यादि० निरु० अ० ७ खं० १८ ॥ स चैकस्य सद्वस्तुनो ब्रह्मणो नामास्ति । तस्मादन्यादीनीश्वरस्य नामानि सन्तीति बोध्यम् । तथाच । तस्मात्सर्वैरपि परमेश्वर एव ह्रियते । यथा राज्ञः पुरोहितः सदभीष्टं संपादयति । यद्वा यस्य संबन्धिनि पूर्वेभागे आङ्गनीयरूपेणावस्थितमित्युक्तमिदमपि पूर्वापरविरुद्धमस्ति । तद्यथा । यदैतैर्नामभिः परमेश्वर एव ह्रियते चेत्पुनस्तेन होमसाधक आङ्गनीयरूपेणावस्थितो भौतिकोऽग्निः किमर्थो गृह्यते । तस्येदमपि वचनं भ्रममूलमेव । कोऽपि ब्रूयात्सायणाचार्य्येण यद्यपीन्द्रादयस्तत्र ह्रियन्ते तथापि परमेश्वरस्यैवेन्द्रादिरूपेणावस्थानादविरोधः ॥ इत्युक्तत्वाददोषइति चेत्तत्राग्रे वक्ष्यामः । यदीन्द्रादिभिर्नामभिः परमेश्वर एवोच्यते तर्हि परमेश्वरस्येन्द्रादिरूपावस्थितिरनुचिता । तद्यथा अजयत्पात् । सप्तर्य्यगाच्छुक्रमकायमित्यादिप्रमाणेन परमेश्वरस्य जन्ममरणत्वशरीरधारणादिनिषेधात्तत्कथनमप्यशुद्धमस्ति । एवमेव सायणाचार्य्यकृतभाष्यदोषवहवः सन्ति । अग्रे यत्र यत्र यस्य यस्य मंत्रस्य व्याख्यानं करिष्यामस्तत्र तत्र तद्भाष्यदोषान्प्रकाशयिष्यामइति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(प्रश्न) क्यों जी तो तुम यह वेदों का भाष्य बनाने हो सो पूर्व आर्य्यों के भाष्य के समान बनाते हो वा नवीन, जो पूर्व रचित भाष्यों के समान है सब तो बनाना व्यर्थ है क्योंकि वे तो पहिले ही से बने बनाये हैं और जो नया बनाते हो तो उस को कोई भी न मानेगा क्योंकि जो विना प्रमाण के केवल अपनी ही कल्पना से बनाना है यह बात कब ठीक हो सकती है (उत्तर) यह भाष्य प्राचीन आर्य्यों के भाष्यों के अनुकूल बनाया जाता है परन्तु जो रावण उवट सायण और महीधर आदि ने भाष्य बनाये हैं वे सब मूलमंत्र और ऋषिकृत व्याख्यानों से विरुद्ध हैं मैं वैसा भाष्य नहीं बनाता क्योंकि उन्होंने वेदों की सत्यार्थता और अपूर्वता कुछ भी नहीं जानी। और जो यह मेरा भाष्य बनता है सो तो वेद वेदांग ऐतरेय शतपथ ब्राह्मणादि ग्रंथों के अनुसार होता है॥ क्योंकि जो २ वेदों के सनातन व्याख्यान हैं उन के प्रमाणों से युक्त बनाया जाता है यही इस में अपूर्वता है क्योंकि जो २ प्रामाण्याप्रामाण्यविषय में वेदों से भिन्न शास्त्र सिद्ध आये हैं वे सब वेदों के ही व्याख्यान हैं वैसेही ग्यारहसौ सत्तरह ११७९ वेदों की शाखा भी उन के व्याख्यान ही हैं उन सब ग्रंथों के प्रमाणयुक्त यह भाष्य बनाया जाता है और दूसरा इस के अपूर्व होने का कारण यह भी है कि इस में कोई बात अप्रमाण वा अपनी रीति से नहीं लिखी जाती और जो २ भाष्य उवट सायण महीधरादि ने बनाये हैं वे सब मूलार्थ और सनातन वेदव्याख्यानों से विरुद्ध हैं तथा जो २ इन नवीन भाष्यों के अनुसार अंग्रेजी जर्मनी इतिणी और बंगाली आदि भाषाओं में वेदव्याख्यान बने हैं वे भी अशुद्ध हैं जैसे देखो सायणाचार्य्य ने वेदों के श्रेष्ठ अर्थों को नहीं जान कर कहा है कि सब वेद क्रियाकाण्ड का ही प्रतिपादन करते हैं यह उन की बात मिथ्या है इस के उत्तर में जैसा कुछ इसी भूमिका के पूर्व प्रकरणों में संक्षेप से लिख चुके हैं सो देख लेना वैसे ही (इन्द्रं मित्रं०) सायणाचार्य्य ने इस मंत्र का अर्थ भी भ्रान्ति से विगाड़ा है क्योंकि उन ने इस मंत्र में विशेष्य विशेषण की अच्छी रीति से नहीं समझ कर इन्द्र शब्द को तो विशेष्य करके वर्णन किया और मित्रादि शब्द उस के विशेषण ठहराये हैं यह उन को बड़ा भ्रम हो गया क्योंकि इस मंत्र में अग्नि शब्द विशेष्य और इन्द्रादि शब्द उस के हो विशेषण हैं इसलिये विशेषणों का विशेष्य के साथ अन्वय हो कर पुनः दूसरे २ विशेषण के साथ विशेष्य का अन्वय कराना होता और विशेषण का एक वार विशेष्य के साथ अन्वय होता है इसी प्रकार जहां २ एक के सैकड़ों वा हजारों विशेषण होते हैं वहां २ भी विशेष्य का सैकड़ों वा हजारों वार उच्चारण होता है वैसे ही इस मंत्र में विशेष्य की इच्छा से ईश्वर ने अग्नि शब्द का दो वार उच्चारण किया और अग्नि आदि ब्रह्म के नाम कहे

है यह ज्ञान सायणाचार्य्य ने नहीं जाना इस से उन की यह भ्रांति मिट्ठु है इसी प्रकार निरुक्तकार ने भी अग्नि शब्द को विशेष ही वर्णन किया है (इममेवाग्निं०) यहां अग्नि नाम एक सद वस्तु ब्रह्म ही के हैं क्योंकि इन्द्रादि शब्द अग्नि के विशेषण और अग्नि आदि ब्रह्म के नाम हैं ऐसे ही सायणाचार्य्य ने और भी अद्भुत मंत्रों की व्याख्याओं में शब्दों के अर्थ उलटे किये हैं तथा इनने सब मंत्रों से परमेश्वर का ग्रहण कर रक्खा है जैसे राजा का पुरोहित राजाही के हित का काम सिद्ध करता है अथवा जो अग्नि मन्त्र के संबंधि प्रथम भाग में ग्रहण करने के लिये है उसी रूप में ईश्वरस्थित है यह सायणाचार्य्य का कथन असंभव और पूर्वापर विरोधी होकर आगे पीछे के संबंध को तोड़ता है क्योंकि सब सब नामों से परमेश्वर ही का ग्रहण करते हैं तो फिर जिस अग्नि में ग्रहण करते हैं उस को किस लिये ग्रहण किया है और कदाचित् कोई कहे कि जो सायणाचार्य्य ने यहां इन्द्रादि देवताओं का ही ग्रहण किया हो तो उस में कुछ भी विरोध नहीं आ सकता इस का उत्तर यह है कि सब इन्द्रादि नामों से परमेश्वर ही का ग्रहण है सो सब निराकार सर्वशक्तिमान् व्यापक और अजन्मा होने से अलग अलग भिन्न २ व्यक्ति वाला कभी नहीं हो सकता क्योंकि वेदों में परमेश्वर का एक अज और अकाय अर्थात् शरीरसंबंध रहित आदि गुणों के साथ वर्णन किया है इस से सायणाचार्य्य का कथन सत्य नहीं हो सकता इसी प्रकार सायणाचार्य्य ने जिस २ मंत्र का अन्यथा व्याख्यान किया है सो सब क्रमपूर्वक आगे उन मंत्रों के व्याख्यान में लिख दिया जायगा ॥

॥ भाष्यम् ॥

एवमेव महीधरेण महानर्थकरः वेदार्थदूषकः वेददीपाख्यः विवरणः कृतः तस्यापीह दोषादिप्रदर्शनवत्प्रदर्श्यन्ते ॥ ॥ भाषार्थः ॥

इसी प्रकार महीधर ने भी यजुर्वेद पर मूल से अत्यंत विरुद्ध व्याख्यान किया है इस में से सत्यासत्य की परीक्षा के लिये उन के कुछ दोष यहां भी दिखलाते हैं ॥

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसोमम॥ आ ऽहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ॥ १ ॥ यजुः० अ० २३ मं० १९ ॥

॥ भाष्यम् ॥

अस्य मंत्रस्य व्याख्याने तेनोक्तमस्मिन्मंत्रे गणपतिशब्दाद्ब्रह्मणो वा-चो ग्रहीतव्य इति । तदयुक्तं । महिधी यज्ञमानस्य पत्नी यज्ञशालायां पश्यतां

सर्वेषामृत्विजामश्वसमीपे शेते तथाऽहं सत्याह हे अश्व गर्भं गर्भं दधाति गर्भं गर्भधारकं रेतः अहं आ अजानि आकृष्य क्षिपामि त्वं च गर्भं रेतः आ अजासि आकृष्य क्षिपसि ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(गणानां०) इस मंत्र में महीधर ने कहा है कि गणपति शब्द से घोड़े का ग्रहण है सो ऐसेा महीधर का उलटा अर्थ कि सब ऋत्विजों के सामने यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोवे और मीसी हुई घोड़े से कहे कि हे अश्व जिस से गर्भधारण होता है ऐसा जो तेरा वीर्य्य है उस को मैं खैंच के अपनी योनि में डालूं तथा तू उस वीर्य्य को मुझ में स्थापन करने वाला है ॥ अब सत्यार्थः—

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे इति। ब्राह्मणस्पत्यं ब्रह्म वै ब्रह्मस्पतिर्ब्रह्मणैवैनं तद्भिषज्यति प्रथश्च यस्य स प्रथश्च नामेति । ऐत० पं० १ कं० २१ ॥ प्रजापतिर्वै जमदग्निः सोऽश्वमेधः। सर्वं वाश्वो विडितरे पशवः । सर्वस्यैतद्रूपं यद्धिरण्यं ज्योतिर्वै हिरण्यम् । श० कां० १३ अ० २ ब्रा० ११ कं० १४ । १५ । १६ । १७ ॥ नवै मनुष्यः स्वर्गं लोकमंजसा वेदाश्वो वै स्वर्गं लोकमंजसा वेद । श० कां० १३ अ० २ ब्रा० १२ कं० १। राष्ट्रमश्वमेधो ज्योतिरेव तद्राष्ट्रे दधाति सर्वायैव तद्दिशं छन्दानुकरामनुवर्तमानं करोति । अथोसर्वं वा अश्वः सर्वस्यैतद्रूपं यद्धिरण्यं सर्वमेव तत्सर्वेण समर्धयति विशमेव तद्दिशा समर्धयति । श० कां० १३ अ० २ ब्रा० ११ कं० १५ । १६ । १७ ॥ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे इति । पत्न्यः परियन्त्यध्वन एवास्मा एतद्गो ऽन्येवास्मैद्धुवते ऽथो ध्रुवत एवैनं चिःपरिवन्ति त्रयो वा इमे लोका एभिरेवैनं लोकैर्ध्रुवते चिः पुनः परियन्ति षट् संपद्यन्ते षड्वा ऋतव ऋतुभिरेवैनं ध्रुवते अप वा एतेभ्यः प्राणाः क्रामन्ति ये यज्ञे ध्रुवं तन्वते नवकृत्वः परियन्ति नव वै प्राणाः प्राणानेवात्मं धत्ते। नैभ्यः प्राणा अपक्रामन्त्या इमजानि

गर्भधमात्मन्नसि गर्भधमिति । प्रजा वै पशवो गर्भः प्रजामेव पशून-
स्मिन्तत्र धत्ते ॥ य० कां० १३ अ० २ ब्रा० २ कं० ४ । ५ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(गणानां त्वा०) वयं गणानां गणनीयानां पदार्थसमूहानां गण-
पतिं पालकं त्वाग्निं (त्वा) त्वां परमेश्वरं हवामहे गृह्णीमः । तथैव
सर्वेषां प्रियाणामिति मेधादीनां च प्रियपतित्वेति पूर्ववत् ।
यश्चैव निधीनां विद्यारत्नादिकोशानां निधिपतित्वेति पूर्ववत् । वस-
त्यस्मिन्सर्वं जगद्वा यत्र वसति स वसुः परमेश्वरः । तत्संबुद्धौ हे वसो पर-
मेश्वरत्वं । सर्वान् कार्य्यान् भूगोलान्स्वसामर्थ्ये गर्भवद्धृतवानीति स
गर्भधस्तं त्वामहं भक्त्याकृपया आत्मानं सर्वथा जानीयाम् (आत्मन्नसि)
हे भगवन् त्वं तु आप्तमन्तर्ज्ञातासि । पुनर्गर्भधमित्युक्त्या वयं प्रकृति
परमाणवादीनां गर्भधानामपि गर्भधं त्वां मन्यामहे । नैवातोऽभिन्नः कश्चि-
द्दुर्धर्षोऽस्तीति । यत्रमेवैतत्रेयश्चत्पशवश्चात्रये गणपतिशब्दार्थौ वर्णितः ।
ब्राह्मणमात्यमस्मिन्मंत्रे ब्रह्मणो वेदस्य पतेर्ब्रह्मो वर्णितः । ब्रह्म वै बृह-
स्पतिरित्युक्तत्वात् । तेन ब्रह्मोपदेशेनैवैनं जीवं यजमानं वा सत्योपदेशा-
द्विद्वान् भिषज्यति रोगरहितं करोति । आत्मनो भिषजं वैद्यमिच्छतीति ।
यस्य परमेश्वरस्य प्रथः सर्वत्र व्याप्तः विस्तृतः स प्रथश्च प्रकृत्याकाशादिना
प्रथेन स्वसामर्थ्येन वा सह वर्त्तते स सप्रथस्तादिदं नाम द्वयं तस्यैवास्तीति ।
प्रजापतिः परमेश्वरो वै पतिर्निश्चयेन जमदग्निसंज्ञोऽस्ति । अत्र प्रमाणम् ॥

जमदग्नयः प्रजमिनाज्येषो वा प्रज्वलितानयोवानैरभिहुतो
भवति । लिङ्ग० अ० ७ खं० २४ ॥

अग्नेः सूर्य्यादयः प्रकाशकाः पदार्थास्तस्य सामर्थ्यादेव प्रज्वलिता
भवन्ति । तैः सूर्य्यादिभिः कार्य्यैस्तन्निमित्तेश्च कारणाख्य ईश्वरोऽभिहुत-
स्वाभिमुख्येन पूजितो भवतीति यः स जमदग्निः परमेश्वरः (योऽग्नयेषः)
स एव परमेश्वरो ऽग्नयेषाय्य इति प्रथमोर्थः । अन्यावरः । अन्यं वा-
श्वो विडितरे पशव इत्यादि । यथाऽश्वस्यापत्ययेतरेयोऽजादयः पशवो
न्यूनबलदेहा भवन्ति । तथा राज्ञः सभाध्यक्षादेः शिष्टप्रजानिर्बलैव भवति ।
तस्य राज्यस्य यद्विरण्यं सुवर्णादि रत्नज्योतिःप्रकाशो वा न्यायकरणमे-
तत्स्वरूपं भवति । यथा राज्ञः कालंकारो । राज्ञोऽर्थो वर्णितः । तथैव

जीवेश्वरयोः स्वस्वामिसंबन्धो वर्ण्यते । नैव मनुष्यः केवलेन स्वसामर्थ्येन परलतया स्वर्गं परमेश्वराख्यं लोकं वेद किन्त्वीश्वरानुग्रहेणैव जानाति ॥

अस्मोवत ईश्वरो वा अश्वः । श० कां० १३ अ० ३ ब्रा० ८ कं० ८ । अश्नुते व्याप्नोति सर्वं जगत्सोऽश्व ईश्वरः ॥

इत्युक्त्वादीश्वरस्यैवाश्वमेधसंज्ञास्तीति । अन्यच्च (राष्ट्रं वा०) राज्यमश्वमेधसंज्ञं भवति तद्राष्ट्रे राज्यकर्मणि ज्योतिर्दधाति सत्कर्मफलं सचाय राजपुरुषाय भवति । सच्च स्वसुखायैव शिक्षां कृतानुकरां स्ववर्तमानामनुकूलां करोति । अथो इत्यनन्तरं क्षत्रमेवाश्वमेधसंज्ञकं भवति । तस्य यद्धिरण्यमेतदेवरूपं भवति । तेन हिरण्यादियुक्तेन क्षत्रेण राज्यमेव सम्यग्वर्धते नेव प्रजाः । सा तु स्वतंत्रस्वभावान्वितया शिक्षा समर्धयति । अतो यत्रैको राजा भवति तत्र प्रजापीडिता जायते । तस्मात्प्रजा सतत्रैव राजप्रबन्धः कार्य्य इति । (गणानां०) स्त्रियोऽप्येन राज्यपालनाय विद्यामयं सन्तानशिक्षाकरणाख्यं यज्ञं पतिः सर्वतः प्राप्नुयुः प्राप्नोः सत्यो ऽस्य सिद्धये यदपह्नवाख्यं कर्माचरन्ति । अतः कारणादेतदेतासामन्ये विद्वांसो दूरीकुर्वन्ति । अथो इत्यनन्तरं य यज्ञं शिक्षालयन्ति तानप्यन्ये च दूरीकुर्य्युः । यज्ञमस्य विचारं रक्षणं सर्वथा कुर्य्युः । यज्ञं प्रतिदिनमेतस्य शिक्षया रक्षणेन चात्मशरीरबलानि संपादयेयुः । ये नरः पूर्वोक्तं गर्भाधे परमेश्वरं जानन्ति नैव तेभ्यः प्राणा बलपराक्रमादयो ऽपक्रामन्ति । तस्मान्मनुष्यस्तं गर्भाधं परमेश्वरमहमात्मानि समन्ताज्ज्ञानीयामितीच्छेत् । (प्रजा वै पशवः०) ईश्वरसामर्थ्यगर्भात्सर्वे पदार्था जाता इति योजनीयम् । यश्च पशूनां प्रजानां मध्ये विज्ञानवान् भवति स इमां सर्वां प्रजामात्मनि अनति सर्वत्र व्याप्नोतीतस्मिन् जगदीश्वरे वर्तत इति धारयति । इति संक्षेपतो गणानांत्वेति मंत्रस्यार्थो वर्णितः । अस्मान्महीधरस्यार्थो ऽत्यन्तविरुद्ध एवास्तीति मन्तव्यम् ॥ ॥ भाषार्थः ॥

(गणानां त्वा०) ऐतरेय ब्राह्मण में गणपति शब्द की ऐसी व्याख्या की है कि यह मंत्र ईश्वरार्थ का प्रतिपादन करता है जैसे ब्रह्म का नाम बृहस्पति ईश्वर तथा वेद का नाम भी ब्रह्म है जैसे अच्छा वैद्य रोगी को औषध देके दुःखों से अलग कर देता है वैसे ही परमेश्वर भी वेदोपदेश करके मनुष्य को विज्ञानरूप औषधि देके अविद्यारूप दुःखों से छुड़ा देता है जो कि अश्व अर्थात् विस्तृत सब में व्याप्त और सपय अर्थात् आकाशादि

विस्तृत पदार्थों के साथ भी व्यापक हो रहा है इसी प्रकार से यह मंत्र ईश्वर के नामों की यथावत् व्याख्या कर रहा है ऐसे ही शतपथ ब्राह्मण में भी राज्यपालन का नाम अश्वमेध राजा का नाम अश्व और प्रजा का नाम घोड़े से भिन्न पशु रक्खा है राज्य की शोभा धन है और ज्योति का नाम हिरण्य है तथा अश्व नाम परमेश्वर का भी है क्योंकि कोई मनुष्य स्वर्गलोक को अपने सहज सामर्थ्य से नहीं जान सकता किंतु अश्व अर्थात् जो ईश्वर है वही उन के लिये स्वर्गसुख को जनाता और जो मनुष्य प्रेमी धर्मात्मा हैं उन को सब स्वर्गसुख देता है तथा (राष्ट्रमश्वमेधः) राज्य के प्रकाश का धारण करना सभाओं का काम और इसी सभा का नाम राजा है यही अपनी ओर से प्रजा पर कर लगाती है क्योंकि राजा से राज्य और प्रजा से प्रजा की वृद्धि होती है (गणानां त्वा०) स्त्री लोग भी राज्यपालन के लिये विद्या की शिक्षा संतानों को करती रहें जो इस यज्ञ को प्राप्त होके भी संतानोत्पत्ति आदि कर्म्म में मिथ्याचरण करती हैं उन को इस कर्म को विद्वान् लोग प्राप्त नहीं करते और जो पुत्र संतानादि की शिक्षा में आलस्य करते हैं अन्य लोग उन को बांध कर ताड़ना देते हैं इस प्रकार तीन वा नव वार इस की रक्षा में आत्मा शरीर और बल को सिद्ध करें, जो मनुष्य परमेश्वर की उपासना करते हैं उन के बलादि गुण कभी नष्ट नहीं होते (आ इमं शानि०) प्रजा के कारण का नाम गर्भ है उस के समतुल्य यह सभा प्रजा और प्रजा के पशुओं को अपने आत्मा में धारण करे अर्थात् जिस प्रकार अपना सुख चाहे वैसेही प्रजा और इस के पशुओं का भी सुख चाहे (गणानां त्वा०) जो परमात्मा गणनीय पदार्थों का पति अर्थात् पालन करने हारा है (त्वा) उस को (हवामहे) हम लोग पूज्य बुद्धि से ग्रहण करते हैं (प्रियाणां०) जो कि हमारे दुःख मित्र और मोक्ष सुखादि का प्रियपति तथा हम को आनन्द में रख कर सदा पालन करने वाला है उसी को हम लोग अपना उपास्य देव जान के ग्रहण करते हैं (निधीनां त्वा) जो कि विद्या और सुखादि का निधि अर्थात् हमारे कोशों का पति है उसी सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को हम अपना राजा और स्वामी मानते हैं तथा जो कि व्यापक होके सब जगत् में और सब जगत् उस में बस रहा है इस कारण से उस को वसु कहते हैं हे वसु परमेश्वर जो आप अपने सामर्थ्य से जगत् के उत्पादि कारण में गर्भधारण करते हैं अर्थात् सब मूर्त्तिमान् द्रव्यों को आपही रचते हैं इसी हेतु से आप का नाम गर्भधं है (आहमजानि) मैं ऐसे गुण सहित आप को जानूं (आत्व०) जैसे आप सब प्रकार से सब को जानते हैं वैसेही मुझ को भी सब प्रकार से ज्ञानयुक्त कीजिये (गर्भधं०) दूसरी बेर गर्भधं शब्द का पाठ इस लिये है कि जो २ प्रकृति और परमाणु आदि कार्य्य द्रव्यों के गर्भ रूप हैं उन में भी सब जगत् के गर्भ रूप बीज को धारण करने

वाले ईश्वर से भिन्न दूसरा कार्य्य जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय करने वाला कोई भी नहीं है यही अर्थ ऐतरेय शत पथ ब्राह्मण में कहा है विचारना चाहिये कि इस सत्य अर्थ के गुप्त होने और मिथ्या नवीन अर्थों के प्रचार होने से मनुष्यों को भ्रान्त कर के वेदों का कितना अपमान कराया है जिस यह दोष खंडित हुआ वैसे इस भाष्य की प्रवृत्ति से इन सब मिथ्या दोषों की निवृत्ति हो जायगी ॥

ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयाव स्वर्गलोके प्रोर्णुवाथां वृषावाजीरेतोधारेतो दधातु ॥ २ ॥ य० अ० २३ मं० २० ।

॥ महीधरस्यार्थः ॥ अश्व शिश्नमुपस्थे कुरुते वृषा वाजीति । महिषी स्वयमेवाश्वशिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्थापयति ॥ ॥ भाषार्थ ॥ महीधर का अर्थ ।

यजमान की स्त्री घोड़े के लिंग को पकड़ कर आप ही अपनी योनि में डाल लेवे ॥ ॥ सत्यार्थः ॥

ता उभौ चतुरः पदः संप्रसारयावेति मिथुनस्यावरुध्यै स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथामित्येष वै स्वर्गोलोको यच्च पशुरुन्नयन्ति तस्मादेवमाह वृषा वाजी रेतो धारेतो दधात्विति मिथुनस्यैवावरुध्यै ।

श० कां० १३ अ० २ ब्रा० २ । कं० ५ । ॥ भाष्यम् ॥

आवां राजप्रजे धर्मार्थकाममोक्षान् चतुरः पदार्थान् सदैव मिलित्वा सम्यक् विस्तारयेवहि ॥ कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह । स्वर्गे सुखविशेषे लोके द्रष्टव्ये भोक्तव्ये प्रियानन्दस्य स्थिरत्वाय येन सर्वान्प्राणिनः सुखैराच्छादयेवहि ॥ यस्मिन् राज्ये पशुं पशुस्वभावमन्यायेन परपदार्थानां द्रष्टारं जीवं विद्योपदेशदण्डदानेन सम्यगवबोधयन्ति सैव राज्ञः सुखयुक्तो देशोहि स्वर्गो भवति । तस्मात्कारणादुभयस्य सुखायोभये विद्यादिसद्गुणानामभिवर्धकं याजिनं विज्ञानवन्तं जनं प्रतिविद्याबले सन्ततमेव दधात्वित्याह्याय मंत्रः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(ता उभौ०) राजा और प्रजा इन दोनों मिलके धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि के प्रचार करने में सदा प्रवृत्त रहें किस प्रयोजन के लिये कि दोनों को अत्यंत सुखरूप स्वर्ग लोक में प्रिय आनन्द की स्थिति के लिये जिस में हम दोनों परस्पर तथा सब प्राणियों को सुख से परिपूर्ण करदेवें जिस राज्य में मनुष्य लोग अच्छी प्रकार ईश्वर को जानते हैं वही देश सुख युक्त होता है इस से राजा और प्रजा परस्पर सुख के लिये सद्गुणों के उपदेशक पुरुष को

सदा सेवा करें और विद्या तथा बल को सदा बढ़ावें इस अर्थ का कहने वाला (सा उर्वी०) यह मंत्र है इस अर्थ से महीधर का अर्थ अत्यन्त विरुद्ध है ॥

यत्रासत्रौ शकुन्तिकाहलगिति वंचति । आर्च्छन्तिगभे पस्रोनिर्गल्गलीति धारका ॥ य० अ० २३ मं० २२ ।

महीधरो वदति ।

अध्वर्य्वादयः कुमारीस्त्रीभिः सह सोपहासं संवदन्ते । अंगुल्या योनिं प्रदेशयन्नाह स्त्रीणां शीघ्रगमने योनौ हलहलाशब्दो भवतीत्यर्थः । भगे योनौ शकुनिसदृश्यां यदापस्रोलिंगमाहन्ति आगच्छति । पुंस्त्वजननस्य नाम हन्तिर्गत्यर्थः । यदा भगे शिश्नमागच्छति तदा धारका धरति लिंगमिति धारका योनिर्निर्गल्गलीति निसरां गलति वीर्य्यं क्षरति यद्वा शब्दानुकरणं गल्गलेति शब्दं करोति (यत्रोसत्रौ०) कुमारी अध्वर्युं प्रत्याह । अंगुल्या लिंगं प्रदेशयन्त्याह । अयमागे सच्छिद्रं लिंगं तव मुखमिव भासते ॥

॥ भाषार्थ ॥ महीधर का अर्थ ।

यज्ञशाला में अध्वर्युआदि ऋत्विज लोग कुमारी और स्त्रियों के साथ उपहास पूर्वक संवाद करते हैं इस प्रकार से कि अंगुली से योनि को दिखला के हंसते हैं (आहलगिति०) जब स्त्री लोग चलती २ चलती हैं तब उन की योनि में हलहला शब्द और जब भग लिंग का संयोग होता है तब भी हलहला शब्द होता और योनि और लिंग से वीर्य्य झरता है (यत्रोसत्रौ०) कुमारी अध्वर्यु का उपहास करती है कि जो यह छिद्र सहित तेरे लिंग का अग्रभाग है सो तेरे मुख के समान दीख पड़ता है ॥

अथ सत्यार्थः

यत्रासत्रौ शकुंतिकेति विड्वै शकुन्तिका हलगिति वंचतीति विशो वै राष्ट्राय वंचत्याहन्ति गर्भे पस्रो निगल्गलीति धारकेति विड्वैगोराष्ट्रं पस्रो राष्ट्रमेव विश्या हन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः । श० कां० १३ अ० २ ब्रा० ३ । कं० ६ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(विड्वै०) यथा श्येनस्य समीपे अल्पपक्षिणी निर्बलाभवति तथैव राज्ञः समीपे (विट्) प्रजा निर्बला भवति (आहलगिति वंचतीति) राजानो विषः प्रजाः (वै) इति निश्चयेन राष्ट्राय राजसुखप्रयोजनाय सदैव वंचन्तीति

(आहन्ति०) विशोगभसंज्ञा भवति पक्षास्थं राष्ट्रं राज्यं प्रजया स्पर्धनीयं भवति यस्माद्राष्ट्रं तां प्रजां प्रविश्याहन्ति समन्ताद्धननं पीडां करोति । यस्माद्राष्ट्रे एको राजा मनश्चेन्नहि विशं प्रजां घातुको भवति तस्मात्कारणादेको मनुष्यो राजा कदाचिन्नैव मन्तव्यः । किंतु सभाध्यक्षः सभाधीनो यः सदाचारी शुभलक्षणान्वितो विद्वान्स प्रजाभी राजा मन्तव्यः । अस्मादपि सत्यार्थान्महीधरस्यार्थोऽतीव दुष्टोऽर्थोऽस्तीति विचारणीयम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(यत्रासकौ०) प्रजा का नाम शकुनिका है कि जैसे बाज के सामने छोटी २ चिड़ियाओं की दुर्दशा होती है वैसे ही राजा के सामने प्रजा की (आहनगिति०) जहां एक मनुष्य राजा होता है वहां प्रजा दुःखी जाती है (आहन्ति गभे पसो०) तथा प्रजा का नाम गभ और राज्य का नाम पक्ष है जहां एक मनुष्य राजा होता है वहां वह अपने लोभ में प्रजा के पदार्थों की हानि ही करता चला जाता है इसलिये राजा को प्रजा का घातुक अर्थात् हनन करने वाला भी कहते हैं इस कारण से एक को राजा कभी नहीं मानना चाहिये किंतु धार्मिक विद्वानों की सभा के आधीन ही राज्य प्रबंध होना चाहिये (यत्रासकौ०) इत्यादि मंत्रों के शतपथ प्रतिपादित अर्थों में महीधर आदि अल्पज्ञ लोगों के बनाये हुए अर्थों का अत्यंत विरोध है ॥

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः । प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमवेवेष्यत् ॥ य० अ० २३ मं० २४ ॥

॥ महीधरस्यार्थः ॥

ब्रह्मा महिषीमाह मंहिष्ठे हयेहये महिषि ते तव माता च पुनस्ते तव पिता यदा वृक्षस्य वृक्षजस्य काष्ठमयस्य मंचकस्याग्रमुपरिभागं रोहतः आरोहतः तदा ते पिता गभे भगे मुष्टिं मुष्टितुल्यं लिंगमवेवेष्यत् प्रक्षिपति एवं तवोत्पत्तिरित्यश्लीलम् । लिंगमुत्थानेनालंकरोति वा तव भोगेन स्निह्यामीति वदन् एवं तवोत्पत्तिः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

महीधर का अर्थ

जब ब्रह्मा हास करता हुआ यजमान की स्त्री से कहता है कि जब तेरी माता और पिता पलंग के ऊपर चढ़ के तेरे पिता ने मुष्टितुल्य लिंग को तेरी माता के भग में डाला तब तेरी उत्पत्ति हुई उसने ब्रह्मा से कहा कि तेरी भी उत्पत्ति ऐसेही हुई है इससे दोनों की उत्पत्ति तुल्य है ॥

॥ अन्वयार्थः ॥

माता च ते पिता चेति । द्यौर्वै मातासौ पिताभ्यामेवैनं स्वर्गं लोकं गमयत्यग्निर्ब्रह्मस्त्र रोचन इति । श्रीर्वैराष्ट्रस्याग्रꣳ श्रियमेवैनꣳ राष्ट्रस्याग्रं गमयति । प्रतिलभामहै ते पिता गवे सुष्टिमतः शर्यहणि । विश्वेभ्यो राष्ट्रं सुष्टीराष्ट्रमेवाविश्या वृङ्क्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः । श० कां० १३ अ० २ ब्रा० ३ कं० ७ ॥ भाष्यम् ॥

(माता च ते०) हे मनुष्य द्यौः पृथिवी विद्या च ते तव मातृवदस्ति । कोऽध्यापनेनेकपदार्थदानेन विद्यानेत्र्यत्वा च मान्यहेतुत्वात् । यतो द्यौः प्रकाशो विद्वानीश्वरश्च तव पितृवदस्ति । सर्वपुरुषार्थानुष्ठानस्य सर्वसुखप्राप्तेश्च हेतुत्वेन पालकत्वात् विद्वान् ताभ्यामेवैनं जीवं स्वर्गं सुखरूपं लोकं गमयति (अग्निर्ब्रह्मस्त्र०) या श्रीः, विद्याशुभगुणारत्नादिशोभान्विता च लक्ष्मीः साराष्ट्रस्याग्रमुत्तमांगं भवति सैवैनं जीवं श्रियं शोभांगमयति । यद्राष्ट्रस्याग्रमग्र्यं मुख्यं सुखं च (प्रतिलभामहै०) विद्र प्रजागमाख्यार्थो ईश्वरश्चैश्वर्यप्रदो (राष्ट्रंसुष्टीः०) राजकर्म सुष्टिर्यथा सुष्टिना मनुष्यो धनं गृह्णाति तथैवैको राजा वेतनादिदानेन प्रजाभ्यः स्वसुखाय सर्वा श्रेष्ठा श्रियं हरत्येव । यस्माद्राष्ट्रं विशि प्रजायां प्रविश्य आहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशंघातुको भवति । यस्मादर्थान्महीश्वरस्यार्थो अत्यन्तविरुद्धोऽस्ति तस्मात्सर्वैव सभापि मन्तव्यः । ॥ भाषार्थ ॥

॥ भाष्यार्थ ॥

(माता च ते०) सब प्राणियों को पृथिवी और विद्यामाता के समान सब प्रकार के मान्य कराने वाली और मुख्य लोक विद्वान् तथा परमेश्वर पिता के समान है क्योंकि मुख्य लोक पृथिवी के पदार्थों का प्रकाशक और विद्वान् दान से पंडित तथा परमात्मा सब के पालन करने वाला है ॥ इन दोनों कारणों से विद्वान् लोग जीवों को नाना प्रकार का सुख प्राप्त कराते हैं (अग्निर्ब्रह्मस्त्र०) श्री जो लक्ष्मी है सोही राज्य का उत्तमांग अर्थात् शिर के समान है क्योंकि विद्या और धन ये दोनों मिल के ही जीव को शोभा और राज्य के सुख को प्राप्त कर देते हैं (प्रतिलभामहै०) फिर प्रजा का नाम भग अर्थात् ऐश्वर्य की देनेवाली और राज्य का नाम सुष्टि है क्योंकि राजा अपनी प्रजा के पदार्थों को सुष्टि से ऐसे हर लेता है कि जैसे कोई बल करके शिरों पर से पदार्थ को अथवा मनुष्य जैसे जैसी जब अकेला मनुष्य राजा होता है तब

वह पक्षपात से अपने सुख के लिये को २ प्रजा की श्रेष्ठ सुख देनेवाली लक्ष्मी को ले लेता है अर्थात् वह राजा अपने राजकर्म में मदोन्मत्त होके प्रजा को पीड़ा देनेवाला होता है इसलिये एक को राजा कभी मानना न चाहिये किंतु सब लोगों को उचित है कि अध्यक्ष सहित सभा की आज्ञा ही में रहना चाहिये इस अर्थ से भी महीधर का अर्थ अत्यंत विरुद्ध है ।

ऊर्ध्वमेनामुच्छ्रापय गिरौ भार इवारुहम् । अथास्यै मध्यमेधतां शीते वाते पुनर्जनः ॥ य० अ० २३ मं० २९ ॥

॥ महीधरस्यार्थः ॥

यथा अस्यै अस्या वा वाताया मध्यमेधतां योनिप्रदेशो वृद्धिं याति यथा योनिर्विशाला भवति तथा मध्ये गृहीत्वोच्छ्रापयेत्यर्थः । दृष्टान्तान्तरमाह । यथा शीतले वाते यानिपुनरन्त्यन्यपचनं कुर्वाणाः कृषीव लोधान्यपाचं ऊर्ध्वे करोति तथेत्यर्थः ।

यद्स्या अक्षु भेद्याः कृधुस्थूलमुपातसत् । मुष्काविदस्या एजतो गोशफे शकुलाविव ॥ २८ ॥ य० अ० २३ मं० २८ ॥

यत् यदा अस्याः परिवृक्तायाः कृधु हृस्वं स्थूलं च शिश्नमुपातसत् उपगच्छेत् योनिं प्रतिगच्छेत् तंस तदानीं तदा मुष्कौ वृषणौ इत् एव अस्याः योनेरुपरि एजतः कम्पेते लिंगस्य स्थूलत्वादोनेरल्पत्वाद्वृषणौ बहिस्तिष्ठत इत्यर्थः । तत्र दृष्टान्तः गोः शफे जलपूर्णे गोःखुरे शकुलौ मत्स्याविव यथा उदकपूर्णे गोः पदे मत्स्यौ कंपेते । ॥ भाषार्थ ॥

॥ महीधर का अर्थ ॥

पुरुष लोग स्त्री की योनि को दोनों हाथ से खेंच के बड़ा लेवें (यद्स्या अक्षु०) परिवृक्ता अर्थात् जिस स्त्री का वीर्य निकल जाता है तब छोटा वा बड़ा लिंग उस की योनि में डाला जाता है तब योनि के ऊपर दोनों अंडकोश नाचा करते हैं क्योंकि योनि छोटी और लिंग बड़ा होता है इस में महीधर दृष्टान्त देता है कि जैसे गाय के खुर के बने हुए गड्ढे के जल में दो मछली नाचें तथा जैसे घी निकालने वाला मनुष्य दूध और भुस अलग २ करने के लिये चलते वायु में एक पात्र में भर के ऊपर को उठा के कंपाया करता है वैसे ही योनि के ऊपर अंडकोश नाचा करते हैं ।

॥ अथ सत्योद्यः ॥

ऊर्ध्वमेनामुच्छ्रापयेति । श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः श्रियमेवास्मै राष्ट्रमूर्ध्वमुच्छ्रयति । गिरौ भार इव हरन्निवेति । श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः श्रियमेवास्मै राष्ट्रं संनह्यत्यथो श्रियमेवास्मिन् राष्ट्रमधिनिदधाति अथास्मै मध्यमेधतामिति । श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यं श्रियमेव राष्ट्रे मध्यतो ऽन्नाद्यं दधाति शीते वाते पुनर्निवेति क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतं क्षेममेवास्मै करोति । शत० कां० १३ अ० २ ब्रा० ६ कं० १ । २ । ३ । ४ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(ऊर्ध्वमेना०) हे नरत्वं श्रीर्वैराष्ट्रमश्वमेधो यच्चश्वास्मै राष्ट्राय श्रियमुच्छ्रापय सेव्यामुत्कृष्टां कुरु । यत्वं सभया राज्यपालने कृते राष्ट्रं राज्यमूर्ध्वे सर्वोत्कृष्टगुणमुच्छ्रयितुं शक्नुयास् । (गिरौ भार इव हर०) कस्मिन्किमिव गिरिशिखरे प्राप्यर्थं भारवद्वस्तूपस्थापयतीव । कोस्ति राष्ट्रस्य भार इत्युच्यते श्रीर्वै राष्ट्रस्य भार इति । सभाव्यवस्थयास्मै राष्ट्राय श्रियं संनह्य संकल्प्य राष्ट्रमनुनयं कुर्य्यात् । अथो इत्यनन्तरमेवं कुर्वन् अनोस्मिन्संसारे राष्ट्रं श्रीयुक्तमधिनिदधाति सर्वोपरि नित्यं धारयतीत्यर्थः (अथास्मे०) किमस्य राष्ट्रस्य मध्यमित्याकांक्षायामुच्यते । श्रीर्वैराष्ट्रस्य मध्यं तस्मादिमां पूर्वोक्तां श्रियमन्नाद्यं भोक्तव्यं वस्तु च राष्ट्रे राज्ये महतो राज्यस्याभ्यन्तरे दधाति सुसभया सर्वां प्रजां सुभोगयुक्तां करोति । कस्मिन् किं कुर्वन्निव शीतेवाते पुनर्निवेति राष्ट्रस्य क्षेमोरक्षणं शीतं भवत्यस्मै राष्ट्राय क्षेमं सुसभया रक्षणं कुर्य्यात् । अस्मादपि सत्यार्थान्महीधरस्य व्याख्यानमत्यन्तं विरुद्धमस्तीति ॥

॥ भाषार्थ ॥

श्री नाम विद्या और धन का तथा राष्ट्रपालन का नाम अश्वमेध है वेही श्री और राज्य की उन्नति कराते हैं (गिरौ भार इव०) राज्य का भार श्री है क्योंकि इसी से राज्य की वृद्धि होती है इसलिये राज्य में विद्या और धन की अच्छी प्रकार वृद्धि होने के अर्थ उसका भार अर्थात् प्रबंध श्रेष्ठ पुरुषों की सभा के ऊपर धरना चाहिये कि (अथास्मे०) श्रीराज्य का आधार और वही राज्य में शोभा को धारण करके उत्तम पदार्थों को प्राप्त कर देती है इस में दृष्टान्त यह है कि (शीतेवाते०) अर्थात् राज्य की रक्षा करने का नाम शीत है क्योंकि जब सभा से राष्ट्र की रक्षा होती है तभी उस की

उन्नति होती है (प्र०) राज्य का भार कौन है (उ०) (स्त्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः) स्त्री क्योंकि वही घर के भार में युक्त करके राज्य को उत्तमता को पहुंचाती है (अथो) इस के अनन्तर उक्त प्रकार से राज्य करते हुए पुरुष देश अथवा संसार में स्त्रीयुक्त राज्य के प्रबंध को सब में स्थापन कर देते हैं (अयास्ये०) प्र० इस राज्य का मध्य क्या है (उ०) प्रजा की ठीक २ रक्षा अर्थात् उस का नियमपूर्वक पालन करना यही उसकी रक्षा में मध्यस्थ है (गिरेर्भार इवाहरन्ति) जैसे कोई मनुष्य बोझ उठाके पर्वत पर ले जाता है वैसे ही सभा भी राज्य को उत्तम सुख को प्राप्त कर देती है ॥

यद्देवासो ललामगुं प्रविष्टीमिनमाविषुः । सक्थ्यादे दिश्यते नारीं सत्यस्योक्तिमुवो यथा ॥ य० अ० २३ मं० २९ ॥

॥ महीधरस्यार्थः ॥

यत् यदा देवासः देवाः दीव्यन्ति क्रीडन्ति देवाः ऋत्विजो ललामगुं लिंगं प्राविषुः योनौ प्रवेशयन्ति ललामेति मुखनाम ललामसुखं गच्छति प्राप्नोति ललामगुः शिश्नः । यद्वा ललाम पुंस्त्वं गच्छति ललामगुः लिंगं योनिं प्रविशदुत्थिते पुण्ड्राकारं भवतीत्यर्थः । कीदृशं ललामगुं विष्टीमिनं शिश्नस्य योनिप्रदेशे क्लेदने भवतीत्यर्थः । यदा देवाः शिश्नक्रीडिनो भवन्ति ललामगुं योनौ प्रवेशयन्ति । तदा नारीसक्थ्या ऊरुणा ऊरुभ्यां दैदिश्यते निर्दिश्यते अत्यन्तं लक्ष्यते । भोगसमये सर्वस्य नार्य्यंगस्य चरणेन व्याप्तत्वादूरुभावं लक्ष्यते । इयं नारीतीत्यर्थः ॥ भाषार्थ ॥

॥ महीधर का अर्थ ॥

(यद्देवासो०) जब तक यज्ञशाला में ऋत्विज लोग ऐसा हंसते और खंडकोण नाटा करते हैं तब तक घोड़े का लिंग महिषी की योनि में काम करता है और उन ऋत्विजों के भी लिंग स्त्रियों की योनियों में प्रवेश करते हैं और जब लिंग खड़ा होता है तब कमल के समान हो जाता है जब स्त्री पुरुष का समागम होता है तब पुरुष ऊपर और स्त्री पुरुष के नीचे होने से थक जाती है ॥

॥ अथ सत्यार्थः ॥

(यद्देवासो०) यथा देवा विद्वांसः प्रत्यक्षोद्भवस्य सत्यज्ञानस्य प्राप्तिं कुर्वेमं (विष्टीमिनं) विविधतया आर्द्रीभावगुणवन्तं (ललामगुं) सुखप्राप्तिं विज्ञानन्तं प्राविषुः प्रकृष्टतया समन्ताद्व्याप्नुवन्ति । तथैव तेनैव सह

धर्ममनेन प्रजा वेदिष्यते । यथा नारी वस्त्रेराच्छादयमानेन सङ्कथां वर्धते तथैव विद्वद्भिः सुशिक्षितया प्रजा सम्यगाच्छादनीयेति ॥ ॥ भाषार्थ ॥

जैसे विद्वान् लोग प्रत्यक्ष ज्ञान को प्राप्त होके जिस शुभगुणयुक्त सुखदायक विद्या के आनन्द में प्रवेश करते हैं वैसे ही इसी आनन्द से प्रजा को भी युक्त करते हैं विद्वान् लोगों को चाहिये कि जैसे स्त्री अपने लज्जा आदि अंगों को वस्त्रों से सदा ढांप रखती है इसी प्रकार अपने सत्योपदेश विद्या धर्म और सुखों से प्रजा को सदा आच्छादित करें ॥

यद्वरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशु मन्यते । शूद्राय दर्यजारा न वैश्याय धनायति ॥ य० अ० २३ । मं० ३० । ॥ भाष्यम् ॥

॥ महीधरस्यार्थः ॥

अत्रा पालागलीमाह । शूद्राशूद्रजातिः स्त्री यदा अर्य्यं जारं भवति वैश्यो यदा शूद्रां गच्छति तदा शूद्रः पोषाय न धनायते पुष्टिं न इच्छति यद्वार्य्यां वैश्येन भुक्तासतीं पुष्टां जातेमिति न मन्यते किंतु व्यभिचारिणीं जातेमिति दुःखितो भवतीत्यर्थः । (यद्वरिणो०) पालागलीत्यत्तरमाह । यत् यदा शूद्रः अर्य्यायै अर्य्यायां वैश्यायां जारो भवति तदा वैश्यः पोषं पुष्टिं नानुमन्यते मम स्त्री पुष्टा जातेमिति नानुमन्यते किंतु शूद्रेण नीचेन भुक्तेमिति ज्ञास्यतीत्यर्थः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

॥ महीधर का अर्थ ॥

(यद्वरिणो०) जत्रा सेवक पुरुष शूद्र दासी से कहता है कि जब शूद्र स्त्री के साथ वैश्य व्यभिचार कर लेता है तब वह इस बात को तो नहीं विचारता कि मेरी स्त्री वैश्य के साथ व्यभिचार कराने से पुष्ट हो गई किंतु वह इस बात को विचार के दुःख मानता है कि मेरी स्त्री व्यभिचारिणी हो गई (यद्वरिणो०) अब वह दासी जत्रा को उत्तर देती है कि जब शूद्र वैश्य की स्त्री के साथ व्यभिचार कर लेता है तब वैश्य भी इस बात का अनुमान नहीं करता कि मेरी स्त्री पुष्ट होगई किंतु नीच ने समागम कर लिया इस बात को विचार के लिये मानता है ॥

॥ अथ सत्यार्थः ॥

यद्वरिणो यवमत्तीति । विद्वैं यथो राष्ट्रे चरिणो विशमेव राष्ट्रायां चरोमि तस्माद्वार्य्यो विशमत्ति । न पुष्टं पशुमन्यत इति ।

तस्माद्राजा पशूञ्न पुष्यति । शूद्राय दर्य्यं जारा न पोषाय धनायतीति। तस्मादैशीपुत्रं नाभिषिंचति । श० कां० १३ अ० २ ब्रा० ३ कं० ८ ॥

॥ भाष्यम् ॥

(यद्धरिणो०) विट् प्रजेह यवोस्ति । राज्यसम्बन्ध्येको राजा हरिण इव उत्तमपदार्थहर्त्ता भवति । यथा मृगः क्षेत्रस्थं सस्यं भुक्त्वा प्रसन्नो भवति तथैवैको राजापि नित्यं स्वकीयमेव सुखमिच्छति । अतः स राष्ट्राय स्वसुखप्रयोजनाय विशं प्रजामादां भक्ष्यामिव करोति । यथा मांसाहारी पुष्टं पशुं दृष्ट्वा तन्मांसभक्षणेच्छां करोति नैव स पुष्टं पशुं वर्धयितुं जीवितुं वा मन्यते । तथैव स्वसुखसंपादनाय प्रजायां कश्चिन् मनो ऽधिको न भवेदित्येच्छां सदैव रक्षति तस्मादेको राजा प्रजां न पुष्यति नैव रक्षयितुं समर्थो भवतीति । यथा च यदा शूद्रा अर्य्यं जारा भवति तदा न स शूद्रः पोषाय धनायति पुष्टो न भवति तथैको राजापि प्रजां यदा न पुष्यति तदा सा नैव पोषाय धनायति पुष्टा न भवति । तस्मात्कारणाद्वैशीपुत्रं मीकशूद्रीपुत्रं मूर्खं च नाभिषिंचति नैवैतं राज्याधिकारे स्थापयतीत्यर्थः । अस्माच्छतपथब्राह्मणोक्तादर्थान्महीधरकृतोर्थोऽतीव विरुद्धोस्ति ॥

॥ भाषार्थ ॥

(यद्धरिणो०) यहां प्रजा का यव और राष्ट्र का नाम हरिण है क्योंकि जैसे मृग पशु पराये खेत में जवों को खाकर आनन्दित होते हैं वैसे ही स्वतंत्र एक पुरुष राजा होने से प्रजा के उत्तम पदार्थों को ग्रहण कर लेता है अथवा (न पुष्टं पशुमत्यतः) जैसे मांसाहारी मनुष्य पुष्ट पशु को मार के उस का मांस खा जाता है वैसे ही एक मनुष्य राजा होके प्रजा का नाश करनेहारा होता है क्योंकि वह सदा अपनी ही उन्नति चाहता रहता है और शूद्र तथा वैश्य का अभिषेक करने से व्यभिचार और प्रजा का धन हरण अधिक होता है इसलिये किसी एक मूर्ख वा लोभी को भी सभाध्यक्षादि उत्तम अधिकार न देना चाहिये इस सत्य अर्थ से महीधर उलटा ही चला है ॥

उत्सक्थ्या अवगुदधेहि समंजि चारया दृषन् । यस्त्रीणां जीव भोजनः ॥ य० अ० २३ मं० २१ ॥

तौल में एक से सेर	संख्या क्रमांक	नाम ग्राहक	पता ग्राहक	संख्या पुस्तक	मोल्य रुपये	मोल्य सुधार
	१३३	पंडित रामनाथ ..	बोर्डर का कालेज अजमेर ..	१	३)	
	१३४	पंडित शिवनारायण	बेड पोस्टा मोर कालेज अजमेर ..	१	१३)	
	३४५	लालागोपालदास बेटे	लाला बालूराम रईस राजपूताने	१	७)	
	४३१	लाला शुद्धमणि ..	एडीशनल पार्षद । पैकाम स्टेट रेलवे राजपूताने ..	१	२)	
	१०४	लाला कल्याणचन्द ..	मंत्री आर्यसमाज । राजपूताने ..	१	७)	
	४५०	कुंवरसेन केवर सिंघ- ठकुरा बूंदी	सर्दार ठाकुर ५१ एकलिंग । राजपूताने	१	७)	
	४५४	मारवाड़ीमित्र प्रिंटिंग	मार्फत लाला कल्याणचन्द मंत्री आर्यसमाज राजपूताने ..	१	१२)	
	४३८	पंडित मुरलीधर शर्मा ।	असि० कन्टेन्ट अकाउन्टेन्ट पैकाम नारवर्न। स्टेट रेलवे। राजपूताने	१	७)	
	४	गुरुदेवप्रसाद ..	अर्जना खारीकुर जिला सरदई ग्राम जसपुर।	३	१०५)	

॥ नोटिस ॥

सब सज्जन लोगों को विदित हो कि वृष के आगे अर्थात् संवत् १९३५ ज्येष्ठ महीने से लेके वैदभाष्य उत्तम कागज और अक्षरों से युक्त सुंदर में छपा करेगा हमारी ओर से इस ग्राम के प्रत्येक सभा वाले स्थान आर्यसमाज के २० २० भाई दरिश्चन्द्रविलासिनी की स्थापित किये गये हैं उनका ठिकाना मुंबई जावलक्रोड घर नम्बर ६ मैडीकल्हाट ऐजेंट का है इन्हीं के पास पूर्व लिखित ठिकानों में वर्णोक्त काल में प्रतिमास अंक पहुंचते रहेंगे और जो अंक ११ वें में नोटिस दिया गया था कि भूमिका के अंक संख्या १२ । और कागज ५४ का छपने को आयो रहे हैं सो अनुमान अधिक होने से । अंक १५ के में समाप्त पूरी होगी । सो आगे प्रतिमास में पैंक १ फार्मेट के मैक्षभाष्य और अंक १५ का भूमिका का दोनों साथ छपेंगे आशाढ़ से लेके १ खण्ड और २ मासूरेंट । मैक्षभाष्य साढ़े ७ प्रतिमास बराबर छपा करेंगे जो कोई मैक्षभाष्य मात्र लेना चाहे उन से रु० ५) देने से सकते हैं और जो मैक्षभाष्य दोनों लेवे और भूमिका १ से दोनों का रु १५) देवें जिन्हों ने संवत् १९३४ का कार्यिक मूल्य दिया है और दो मैक्षभाष्य जिन्हें ने संवत् १९३५ का रु० ७) और जो एक लेवे से ४) देवें और जो नवीन ग्राहक होंगे वे एक दोनों वर्षों का मूल्य भूमिका का मूल्य आठ ८) रु० और दोनों का रु० १२) होंगे । और यह भी जानना चाहिये कि भाषाटीका की भूमिका छपती है ॥ आगे मुंबई उक्त ग्राहकों और स्थानों को के पास एक मेलने से नवीन ग्राहकों को पेशगी लिखा करेंगे और एक दोनों में से कई एक के पास वहां से भेजना होगा ।

॥ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के बनाये पुस्तकों की सूचना ॥

सत्यार्थप्रकाश पंचमहायज्ञविधि मोल ≡) डाक महसूल ⌐) बनारस डा० लाहौर डाकव्य। आर्यसमाज लाहौर वा पं० स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पास से मिलेंगी।

		मूल्य पुस्तक प्रति	महसूल
१	सत्यार्थप्रकाश का	२)	⌐)
१	संस्कारविधि का	१॥≡)	≡)
१	आर्याभिविनय का	॥)	⌐)
१	आर्योद्देश्यरत्नमाला	⌐)॥ डा० मो०	⌐)

इनमें से सत्यार्थप्रकाश का पुस्तक राजा अलखमंडास बहादुर सी० एस० आई० के पास अथवा मुरादाबाद में तथा सत्यार्थ० संस्कार० आर्याभि० आर्योद्देश्य० और संध्योपासन ये सब पुस्तक स्वामी दया० जी और लाला अलखमंडास खजानची आर्यसमाज लाहौर के पास से मिलता है॥

वेदभाष्य लाहौर सोहन बनारस वेदालय। लाला वल्लभदास खजानची उक्त समाज। बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि प्रधान आर्यसमाज अंबई के पास से और स्वामी जी से मिलता है॥ संध्योपासन डा० लाहौर सोहन के पास से भी मिलता है॥

जो कोई संध्योपासन इकट्ठे खरीदेंगे उनको सौ १००) रु० की पुस्तकों पर २०) रु० कमीशन छोड़ दिया जावेगा। परंतु ५०) रु० पर ५) छूटेंगे।

☞ जो सज्जन मूल्य पुस्तक चाहें उनको प्रसन्नतापूर्वक वार्षिक मोल वेद भाष्य का लाहौर सोहन कम्पनी के पास काशी अर्थात् बनारस में भेज देना चाहिये॥

REGISTERED No. B.

॥ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ॥

॥ श्रीमद्दयानंदसरस्वतीस्वामिना निर्मिताम् ॥

संस्कृतार्य्यभाषाभ्यां सनन्वितम्

अस्यैकैकांकस्य प्रतिमासं मूल्यम् भारतवर्षान्तर्गतदेशान्तरस्थ-
मूल्येन सहितं ।–)॥, द्वादशमासानां मिलित्वा
वार्षिकं ४) एतावद्भवति ॥

इस ग्रंथके प्रतिमास एक एक नम्बरका मूल्य भारत खंडके भीतर
डाक महसूलसहित ।–)॥, और वार्षिक मूल्य ४)

अस्य ग्रंथस्य ग्रहणस्येच्छा यस्य भवेत्स मुम्बापुर्य्यां रा० रा० बाबू
हरिश्चंद्र चिंतामणेर्दी दयानन्दसरस्वतीस्वामिनः समीपं
वार्षिकं मूल्यं प्रेषयेत्स प्रतिमासमंकं प्राप्स्यति ॥

अंक (१५,१६).

अयं ग्रंथो मुम्बापुर्य्यां "निर्णयसागर" यंत्रालये मुद्रितः ॥
संवत् १९३९.

अस्य ग्रंथस्याधिकारो भाषाकर्त्रा मया स्वाधीन एव रक्षितः ॥

वि० सं० १९१५ ज्येष्ठ मास अंत पर्य्यन्त पंजाब देशके अमृतसर नगरमें पंडित स्वामी दयानंद सरस्वतीजी विलास करेंगे.
इस ग्रंथमें जो मासोत्तर विज्ञापन दिये गये हैं इनको सब सज्जन ग्राहक पढ़ लेवें

धन जो वेदभाष्यके बनाने और छापनेकी सहायमें धर्मार्थ दिया.

संख्या ग्राहक.	नामग्राहक.	पताग्राहक.	रुपया धर्मार्थ
२	आर्य्यसमाज	लाहौर ॥	१००)
२	बाबू ज्वालाप्रसाद	डिप्टमार्क कलेक्टरी जिले लाहौर ॥	५)
३	बाबू ज्वालाप्रसाद	डिप्टमार्क फारेस्ट डिपार्टमेंट चंगामोली धामसें ॥	५)

संख्या ग्राहक.	नामग्राहक.	पताग्राहक.	मूल्य नगद.
२	लालसिंह नारायणसिंह	जिला एटा, थाना भुमरी, ग्राम रूपधनी ॥	७)
८	मुनशी लालिमाम	जिले बुलंदशहर, प० पाखी, ग्राम छतारी ॥	७)
७८	पंडादीनराज	जिले मुरादाबाद, प० सम्भल, ग्राम फीरोजपुर ॥	७)
९८	पंडित छन्नूलाल	मेयोमेडिकल कालिज अजमेर ॥	७)
११५	मुनशीराम दयाल	कोठीविलासिनी एटा	७)
१३५	लाला हरिशरणदास	आफिं सि. पं. दिल्लीरेलवे आडिट आफिस लाहौर ॥	७)
१३६	लाला रोवाराम वेंटेप्य कन्हैयालाल	ग० कालेज लाहौर	१४)
१३९	लाला जोवनदास	मंत्री आर्य्यसमाज लाहौर	७)
१४३	बाबु कमलनयनजी	एकौंटेन्ट जनरेल्स आफिस लाहौर	७)
१४४	बाबू बनारसीदास	एकौंटेन्ट जनरेल आफिस लाहौर	७)
१४७	लाला भगतराम	पोस्ट मास्टर जेनरेल्स आफिस लाहौर	७)
१४८	लाला मयन्दसिंह	बी० ए० आफ ग० कालेज लाहौर	७)
१५४	लाला जीवनमल	एकौन्टेन्ट जनरेल्स आफिस लाहौर	७)
१८२	लाला ज्वालाप्रसाद	रेवेन्यू लेवी आफ लाहौर	७)
१८८	लाला रघुनाथ मार्फत	लाला जगन्नाथ दारो मास्टर लाहौर	७)
२१३	लाला काशीराम	आफ मल्वान भावलपुर लाहौर	७)
२१४	मास्तर दयाराम	गवर्नमेण्ट स्कूल लाहौर	७)
२२२	लाला बुलंदराय	अपरआफ जिले स्कूल अमृतसर	७)
२७२	लाला ईश्वरी प्रसाद	डिस्ट्रक्ट ओवरसियर मोहमा सुबमंडी लाहौर ॥	७)
३७४	रघुराम बहादुर	फ्रंटीयर आफ कालेज पेशावर	७)
३७७	मास्टर भगवानदास	एसिस्टंट सरजियन पटाला	७)
३७८	बाबू फुलदीलाल	डिप्टआर्क दफ्तर पुलिस मुरादाबाद ॥	७)

महीधरस्यार्थः।

यजमानोऽश्वमभिमंत्रयते। हे वृषन् सेक्तः अश्व उत् ऊर्ध्वं सक्थनी ऊरू यस्यास्तस्या महिष्या गुदमव गुदोपरि रेतो धेहि वीर्य्यं धारय। कथं तदाह अंजि लिंगं संचारय योनौ प्रवेशय। योऽजिः स्त्रीणां जीवभोजनः। यस्मिन् लिंगे योनौ प्रविष्टे स्त्रियो जीवन्ति भोगांश्च लभन्ते तं प्रवेशय॥

॥ भाषार्थ ॥

(उत्सक्थ्या०) इस मंत्रपर महीधरने टीका की है कि एतमान घोडेसे कहता है हे वीर्यके सेचन करनेवाले अश्व तू मेरी स्त्रीके जंघा ऊपरको करके उसकी गुदाके ऊपर वीर्य डालदे अर्थात् उसकी योनिमें लिंग चलादे वह लिंग किस प्रकारका है कि जिस समय योनिमें जाता है उस समय उसी लिंगसे स्त्रियोंका जीवन होता है और उसीसे वे भोगको प्राप्त होती हैं इससे तू उस लिंगको मेरी स्त्रीकी योनिमें डालदे।

अथ सत्योर्थः।

(उत्सक्थ्या०) हे वृषन् सर्वकामानां वर्षयितः प्रापक ससभाध्यक्ष विद्वन् त्वमस्यां प्रजायामाञ्जि ज्ञानसुखन्यायप्रकाशं संचारय सम्यक् प्रकाशय (यः स्त्रीणां जीवभोजनः) कामुकः सन् नाशमाचरति तं त्वमवगुदमधःशिरसं कृत्वा ताडयित्वा कालाग्नौ धेहि यथा स्त्रीणां मध्ये या काचित् उत्सक्थी व्यभिचारिणी स्त्री भवति तस्यै सम्यग्दण्डं ददाति तथैव त्वं तं जीवभोजनं परप्राणनाशकं दुष्टं दस्युं दण्डेन समुच्चारय॥

॥ भाषार्थ ॥

(उत्सक्थ्या०) परमेश्वर कहता है कि हे कामनाकी वृष्टि करनेवाले और उसको प्राप्त करानेवाले सभाध्यक्षसहित विद्वान् लोगो तुम सब एकसंमति होकर इस प्रजामें ज्ञानको बढाके न्यायपूर्वक सबको सुख दिया करो तथा जो कोई दुष्ट (जीवभोजनः) स्त्रियोंमें व्यभिचार करनेवाला चोरोंमें चोर डाकुओंमें डाकू प्रसिद्ध दूसरोंको बुरे काम सिखानेवाला इत्यादि दोषयुक्त पुरु-

ष तथा व्यभिचार आदि दोषयुक्त स्त्रीको ऊपर पग और नीचे शिर करके उसको टांग देना इत्यादि अत्यंत दुर्दशा करके मारडालना चाहिये क्योंकि इससे अत्यंत सुखका लाभ प्रजामें होगा ॥

एतावतैव खण्डनेन महीधरकृतस्य वेददीपाख्यस्य खण्डनं सर्वैर्जनैर्बोद्धव्यमिति । यदा मंत्रभाष्यं मया विधास्यते तत्रास्य महीधरकृतस्य भाष्यस्यान्येपि दोषाः प्रकाशयिष्यन्ते । यदि ह्यार्य्यदेशनिवासिनां सायणमहीधरप्रभृतीनां व्याख्यास्वेतादृशी मिथ्यागतिरस्ति तर्हि यूरोपखंडनिवासिनामेतदनुसारेण स्वदेशभाषया वेदार्थव्याख्यानानामनर्थगतेस्तु का कथा । एवं जाते सति ये ह्येतदाश्रयेण देशभाषया यूरोपदेशभाषया कृतस्य व्याख्यानस्याशुद्धेस्तु खलु का गणनास्ति । इति सज्जनैर्विचारणीयम् । नैवैतेषां व्याख्यानानामाश्रयं कर्तुमार्य्याणां लेशमात्रापि योग्यता दृश्यते । तदाश्रयेण वेदानां सत्यार्थस्य हानिरनर्थप्रकाशश्च । तस्मात्तद्व्याख्यानेषु सत्या बुद्धिः केनापि नैव कर्त्तव्या । किंतु वेदाः सर्वविद्याभिः पूर्णाः सन्ति नैव किंचित्तेषु मिथ्यात्वमस्ति । तदेतच्च सर्वे मनुष्यास्तदा ज्ञास्यन्ति । यदा चतुर्णां वेदानां निर्मितं भाष्यं यंत्रितं च भूत्वा सर्वबुद्धिमतां ज्ञानगोचरं भविष्यति एवं जाते खलु नैव परमेश्वरकृतया वेदविद्यया तुल्या द्वितीया विद्याऽस्तीति सर्वे विज्ञास्यन्तीति बोध्यम् ॥

आगे कहांतक लिखें इतनेहीसे सज्जन पुरुष अर्थ औ अनर्थकी परीक्षा करलेंगे परंतु मंत्रभाष्यमें महीधर आदिके और भी दोष प्रकाश किये जायंगे और जब इन्हीं लोगोंके व्याख्यान अशुद्ध हैं तब यूरोपखंडवासी लोगोंने जो उन्हींकी सहायता लेकर अपनी देशभाषामें वेदोंके व्याख्यान किये हैं उनके अनर्थका तो क्या ही कहना है तथा जिन्होंने उन्हींके अनुसारी व्याख्यान किये हैं उनविरुद्ध व्याख्यानोंसे कुछ लाभ तो नहीं देख पडता किंतु वेदोंके सत्य अर्थकी हानि प्रत्यक्षही होती है परंतु जिस समय चारों वेदका भाष्य बन और छपकर सब बुद्धिमानोंके ज्ञानगोचर होगा तब सब किसीको उत्तमविद्यापुस्तक वेदका परमेश्वररचित

होना भूगोलभरमें विदित हो जावेगा और यह भी प्रगट हो जावेगा कि ईश्वरकृत सत्यपुस्तक वेदही है वा कोई दूसरा भी हो सकता है ऐसा निश्चय जानके सब मनुष्योंकी वेदोंमें परमप्रीति होगी इत्यादि अनेक उत्तम प्रयोजन इस वेदभाष्यके बनानेमें जानलेना ॥ ॥ इति भाष्यकरणशंकासमाधानविषयः समाप्तः ॥

अत्र वेदभाष्ये कर्मकाण्डस्य वर्णनं शब्दार्थतः करिष्यते । अथ प्रतिज्ञाविषयःसंक्षेपतः।

परन्त्वेतैर्वेदमंत्रैः कर्मकाण्डविनियोजितैर्यत्र यत्राग्निहोत्राद्यश्वमेधान्ते यद्यत् कर्त्तव्यं तत्सदत्र विस्तरतो न वर्णयिष्यते । कुतः । कर्मकाण्डानुष्ठानस्यैतरेयशतपथब्राह्मणपूर्वमीमांसाश्रौतसूत्रादिषु यथार्थं विनियोजितत्वात् । पुनस्तत्कथनेनानृषिकृतग्रंथवत् पुनरुक्तपिष्टपेषणदोषापत्तेश्चेति । तस्माद्युक्तिसिद्धो वेदादिप्रमाणानुकूलो मंत्रार्थानुसृतस्तदुक्तोऽपि विनियोगो ग्रहीतुं योग्योस्ति । तथैवोपासनाकाण्डस्यापि प्रकरणशब्दानुसारतो हि प्रकाशः करिष्यते । कुतोऽस्यैकत्र विशेषस्तु पातंजलयोगशास्त्रादिभिर्विज्ञेयोस्तीत्यतः । एवमेव ज्ञानकाण्डस्यापि। कुतः । अस्य विशेषस्तु सांख्यवेदान्तोपनिषदादिशास्त्रानुगतो द्रष्टव्यः । एवं काण्डत्रयेण बोधनिष्पत्त्युपकारौ गृह्येते तच्च विज्ञानकाण्डम् । परं त्वेतत्काण्डचतुष्टयस्य वेदानुसारेण विस्तरस्तद्व्याख्यानेषु ग्रंथेष्वस्ति । स एव सम्यक् परीक्ष्याविरुद्धोर्थो ग्रहीतव्यः । कुतः मूलाभावे शाखादीनामप्रवृत्तेः । एवमेव व्याकरणादिभिर्वेदार्हैर्वैदिकशब्दानामुदात्तादिस्वरविज्ञानं यथार्थं कर्त्तव्यमुच्चारणं च । तत्र यथार्थमुक्तत्वादत्र न वर्ण्यते । एवं पिङ्गलसूत्रछन्दोग्रंथे यथालिखितं छन्दोलक्षणं विज्ञातव्यम् । स्वराः षड्जऋषभगांधारमध्यमपंचमधैवतनिषादाः ॥१॥ पिंगलशास्त्रे अ० ३ सू० १४ ॥ इति पिंगलाचार्य्यकृतसूत्रानुसारेण प्रतिच्छन्दःस्वरा लेखिष्यन्ते । कुतः । इदानीं यच्छन्दोन्वितो यो मंत्रस्तस्य स्वस्वरेणैव वादित्रवादनपूर्वकगानव्यवहाराप्रसिद्धेः । एवमेव वेदानामुपवेदैरायुर्वेदादिभिर्वैद्यकविद्यादयो विशेष

विज्ञेयाः । तथैते सर्वे विशेषार्था अपि वेदमंत्रार्थभाष्ये बहुधा प्रकाशयिष्यन्ते । एवं वेदार्थप्रकाशेन विज्ञानेन सयुक्तिदृढेन जातेनैव सर्वमनुष्याणां सकलसंदेहनिवृत्तिर्भविष्यति । अत्र वेदमंत्राणां संस्कृतप्राकृतभाषाभ्यां सप्रमाणः पदशोऽर्थो लेखिष्यते यत्र यत्र व्याकरणादिप्रमाणावश्यकत्वमस्ति तत्तदपि तत्र तत्र लेखिष्यते येनेदानींतनानां वेदार्थविरुद्धानां सनातनव्याख्यानग्रन्थप्रतिकूलानामनर्थकानां वेदव्याख्यानानां निवृत्त्या सर्वेषां मनुष्याणां वेदानां सत्यार्थदर्शनेन तेष्वत्यन्ता प्रीतिर्भविष्यतीति बोध्यम् । संहितामंत्राणां यथाशास्त्रं यथाबुद्धि च सत्यार्थप्रकाशेन यत्सायणाचार्य्यादिभिः स्वेच्छानुचारतो लोकप्रवृत्त्यनुकूलतश्च लोके प्रतिष्ठार्थं भाष्यं लिखित्वा प्रसिद्धीकृतमनेनात्रानर्थो महान् जातः । तद्द्वारा यूरोपखण्डवासिनामपि वेदेषु भ्रमो जात इति । यदास्मिन्नीश्वरानुग्रहेणार्षिमुनिमहर्षिमहामुनिभिरार्य्यैर्वेदार्थगर्भितेष्वैतरेयब्राह्मणादिपूक्तप्रमाणान्विते मया कृते भाष्ये प्रसिद्धे जाते सति सर्वमनुष्याणां महान् सुखलाभो भविष्यतीति विज्ञायते । अथात्र यस्य यस्य मंत्रस्य पारमार्थिकव्यावहारिकयोर्द्वयोरर्थयोः श्लेषालंकारादिना सप्रमाणः संभवोस्ति तस्य तस्य द्वौ द्वावर्थौ विधास्येते । परन्तु नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मंत्रार्थेऽत्यन्तं त्यागो भवति । कुतः । निमित्तकारणस्येश्वरस्यास्यास्मिन् कार्य्ये जगति सर्वांगव्याप्तिमत्त्वात् । कार्य्यस्येश्वरेण सहान्वयाच्च । यत्र खलु व्यावहारिकोर्थो भवति तत्रापीश्वररचनानुकूलतयैव सर्वेषां पृथिव्यादिद्रव्याणां सद्भावाच्च । एवमेव पारमार्थिकेर्थे कृते तस्मिन्कार्य्यार्थसंबन्धात्सोप्यर्थ आगच्छतीति ॥

॥ भाषार्थ ॥

इस वेदभाष्यमें शब्द और उनके अर्थद्वारा कर्मकांडका वर्णन करेंगे परंतु

लोगोंके कर्मकांडमें लगाये हुए वेदमंत्रोंमेंसे जहां जहां जो जो कर्म अग्निहोत्र-से लेके अश्वमेधके अंतपर्यन्त करने चाहिये उनका वर्णन यहां नहीं किया जायगा क्योंकि उनके अनुष्ठानका यथार्थ विनियोग ऐतरेय शतपथादि ब्राह्मण पूर्वमीमांसा श्रौत और गृह्यसूत्रादिकोंमें कहा हुआ है उसीको फिर कहनेसे पिसेको पीसनेके समतुल्य अल्पज्ञ पुरुषोंके लेखके समान दोष इस भाष्यमें भी आ जा सकता है इस लिये जो जो कर्मकाण्ड वेदानुकूल युक्तिप्रमाणसिद्ध है उसीको मानना यो-ग्य है अयुक्तको नहीं ऐसेही उपासनाकाण्डविषयक मंत्रोंके विषयमें भी वार्तिक सांख्य वेदान्तशास्त्र और उपनिषदोंकी रीतिसे ईश्वरकी उपासना जान लेना परंतु केवल मूलमंत्रोंहीके अर्थानुकूलका अनुष्ठान और प्रतिकूलका परित्याग करना चाहिये क्योंकि जो जो मंत्रार्थ वेदोक्त हैं सो सब स्वतःप्रमाणरूप और ईश्वरके कहे हुए हैं और जो जो ग्रंथ वेदोंसे भिन्न हैं वे केवल वेदार्थके अनुकूल होनेसेही प्रामाणिक हैं ऐसे न हों तो नहीं ॥ ऐसेही व्याकरणादि शास्त्रोंके बोधसे उदात्त अनुदात्त स्वरित एकश्रुति आदि स्वरोंका ज्ञान और उच्चारण तथा पिंगलसूत्रसे छन्दों और षड्जादि स्वरोंका ज्ञान अवश्य करना चाहिये जैसे अग्निमीळे० यहां अकारके नीचे अनुदात्तका चिन्ह (ऽ) उदात्त है इस लिये उसपर चिन्ह नहीं लगाया गया है । मीके ऊपर स्वरितका चिन्ह है । (ळे) में प्रचय और एकश्रुति स्वर है यह बात ध्यानमें रखना ॥ इसी प्रकार जो जो व्याकरणादिके विषय लि-खनेके योग्य होंगे वे सब संक्षेपसे आगे लिखे जायंगे क्योंकि मनुष्योंको उनके समझनेमें कठिनता होती है इस लिये उनके साथमें अन्य प्रामाणिक ग्रंथोंके भी विषय लिखे जायंगे कि जिनके सहायसे वेदोंका अर्थ अच्छी प्रकार विदित हो सके इस भाष्यमें पदपदका अर्थ पृथक् पृथक् क्रमसे लिखा जायगा कि जिससे नवीन टी-काकारोंके लेखसे जो वेदोंमें अनेक दोषोंकी कल्पना कीगई है उन सबकी निवृत्ति हो कर उनके सत्य अर्थोंका प्रकाश हो जायगा तथा जो जो सायण माधव महीधर और अंग्रेजी वा अन्य भाषामें उलथे वा भाष्य किये जाते वा गये हैं तथा जो जो देशान्तर भाषाओंमें टीका हैं उन अनर्थव्याख्यानोंका निवारण होकर मनुष्योंको वेदोंके सत्य अर्थोंके देखनेसे अत्यंत सुखलाभ पहुंचेगा क्योंकि विना सत्यार्थ प्रकाशके देखे मनुष्योंकी भ्रमनिवृत्ति कभी नहीं हो सकती जैसे प्रामाण्याप्रामाण्य विषयमें सत्य और असत्य कथाओंके देखनेसे भ्रमकी निवृत्ति हो सकती है ऐसेही यह भी समझ लेना चाहिये इत्यादि प्रयोजनोंके लिये इस वेदभाष्यके बनानेका आरंभ किया है ॥ । इति प्रतिज्ञाविषयः संक्षेपतः ।

अथ प्रश्नोत्तरविषयः संक्षेपतः ।

(प्रश्नः) अथ किमर्थो वेदानां चत्वारो विभागाः सन्ति । (उत्तरम्) भिन्नभिन्नविद्याज्ञापनाय । (प्र०) कास्ताः । (उ०) त्रिधा गानविद्या भवति गानोच्चारणविद्याया ह्रुतमध्यमविलंबितभेदयुक्तत्वात् । यावता कालेन ह्रस्वस्वरोच्चारणं क्रियते ततो दीर्घोच्चारणे द्विगुणः ह्रुतोच्चारणे त्रिगुणश्च कालो गच्छतीति । अत एवैकस्यापि मंत्रस्य चतसृषु संहितासु पाठः कृतोस्ति । तद्यथा । ऋग्भिस्स्तुवन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिर्गायन्ति । ऋग्वेदे सर्वेषां पदार्थानां गुणप्रकाशः कृतोस्ति । तथा यजुर्वेदे विदितगुणानां पदार्थानां सकाशात् क्रियाऽनेकविधोपकारग्रहणाय विधानं कृतमस्ति । तथा सामवेदे ज्ञानक्रियाविधयोर्दीर्घविचारेण फलावधिपर्य्यन्तं विद्याविचारः । एवमथर्ववेदेऽपि त्रयाणां वेदानां मध्ये यो विद्याफलविचारो विहितोस्ति तस्य पुष्टिकरणेन रक्षणोन्नती विहिते स्तः । एतदाद्यर्थं वेदानां चत्वारो वेभागाः सन्ति । (प्रश्नः) वेदानां चतुःसंहिताकरणे किं प्रयोजनमस्तीति । (उत्तरम्) यतो विद्याविधायकानां मंत्राणां प्रकरणशः पूर्वापरसंधानेन सुगमतया तत्रस्था विद्या विदिता भवेयुरेतदर्थं संहिताकरणम् ॥ (प्र०) वेदेष्वष्टकमण्डलाध्यायसूक्तषट्ककाण्डवर्गशतित्रिकप्रपाठकानुवाकविधानं किमर्थं कृतमस्तीत्यत्र ब्रूमः । (उ०) अष्टकादीनां विधानमेतदर्थमस्ति यथा सुगमतया पठनपाठनमंत्रपरिज्ञानं प्रतिविदं विद्याप्रकरणबोधश्च भवेदेतदर्थमेतद्विधानं कृतमस्तीति । (प्र०) किमर्थो ऋग्यजुःसामाथर्वाणः प्रथमद्वितीयतृतीयचतुर्थसंख्यया क्रमेण परिगणिताः सन्तीत्यत्रोच्यते । (उ०) न यावद्गुणगुणिनोः साकल्यज्ञानं भवति नैव तावत्संस्कारः प्रीतिश्च । नाभ्यां विना वृक्षोत्पत्तिर्भवति तया विना सुखाभावश्चेति । एतद्विद्याविधायकत्वाद-

ग्वेदः प्रथमं परिगणितुं योग्योस्ति। एवं च यथा पदार्थगुणज्ञानानन्तरं क्रियया उपकारेण सर्वजगद्धितसंपादनं कार्य्यं भवति । यजुर्वेद एतद्विद्याप्रतिपादकत्वाद्द्वितीयः परिगणितोस्तीति बोध्यम् । तथा ज्ञानकर्मकाण्डयोरुपासनायाश्च क्रियत्युक्तिर्भवितुमर्हति किंचैतेषां फलं भवति सामवेद एतद्विद्यायकत्वात्तृतीयो गण्यत इति । एवमेवाथर्ववेदस्यन्तर्गतविद्यानां परिशेषरक्षणविधायकत्वाच्चतुर्थः परिगण्यत इति । अतो गुणज्ञानक्रियाविज्ञानोक्तिशेषविचाररक्षणानां पूर्वापरसहभावे संयुक्तत्वात्क्रमेणर्ग्यजुस्सामाथर्वाण इति चतस्रः संहिताः परिगणिताः संज्ञाश्च कृताः सन्ति । ऋच स्तुतौ । यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु । साम सान्त्वने । षो अन्तकर्मणि । थर्वतिश्चरति कर्मातत्प्रतिषेधः । निरु० अ० ११ खं० १८ चर संशये । अनेनाथर्वशब्दः संशयनिवारणार्थो गृह्यते । एवं धात्वर्थोक्तप्रमाणेभ्यः क्रमेण वेदाः परिगण्यन्ते चेति वेदितव्यम् ।

॥ भाषार्थ ॥

(प्र०) वेदोंके चार विभाग क्यों किये हैं । (उ०) भिन्न भिन्न विद्या जनानेके लिये अर्थात् जो तीन प्रकारकी गानविद्या है एक तो यहकी उदात्त और षड्जादि स्वरोंका उच्चारण ऐसी शीघ्रतासे करना जैसा कि ऋग्वेदके स्वरोंका उच्चारण द्रुत अर्थात् शीघ्रवृत्तिमें होता है, दूसरी मध्यमवृत्ति जैसे कि यजुर्वेदके स्वरोंका उच्चारण ऋग्वेदके मंत्रोंसे दूने कालमें होता है, तीसरी विलंबित वृत्ति है जिसमें प्रथम वृत्तिसे तिगुना काल लगता है जैसा कि सामवेदके स्वरोंके उच्चारण वा गानमें फिर उन्हीं तीनों वृत्तियोंके मिलानेसे अथर्ववेदका भी उच्चारण होता है परंतु इसका द्रुतवृत्तिमें उच्चारण अधिक होता है इस लिये वेदोंके चार विभाग हुए हैं तथा कहीं कहीं एक मंत्रका चार वेदोंमें पाठ करनेका यही प्रयोजन है कि वह पूर्वोक्त चारों प्रकारकी गानविद्यायें गाया जावे तथा प्रकरणभेदसे कुछ कुछ अर्थभेद भी होता है इस लिये कितनेही मंत्रोंका पाठ चार वेदोंमें किया जाता है ऐसेही (ऋग्भिस्तु०) ऋग्वेदमें सब पदार्थोंके गुणोंका प्रकाश किया है जिससे उनमें

प्रीति बढ़कर उपकार लेनेका ज्ञान प्राप्त हो सके क्योंकि विना प्रत्यक्ष ज्ञानके संस्कार और प्रवृत्तिका आरंभ नहीं हो सकता और आरम्भके विना यह मनुष्यजन्म व्यर्थही चला जाता है इस लिये ऋग्वेदकी गणना प्रथमही की है तथा यजुर्वेदमें क्रियाकाण्डका विधान लिखा है सो ज्ञानके पश्चातही कर्त्ताकी प्रवृत्ति यथावत् हो सकती है क्योंकि जैसा ऋग्वेदमें गुणोंका कथन किया है वैसाही यजुर्वेदमें अनेक विद्याओंके ठीक ठीक विचार करनेसे संसारमें व्यवहारी पदार्थोंसे उपयोग सिद्ध करना होता है जिनसे लोगोंको नानाप्रकारका सुख मिले क्योंकि जबतक कोई क्रिया विधिपूर्वक न की जाय तबतक उसका अच्छी प्रकार भेद नहीं खुल सकता इस लिये जैसा कुछ जानना वा करना वैसाही करना भी चाहिये तभी ज्ञानका फल और ज्ञानीकी शोभा होती है तथा यह भी जानना अवश्य है कि जगत्का उपकार मुख्य करके दोही प्रकारका होता है एक आत्मा और दूसरा शरीरका अर्थात् विद्यादानसे आत्मा और श्रेष्ठ नियमोंसे उत्तम पदार्थोंकी प्राप्ति करके शरीरका उपकार होता है इस लिये ईश्वरने ऋग्वेदादिका उपदेश किया है कि जिनसे मनुष्य लोग ज्ञान और क्रियाकाण्डको पूर्ण रीतिसे जान लेवें तथा सामवेदसे ज्ञान और आनन्दकी उन्नति और अथर्व वेदसे सर्व संशयोंकी निवृत्ति होती है इस लिये इनके चार विभाग किये हैं । (प्र०) प्रथम ऋग्, दूसरा यजुः, तीसरा साम और चौथा अथर्ववेद इस क्रमसे चार वेद क्यों गिने हैं । (उ०) जबतक गुण और गुणीका ज्ञान मनुष्यको नहीं होता तबपर्य्यन्त उनमें प्रीतिसे प्रवृत्ति नहीं हो सकती और इसके विना शुद्ध क्रियादिके अभावसे मनुष्योंको सुख भी नहीं हो सकता था इस लिये वेदोंके चार विभाग किये हैं कि जिससे प्रवृत्ति हो सके क्योंकि जैसे इस गुणज्ञान विद्याको जनानेसे पहिले ऋग्वेदकी गणना योग्य है वैसेही पदार्थोंके गुण ज्ञानके अनन्तर क्रियारूप उपकार करके सब जगत्का अच्छी प्रकारसे हित भी सिद्ध हो सके इस विद्याके जनानेके लिये यजुर्वेदकी गिनती दूसरीवारकी है ऐसेही ज्ञान कर्म और उपासनाकाण्डकी वृद्धि वा फल कितना और कहांतक होना चाहिये इसका विधान सामवेदमें लिखा है इस लिये उसको तीसरा गिना है ऐसेही तीन वेदोंमें जो जो विद्या हैं उन सबके शेष भागकी पूर्ति विधान सब विद्याओंकी रक्षा और संशयनिवृत्तिके लिये अथर्ववेदको चौथा गिना है सो गुणज्ञान क्रियाविज्ञान इनकी उन्नति तथा रक्षाको पूर्वापर क्रमसे जान लेना अर्थात् ज्ञानकाण्डके लिये ऋग्वेद क्रियाकाण्डके लिये यजुर्वेद इनकी उन्नतीके लिये सामवेद और शेष अन्य रक्षाओंके प्रकाश करनेके लिये अथर्व वेदकी प्रथम दू-

सरी तीसरी और चौथी करके संख्या बांधी है क्योंकि (ऋच स्तुतौ) (यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु) (षोन्तकर्मणि) और (साम सान्त्वप्रयोगे) (अथर्वनिश्चरति कर्मा) इन अर्थोंके विद्यमान होनेसे चार वेदों अर्थात् ऋग् यजुः साम और अथर्वकी ये चार संज्ञा रक्खी हैं तथा अथर्ववेदका प्रकाश ईश्वरने इस लिये किया है कि जिससे तीनों वेदोंकी अनेक विद्याओंके सब विघ्नोंका निवारण और उनकी गणना अच्छी प्रकारसे हो सके । (प्र०) वेदोंकी चार संहिता करनेका क्या प्रयोजन है । (उ०) विद्याके जनानेवाले मंत्रोंके प्रकरणसे जो पूर्वापरका ज्ञान होना है उससे वेदोंमें कही हुई सब विद्या सुगमतासे जानली जाय । इत्यादि प्रयोजन संहिताओंके करनेमें हैं । (प्र०) अच्छा अब आप यह तो कहिये कि वेदोंमें जो अष्टक अध्याय मंडल सूक्त षट्क कांड वर्ग दशति विक और अनुवाक रक्खे हैं ये किस लिये हैं । (उ०) इनका विधान इस लिये है कि जिससे पठन पाठन और मंत्रोंकी गिनती विना कठिनताके जानली जाय तथा सब विद्याओंके पृथक् पृथक् प्रकरण निर्भ्रमताके साथ विदित होकर सब विद्याव्यवहारोंमें गुण और गुणीके ज्ञानद्वारा मनन और पूर्वापर स्मरण होनेसे अनुवृत्तिपूर्वक आकांक्षा योग्यता आसक्ति और तात्पर्य सबको विदित हो सके इत्यादि प्रयोजनके लिये अष्टकादि किये हैं ॥

॥ भाष्यम् ॥

(प्रश्नः) प्रत्येकमंत्रस्योपरि । ऋषिदेवताछन्दःस्वराः किमर्थं लिख्यन्ते । (उत्तरं) यतो वेदानामीश्वरोच्चयनन्तरं येन येनर्षिणा यस्य यस्य मंत्रस्यार्थो यथावद्विदितस्तस्मात्तस्य तस्योपरि तत्तदृषेर्नामोल्लेखनं कृतमस्ति । कुतः । यैरीश्वरध्यानानुग्रहाभ्यां महता प्रयत्नेन मंत्रार्थस्य प्रकाशितत्वात् । तत्कृतमहोपकारस्मरणार्थं तन्नामलेखनं प्रतिमन्त्रस्योपरि कर्तुं योग्यमस्त्यतः ॥ अत्र प्रमाणम् । यो वाचं श्रुतवान् भवत्यफलामपुष्पामित्यफला स्मा अपुष्पा वाग्भवतीति वा किंचित्पुष्पफलेति वार्थं वाचः पुष्पफलमाह याज्ञदैवते पुष्पफले देवताध्यात्मेवासाक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुस्ते वरेभ्यो साक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मंत्रान्संप्रादुरुपदेशाय ग्लायन्तो वरे विल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुर्वेदं च वेदांगानि च त्रिल्मं त्रिल्मं भासनमिति वैतावन्तः

समानकर्माणो धातवो धातुर्दधातेरेतावन्त्यस्य सत्त्वस्य नामधेयान्येतावतामर्थानामिदमभिधानं नैघंटुकमिदं देवतानामप्राधान्येनेदमिति तद्यदन्यदैवते मंत्रे निपतति नैघंटुकं तत् ॥ निरु० अ० १ खं० २० ॥ (यो वाचं) यो मनुष्योर्थविज्ञानेन विना श्रवणाध्ययने करोति तदफलं भवति । (प्रश्नः) वाचो वाण्याः किं फलं भवतीत्यत्राह । (उत्तरम्) विज्ञानं तथा तज्ज्ञानानुसारेण कर्मानुष्ठानम् । य एवं ज्ञात्वा कुर्वन्ति त ऋषयो भवन्ति कीदृशास्ते साक्षात्कृतधर्माणः ॥ यैः सर्वा विद्या यथावद्दिदितास्त ऋषयो बभूवुस्तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतवेदेभ्यो मनुष्येभ्य उपदेशेन वेदमंत्रान्संप्रादुः मंत्रार्थांश्च प्रकाशितवन्तः । कस्मै प्रयोजनाय । उत्तरोत्तरं वेदार्थप्रचाराय । ये चावरेऽध्ययनायोपदेशाय च ग्लायन्ति तान् वेदार्थविज्ञापनायेमं नैघंटुकं निरुक्ताख्यं ग्रन्थं त ऋषयः समाम्नासिषुः सम्यगभ्यासं कारितवन्तः । येन वेदं वेदांगानि यथार्थविज्ञानतया सर्वे मनुष्या जानीयुः । ये समानार्थाः समानकर्माणो धातवो भवन्ति तदर्थप्रकाशो यत्र क्रियते । अस्यार्थस्यैतावन्ति नामधेयान्येतावतामर्थानामिदमभिधानार्थमेकं नाम । अथवैकस्यार्थस्यानेकानि नामान्यनेकेषामेकं नामेति तन्नैघंटुकं व्याख्यानं विज्ञेयम् । यत्रार्थानां द्योत्यानां पदार्थानां प्राधान्येन स्तुतिः क्रियते तत्र सैवेयं मंत्रमयी देवता विज्ञेया । यच्च मंत्राद्विज्ञार्थस्यैव संकेतः प्रकाश्यते तदपि नैघंटुकं व्याख्यानमिति । अतो नैव कश्चिन्मनुष्यो मंत्रनिर्मातेति विज्ञेयम् । एवं येन येनर्षिणा यस्य यस्य मंत्रस्यार्थः प्रकाशितोस्ति तस्य तस्य ऋषेरेकैकमंत्रस्य संबन्धे नामोल्लेखः कृतोस्ति । तथा यस्य यस्य मंत्रस्य यो योऽर्थोस्ति स सोऽर्थस्तस्य तस्य देवताशब्देनाभिप्रायार्थविज्ञापनार्थं प्रकाश्यते । एतदर्थं देवताशब्दलेखनं कृतम् । एवं च यस्य यस्य मंत्रस्य गायत्र्यादिछन्दोस्ति तत्तद्विज्ञानार्थं छन्दोलेख-

खनम् तथा यस्य यस्य मंत्रस्य येन येन स्वरेण वादित्रवादनपूर्वकं गानं कर्तुं योग्यमस्ति तत्तदर्थं षड्जादिस्वरोल्लेखनं कृतमस्तीति सर्वमेतद्विज्ञेयम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(प्र०) प्रतिमंत्रके साथ ऋषि देवता छंद और स्वर किस लिये लिखते हैं। (उ०) ईश्वर जिस समय आदि सृष्टिमें वेदोंका प्रकाश कर चुका तभीसे प्राचीन ऋषि लोग वेदमंत्रोंके अर्थोंका विचार करने लगे फिर उनमेंसे जिस जिस मंत्रका अर्थ जिस जिस ऋषिने प्रकाशित किया उसउसका नाम उसी उसी मंत्रके साथ स्मरणके लिये लिखा गया है इसी कारणसे उनका ऋषि नाम भी हुआ है और जो उन्होंने ईश्वरके ध्यान और अनुग्रहसे बड़े बड़े प्रयत्नके साथ वेदमंत्रोंके अर्थोंको यथावत् जानकर सब मनुष्योंके लिये पूर्ण उपकार किया है इसलिये विद्वान् लोग वेदमंत्रोंके साथ उनका स्मरण रखते हैं इस विषयमें अर्थसहित प्रमाण लिखते हैं (यो वाचं०) जो मनुष्य अर्थको समझेविना अध्ययन वा श्रवण करते हैं उनका सब परिश्रम निष्फल होता है। (प्र०) वाणीका फल क्या है। (उ०) अर्थको ठीक ठीक जानके उसीके अनुसार व्यवहारोंमें प्रवृत्त होना वाणीका फल है। और जो लोग इस नियमपर चलते हैं वे साक्षात् धर्मात्मा अर्थात् ऋषि कहलाते हैं इस लिये जिन्होंने सब विद्याओंको यथावत् जानाथा वेही ऋषि हुएथे जिन्होंने अपने उपदेशसे अवर अर्थात् अल्पबुद्धि मनुष्योंको वेदमंत्रोंके अर्थोंका प्रकाश कर दिया है। (प्र०) किस प्रयोजनके लिये। (उ०) वेदार्थप्रचारकी परंपरा स्थिर रहनेके लिये तथा जो लोग वेदशास्त्रादि पढ़नेको कम समर्थ हैं वे जिससे सुगमतासे वेदार्थ जान लेवें इस लिये निघंटु और निरुक्त आदि ग्रंथ भी बना दिये हैं कि जिनके सहायसे सब मनुष्य वेद और वेदांगोंको ज्ञानपूर्वक पढ़कर उनके सत्य अर्थोंका प्रकाश करें। निघंटु उसको कहते हैं कि जिसमें तुल्य अर्थ और तुल्य कर्मवाले धातुओंकी व्याख्या एक पदार्थको अनेकार्थ तथा अनेक अर्थोंका एक नामसे प्रकाश और मंत्रोंसे भिन्न अर्थोंका संकेत है और निरुक्त उसका नाम है कि जिसमें वेदमंत्रोंकी व्याख्या है और जिन जिन मंत्रोंमें जिन जिन पदार्थोंकी प्रधानतासे स्तुति की है उनके मंत्रमय देवता जानने चाहिये अर्थात् जिस जिस मंत्रका जो जो अर्थ होता है वही उसका देवता कहाता है सो यह इस लिये है कि जिससे मंत्रोंको देखके उनके अभिप्रायार्थका यथार्थ ज्ञान हो जाय इत्यादि प्रयो-

उनके लिये देवता शब्द मंत्रके साथमें लिखा जाता है ऐसेही जिस जिस मंत्रका जो जो छन्द है सो भी उसके साथ इस लिये लिख दिया गया है कि उनसे मनुष्योंको छन्दोंका ज्ञान भी यथावत् होता रहे तथा कौनकौनसा छन्द किस किस स्वरमें गाना चाहिये इस बातको जनानेके लिये उनके साथमें षड्जादि स्वर लिखे जाते हैं जैसे गायत्री छन्दवाले मंत्रोंको षड्ज स्वरमें गाना चाहिये ऐसेही और और भी बता दिये हैं कि जिससे मनुष्य लोग गानविद्यामें भी प्रवीण हों इसी लिये वेदमें प्रत्येक मंत्रोंके साथ उनके षड्ज आदि स्वर लिखे जाते हैं ॥

॥ भाष्यम् ॥

(प्र०) वेदेष्वग्निवाय्विन्द्राश्विसरस्वत्यादिशब्दानां क्रमेण पाठः किमर्थः कृतोस्ति । (उ०) पूर्वापरविद्याविज्ञापनार्थं विद्यासंग्यनुषंगिप्रतिविद्यानुषंगिबोधार्थं चेति । तद्यथा । अग्निशब्देनेश्वरभौतिकार्थयोर्ग्रहणं भवति । यथाऽनेनेश्वरस्य ज्ञानव्यापकत्वादयो गुणा विज्ञातव्या भवन्ति । यथेश्वररचितस्य भौतिकस्याग्नेः शिल्पविद्याया मुख्यहेतुत्वात्प्रथमं गृह्यते । तथेश्वरस्य सर्वाधारकत्वानंतबलवत्त्वादिगुणा वायुशब्देन प्रकाश्यन्ते । यथा शिल्पविद्यायां भौतिकाग्नेः सहायकारित्वान्मूर्त्तद्रव्याधारकत्वात्तदनुषंगित्वाच्च भौतिकस्य वायोर्ग्रहणं कृतमस्ति तथैव वाय्वादीनामाधारकत्वादीश्वरस्यापीति । यथेश्वरस्येन्द्रशब्देन परमैश्वर्य्यवत्त्वादिगुणा विदिता भवन्ति । तथा भौतिकेन वायुनाप्युत्तमैश्वर्य्यप्राप्तिर्मनुष्यैः क्रियते । एतदर्थमिन्द्रशब्दस्य ग्रहणं कृतमस्ति । अश्विशब्देन शिल्पविद्यायां यानचालनादिविद्याव्यवहारे जलाग्निपृथिवीप्रकाशादयो हेतवः प्रतिहेतवश्च सन्त्येतदर्थमग्निवायुग्रहणानन्तरमश्विशब्दप्रयोगो वेदेषु कृतोस्ति । एवं च सरस्वतीशब्देनेश्वरस्यानन्तविद्यावत्त्वशब्दार्थसंबंधरूपवेदोपदेष्टृत्वादिगुणा वेदेषु प्रकाशिता भवन्ति वाग्व्यवहाराश्च । इत्यादिप्रयोजनायाग्निवाय्विन्द्राश्विसरस्वत्यादिशब्दानां ग्रहणं कृतमस्ति । एवमेव सर्वत्रैव वैदिकशब्दार्थव्यवहारज्ञानं सर्वैर्मनुष्यैर्वोध्यमस्तीति विज्ञाप्यते ॥

॥ भाषार्थ ॥

(प्र०) वेदोंमें अनेकवार अग्नि वायु इन्द्र सरस्वती आदि शब्दोंका प्रयोग किस लिये किया है । (उ०) पूर्वापर विद्याओंके जनानेके लिये अर्थात् जिस जिस विद्यामें जो जो मुख्य और गौण हेतु हैं उनके प्रकाशके लिये ईश्वरने अग्नि आदि शब्दोंका प्रयोग पूर्वापर संबन्धसे किया है क्योंकि अग्नि शब्दसे ईश्वर और भौतिक आदि कितनेही अर्थोंका ग्रहण होता है इस प्रयोजनसे कि उसका अनंत ज्ञान अर्थात् उसकी व्यापकता आदि गुणोंका बोध मनुष्योंको यथावत् हो सके फिर इसी अग्निशब्दसे पृथिव्यादि भूतोंके बीचमें जो प्रत्यक्ष अग्नि तत्त्व है वह शिल्पविद्याका मुख्य हेतु होनेके कारण उसका ग्रहण प्रथमही किया है तथा ईश्वरके सबको धारण करने और उसके अनंत बल आदि गुणोंका प्रकाश जनानेके लिये वायुशब्दका ग्रहण किया गया है तथा शिल्पविद्यामें अग्निका सहायकारी और मूर्तद्रव्यका धारण करनेवाला मुख्य वायुही है इस लिये प्रथम सूक्तमें अग्निका और दूसरेमें वायुका ग्रहण किया है तथा ईश्वरके अनन्त गुण विदित होने और भौतिक वायुसे योगाभ्यास करके विज्ञान तथा शिल्पविद्यासे उत्तम ऐश्वर्यकी प्राप्ति करनेके लिये इन्द्रशब्दका ग्रहण तीसरे स्थानमें किया है क्योंकि अग्नि और वायुकी विद्यासे मनुष्योंको अद्भुत अद्भुत कलाकौशल्यादि बनानेकी युक्ति ठीक ठीक जान पडती है तथा अश्विशब्दका ग्रहण तीसरे सूक्त और चौथे स्थानमें इस लिये किया है कि उससे ईश्वरकी अनन्त क्रियाशक्ति विदित हो क्योंकि शिल्पविद्यामें विमान आदि यान चलानेके लिये जल अग्नि पृथिवी और प्रकाश आदि पदार्थही मुख्य होते हैं अर्थात् जितने कलायंत्र विमान नौका और रथ आदि यान होते हैं वे सब पूर्वोक्त प्रकारसे पृथिव्यादि पदार्थोंसेही बनते हैं इस लिये अश्विशब्दका पाठ तीसरे सूक्त और चौथे स्थानमें किया है तथा सरस्वती नाम परमेश्वरकी अनन्त वाणीका है कि जिससे उसकी अनन्त विद्या जानी जाती है तथा जिस करके उसने सब मनुष्योंके लिये अपनी अनन्त विद्यायुक्त वेदोंका उपदेश भी किया है इस लिये तिसरे सूक्त और पांचवे स्थानमें सरस्वतीशब्दका पाठ वेदोंमें किया है इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना ॥

॥ भाष्यम् ॥

(प्र०) वेदानामारम्भेऽग्निवाय्वादिशब्दप्रयोगैः प्रसिद्धिर्जायते वेदेषु भौतिकपदार्थानामेव तत्तच्छब्दैर्ग्रहणं भवति । यत आरम्भे खल्वी-

श्वरशब्दप्रयोगो नैव कृतोस्ति । (उ०) व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि संदेहादलक्षणमिति महाभाष्यकारेण पतंजलिमहामुनिना (लण्) इति सूत्रव्याख्यानोक्तन्यायेन सर्वसंदेहनिवृत्तिर्भवतीति । कुतः । वेद-वेदांगोपांगब्राह्मणपंथेष्वग्निशब्देनेश्वरभौतिकार्थयोर्व्याख्यानस्य विद्यमानत्वात् । तयेश्वरशब्दप्रयोगेणापि व्याख्यानेन विना सर्वथा संदेह-निवृत्तिर्न भवति । ईश्वरशब्देन परमात्मा गृह्यते तथा सामर्थ्यवतो राज्ञः कस्यचिन्मनुष्यस्यापीश्वर इति नामास्ति तयोर्मध्यात्कस्य ग्रहणं कर्त्त-व्यमिति शंकायां व्याख्यानत एव संदेहनिवृत्तिर्भवत्यत्रेश्वरनाम्ना पर-मात्मनो ग्रहणमत्र राजादिमनुष्यस्येति । एवमत्राप्यग्निनाम्नोभयार्थग्र-हणे नैव कश्चिद्दोषो भवतीति । अन्यथा कोटिशः श्लोकैस्सहस्रैर्ग्र-न्थैरपि विद्यालेखपूर्त्तिरत्यन्तासंभवास्ति । अतः कारणादग्न्यादिश-ब्दैर्व्यावहारिकपारमार्थिकयोर्विद्ययोर्ग्रहणं स्वल्पाक्षरैः स्वल्पग्रन्थैश्च भवतीति मत्वेश्वरेणाग्न्यादिशब्दप्रयोगाः कृताः । यतोल्पकालेन पठन-पाठनव्यवहारेणाल्पपरिश्रमेणैव मनुष्याणां सर्वा विद्या विदिता भवे-युरिति । परमकारुणिकः परमेश्वरः सुगमशब्दैस्सर्वविद्योद्देशानुपदिष्ट-वानिति विज्ञेयम् । तथा च येऽग्न्यादयः शब्दार्थाः संसारे प्रसिद्धाः सन्त्येतैः सर्वैरीश्वरप्रकाशः क्रियते । कुतः । ईश्वरोस्तीति सर्वे दृष्टा-न्ता ज्ञापयन्तीति बोध्यम् । एवं चतुर्वेदस्थविद्यानां मध्यात्काश्चिद्विद्या अत्र भूमिकायां संक्षेपतो लिखिता इतोऽग्रे मन्त्रभाष्यं विधास्यते । तत्र यस्मिन् यस्मिन् मंत्रे या या विद्योपदिष्टाऽस्ति सा सा तस्य तस्य मंत्रस्य व्याख्यानावसरे यथावत् प्रकाशयिष्यते ॥

॥ भाषार्थ ॥

(प्र०) वेदके आरम्भमें अग्नि वायु आदि शब्दोंके प्रयोगसे यह सिद्ध होता है कि जगत्में जिन पदार्थोंका नाम अग्नि आदि प्रसिद्ध है उन्हींका ग्रहण करना चाहि

ये और इसी लिये लोगोंने उन शब्दोंसे संसारके अग्नि आदि पदार्थोंको मान भी लिया है नहीं तो उचित था कि जो जो शब्द जहां जहां होना चाहिये था वहां वहां उसीका ग्रहण करते कि जिससे कभी किसीको भ्रम न होता अथवा आरम्भमें उन शब्दोंकी जगह ईश्वर परमेश्वरादि शब्दोंहीका ग्रहण करना था (उ०) यूं तो ऐसा करनेसे भी भ्रम हो सकता है परन्तु जब कि व्याख्यानोंके द्वारा मंत्रोंके पदपदका अर्थ खोल दिया गया है तब उनके देखनेसे सब संदेह आपसेआपही निवृत्त हो जाते हैं क्योंकि शिक्षा आदि अंग वेदमंत्रोंके पदपदका अर्थ ऐसी रीतिसे खोलते हैं कि जिससे वैदिक शब्दार्थोंमें किसी प्रकारका संदेह शेष नहीं रह सकता और जो कदाचित् ईश्वरशब्दका प्रयोग करते तो भी विना व्याख्यानके संदेहकी निवृत्ति नहीं हो सकती क्योंकि ईश्वर नाम उत्तम सामर्थ्यवाले राजादि मनुष्योंका भी हो सकता है और किसीकिसीकी ईश्वरसंज्ञाभी होती है तथा जो सब विकाने एकार्थवाची शब्दोंकाही प्रयोग करते तो भी अनेक कोटि श्लोक और हजारहा ग्रंथ वेदोंके बन जानेका संभव था परन्तु विद्याका पारावार फिर भी नहीं आता और न उनको मनुष्य लोग कभी पढ़पढ़ा सकते इस प्रयोजन अर्थात् सुगमताके लिये ईश्वरने अग्न्यादिशब्दोंका प्रयोग करके व्यवहार और परमार्थ इन दोनों बातें सिद्ध करनेवाली विद्याओंका प्रकाश किया है कि जिससे मनुष्य लोग थोड़ेही कालमें मूल विद्याओंको जान लें इसी मुख्य हेतुसे सबके सुखार्थ परम कृपामय परमेश्वरने अग्न्यादि सुगम शब्दोंके द्वारा वेदोंका उपदेश किया है इस लिये अग्न्यादि शब्दोंके अर्थ जो संसारमें प्रसिद्ध हैं उनसे भी ईश्वरका ग्रहण होता है क्योंकि ये सब दृष्टान्त परमेश्वरहीके जानने और जनानेके लिये हैं इस प्रकार चार वेदोंमें जो जो विद्या हैं उनमेंसे कोई कोई विद्या तो इस वेदभाष्यकी भूमिकामें संक्षेपसे लिख दी है शेष सब इसके आगे जब मंत्रभाष्यमें जिस जिस मंत्रमें जिस जिस विद्याका उपदेश है सो सो उसी उसी मंत्रके व्याख्यानमें यथावत् प्रकाशित कर देंगे ॥

॥ भाष्यम् ॥

अथ निरुक्तकारः संक्षेपतो वैदिकशब्दानां विशेषनिघण्टानाह ॥

तास्त्रिविधा ऋचः परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिकयश्च तत्र परोक्षकृताः सर्वाभिर्नामविभक्तिभिर्युज्यन्ते प्रथमपुरुषैश्चाख्यातस्य अथ प्रत्यक्षकृता मध्यमपुरुषयोगास्त्वमिति चैतेन सर्वनाम्ना । अथा

पि प्रत्यक्षकृताः स्तोतारो भवन्ति परोक्षकृतानि स्तोतव्यानि । अ-
धाध्यात्मिकय उत्तमपुरुषयोगा अहमिति चैतेन सर्वनाम्ना ॥ निरु०
अ० ७ खं० १ । २ ॥ अयं नियमः वेदेषु सर्वत्र संगच्छते । त-
यथा । सर्वे मन्त्रास्त्रिविधानामर्थानां वाचका भवन्ति । केचित्परोक्षा-
णां केचित्प्रत्यक्षाणां केचिदध्यात्मं वक्तुमर्हाः । तत्राद्येषु प्रथमपुरुषस्य
प्रयोगा भवन्ति । अपरेषु मध्यमस्य तृतीयेषूत्तमपुरुषस्य च । तत्र म-
ध्यमपुरुषप्रयोगार्थौ द्वौ भेदौ स्तः । यन्नार्थाः प्रत्यक्षाः सन्ति तत्र
मध्यमपुरुषयोगा भवन्ति । यच्च च स्तोतव्या अर्थापरोक्षाः स्तोतारश्च
वस्तु प्रत्यक्षास्तत्रापि मध्यमपुरुषप्रयोगो भवतीति । अस्यायमभिप्रायः ।
व्याकरणरीत्या प्रथममध्यमोत्तमपुरुषाः क्रमेण भवन्ति तत्र जडपदा-
र्थेषु प्रथमपुरुष एव । चेतनेषु मध्यमोत्तमौ च । अयं लौकिकवैदि-
कशब्दयोः सार्वत्रिको नियमः । परं तु वैदिकव्यवहारे जडेपि प्रत्यक्षे
मध्यमपुरुषप्रयोगाः सन्ति । तत्रेदं बोध्यं जडानां पदार्थानामुपकारार्थं
प्रत्यक्षकरणमात्रमेव प्रयोजनमिति । इमं नियममबुद्ध्वा वेदभाष्यकारैः
सायणाचार्य्यादिभिस्तदनुसारतया स्वदेशभाषयाऽनुवादकारकैर्यूरोपा-
ख्यदेशनिवास्यादिभिर्मनुष्यैर्वेदेषु जडपदार्थानां पूजास्तीति वेदार्थोऽ-
यथैव वर्णितः ॥ ॥ भाषार्थ ॥

अब इसके आगे वेदस्थ प्रयोगोंके विशेष नियम संक्षेपसे कहते हैं । जो जो नियम निरुक्तकारादिने कहे हैं वे बराबर वेदोंके सब प्रयोगोंमें लगते हैं (त्रिविधा मन्त्राः) वेदोंके सब मंत्र तीन प्रकारके अर्थोंको कहते हैं कोई परोक्ष अर्थात् अदृश्य अर्थों-को कोई प्रत्यक्ष अर्थात् दृश्य अर्थोंको और कोई अध्यात्म अर्थात् ज्ञानगोचर आत्मा और परमात्माको उनमेंसे परोक्ष अर्थके कहनेवाले मंत्रोंमें प्रथम पुरुष अर्थात् अपने और दूसरेके कहनेवाले सो सो और वह आदि शब्द हैं तथा उनकी क्रियाओंके अस्ति । भवति । करोति । पचतीत्यादि प्रयोग हैं । एवं प्रत्यक्ष अर्थके कहनेवालोंमें मध्यम पुरुष अर्थात् मैं तुम आदि शब्द और उनकी क्रियाके असि । भवसि । करोषि ।

पचसीत्यादि प्रयोग हैं। तथा अध्यात्म अर्थके कहनेवाले मंत्रोंमें उत्तम पुरुष अर्थात् मैं हम आदि शब्द और उनकी अस्मि। अवामि।करोमि।पचामीत्यादि क्रिया आती हैं तथा जहां स्तुति करनेके योग्य परोक्ष और स्तुति करनेवाले प्रत्यक्ष हों वहां भी मध्यम पुरुषका प्रयोग होता है वहां यह अभिप्राय समझना चाहिये कि व्याकरणकी रीतिसे प्रथम मध्यम और उत्तम अपनी अपनी जगह होते हैं अर्थात् जड़ पदार्थोंमें प्रथम चेतनमें मध्यम वा उत्तम होते हैं सो यह तो लोक और वेदके शब्दोंमें साधारण नियम है परंतु वेदके प्रयोगोंमें इतनी विशेषता होती है कि जड़ पदार्थ भी प्रत्यक्ष हों तो वहां निरुक्तकारके उक्त नियमसे मध्यम पुरुषका प्रयोग होता है। और इससे यह भी जानना अवश्य है कि ईश्वरने संसारी जड़ पदार्थोंको प्रत्यक्ष कराके केवल उनसे अनेक उपकार लेना बताया है। दूसरा प्रयोजन नहीं है परंतु इस नियमको नहीं जानकर सायणाचार्य आदि वेदोंके भाष्यकारों तथा उन्हींके बनाये हुए भाष्योंके अवलंबसे यूरोपदेशवासी विद्वानोंने भी जो वेदोंके अर्थोंको अन्यथा कर दिया है सो यह उनकी भूल है और इसीसे वे ऐसा लिखते हैं कि वेदोंमें जड़ पदार्थोंकी पूजा पाई जाती है जिसका कि कहीं चिन्ह भी नहीं है ॥

॥ भाष्यम् ॥

अथ वेदार्थोपयोगितया संक्षेपतः स्वराणां व्यवस्था लिख्यते। ते स्वरा द्विधा। उदात्तषड्जादिभेदात्सप्त सप्तैव सन्ति। तत्रोदात्तादीनां लक्षणानि व्याकरणमहाभाष्यकारपतंजलिप्रदर्शितानि लिख्यन्ते। स्वयं राजन्त इति स्वराः। आयामो दारुण्यमणुता स्वस्येत्युच्चैःकराणि शब्दस्य। आयामो गात्राणां निग्रहः। दारुण्यं स्वरस्य दारुणता रूक्षता। अणुता कण्ठस्य। कण्ठस्य संवृतता। उच्चैःकराणि शब्दस्य। अन्ववसर्गो मार्दवमुरुता स्वस्येति नीचैःकराणि[1] शब्दस्य। अन्ववसर्गो गात्राणां शिथिलता। मार्दवं स्वरस्य मृदुता स्निग्धता। उरुता स्वस्य महत्ता कण्ठस्येति नीचैःकराणि शब्दस्य॥ वैस्वर्य्येणाधीमहे विप्रकारैरम्भिरधीमहे कैश्चिदुदात्तगुणैः कैश्चिदनुदात्तगुणैः कैश्चिदुभयगुणैः। तद्यथा। शुक्लगुणः शुक्लः कृष्णगुणः कृष्णः। य इदानी-

१ उदात्तविधायकानीति यावत्। २ अनुदात्तविधायकानीति यावत्।

मुभयगुणः स तृतीयामाख्यां लभते कल्माष इति वा सारंग इति वा । एवमिहापि उदात्त उदात्तगुणः । अनुदात्तोनुदात्तगुणः । य इदानीमुभयगुणः स तृतीयामाख्यां लभते स्वरित इति ॥ तं एते तंत्रेतरनिर्देशे[1] सप्त स्वरा भवन्ति । उदात्तः । उदात्ततरः । अनुदात्तः । अनुदात्ततरः । स्वरितः । स्वरितेय उदात्तः सोऽन्येन विशिष्टः । एकश्रुतिः सप्तमः । अ० १ । पा० २ । उच्चैरुदात्त इत्याद्युपरि ॥ तथा षड्जादयः सप्त । षड्जऋषभगान्धारमध्यमपंचमधैवतनिषादाः ॥ १ ॥ पिंगलसूत्रे । अ० ३ सू० ६४ । एषां लक्षणव्यवस्था गांधर्ववेदप्रसिद्धा ग्राह्या । अत्र तु ग्रंथभूयस्त्वभिया लेखितुमशक्या ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब वेदार्थके उपयोगहेतुसे कुछ स्वरोंकी व्यवस्था कहते हैं जो कि उदात्त और षड्ज आदि भेदसे चौदह १४ प्रकारके हैं अर्थात् सात उदात्तादि और सात षड्जादि इनमेंसे उदात्तादिकोंके लक्षण जो कि महाभाष्यकार पतंजलि महामुनिजीने दिखलाये हैं उनको कहते हैं (स्वयं राजन्त०) आपही अर्थात् जो कि विना सहाय दूसरेके प्रकाशमान हैं वे स्वर कहाते हैं (आयामः०) अंगोंका रोकना (दारुण्यं) वाणीको रूखा करना अर्थात् ऊंचे स्वरसे बोलना और (अणुता०) कंठको भी कुछ रोक देना ये सब यत्न शब्दके उदात्तविधान करनेवाले होते हैं अर्थात् उदात्त स्वर इन्हीं नियमोंके अनुकूल बोला जाता है तथा (अन्वन०) गात्रोंका ढीलापन (माईव०) स्वरकी कोमलता (उरुता०) कंठको फैला देना ये सब यत्न शब्दके अनुदात्त करनेवाले हैं (वैश्वर्येण०) हम सब लोग तीन प्रकारके स्वरोंसे बोलते हैं अर्थात् कहीं उदात्त कहीं अनुदात्त और कहीं उदात्तानुदात्त अर्थात् स्वरित गुणवाले स्वरोंसे यथायोग्य नियमानुसार अक्षरोंका उच्चारण करते हैं ॥ जैसे श्वेत और काला रंग अलग अलग हैं परंतु इन दोनोंको मिलाकर जो रंग उत्पन्न हो उसका नाम तीसरा होता है अर्थात् खाकी वा आसमानी इसी प्रकार यहां भी उदात्त और अनुदात्त गुण अलग अलग हैं परन्तु इन दोनोंके मिलानेसे जो उत्पन्न हो उसको स्वरित कहते हैं विशेष अर्थके दिखानेवाले (तरप्) प्रत्ययके

१ अतिशयार्थेद्वयोरुक्ते तरप्प्रत्ययस्य निर्देशे ।

संयोगसे ये उदात्त आदि सात स्वर होते हैं अर्थात् उदात्त उदात्ततर अनुदात्त अनुदात्ततर स्वरित स्वरितोदात्त और एकश्रुति । उक्त रीतिसे इन सातों स्वरोंको ठीक ठीक समझ लेना चाहिये अब षड्जादि स्वरोंको लिखते हैं जो कि गान विद्याके भेद हैं । (स्वराः षड्जऋषभ०) अर्थात् षड्ज । ऋषभ । गान्धार । मध्यम । पंचम । धैवत । और निषाद । इनके लक्षण व्यवस्थासहित जो कि गान्धर्ववेद अर्थात् गानविद्याके ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध हैं उनको देख लेना चाहिये यहां ग्रंथ न बढ़ जानेके कारण नहीं लिखते ॥

अथात्र चतुर्षु वेदेषु व्याकरणस्य ये सामान्यतो नियमाः सन्ति त इदानीं प्रदर्श्यन्ते । तद्यथा । वृद्धिरादैच् । १ । अ० १ । १ । १ । उभयसंज्ञान्यपि छन्दांसि दृश्यन्ते । तद्यथा । ससुष्टुभासऋक्तागणेन । पदत्वात्कुत्वं भत्वाज्जस्त्वं न भवति । इति भाष्यवचनम् । अनेनैकस्मिन् शब्दे भपदसंज्ञाकार्य्यद्वयं वेदेष्वेव भवति नान्यत्र स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ ॥ २ ॥ अ० १ । १ । ५६ । प्रातिपदिकनिर्देशाश्चार्थतंत्रा भवन्ति । न कांचित्प्राधान्येन विभक्तिमाश्रयन्ति । यां यां विभक्तिमाश्रयितुं बुद्धिरुपजायते सा सा आश्रयितव्या । इति भाष्यम् । अनेनार्थप्राधान्यं भवति न विभक्तेरिति बोध्यम् । नवेति विभाषा ॥ ३ ॥ अ० १ । १ । ४४ । अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः । इति भाष्यसूत्रम् । लौकिकवैदिकेषु शब्देषु सार्वत्रिकः समानोऽयं नियमः अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्रातिपदिकम् ॥ ४ ॥ अ० १ । २ । ४५ । बहवो हि शब्दा एकार्था भवन्ति । तद्यथा । इन्द्रः । शक्रः । पुरुहूतः पुरन्दरः । कन्दुः । कोष्ठः । कुसूल इति । एकश्च शब्दो बह्वर्थः । तद्यथा । अच्चाः । पादाः । भाषाः । सार्वत्रिकोयमपि नियमः । यथा भ्वादयः शब्दा वेदेषु बह्वर्थवाचकास्त एव बहव एकार्थाश्च ॥ ते प्राग्धातोः ॥ ५ ॥ अ० १ । ४ । ८० । छन्दसि परव्यवहितवचनं च आयातमुपनिष्कृतम् । उपप्रयोभिरागतम् । अनेन वार्त्तिकेन गत्युपसर्गसंज्ञकाः शब्दाः क्रियायाः परे पूर्वे दूरे व्यवहिताश्च भवन्ति ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब चारों वेदमें व्याकरणके जो जो सामान्य नियम हैं उनको यहां लिखते हैं (झय०) वेदोंमें एक शब्दके बीचमें (झ) तथा (यद) ये दोनों संज्ञा होती हैं जैसे (ऋक्सा) इस शब्दमें पदसंज्ञाके होनेसे चकारके स्थानमें ककार हुआ है और झ संज्ञाके होनेसे ककारके स्थानमें गकार नहीं हुआ (प्रातिपदिक०) वेदादि शास्त्रोंमें जो जो शब्द पढ़े जाते हैं उन सबके बीचमें यह नियम है कि जिस विभक्तिके साथ वे शब्द पढ़े हों उसी विभक्तिसे अर्थ कर लेना यह बात नहीं है किंतु जिस विभक्तिसे शास्त्र मूल युक्ति और प्रमाणके अनुकूल अर्थ बनता हो उस विभक्तिका आश्रय करके अर्थ करना चाहिये क्योंकि (अर्थग०) वेदादि शास्त्रोंमें शब्दोंके प्रयोग इस लिये होते हैं कि उनके अर्थोंको ठीक ठीक जानके उनसे लाभ उठावें जब उनसे भी अनर्थ प्रसिद्ध हो तो वे शास्त्र किस लिये माने जायें इस लिये यह नियम लोकवेदमें सर्वत्र घटता है (बहवो हि०) तीसरा नियम यह है कि वेद तथा लोकमें बहुत शब्द एक अर्थके वाची होते और एक शब्द भी बहुत अर्थोंका वाची होता है जैसे अग्नि वायु इन्द्र आदि बहुत शब्द एक परमेश्वर अर्थके वाची और इसी प्रकार वेही शब्द संसारी पदार्थोंके नाम होनेसे अनेकार्थ हैं अर्थात् इस प्रकारके एक एक शब्द कई कई अर्थोंके वाची हैं (छन्दसी०) व्याकरणमें जो जो गति और उपसर्गसंज्ञक शब्द हैं वे वेदमें क्रियाके आगे पीछे दूर अर्थात् व्यवधानमें भी होते हैं जैसे (उपप्रयोभिरागतं) यहां आगतं क्रियाकेसाथ उप लगता तथा (आयातमुप०) यहां उप आयातं क्रियाके पूर्व लगता है इत्यादि । इसमें विशेष यह है कि लोकमें पूर्वोक्त शब्द क्रियाके पूर्वही सर्वत्र लगाये जाते हैं ॥

चतुर्थ्यर्थे बहुलं छन्दसि ॥ ६ ॥ अ० २ । ३ । ६२ । षष्ठ्यर्थे चतुर्थी वक्तव्या । या खर्वेण पिबति तस्यै खर्वो जायते तिस्रो रात्रीरिति । तस्या इति प्राप्ते । एवमन्यत्रापि । अनेन चतुर्थ्यर्थे षष्ठी षष्ठ्यर्थे चतुर्थी हे एव भवतः । महाभाष्यकारेण छन्दोवन्मत्वा ब्राह्मणानामुदाहरणानि प्रयुक्तानि । अन्यथा ब्राह्मणग्रंथस्य प्रकृतत्वाच्छन्दोग्रहणमनर्थकं स्यात् । बहुलं छन्दसि ॥७॥ अ० २ । ४ । ३९ अनेन अदधातोः स्थाने घस्लृ आदेशो बहुलं भवति । घस्तान्यूनम् ।

सधिश्च मे । अन्तामयमध्यतो मेदउद्भृतम् । इत्यादयुदाहरणं ज्ञेयम् ॥ बहुलं छन्दसि ॥ ८ ॥ अ० २ । ४ । ७३ ॥ वेदविषये शपो बहुलं लुग्भवति । वृत्रं हनति । अहिः शयते । अन्येभ्यश्च भवति । आर्ध्नोत् । आर्ध्नो देवाः । बहुलं छन्दसि ॥ ९ ॥ अ० २ । ४ । ७६ । वेदेषु शपः स्थाने श्लुर्बहुलं भवति । दाति प्रियाणि धाति प्रियाणि । अन्येभ्यश्च भवति । पूर्णां विवष्टि । जनिमाविवक्ति । इत्यादीन्युदाहरणानि सन्तीति बोध्यम् ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(या सर्वेण०) इत्यादि पाठसे यही प्रयोजन है कि वेदोंमें षष्ठीविभक्तिके स्थानमें चतुर्थी हो जाती है लौकिक ग्रंथोंमें नहीं इसमें ब्राह्मणोंके उदाहरण इस लिये दिये हैं कि महाभाष्यकारने ब्राह्मणोंको वेदोंके तुल्य मानके अर्थात् इनमें जो व्याकरणके कार्य्य होते हैं वे ब्राह्मणोंमें भी हो जाते हैं और जो ऐसा न मानें तो (द्वितीया ब्राह्मणे) इस सूत्रमेंसे ब्राह्मणशब्दकी अनुवृत्ति हो जाती फिर (चतुर्थ्यर्थे०) इस सूत्रमें (छन्दः) शब्दका ग्रहण व्यर्थ हो जाय (बहुलं०) इस सूत्रसे (अद) धातुके स्थानमें घस्लृ आदेश बहुल अर्थात् बहुधा होता है (बहुलं०) वेदोंमें शप्प्रत्ययका लुक् बहुल करके होता है और कहीं नहीं भी होता जैसे (वृत्रं हनति) यहां शप्का लुक् प्राप्त था सो भी न हुआ तथा (आर्ध्नो०) यहां नैङ् धातुसे प्राप्त नहीं था परंतु हो गया महाभाष्यकारके नियमसे शप्के लुक् करनेमें श्यनादिका लुक् होता है क्योंकि शप्के स्थानमें श्यनादिका आदेश किया जाता है । शप् सामान्य होनेसे सब धातुओंसे होता है जब शप्का लुक् होगया तो श्यनादि प्राप्तही नहीं होते ॥ ऐसे ही श्लुके विषयमेंभी समझ लेना । (बहुलं०) वेदोंमें शप्प्रत्ययके स्थानमें श्लु आदेश बहुल करके होता है अर्थात् उक्तसे भी नहीं होता और अनुक्तसे भी हो जाता है जैसे (दाति०) यहां शप्के स्थानमें श्लु प्राप्त था परंतु न हुआ और (विवष्टि) यह प्राप्त नहीं फिर हो गया ॥ ॥ भाष्यम् ॥

सिब् बहुलं लेटि ॥ १० ॥ अ० ३ । १ । ३४ । सिब्बहुलं छन्दसि णिद्वक्तव्यः । सविता धर्मसाविषत् । प्राण आयूंषि तारिषत् । अयं लेटिविशिष्टो नियमः । छन्दसि शायजपि ॥ ११ । अ० ३ । १ । ८४ ॥ शायच्छन्दसि सर्वत्रेति वक्तव्यम् । क्व सर्वत्र । हौ चाहं

च । किं प्रयोजनम् । महीः अस्कभायत् । यो अस्कभायत् । उदभायत् । उन्मथायतेत्येवमर्थम् । अयं लोटि मध्यमपुरुषस्यैकवचने परस्मैपदे विशिष्टो नियमः ॥ व्यत्ययो बहुलम् ॥ १२ ॥ अ० ३ । १ । ८५ ॥ सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहलच्स्वरकर्तृयङां च ॥ व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोपि च सिध्यति बाहुलकेन ॥ १ ॥ व्यत्ययो भवति स्यादीनामिति । अनेन विकरणव्यत्ययः । सुपां व्यत्ययः । तिङां व्यत्ययः । वर्णव्यत्ययः । लिङ्गव्यत्ययः । पुरुषव्यत्ययः । कालव्यत्ययः । आत्मनेपदव्यत्ययः । परस्मैपदव्यत्ययः ॥ स्वरव्यत्ययः । कर्तृव्यत्ययः । यङ्व्यत्ययश्च । एषां क्रमेणोदाहरणानि । युक्ता मातासीद्धुरि दक्षिणायाः । दक्षिणायामिति प्राप्ते । चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति । तक्षन्तीति प्राप्ते । चिष्टुभौजःशुभितमुग्रवीरम् । शुधितमिति प्राप्ते । मधोस्तृप्ता इवासते । मधुन इति प्राप्ते । अधासवीरैर्दशभिर्वियूयाः । वियूयादिति प्राप्ते । श्वोग्नीनाधास्यमानेन श्वः सोमेन यक्ष्यमाणेन । आधाता यष्टेति प्राप्ते । ब्रह्मचारिणमिच्छते । इच्छतीति प्राप्ते । प्रतीपमन्य ऊर्मिर्युध्यति । युध्यत इति । आधाता यष्टेति लुट् प्रथमपुरुषस्यैकवचने प्रयोगौ व्यत्ययो भवति स्यादीनामित्यस्योदाहरणं तासि प्राप्ते स्यो विहितः ॥ बहुलं छन्दसि ॥ १३ ॥ अ० ३ । २ । ८८ । अनेन क्विप्प्रत्ययो वेदेषु बहुलं विधीयते । मातृहा । मातृघातः । इत्यादीनि ॥ छन्दसि लिट् ॥ १४ ॥ अ० ३ । २ । १०५ । वेदेषु सामान्यभूते लिड्विधीयते । अहं द्यावापृथिवी आततान ॥ लिटः कानज् वा ॥ १५ । अ० ३ । २ । १०६ । वेदविषये लिटः स्थाने कानजादेशो वा भवति । अग्निं चिक्यानः । अहं सूर्य्यमुभयतो ददर्श । प्रकृतेपि लिटि पुनर्यहणात्परोक्षार्थस्यापि ग्रहणं भवति । क्वसुश्च ॥ १६ ॥ अ० ३ । २ । १०७ । वेदे लिटः स्थाने क्वसुरादेशो वा भवति । पपिवान् । जग्मिवान् । नच भवति । अहं सूर्य्यमुभय-

तो ददर्श ॥ क्याच्छन्दसि ॥ १७ ॥ अ० ३ । २ । १७० । क्यप्रत्ययान्ताद्धातोश्छन्दसि विषये तच्छीलादिषु कर्तृषु उकारप्रत्ययो भवति । मित्रयुः । संस्वेदयुः । सुम्नयुः । निरनुबन्धकग्रहणे सानुबन्धकस्यापि ग्रहणं भवतीत्यनया परिभाषया क्यच्क्यङ्क्यषां सामान्येन ग्रहणं भवति ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(सिप्यबहुलं०) लेट्लकारमें जो सिप्प्रत्यय होता है वह वेदोंमें बहुल करके णिन्संज्ञक होता है कि जिससे वृद्धि आदि कार्य हो सकें जैसे (साविषत्) यहां सिप्को णिन् मानके वृद्धि हुई है यह लेट्में वेदविषयक विशेष नियम है (शायच्छन्दसि०) वेदमें (हि) प्रत्ययके परे श्ना प्रत्ययके स्थानमें जो शायच् आदेश विधान किया है वह (हि) से अन्यत्र भी होता है (व्यत्ययो०) वेदोंमें जो व्यत्यय अर्थात् विपरीतभाव बहुधा होता है वह भाष्यकार पतंजलिजीने नव प्रकारसे माना है वे सुप् आदिये हैं सुप्, तिङ्, वर्ण, (लिंग) पुंल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग (पुरुष) प्रथम, मध्यम और उत्तम (काल) भूत भविष्यत् और वर्तमान, आत्मनेपद और परस्मैपद (वर्ण) वेदोंमें अचोंके स्थानमें हल् और हलोंके स्थान अच् के आदेश हो जाते हैं स्वर । उदात्तादिका व्यत्यय । कर्ताका व्यत्यय । और यङ्का व्यत्यय होते हैं इन सबके उदाहरण संस्कृतमें लिखे हैं वहां देखलेना (बहुलं०) इससे क्विप् प्रत्यय वेदोंमें बहुल करके होता है (छन्दसि०) इस सूत्रसे लिङ्लकार वेदोंमें सामान्य भूतकालमें भी होता है (लिटः का०) इस सूत्रसे वेदोंमें लिट् लकारके स्थानमें कानच् आदेश विकल्प करके होता है इसके (आतनान) इत्यादि उदाहरण बनते हैं (छन्दसि०) इस सूत्रमेंसे लिट्की अनुवृत्ति हो जाती फिर लिट्ग्रहण इस लिये है कि (परोक्षे लिट्) इस लिट्के स्थानमें भी कानच् आदेश हो जावे (क्वसुश्च) इस सूत्रसे वेदोंमें लिट्के स्थानमें क्वसु आदेश हो जाता है (क्या०) इस सूत्रसे वेदोंमें क्यप्रत्ययान्त धातुसे (३) प्रत्यय हो जाता है ॥

॥ भाष्यम् ॥

कृत्यल्युटो बहुलम् ॥ १८ ॥ अ० ३ । ३ । ११३ ॥ कृल्युट इति वक्तव्यम् । कृतो बहुलमिति वा । पादहारकार्थम् । पादाभ्यां हियते पादहारकः । अनेन धातोर्विहिताः कृत्संज्ञकाः प्रत्ययाः कारकमात्रे वेदादिषु द्रष्टव्याः । अयं लौकिकवैदिकशब्दानां सार्वत्रिको

नियमोस्तीति वेद्यम्॥ छन्दसि गत्यर्थेभ्यः ॥ ११ ॥ अ० ३। ३। १२१। ईषदादिषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषूपपदेषु सत्सु गत्यर्थेभ्यो धातुभ्यश्छन्दसि विषये युच्प्रत्ययो भवति। उ० सूपसदनोऽग्निः॥ अन्येभ्योपि दृश्यते॥ २०॥ अ० ३। ३। १३०। अन्येभ्यश्च धातुभ्यो युच्प्रत्ययो दृश्यते। उ० सुदोहनमाकृणोद्ब्रह्मणे गाम्॥ छन्दसि लुङ्लङ्लिटः॥ २१॥ अ० ३। ४। ६॥ वेदविषये धातुसंबन्धे सर्वेषु कालेषु लुङ्लङ्लिटः प्रत्यया विकल्पेन भवन्ति। उ० लुङ्। अहं तेभ्योऽकरं नमः। लङ्। अग्निमग्य होतारमवृणीतायं यजमानः। लिट्। अग्न ममार॥ लिङर्थे लेट्॥ २२॥ अ० ३। ४। ७। यत्र विध्यादिषु हेतुहेतुमतोः शकीच्छार्थेषूर्ध्वमौहूर्त्तिकेष्वर्थेषु लिङ् विधीयते। तत्र वेदेष्वेव लेट्लकारो वा भवति। उ० जीवाति शरदः शतमित्यादीनि। उपसंवादाशंकयोश्च॥ २३॥ अ० ३। ४। ८। उपसंवादे आशंकायां च गम्यमानायां वेदेषु लेट्प्रत्ययो भवति। उ० (उपसंवादे) अहमेव पशूनामीशै। आशंकायां। नेङ्जिह्मायन्तो नरकं पताम। मिथ्याचरणेन नरकपात आशंक्यते॥ लेटो डाटौ॥ २४॥ अ० ३। ४। ९४। लेटः परयोरेष अट्आट्आगमौ भवतः। आत ऐ॥ २५॥ अ० ३। ४। ९५। छन्दस्येनेनात्मनेपदे विहितस्य लेडादेशस्य द्विवचनस्थस्याकारस्य स्थाने ऐकारादेशो भवति। उ० मंत्रयैते मंत्रयैथे। वैतोऽन्यत्र॥ २६॥ अ० ३। ४। ९६॥ आत ऐ इत्येतस्य विषयं वर्जयित्वा लेट एकारस्य स्थाने ऐकारादेशो वा भवति। उ० अहमेव पशूनामीशै ईशे वा॥ इतश्च लोपः परस्मैपदेषु॥ २७॥ अ० ३। ४। ९७। लेटः स्थान आदिष्टस्य तिवादेरस्य परस्मैपदविषयस्येकारस्य विकल्पेन लोपो भवति। उ० तरते। तराति। तरत्। तरात्। तरिषति। तरिष्याति। तरिषत्। तरि-

पात् । तारिषति । तारिषाति । तारिषत् । तारिषात् । तरसि । तरासि । तरः । तराः । तरिषसि । तरिषासि । तरिषः । तरिषाः । तारिषसि । तारिषासि । तारिषः । तारिषाः । तरामि । तराम् । तरिषामि । तरिषाम् । तारिषामि । तारिषाम् । एवमेव सर्वेषां धातूनां प्रयोगेषु लेड्विषये बोध्यम् । स उत्तमस्य ॥ २८ ॥ अ० ३ । ४ । ९८ । लेट उत्तमपुरुषस्य सकारस्य लोपो वा भवति । करवाव । करवावः । करवाम । करवामः ॥

॥ भाषार्थ ॥

(छन्दसि०) इस सूत्रसे ईषत् दुर् सु ये पूर्वपद लगे हों तो सत्यर्थक धातुओंसे वेदोंमें युच् प्रत्यय होता है (अन्येभ्यो०) और धातुओंसे भी वेदोंमें युच् प्रत्यय देखनेमें आता है जैसे (सुदोहनं) यहां सुपूर्वक दुह धातुसे युच् प्रत्यय हुआ है (छन्दसि०) जो तीन लकार लोकमें भिन्न भिन्न कालोंमें होते हैं वे वेदोंमें लुङ् लङ् और लिट् लकार ये सब कालोंमें विकल्प करके होते हैं (लिङर्थे०) अब लेट् लकारके विषयके जो सामान्य सूत्र हैं उनको यहां लिखते हैं यह लेट् लकार वेदोंमेंही होता है सो वह लिङ् लकारके जितने अर्थ हैं उनमें तथा उपसंवाद और आशंका इन अर्थोंमें लेट् लकार होता है (लेटो०) लेट्को क्रमसे अट् और आट् आगम होते हैं अर्थात् जहां अट् होता है वहां आट् नहीं होता जहां आट् होता है वहां अट् नहीं होता (आम ऐ) लेट् लकारमें प्रथम और मध्यम पुरुषके (आतां) के आकारको ऐकार आदेश हो जाता है जैसे (मंसयैते) यहां आके स्थानमें ऐ हो गया है (वैतोन्यत्र) यहां लेट् लकारके स्थानमें जो एकार होता है उसके स्थानमें ऐकार आदेश हो जाता है (इतश्च०) यहां लेट्के तिप् सिप् और मिप्के इकारका लोप विकल्पसे हो जाता है (स उत्त०) इस सूत्रसे लेट् लकारके उत्तमपुरुषके वस्मस्के सकारका विकल्प करके लोप हो जाता है यह लेट्का विषय थोडासा लिखा आगे किसीको सब जानना हो तो वह अष्टाध्यायी पढ़के जान सकता है अन्यथा नहीं ॥

॥ भाष्यम् ॥

तुमर्थे सेसेनसेअसेन्क्सेकसेनध्यैअध्यैन्क्ध्यैक्ध्यैन्शध्यैशध्यैन्त

वैतवेङ्तवेनः ॥ २९ ॥ अ० ३ । ४ । १ । धातुमात्तुमुन्प्रत्ययस्यार्थे । से । सेन् । असे । असेन् । कसे । कसेन् । अध्यै । अध्यैन् । कध्यै । कध्यैन् । शध्यै । शध्यैन् । तवै । तवेङ् । तवेन् । इत्येते पंचदश प्रत्यया वेदेष्वेव भवन्ति । कृन्मेजन्त इति सर्वेषामव्ययत्वम् । सर्वेषु नकारोनुबन्धः स्वरार्थः । ककारो गुणवृद्धिनिषेधार्थः । ङकारोपि । शकारः शिदर्थः (से) वक्तव्यः । (सेन्) तादावेषे स्थानाम् (असे असेन्) कर्त्वे दक्षाय जीवसे (कसे) (कसेन्) श्रियसे (अध्यै अध्यैन्) कर्मण्युपचारध्यै (कध्यै) इन्द्राग्नी आहुवध्यै (कध्यैन्) श्रियध्यै (शध्यै शध्यैन्) पिवध्यै । सह मादयध्यै अत्र शित्वात् पिबादेशः । (तवै) सोममिन्द्राय पातवै (तवेङ्) दशमे मासि सूतवे (तवेन्) स्वर्देवेषु गन्तवे । शक्ऌसुमुल्कमुलौ ॥ ३० ॥ अ० ३ । ४ । १२ । शक्नोतौ धातावुपपदे धातुमात्रात्तुमर्थे वेदेषु णमुल्कमुलौ प्रत्ययौ भवतः । णकारो वृद्ध्यर्थः । ककारो गुणवृद्धिप्रतिषेधार्थः । लकारः स्वरार्थः । अग्निं वै देवा विभाजं नाशक्नुवन् । विभक्तुमित्यर्थः । ईश्वरे तोसुन्कसुनौ ॥ ३१ ॥ अ० ३ । ४ । १३ । ईश्वरशब्द उपपदे वेदे तुमर्थे वर्तमानाद्धातोस्तोसुन्कसुनौ प्रत्ययौ भवतः । ईश्वरोभिचरितोः । कसुन् । ईश्वरो विलिखः ॥ कृत्यार्थे तवैकेन्केन्यत्वनः । ३२ ॥ अ० ३ । ४ । १४ । कृत्यानां मुख्यतया भावकर्म्मणी भावर्थौ स्तोऽर्हादयश्च । तत्र वेदविषये तवै । केन् । केन्य । त्वन् । इत्येते प्रत्यया भवन्ति । तवै । परिक्षितवै (केन्) नावगाहे । केन्य । देवत्तेण्यः । शुश्रूषेण्यः (त्वन्) कर्त्वं हविः ॥

॥ भाषार्थ ॥

(तुमर्थे०) इस सूत्रसे वेदोंमें (से) इत्यादि १५ पंद्रह प्रत्यय सब धातुओंसे हो जाते हैं (शकि०) शक धातुका प्रयोग उपपद हो तो धातुमात्रसे (णमुल्) (क-

मुच्) ये दोनों प्रत्यय वेदोंमें हो जाते हैं इसके होनेसे (विभार्त) इत्यादि उदाहरण सिद्ध होते हैं (ईश्वरे०) वेदोंमें ईश्वरशब्दपूर्वक धातुसे (तोसुन्) (कसुन्) ये प्रत्यय होते हैं (कृत्यार्थे०) इस सूत्रसे वेदोंमें भावकर्मवाचक (तवै) (केन्) (केन्य) (त्वन्) ये प्रत्यय होते हैं इससे (परिधातवै) इत्यादि उदाहरण सिद्ध होते हैं ॥

॥ भाष्यम् ॥

नित्यं संज्ञाछन्दसोः ॥ ३३ ॥ अ० ४ । १ । २१ ॥ अन्नन्ताद्ब-हुव्रीहेरुपधालोपिनः प्रातिपदिकात्संज्ञायां विषये छन्दसि च नित्यं स्त्रियां ङीप्प्रत्ययो भवति । गौः पंचदाम्नी । एकदाम्नी ॥ नित्यं छन्द-सि ॥ ३४ ॥ अ० ४ । १ । ४६ ॥ बह्वादिभ्यो वेदेषु स्त्रियां ङीष् प्रत्ययो भवति । बह्वीषु हित्वा प्रपिबन् ॥ भवे छन्दसि ॥ ३५ ॥ अ० ४ । ४ । ११० । सप्तमीसमर्थात्प्रातिपदिकाद्भव इत्येतस्मिन्नर्थे छन्दसि विषये यत्प्रत्ययो भवति । अयमणादीनां घादीनां चापवादः । सति दर्शने तेपि भवन्ति । मेध्याय च विद्युत्याय च नमः । इतः सूत्रादा रभ्य यानि प्रकृतिप्रत्ययार्थविशेषविधायकानि पादपर्य्यन्तानि वेदवि षयकाणि सूत्राणि सन्ति । तान्यत्र न लिख्यन्ते कुतस्तेषामुदाहरणानि यत्र यत्र मंत्रेष्वागमिष्यन्ति तत्र तत्र तानि लेखिष्यामः ॥ बहुलं छन्दसि ॥ ३६ ॥ अ० ५ । २ । १२२ । वेदेषु समर्थानां प्रथमात्प्रातिपदिक मात्राद्भूमादिष्वर्थेषु विनिः प्रत्ययो बहुलं विधीयते । तद्यथा । भूमाद यः । तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप् ॥ ३७ ॥ अ० ५ । २ । ९४ । भू मनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेतिशायने । संबन्धेस्ति विवक्षायां भवन्ति मतुबादयः ॥ १ ॥ अस्य सूत्रस्योपरि महाभाष्यवचनादेतेषु सप्तस्व र्थेषु ते प्रत्यया वेदे लोके चैते मतुवादयो भवन्तीति बोध्यम् । (बहु लं०) अस्मिन्सूत्रे प्रकृतिप्रत्ययरूपविशेषविधायकानि बहूनि वार्ति कानि सन्ति । तानि तत्तद्विषयेषु प्रकाशयिष्यामः । अन्नसन्ताद्बहु

सकाच्छन्दसि ॥ ३८ ॥ अ० ५ । ४ । १०३ ॥ अनसन्तान्नपुंस-काच्छन्दसि वेति वक्तव्यम् । ब्रह्म सामं ब्रह्म साम । देवच्छन्दसं देवच्छन्दः । सन्यङोः । अ० ६ । १ । ९ । बह्वर्था अपि धातवो भवन्ति । तद्यथा वपिः प्रकरणे दृष्टश्छेदने चापि वर्त्तते । केशान् वपति । ईडिः स्तुतिचोदनायां चासुदृष्ट ईरणे चापि वर्त्तते । अग्निर्वा इतो वृष्टिमीट्टे मरुतो मुतश्च्यावयन्ति । करोतिरयमभूतप्रादुर्भावे दृष्टः । निर्मूलीकरणे चापि वर्त्तते । पृष्ठं कुरु पादौ कुरु उन्मृदानेति गम्यते। निक्षेपणेपि वर्त्तते । कटे कुरु घटे कुरु । अश्मानमितः कुरु । स्थापयेति गम्यते । एतन्महाभाष्यवचननेतद्विज्ञातव्यम् । धातुपाठे येऽर्था निर्दिष्टास्तेभ्योऽन्येपि बहवोऽर्था भवन्ति । त्रयाणामुपलक्षणमात्रस्य दर्शितत्वात् ॥ शेश्छन्दसि बहुलम् ॥ ३९ ॥ अ० ६ । १ । ७० । वेदेषु नपुंसके वर्तमानस्य शेर्लोपो बहुलं भवति । यथा विश्वानि भुवनानीति प्राप्ते विश्वा भुवनानीति भवति । बहुलं छन्दसि ॥ ४० ॥ अ० ६ । १ । ३४ । अस्मिन्सूत्रे वेदेषु एषां धातूनामप्राप्तमपि संप्रसारणं बहुलं विधीयते । यथा हूमहे इत्यादिषु ॥ इकोसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ॥ ४१ ॥ अ० ६ । १ । १२७ । ईषा अच्चादिषु च छन्दसि प्रकृतिभावमात्रं द्रष्टव्यम् ॥ ईषा अच्चा ईमिरे । इत्याद्यर्थः प्रकृतिभावो विहितः । देवताद्वन्द्वे च ॥ अ० ६ । ३ । २६ । इवतयोर्ह्रस्वसमासे पूर्वपदस्य आनङ् इत्यादेशो विधीयते ङिच्चादन्त्यस्य स्थाने भवति । उ० सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । इन्द्राबृहस्पती इत्यादीनि । अस्य सूत्रस्योपरि हे वार्तिके स्तः । तद्यथा इवताद्वन्द्वे उभयत्र वायोः प्रतिषेधः । अग्निवायू । वाय्वग्नी ॥ ब्रह्मजापत्यादीनां च । ब्रह्मप्रजापती शिववैश्रवणौ स्कन्दविशाखौ । सूत्रेण विहित आनङादेशो वार्तिकद्वयेन प्रतिषिध्यते । सार्वत्रिको नि-

यमः । बहुलं छन्दसि० ॥ अ० ७ । १ । ८ । अनेनात्मनेपदसंज्ञस्य झकारप्रत्ययस्य रुडागमो विधीयते । उ० । देवा अदुह्रः । बहुलं छन्दसि ॥ ४२ ॥ अ० ७ । १ । १० । अनेन वेदेषु भिसः स्थाने ऐस् बहुलं विधीयते । यथा देवेभिर्मानुषे जने । सुपां सुलुक् पूर्वसवर्णाच्छेयाडाड्यायाजालः ॥ ४३ ॥ अ० ७ । १ । ३९ । सुपां च सुपो भवन्तीति वक्तव्यम् । तिङां च तिङो भवन्तीति वक्तव्यम् । इयाडियाजीकारणामुपसंख्यानम् । इया । दार्विया परिज्मन् डियाच् । सुमित्रियानञ्आप० । सुचेत्रिया । सुगातुया । ईकार । इतिं न शुष्कं सरसीशयानम् । आड्याजयारां चोपसंख्यानम् । आड् । प्रदाहवा । अयाच् । स्वप्नयावावसंचनम् । अयार् । स नः सिन्धुमिव नावया । सुप् । लुक् । पूर्वसवर्ण । आत् । शे । या । डा । ड्या । याच् । आल् । इया । डियाच् । ई । आड् । अयाच् । अयार् । वैदिकेषु शब्देषु ह्येव सुपां स्थाने सुबाद्ययारान्ताः षोडशादेशा विधीयन्ते । तिङां च तिङिति पृथङ् नियमः । (सुप्) ऋजवः सन्तु पन्थाः । पन्थान इति प्राप्ते । (लुक्) परमे व्योमन् । व्योम्नीति प्राप्ते (पूर्वसवर्ण) धीतीमतीधीत्या मत्या इति प्राप्ते । (आत्) उभा वन्तारा । उभौ वन्तारौ इति प्राप्ते (शे) न युष्मे वाजबन्धवः । यूथमिति प्राप्ते (या) उरुया । उरुणा इति प्राप्ते । (डा) नाभा पृथिव्याः । नाभौ इति प्राप्ते । (ड्या) अनुष्ट्या । अनुष्टुभा इति प्राप्ते (याच्) साधुया । साधु । इति प्राप्ते (आल्) वसन्ता यजेत वसन्ते इति प्राप्ते ॥ आज्जसेरसुक् ॥ अ० ७ । १ । ५० । अनेन प्रथमाया बहुवचने जसः पूर्वं असुक् इत्ययमागमो विहितः । उ० विश्वेदेवा स आगत । विश्वेदेवा इति प्राप्ते । एवं दैव्यासः । तथैवान्यान्यपि ज्ञातव्यानि ॥ ॥ भाषार्थ ॥

(नित्यं संज्ञा०) इस सूत्रसे वेदोंमें अनंत प्रातिपदिकसे ङीप् प्रत्यय होता

(नित्यं०)इस सूत्रमें ब्रह्मादि प्रातिपदिकोंसे वेदोंमें शैच् प्रत्यय नित्य होता है । (भवे०) इस सूत्रसे भव अर्थमें प्रातिपदिकमात्रसे वेदोंमें यत् प्रत्यय होता है इस सूत्रसे आगे पादपर्य्यन्त सब सूत्र वेदोंहीमें लगते हैं सो वहां इस लिये नहीं लिखे कि वे एक एक बातके विशेष हैं सो जिस जिस मंत्रमें विषय आवेंगे वहां वहां लिखे आयेंगे (बहुलं०) इस सूत्रसे प्रातिपदिक मात्रसे विन् प्रत्यय वेदोंमें मतुपके अर्थमें बहुल करके होता है इस सूत्रके ऊपर वैदिक शब्दोंके लिये वार्तिक बहुत हैं परंतु विशेष हैं इस लिये नहीं लिखे (अव्ययसर्वना०) इस सूत्रसे वेदोंमें समासान्त टच् प्रत्यय विकल्प करके होता है (बहुर्थी अपि०) इस महाभाष्यकारके वचनसे यह बात समझना चाहिये कि धातुपाठमें धातुओंके जितने अर्थ लिखे हैं उनसे अधिक और भी बहुत अर्थ होते हैं जैसे (ईड) धातुका स्तुति करना तो धातुपाठमें अर्थ पढ़ा है और चोदना आदि भी समझे जाते हैं इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये (बहुलं०) इससे धातुओंको अप्राप्त संप्रसारण होता है (शेश्छ०) इससे प्रथमा विभक्ति जो जस् के स्थानमें नपुंसक लिंगमें (शि) आदेश होता है इसका लोप वेदोंमें बहुलसे हो जाता है (ईषा०) इस नियमसे अप्राप्त भी प्रकृतिभाव वेदोंमें होता है (देवताद्व०) इस सूत्रसे दो देवताओंके द्वन्द्वसमासमें पूर्वपदको दीर्घ हो जाता है जैसे (सूर्याचन्द्रमसौ०) यहां सूर्या शब्द दीर्घ हो गया है और इस सूत्रसे जिस कार्य्यका विधान है उसका प्रतिषेध महाभाष्यकार दो वार्तिकोंसे विशेष शब्दोंमें दिखाते हैं जैसे (इन्द्रवायू) यहां इन्द्र शब्दको दीर्घ नहीं हुआ यह नियम लोक और वेदमें सर्वत्र घटता है (बहुलं०) इस सूत्रसे प्रथम पुरुषके बहुवचन आत्मनेपदमें ऊ प्रत्ययको रुट्का आगम होता है (बहुलं०) इससे भिस्के स्थानमें ऐस्भाव बहुल करके होता है (सुपां सु०) इससे सब विभक्तियोंके सब वचनोंके स्थानमें (सुप्) आदि १६ आदेश होते हैं (आज्जसे०) इस सूत्रसे वेदोंमें प्रथमाविभक्तिका बहुवचन जो जस् है उसको असुक्का आगम होता है जैसे (दैव्याः) ऐसा होना चाहिये वहां (दैव्यासः) ऐसा हो जाता है इत्यादि जान लेना चाहिये ॥ भाष्यम् ॥

बहुलं छन्दसि ॥ ४४ ॥ अ० ७ । ३ । ९७ । वेदेषु यत्र क्वचेदीडागमो दृश्यते तत्रानेनैव भवतीति वेद्यम् । बहुलं छन्दसि ४५॥ अ० ७ । ४ । ७८ । अनेनाभ्यासस्य इत् इत्ययमादेशःश्लौ देषु बहुलं विधीयते । छन्दसीरः ॥ ४६ ॥ अ० ८ । २ । १५ । अनेन मतुपो मकारस्याप्राप्तं वत्वं विधीयते । उ० रेवान् इत्यादि ।

कृपोरोलः ॥ ४७ ॥ अ० ८ । २ । १८ । संज्ञाछन्दसोर्वा कपिलकादीनामिति वक्तव्यम् । कपिलका । कपिरका । इत्यादीनि । धिच्च ॥ ४८ ॥ अ० ८ । २ । २५ । घसिभसोर्नेह सिध्येत्तु तस्मात् सिजग्रहणं न तत् ॥ छान्दसो वर्णलोपो वा यथेष्कर्तारमध्वरे ॥ १ ॥ उ० निष्कर्तारमध्वरस्येति प्राप्ते । अनेन वेदेषु वर्णलोपो विकल्प्यते ऽप्राप्तविभाषेयम् । दादेर्धातोर्घः ॥ ४९ ॥ अ० ८ । २ । ३२ । हृग्रहोश्छन्दसि हस्य भत्वम् वक्तव्यम् । उ० गर्दभेन संभरति । मरुद्भस्य गृभ्णाति ॥ मनुवसो रुः संबुद्धौ छन्दसि ॥ ५० ॥ अ० ८ । ३ । १ । वेदविषये मत्वन्तस्य वस्वन्तस्य च संबुद्धौ गम्यमानायां रुर्भवति । गोमः । हरिवः । मीढ्वः ॥ वा शरि ॥ ५१ ॥ अ० ८ । ३ । ३६ । वा शर्प्रकरणे खरि लोपो वक्तव्यः । दक्षा स्थातारः । दक्षाः स्थातारः । अनेन वायवस्थ इत्यादीनि वेदेष्वपि दृश्यन्ते । अतः सामान्येनायं सार्वत्रिको नियमः ॥

॥ भाषार्थ ॥

(बहुलं०) इस सूत्रसे वेदोंमें इट्का आगम होता है (बहुलं०) इस सूत्रसे वेदोंमें धातुके अभ्यासको इकारादेश हो जाता है (छन्दसीरः) इससे वेदोंमें मतुप् प्रत्ययके मकारको वकारादेश हो जाता है (संज्ञा०) इससे वेदोंमें रेफको लकार विकल्प करके होता है (घसि०) इससे वेदोंमें किसी किसी अक्षरका कहीं कहीं लोप हो जाता है (हृग्रहो०) इससे वेदोंमें ह और ग्रह धातुके हकारको भकार हो जाता है (मनु०) इससे वेदोंमें मनुप् और वसुके नकारको रु होता है ॥

॥ भाष्यम् ॥

उणादयो बहुलम् । अ० ३ । ३ । १ । बहुलवचनं किमर्थम् बाहुलकं प्रकृतेस्तनुदृष्टेः । तन्वीभ्यः प्रकृतिभ्य उणादयो दृश्यन्ते न सर्वाभ्यो दृश्यन्ते । प्रायसमुच्चयनादपि तेषाम् । प्रायेण खल्वपि ते समुचिता न सर्वे समुचिताः । कार्य्यसंशेषविधेश्च तदुक्तम् । कार्य्याणि

खल्वपि सशेषाणि कृतानि न सर्वाणि लक्षणेन परिसमाप्तानि । किं पुनः कारणं तन्वीभ्यः प्रकृतिभ्य उणादयो दृश्यन्ते न सर्वाभ्यः । किंच कारणं प्रायेण समुचिता न सर्वे समुचिताः । किंच कारणं कार्य्याणि सशेषाणि कृतानि न पुनः सर्वाणि लक्षणेन परिसमाप्तानि । नैगमरूढिभवं हि सुसाधु । नैगमाश्च रूढिशब्दाश्चावैदिकास्ते सुष्ठु साधवः कथं स्युः । नाम च धातुजमाह निरुक्ते । नाम खल्वपि धातुजमाहुर्नैरुक्ताः । व्याकरणे शकटस्य च तोकम् । वैयाकरणानां च शाकटायन आह धातुजं नामेति । अथ यस्य विशेषपदार्थो न समुत्थितः कथं तत्र भवितव्यम् । यत्र विशेषपदार्थसमुत्थं प्रत्ययतः प्रकृतेश्च तदूह्यम् । प्रकृतिं दृष्ट्वा प्रत्यय ऊहितव्यः प्रत्ययं दृष्ट्वा प्रकृतिरूहितव्या । संज्ञासु धातुरूपाणि प्रत्ययाश्च ततः परे ॥ कार्य्याद्विद्यादनुबन्धमेतच्छास्त्रमुणादिषु ॥ ३ ॥ (बाहुलकं०) उणादिपाठे अल्पाभ्यः प्रकृतिभ्य उणादयः प्रत्यया विहितास्तत्र बहुलवचनादविहिताभ्योपि भवन्ति । एवं प्रत्यया अपि न सर्व एकीकृताः किं तु प्रायेण सूक्ष्मतया प्रत्ययविधानं कृतं तत्रापि बहुलवचनादेवाविहिता अपि प्रत्यया भवन्ति यथा फिडफिडौ भवतः । तथा सूत्रैर्विहितानि कार्य्याणि न भवन्त्यविहितानि च भवन्ति । यथा दण्ड इत्यत्र डप्रत्ययस्य डकारस्य इत्संज्ञा न भवति । एतदपि बाहुलकादेव । (किं पुनः०) अनेनैतच्छक्यते उणादौ यावत्यः प्रकृतयो यावन्तः प्रत्यया यावन्ति च सूत्रैः कार्य्याणि विहितानि तावन्त्येव कथं न स्युः। अत्रोच्यते (नैगम०) नैगमा वैदिकाः शब्दा रूढयो लौकिकाश्च सुष्ठु साधवो यथा स्युः । एवं कृतेन विना नैव ते सुष्ठु सेत्स्यन्ति (नाम०) संज्ञाशब्दान् निरुक्तकारा धातुजानाहुः (व्याकरणे०) शकटस्य तोकमपत्यं शाकटायनः । तोकमित्यस्यापत्यनामसु पंठितत्वात् । (यत्र०)

यत् विशेषात्पदार्थान्न सम्यगुत्थितमर्थात्प्रकृतिप्रत्ययविधानेन न व्युत्पन्नं तत्र प्रकृतिं दृष्ट्वा प्रत्यय ऊह्यः प्रत्ययं च दृष्ट्वा प्रकृतिः। एतदूहनं क्व कथं च कर्तव्यमित्यत्राह। संज्ञा शब्देषु। धातुरूपाणि पूर्वमूह्यानि परे च प्रत्ययाः (कार्य्याद्धि०) कार्य्यमाश्रित्य धातुप्रत्ययानुबन्धान् जानीयात् एतत्सर्वं कार्य्यमुणादिषु बोध्यम्॥

॥ भाषार्थ॥

(उणादयो०) इस सूत्रके ऊपर महाभाष्यकार पतंजलि मुनि उणादि पाठकी व्यवस्था बांधते हैं कि (बाहुलकं०) उणादि पाठमें थोडेसे धातुओंसे प्रत्ययविधान किया है सो बहुलके होनेसे वे प्रत्यय अन्य धातुओंसे भी होते हैं इसी प्रकार प्रत्यय भी उस ग्रंथमें थोडेसे नमूनाके लिये पढ़े हैं इनसे अन्य भी नवीन प्रत्यय शब्दोंमें देखकर समझ लेना चाहिये जैसे (ऋफिडः) इस शब्दमें ऋ धातुसे फिड प्रत्यय समझा जाता है इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये तथा जितने शब्द उणादि गणसे सिद्ध होते हैं उनमें जितने कार्य्य सूत्रों करके होने चाहिये वे सब नहीं होते हैं सो भी बहुलताका प्रताप है (किंपुनः) इसमें जो कोई ऐसी शंका करे कि उणादि पाठमें जितने धातुओंसे जितने प्रत्यय विधान किये और जितने कार्य्य शब्दोंकी सिद्धिमें सूत्रोंसे हो सकते हैं उनसे अधिक क्यों होते हैं तो इसका उत्तर यह है कि (नैगम०) वेदोंमें जितने शब्द हैं तथा संसारमें असंख्य संज्ञा शब्द हैं ये सब अच्छी प्रकार सिद्ध नहीं हो सकते इस लिये पूर्वोक्त तीन प्रकारके कार्य्य बहुलवचनसे उणादिमें होते हैं जिसके होनेसे अनेक प्रकारके हजारह शब्द सिद्ध होते हैं (नाम०) अब इस विषयमें निरुक्तकारोंका ऐसा मत है कि संज्ञा शब्द जितने हैं वे सब धातु और प्रत्ययोंसे बराबर सिद्ध होने चाहिये तथा वैयाकरण जितने ऋषि हैं उनमेंसे शाकटायन ऋषिका मत निरुक्तकारोंके समान है और इनसे भिन्न ऋषियोंका मत यह है कि संज्ञा शब्द जितने हैं वे रूढी हैं। अब इस बातका विचार करते हैं कि जिन शब्दोंमें धातु प्रत्यय मालूम कुछ भी नहीं होता वहां क्या करना चाहिये उन शब्दोंमें इस प्रकार विचार करना चाहिये कि व्याकरण शास्त्रमें जितने धातु और प्रत्यय हैं इनमेंसे जो धातु मालूम पड़ जाय तो नवीन प्रत्ययकी कल्पना कर लेनी और जो प्रत्यय जाना जाय तो नवीन धातुकी कल्पना कर लेनी इस प्रकार उन शब्दों-

का अर्थ विचार लेना चाहिये और दूसरी कल्पना यह भी है कि उन शब्दोंमें जिस अनुबंधका कार्य्य दीखे वैसाही धातु या प्रत्यय अनुबंधके सहित कल्पना करनी जैसे कोई आद्युदात्त शब्द हो उसमें (ङ) अथवा (ञ्) अनुबंधके सहित प्रत्यय समझना यह कल्पना सर्वत्र नहीं करने लगना किंतु जो संज्ञा शब्द लोकवेदसे प्रसिद्ध हों उनके अर्थ जाननेके लिये शब्दके आदिके अक्षरोंमें धात्वर्थकी और अंतमें प्रत्ययार्थकी कल्पना करनी चाहिये ये सब ऋषियोंका प्रबन्ध इस लिये है कि शब्दसागर अथाह है इसकी थाह व्याकरणसे नहीं मिल सकती जो कहें कि ऐसा व्याकरण क्यों नहीं बनाया कि जिससे शब्दसागरके पार पहुंच जाते तो यह समझना कि कितनेही पोथा बनाते और जन्मजन्मांतरोंभर पढ़ते तो भी पार होना दुर्लभ हो जाता इस लिये यह सब पूर्वोक्त प्रबंध-ऋषियोंने किया है जिससे शब्दोंकी व्यवस्था मालूम हो जाय ॥

॥ भाष्यम् ॥

अथालंकारभेदाः संक्षेपतो लिख्यन्ते । तत्र तावदुपमालंकारो व्याख्यायते । पूर्णोपमा चतुर्भिरुपमेयोपमानवाचकसाधारणधर्मैर्भवति ॥ अस्योदाहरणम् । स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ॥१॥ उक्तानामेकैकशोऽनुपादानेऽष्टधा लुप्तोपमा । तत्र वाचकलुप्तोदाहरणम् । भीम इव बली भीमबली । धर्मलुप्तोदाहरणम् । कमलनेत्रः । २ । धर्मवाचकलुप्तोदाहरणम् व्याघ्र इव पुरुषः पुरुषव्याघ्रः । ३ । वाचकोपमेयलुप्तोदाहरणम् । विद्यया पण्डिता यन्ते । ४ । उपमानलुप्ता । ५ । वाचकोपमानलुप्ता । ६ । धर्मोपमानलुप्ता । ७ । धर्मोपमानवाचकलुप्ता ८ । आसामुदाहरणम् । काकतालीयो गुरुशिष्यसमागमः । एवमष्टविधा । १ । अतोऽन्ये रूपकालंकारः । स चोपमानस्याभेदताद्रूप्यायामधिकन्यूनोभयगुणैरुपमेयस्य प्रकाशने रूपकालंकारः । सच षड्धा तत्राधिकाभेदरूपकोदाहरणम् । अयं हि सविता साक्षाद्येन ध्वांतं विनाश्यते । पूर्णविद्य इति शेषः । १ । न्यूनाभेदरूपकोदाहरणम् । अयं पतंजलिः साक्षाद्भाष्यस्य कृतिना विना । २ । अनुभयाभेदरू-

पकोदाहरणम् । ईशः प्रजामवत्यथ स्त्रीकृत्य समनीतिताम् । ३ । अधिकताद्रूप्यरूपकोदाहरणम् । विधानन्दे हि संप्राप्ते राज्यानन्देन किं तदा । ४ । न्यूनताद्रूप्यरूपकोदाहरणम् । साध्वीयं सुखदा नीतिरसूर्य्यप्रभवा मता । ५ । अनुभयताद्रूप्यरूपकोदाहरणम् । अयं घनान्धतात्सूर्य्याद्दिवासूर्य्यो विभज्यते ॥ ६ ॥ अनेकार्थशब्दविन्यासः श्लेषः सच त्रिविधः । प्रकृतानेकविषयः । अप्रकृतानेकविषयः । प्रकृताप्रकृतानेकविषयश्च । तत्र प्रकृतविषयस्योदाहरणम् ॥ यथा नवकम्बलोयं मनुष्यः । अत्र नव कम्बला यस्य नवो नूतनो वा कम्बलो यस्येति द्वावर्थौ भवतः । यथा च श्वेतो धावति । अलंबुसानां यातेति । तथैव अग्निमीडे इत्यादि । अप्रकृतविषयस्योदाहरणम् । हरिणा त्वद्बलं तुल्यं कृतिना हितशक्तिना । अथ प्रकृताप्रकृतविषयोदाहरणम् । उच्चरत्नभूरिस्थानाढ्यः शुशुभे वाहिनीपतिः । एवंविधा अन्येपि बहवोलंकाराः सन्ति ते सर्वे नात्र लिख्यन्ते । यत्र यत्र त आगमिष्यन्ति तत्र तत्र व्याख्यास्यन्ते ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब कुछ अलंकारोंका विषय संक्षेपसे लिखते हैं उनमेंसे पहिले उपमालंकार के ८ आठ भेद हैं । वाचकलुप्ता १ धर्मलुप्ता २ धर्मवाचकलुप्ता ३ वाचकोपमेयलुप्ता ४ उपमानलुप्ता ५ वाचकोपमानलुप्ता ६ धर्मोपमानलुप्ता ७ और धर्मोपमानवाचकलुप्ता ८ ॥ इन आठोंसे पूर्णोपमालंकार पृथक् है जिसमें ये सब धर्म रहते हैं उसका लक्षण यह है कि वह चार पदार्थोंसे बनता है एक तो उपमान दूसरा उपमेय तीसरा उपमावाचक और चौथा साधारण धर्म इनमेंसे उपमान उसको कहते हैं कि जिस पदार्थकी उपमा दी जाती है उपमेय वह कहाता है कि जिसको उपमानके तुल्य वर्णन करते हैं । उपमावाचक उसको कहते हैं कि जो तुल्य समान, सदृश, इव, यत्, इत्यादि शब्दोंके बीचमें आनेसे किसी दूसरे पदार्थका बोध कराते । साधारण धर्म वह होता है कि जो धर्म उपमान और उपमेय इन दोनोंमें बराबर वर्तमान रहता है इन चारोंके वर्तमान होनेसे पूर्णोपमा कहाती

इनमेंसे एक एकके लोप हो जानेसे पूर्वोक्त आठ भेद हो जाते हैं ॥ पूर्णोपमाका उदाहरण यह है कि (स नः पितेव०) जैसे पिता अपने पुत्रकी सब प्रकारसे रक्षा करता है वैसेही परमेश्वर भी सबका पिता अर्थात् पालन करनेवाला है इसके आगे दूसरे रूपकालंकारके छः भेद हैं । अधिकाभेदरूपक १ न्यूनाभेदरूपक २ अनुभयाभेदरूपक ३ अधिकतादात्म्यरूपक ४ न्यूनतादात्म्यरूपक ५ और अनुभयतादात्म्यरूपक ६ ॥ इसका लक्षण यह है कि उपमेयको उपमान बना देना और उसमें भेद नहीं रखना जैसे यह मनुष्य साक्षात् सूर्य्य है क्योंकि अपने विद्यारूप प्रकाशसे अविद्यारूप अंधकारका नाश नित्य करता है इत्यादि ॥ तीसरा श्लेषालंकार कहाता है इसके तीन भेद हैं प्रकृत १ अप्रकृत २ और प्रकृताप्रकृत विषय जिसका लक्षण यह है कि किसीएक वाक्य या शब्दसे अनेक अर्थ निकलें वह श्लेष कहाता है जैसे नवकंबल इस शब्दसे दो अर्थ निकलते हैं एक नव है कंबल जिसके दूसरा नवीन है कंबल जिसका इसी प्रकार वेदोंमें अग्नि आदि शब्दोंके कई कई अर्थ होते हैं सो श्लेषालंकारकाही विषय है इस प्रकारके और भी बहुत अलंकार हैं सो जहां जहां वेदभाष्यमें आवेंगे वहां वहां लिखे जायंगे ॥

॥ भाष्यम् ॥

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ॥ विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ १ ॥ ऋ० मं० १ सू० ८९ मं० १० । अस्मिन्मंत्रे अदितिशब्दार्था द्यौरित्यादयः सन्ति तेपि वेदभाष्येऽदितिशब्देन ग्राहिष्यन्ते । नैवास्य मंत्रस्य लेखनं सर्वत्र भविष्यतीति मत्वाऽत्र लिखितम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

(अदिति०) इस मंत्रमें अदिति शब्दके बहुत अर्थ और बहुतेरे अर्थ इस शब्दके हैं परंतु इस मंत्रमें जितने हैं वे सब वेदभाष्यमें अवश्य लिये जायंगे इस मंत्रको वारंवार न लिखेंगे किन्तु वे सब अर्थ तो लिख दिये जायंगे । वे अर्थ ये हैं—द्यौः । अंतरिक्ष । माता । पिता । पुत्र । विश्वेदेवा । पंचजना । जात और जनित्व ॥

॥ भाष्यम् ॥

अथ वेदभाष्ये ये संकेताः करिष्यन्ते त इदानीं प्रदर्श्यन्ते । ऋ-

ग्वेदादीनां वेदचतुष्टयानां षट्शास्त्राणां षडंगानां चतुर्णां ब्राह्मणानां तैत्तिरीयारण्यकस्य च यत्र यत्र प्रमाणानि लेखिष्यन्ते तत्र तत्रैते संकेता विज्ञेयाः । ऋग्वेदस्य ऋ० मंडलस्य प्रथमाङ्को द्वितीयः सूक्तस्य तृतीयो मंत्रस्य विज्ञेयः । तद्यथा । ऋ० १।१।१। यजुर्वेदस्य य० प्रथमांकोऽध्यायस्य द्वितीयो मंत्रस्य । तद्यथा । य० १।१। सामवेदस्य साम० पूर्वार्चिकस्य पू० प्रथमांकः प्रपाठकस्य द्वितीयो दशतेस्तृतीयो मंत्रस्य । तद्यथा । साम० पू० १।१।१। पूर्वार्चिकस्यायं नियमः । उत्तरार्चिकस्य खलु साम० उ० । प्रथमांकः प्रपाठकस्य द्वितीयो मंत्रस्य । अत्रायं विशेषोस्ति उत्तरार्चिके दशतयो न सन्ति परं त्वर्द्धप्रपाठके मंत्रसंख्या पूर्णा भवति तेन प्रथमः पूर्वार्द्धप्रपाठको द्वितीय उत्तरार्द्धप्रपाठकश्चेत्ययमपि संकेत उत्तरार्चिके ज्ञेयः । तद्यथा । साम० उ० १ पू० । १ । साम० उ० १ उ० । १ । अत्र द्वौ संकेतौ भविष्यतः । उकारेणोत्तरार्चिकं ज्ञेयं प्रथमांकेन प्रथमः प्रपाठकः पू० इत्यनेन पूर्वार्द्धः प्रथमः प्रपाठकः । द्वितीयांकेन मंत्रसंख्या ज्ञेया । पुनर्द्वितीये संकेते द्वितीय उकारेण उत्तरार्द्धः प्रथमः प्रपाठकः द्वितीयांकेन तदेव । अथर्ववेदे । अथर्व० प्रथमांकः काण्डस्य द्वितीयो वर्गस्य तृतीयो मंत्रस्य । तद्यथा । अथर्व० १।१।१ ॥

॥ भाषार्थ ॥

अब वेदभाष्यमें चारों वेदके जहां जहां प्रमाण लिखे जावेंगे उनके संकेत दिख लाते हैं देखो ऋग्वेदका जहां प्रमाण लिखेंगे वहां ऋग्वेदका ऋ० और मंडल १ सूक्त १ मंत्र १ उनका पहिला दूसरा तीसरा क्रमसे संकेत जानना चाहिये जैसे ऋ० १ । १ । १ । इसी प्रकार यजुर्वेदका य० पहिला अंक अध्यायका दूसरा मंत्रका जान लेना जैसे य० १ । १ । सामवेदका नियम यह है कि साम० पूर्वार्चिकका पू० पहिला प्रपाठकका दूसरा दशतिका और तीसरा मंत्रका जानना चाहिये जैसे साम० पू० १।१।१। यह नियम पूर्वार्चिकमें है उत्तरार्चिकमें प्रपाठकोंके भी पूर्वार्द्ध

उत्तरार्द्ध होते हैं अर्द्धप्रपाठकपर्य्यन्त मंत्रसंख्या चलती है इसलिये प्रपाठकके अंकके आगे पू० वा उ० धरा जायगा इस पू०से पूर्वार्द्ध प्रपाठक और उ०से उत्तरार्द्ध प्रपाठक जान लेना होगा इस प्रकार उत्तरार्चिकमें दो संकेत होंगे साम० उ० । १ पू० ।१। साम० उ० । १३० । १ ॥ इसी प्रकार अथर्ववेदमें अथर्व० पहिला अंक काण्डका दूसरा वर्गका तीसरा मंत्रका जान लेना जैसे अथर्व० । १ । १ ।१॥

॥ भाष्यम् ॥

एवं ब्राह्मणस्याद्यस्यैतरेयस्य ऐ० प्रथमांकः पंचिकाया द्वितीयः कंडिकायाः । तद्यथा । ऐ० १।१। शतपथब्राह्मणे श० प्रथमांकः काण्डस्य द्वितीयः प्रपाठकस्य तृतीयो ब्राह्मणस्य चतुर्थः कण्डिकायाः । तद्यथा । श० १।१।१।३। एवमेव सामब्राह्मणानि बहूनि सन्ति तेषां मध्याद्यस्य यस्य प्रमाणमत्र लेखिष्यते तस्य तस्य संकेतस्तत्रैव करिष्यते तेष्वेवैकं छान्दोग्याख्यं तस्य छां० प्रथमांकः प्रपाठकस्य द्वितीयः खण्डस्य तृतीयो मंत्रस्य । तद्यथा । छां० १ । १।१ । एवं गोपथब्राह्मणस्य गो० प्रथमांकः प्रपाठकस्य द्वितीयो ब्राह्मणस्य यथा गो० १।१ । एवं षट्शास्त्रेषु प्रथमं मीमांसाशास्त्रम् । तस्य मी० प्रथमांकोध्यायस्य द्वितीयः पादस्य तृतीयः सूत्रस्य । तद्यथा मी० १।१।३॥ द्वितीयं वैशेषिकशास्त्रं तस्य वै० प्रथमांकोऽध्यायस्य द्वितीय आन्हिकस्य तृतीयः सूत्रस्य । तद्यथा वै० १।१।३। तृतीयं न्यायशास्त्रं तस्य न्या० अन्यद्वैशेषिकवत् । चतुर्थं योगशास्त्रं तस्य यो० प्रथमांकः पादस्य द्वितीयः सूत्रस्य । यो० १।१। पंचमं सांख्यशास्त्रं तस्य सां० प्रथमांकोऽध्यायस्य द्वितीयः सूत्रस्य । सां० १।१। षष्ठं वेदान्तशास्त्रमुत्तरमीमांसाख्यं तस्य वे० प्रथमांकोध्यायस्य द्वितीयः पादस्य तृतीयः सूत्रस्य । वे० १।१।१ ॥ तथाङ्गेषु प्रथमं व्याकरणं तत्राष्टाध्यायी तस्या अ० प्रथमांकोध्यायस्य द्वितीयः पादस्य तृतीयः सूत्रस्य । तद्यथा । अ० १।१।३। तेनैव कृतेन सूत्रसंकेतेन व्याकरणमहाभाष्यस्य संकेतो विज्ञेयः । यस्य

सूत्रस्योपरि तद्भाष्यमस्ति तद्व्याख्यानं लिखित्वा तत्सूत्रसंकेतो धरिष्यते । तथा निघण्टुनिरुक्तयोः प्रथमांकोऽध्यायस्य द्वितीयः खण्डस्य निघंटौ १।१। निरुक्ते १।१। खण्डाध्यायौ ह्योः समानौ । तथा तैत्तिरीयारण्यके तै० प्रथमांकः प्रपाठकस्य द्वितीयोऽनुवाकस्य । तै० १।१। इत्थं सर्वेषां प्रमाणानां तेषु तेषु ग्रंथेषु दर्शनार्थं संकेताः कृतास्तेन येषां मनुष्याणां द्रष्टुमिच्छा भवेदेतैरंकैस्तेषु ग्रंथेषु लिखितसंकेतेन द्रष्टव्यम् । यत्रोक्तेभ्यो ग्रंथेभ्यो भिन्नानां ग्रंथानां प्रमाणं लेखिष्यते तत्रैकवारं समयं दर्शयित्वा पुनरेवमेव संकेतेन लेखिष्यत इति ज्ञातव्यम् ॥

॥ भाषार्थ ॥

इसी प्रकार ब्राह्मण ग्रंथोंमें प्रथम ऐतरेय ब्राह्मणका ऐ० पहिला अंक पंचिकाका दूसरा कंडिकाका ऐ० १ । १ । शतपथ ब्राह्मणका श० पहिला अंक कांडका दूसरा प्रपाठकका तीसरा ब्राह्मणका चौथा कंडिकाका श० १ । १ । १ । १ ॥ सामब्राह्मण बहुत हैं उनमेंसे जिसजिसका प्रमाण जहां लिखेंगे उसउसका ठिकाना वहां धरेंगे जैसे एक छान्दोग्य कहाता है उसका छां० पहिला अंक प्रपाठकका दूसरा खंडका तीसरा मंत्रका जैसे छां० १ । १ । १ ॥ चौथा गोपथ ब्राह्मण कहाता है उसका गो० पहिला अंक प्रपाठकका दूसरा ब्राह्मणका जैसे गो० १ । ३ । इस प्रकारका संकेत चारों ब्राह्मणमें जानना होगा । ऐसेही छः शास्त्रोंमें प्रथम मीमांसा शास्त्र उसका मी० अध्याय पाद और सूत्रके तीन अंक क्रमसे जानो जैसे मी० १ । १ । १ ॥ दूसरा वैशेषिकका वै० पहिला अंक अध्यायका दूसरा आह्निकका तीसरा सूत्रका जैसे वै० १ । १ । १ । तीसरे न्यायशास्त्रका न्या० और तीन अंक वैशेषिकके समान जानो । चौथे योगशास्त्रका यो० प्रथम अंक पादका दूसरा सूत्रका यो० १ । १ । पांचवें सांख्यशास्त्रका सां० अध्याय और सूत्रके दो अंक क्रमसे जानो जैसे सां० १ । १ ॥ छठे वेदांतका वे० अध्याय पाद और सूत्रके तीन अंक क्रमसे वे० १ । १ । १ । तथा अंगोंमें अष्टाध्यायी व्याकरणका अंक अध्याय पाद सूत्रके तीन अंक क्रमसे जानो जैसे अ० १ । १ । १ । इसी प्रकार जिस सूत्रके ऊपर महाभाष्यकार भाष्य करेगा उस सूत्रका पता लिखके महाभाष्यका वचन लिखा करेंगे उसीसे उसका पता जान लेना चाहिये तथा निघंटु और निरुक्तमें दो दो अंक अध्याय और खंडके लिखेंगे तथा तैत्तिरीय आरण्यकमें तै०

लिखके प्रपाठक और अनुवाकके दो अंक लिखेंगे ये संकेत इसलिये लिखे हैं कि वारंवार टिकाना न लिखने पड़े थोड़ेसेही से काम चला जाय जिस किसीको देखना पड़े वह उन ग्रंथोंमें देख ले और जिन ग्रंथोंके संकेत यहां नहीं लिखे उनके प्रमाणोंका जहां कहीं काम पडेगा तो लिख दिया जायगा परंतु इन सब ग्रंथोंके संकेतोंको याद रखना सबको योग्य है कि जिससे देखनेमें परिश्रम न पड़े ॥

वेदार्थाभिप्रकाशप्रणयसुगमिका कामदा मान्यहेतुः
संक्षेपाद्भूमिकेयं विमलविधिनिधिः सत्यशास्त्रार्थयुक्ता ।
संपूर्णाकार्य्यथेदं भवति सुरुचि यन्मंत्रभाष्यं मयातः
पश्चादीशानभक्त्या सुमतिसहितया तन्यते सुप्रमाणम् ॥ १ ॥
मंत्रार्थभूमिका ह्यत्र मंत्रस्तस्य पदानि च ॥
पदार्थान्वयभावार्थाः क्रमाद्वोध्या विचक्षणैः ॥ २ ॥

यह भूमिका जो वेदोंके प्रयोजन अर्थात् वेद किस लिये और किसने बनाये उनमें क्या क्या विषय हैं इत्यादि बातोंकी अच्छी प्रकार प्राप्ति करानेवाली है इसको जो लोक ठीक ठीक परिश्रमसे पढ़ें और विचारेंगे उनका व्यवहार और परमार्थका प्रकाश संसारमें मान्य और कामनासिद्धि अवश्य होगी इस प्रकार जो निर्मल विषयोंके विधानका कोश अर्थात् खजाना और सत्यशास्त्रोंके प्रमाणोंसे युक्त जो भूमिका है इसको मैंने संक्षेपसे पूर्ण किया अब इसके आगे जो उत्तम बुद्धि देनेवाली परमात्माकी भक्तिमें अपनी बुद्धिको दृढ करके प्रीतिके बढ़ानेवाले मंत्रभाष्यका प्रमाणपूर्वक विस्तार करता हूं ॥ १ ॥

इस मंत्रभाष्यमें इस प्रकारका क्रम रहेगा कि प्रथम तो मंत्रमें परमेश्वरने जिस ज्ञानका प्रकाश किया है फिर मूलमंत्र । उसका पदच्छेद । क्रमसे प्रमाणसहित मंत्रके पदोंका अर्थ । अन्वय अर्थात् पदोंकी संबन्धपूर्वक योजना और छठा भावार्थ अर्थात् मंत्रका जो मुख्य प्रयोजन है इस क्रमसे मंत्रभाष्य बनाया जाता है ॥२॥

विश्वानि देवसवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ ॥ य० ३० । ३ ।

इति श्रीमत्परिव्राजकाचार्य्येण श्रीयुतदयानन्दसरस्वतीस्वामिना वेरचिता संस्कृतभाषार्य्यभाषाभ्यां सुभूषिता सुप्रमाणयुक्तर्ग्वेदादितुर्वेदभाष्यभूमिका समाप्तिमगमत् ॥

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकायाः शुद्धिपत्रम् ॥

पृष्ठ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	३	सहना	सहना
१	२२	हे ईश्वर	ईश्वर
१	२७	हे सब	तब
२	२	होय	हो। सर्वत्र ऐसा-ही जानना
२	३	जिससे	जिससे। सर्वत्र ऐसाही जानना
२	२४	यह वेदभाष्य	०
२	२३	जे	जो। सर्वत्र ऐसा-ही जानना
३	२३	हो	है
४	१४	प्रमा	प्रमा
५	२९	कल्पकल्प	कल्प २
६	११	पथय:	पंथय:
८	३	कभी	कभी। सर्वत्र ऐसाही जानलेना
८	१९	होंय	हों। सर्वत्र ऐसा-ही समझना
९	९	अपर्तज्ञन्	अपार्तज्ञन्
९	२२	अ० १	अ० १ आ० १। कं० १३।
९	२२	यजुर्वेदे	य० अ० ५। मं० १५
९	२३	विवेष्टि	वेवेष्टि
१०	८	सहआदि। श० कां० १४ अ० ५	सः। श० कां० १४। अ० ६ ब्रा० ४ कं० १०
११	२९	गास्ति	नास्ति
११	२२	इससे	इससे। ऐसाही सर्वत्र समझना

पृष्ठ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
१२	१	उसे	उससे। सर्वत्र ऐसाही जानना
१२	१९	नत्तदमर्थं स्यादिति	वाक्यादिति
१२	२२	सत्ता	सकता। ऐसाही सर्वत्र जानलेना
१४	१३	शास्त्रोंका	शास्त्रोंके
१४	१९	इसीलिये	इसीसे
१४	२१	किन्नर्यो	किन्नर्यो
१६	४	हजारमें	हजारहमें
१७	१२	ब्राह्मणोंका	ब्राह्मणका
१७	२४	खल्वेतेषा	खल्वेतेषां
२०	२६	ई लु	घञ्
२१	१८	चातुर्युगानि	चतुर्युगानि
२२	१६	सर्वं वै सहस्रं। श० कां० ७ अ० ४	सर्वं वै सहस्रं। श० कां० ७ अ० ५
२३	२२	आत्मा	जानना
२४	१२	रचना	रचता
२५	२४	मुसल्मान	मुसल्मान
२७	६	निश्चित	निश्च होने
२९	२	महा	महा
२९	१७	नहीं	नहीं
३०	१५	जैये	जैसे
३२	१२	अ० १ सू० ३	अ० १ आ० सू० ३
३२	१९	उप	उस
३२	२१	पादे० १ सू० ६७	आ० १ सू० ६
३३	१८	पना	पन
३७	१	मे	में

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
३८	१३	कैमे	कैसे
३८	१५	किमी	किसी
३९	१३	अ० ४ सू० १	अ० ४ पा० ४ सू० १
३८	२८	सुनके पढ़के	सुन पढ़
३८	३१	मनुष्याणां	मनुष्याणां
३८	३३	दोषप्तिप्रकरणे	दोषप्तिप्रकरणें
३९	२०	अयोऽक्षवत्	अयोग्निवत्
४२	११	यक्षत	यदूत
४३	३२	क्षुरस्तंतम्	क्षुरस्तंतम्
४४	११	रराणाखी	रराणस्त्री
४६	१७	भोजनच्छा	भोजनाच्छा
५४	२०	विभक्तमन्त	०
५९	२३	पावे	पार्वे
५९	३३	दिखाटे	दिखाटे
६२	३२	मनुष्यों अर्थेका	मनुष्योंका
६३	७	नि० अ० ७ खं० ११	निरु० अ० ७ खं० १२
६६	२१	प्रपा० १६	अ० ६
७७	७	मंत्रार्थाम्पू हो	मंत्रार्थचिन्ताम्पू हो
७८	२१	सायनाचार्य्य	सायणाचार्य्य
८०	१४	व्याकरणे प	व्याकरणेपि
८०	१४	द्रचक्र	दृचूक्र
८०	१५	पा० ४	पा० ४ सू० ८०
८०	१६	पा० ४	पा० ४ सू० ६
८०	१६	पा० ४	पा० ४ सू० ९
८२	११	कारण मे	कारणसे
८३	१	अनु० १	अनु० १ मं० ४
८३	१६	शाकपूरणि	शाकपूणि
८३	१६	नृणां	नृणां
८४	२०	व्यत्ययवचनानि	व्यत्ययादवचनानि

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
८५	२	प्रतनवामह	प्रतनवामहा
८६	३२	पा० ३	पा० ३ सू० ६०
८६	३२	पा० ३	पा० ३ सू० ६२
८७	१	पा० ३	पा० ३ सू० १०९
८७	२	प्रतिपादितम्	प्रतिपादनेकृतव्
८७	५	छन्दसीति	छन्दसीत्यव
८७	६	ब्राह्मणग्रंथस्य	ब्राह्मणशब्दस्य
८७	९	वृषशब्दो वृषनु शब्दश्च	०
८९	५	स्थुरस्पति	स्थुरस्पतिं)
८९	११	रक्षिता	(रक्षिता)
८९	१९	अभेयादि	अभेद्यादि
८९	२८	नीरंतर	निरन्तर
९०	२	तस्मिन्छ्र	तस्मिञ्छ्र
९०	२३	नाप्नुवते	नाप्नुवते
९०	२४	एव	एव
९०	२६	एतैर्मंत्रै	एतैर्मन्त्रै
९१	३	तस्मात्स । एवैष	तस्मात्स एवैष
९१	२८	लक्षणयुक्त	लक्षणपूक
९२	६	संगच्छध्वं	संगच्छध्वं
९३	१	चक्षुषा	चक्षुषा
९३	१३	नोमंत्रः	नोमंत्रः
९३	१९	यद्धा	तद्धा
९३	२९	विकल्पेऽप्रीति	विकल्पोऽप्रीति
९४	७	न्यूर्वे	न्यूर्वे
१०१	२३	सेवमानाया	सेवमानया
१०२	६	हौं	हो
१०४	४	धर्मोपदेशो	धर्मो
१०६	२५	स्वाध्याय	स्वाध्याय
१०७	३	अयुक्ता	आयुक्ता
१०७	५	अयुक्ता	आयुक्ता
१०८	२५	यहण	ग्रहण
१०९	३	भूर्भुवः	भूर्भुवः

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
१०९	१५	प्रजापत्यो	प्राजापत्यो
१०९	१९	रक्षपात्र	रक्षपात्र
११०	२७	तेभ्यो	तेभ्यो
१११	१५	दृष्वक्षय	दृष्वक्षय
११२	३९	पहुंचना	पहुंचाना
११३	१२	प्रयिष्ठा	प्रतिष्ठा
११३	२१	स्वर्गीहन	स्वर्गाय
११४	१	सस्म्य	सम्य
११४	२	शुद्धोयं	शुद्धोयं
११५	१	वेदद्वा एषा	वेदद्वारेषा
११५	२९	च्छवेना	च्छवेना
११८	१५	कुलम्	कुलम्
११८	२७	न्तर्यामिणं	न्तर्यामिन
११९	२	दरणीयः	दर्णीयः
११९	१४	(भूमि॰सत्तौ	(समूमि॰सत्वे
१२०	१३	भाव्यम्	भाव्यम्
१२१	२३	त्रिपादोप	त्रिपाद्रुप
१२१	२४	एकपादोप	एकपाद्रुप
१२२	२४	मयोपुरः	मर्यापुरः
१२४	१६	भपादतः (उ	भयादतः) उ
१२५	१७	यद्यस्मादेतं	यद्यस्मादेतं
१२६	११	पा० ४	पा० ४ मं० ६
१२७	२६	जगदुत्पत्ता	जगदुत्पत्तौ
१२८	१०	आर्वन्न	आर्वन्न
१२८	१६	कैकमस्योपरि	कैकयोपरि
१२९	११	इक्षीससमिधाक-हाते हैं	इक्षीत समिधा कहाती हैं
१३१	२३	॥ भाष्यन ॥	॥ भाष्यम् ॥
१३१	२४	पृच्छ्यते	पृच्छ्यते
१३२	२	मगों	मार्गों

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
१३२	२०	तस्ययोनि	तस्ययोनि
१३३	९	यो देवेभ्य	यो देवेभ्यं
१३४	१०	हण्णर्चिषा	हण्णर्चिषा
१३५	२१	प्रजापतिः	प्रजापतिः
१३५	२२	अनु० २	अनु० ४
१३६	२८	अ० ३ मं० ९	अ० ९ मं० १
१३७	१७	पथिवी	पृथिवी
१३८	२	दाशुषे	दाशुषे
१३८	२५	तइन्दो	तइन्दो
१४१	१	दक्षणो	दक्षणो
१४१	१	ज्योतिषा	ज्योतिषा
१४१	३१	गुणेनसह	गुणेनसह
१४२	८	तसर्वा श्लोका	तसर्वाल्लोका
१४३	८	सूर्य्येणो	सूर्य्येणो
१४३	१३	सुर्य	सूर्य्य
१४३	१३	हिंमस्य	हिंमस्य
१४५	३	ओषध	औषध
१४५	८	ओषध	औषध
१४६	२१	ऽष्टा	ऽष्टौ
१४५	२४	शब्दमे	शब्दमे
१४६	३	चक्राणां	चक्राणाम्
१४६	७	विधन	विधान
१४७	७	किंमुकर्ष	किंमुकर्ष
१४७	८	व० १८०	व० १८
१४७	१७	वीर्य्यमी	वीर्य्यमो
१४७	२२	प्रतिमायया	प्रतिमा यया
१४८	१३	तिर्य्यक	तिर्य्यक्
१४८	२७	धेहिवर्ल	धेहिबल
१४८	२८	धेहि	धेहि
१४९	७	धारय	निधेहि

* एकसौ दशके पृष्ठकी छठी पंक्तिके आरंभसे लेके एकसौ ग्यारहमे पृष्ठकी तेरहमी पंक्ति नान्यमेतिपर्य्यन्त संस्कृत एकसौ सातके पृष्ठकी आठमी पंक्तिके अन्तमें का है सो जानना

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
१४९	८	क्रोध कृदति	क्रोधकृदति
१४९	२३	धियाबुद्धया	बुद्धया
१४९	२४	श्वोपास	श्वाप्युपास
१५०	९	रहो	रहें
१५०	२८	जगतके	जगत्के
१५१	१२	स्थिरवः	स्थिरार्वः
१५१	२३	स्थिराणि मदन्नग्रहेण	मदन्नग्रहेणस्थिराणि
१५२	१४	वर्णं	वर्णं
१५२	२४	ततमे	तन्मे
१५३	९	है उसके	हैं उनके
१५३	२०	जगतका	जगत्का
१५४	१२	यज्ञो वै विष्णुः।	यज्ञोवैविष्णुः। श० १।२।१३।
१५५	२३	कान्याय	केन्याय
१५७	१९	(विमा)	(विमाः)
१५८	२३	मनुष्यों	मनुष्यो
१५८	२४	अथात्	अर्थात्
१६१	२३	अर्थात्	०
१६१	२४	सिद्ध	प्रसिद्ध
१६२	२३	कापरम	केपरम
१६२	२९	जगत	जगत्
१६३	१४	द्योतना	द्योतना
१६४	३	युञ्जति	युञ्जन्ति
१६५	१९	अगे	आगे
१६६	५	अर्थात्	०
१६६	६	तो	०
१६९	२६	समाधीयोग	समाधियोग
१७७	१५	अतिशायि	अतिशयि
१७७	२०	सएव	सएव
१७९	११	आलस्य	आलस्यम्
१७९	१६	इत्यभि	इत्यभि
१०	३	नान्विताः	नानन्विताः

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
१७०	२३	भूमिकत्व	भूमिकत्व
१७०	२८	अत्यत	अत्यंत
१७१	१६	अष्ट	अष्टा
१७२	३	सर्वो	सर्भो
१७२	९	करै	करे
१७३	२८	अंग है	अंग हैं
१७४	८	शास्त्रो	शास्त्रों
१७४	१३	विषयासक्ती	विषयासक्ति
१७४	२७	पूर्वोक्त	पूर्वोक्त
१७५	२८	श्वासयो	श्वासप्रश्वासयो
१७६	१	प्रक्षेतव्यः	प्रक्षेतव्याः
१७६	२९	प्रकाश	प्रकाशे
१७७	३	स्मरणलंवना	स्मरणालंवना
१७७	१२	घु चित्तस्य	घु बाह्ये वा विषये चितस्य
१७७	२४	ढाकनेवाला आवर्ण	आवर्ण अर्थात् ढापनेवाला
१७८	४	धारण भी	धारणा भी
१७९	४	अकाश	आकाश
१८०	३१	अर्थात्	अर्थात्
१८१	९	निगुण	निर्गुण
१८१	२९	चरणा	चरण
१८२	३	रूढो	रूढो
१८२	१९	(अविद्या)	(अविद्या०)
१८३	३१	चिटी आदिको	चिटीआदि जीवोंको
१८५	३	अ० २	०
१८५	१०	प्रपा० ७	प्रपा० ८
१८५	१७	महध्रुवः	नहाध्रुवः
१८५	२१	लिखे हैं	लिखा है
१८६	३२	आत्मा	आत्मःरूप
१८६	३३	अश्रय	आश्रय
१८८	३	ब्रह्मण	ब्राह्मण

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
१८८	१३	मंगिरसो	मंगिरसो
१८९	४	(सनेबन्धु०)	(सनोबन्धु०)
१८९	१५	पोदकाभिः	पोदकाभिः
१८९	२१	(रपि) सयनं ।	स (रपि) धनं
१९०	८	परमैश्वर्य	परमैश्वर्य्य
१९०	११	अर्थोत्रिविधं	त्रिविधं
१९०	१८	नेन न त्रिविधं	नेनत्रिविधं
१९१	१०	वर्त्तमान है	वर्त्तमान हैं
१९१	१२	सर्वो	सर्भो
१९२	८	आग्नि	अग्नि
१९३	१४	यानं	०
१९४	३१	जलका	जलकी
१९३	५	समुद्रे	समुद्रे
१९६	३२	तिस्रा	तिस्रो
१९६	१	त्रियो	त्रिया
१९७	४	जो मनुष्य उन रथोंमें	उन रथोंमें जो मनुष्य
१९७	२०	आनो	आनों
१९७	१३	प्रकार भोगों	प्रकारके भोगों
१९७	२२	हरयः	हरयः
१९७	२४	शंकनो	शंकवो
१९९	२	दूंसरे	दूसरे
१९९	१९	स्पर्धा	स्पर्धा
१९९	२३	मनुष्या	मनुष्याः
२०१	२४	न्तरिक्षम्	न्तरिक्षम् ।
२०२	३२	स्तनूपा	स्तनू पा
२०३	२०	करणेन	कारणेन
२०४	३४	पशु आदिको	पशु आदिके शरीरको
२०५	२	पितरं	पितरं
२०५	२३	प्रत्यभावः	मैत्र्यभावः
२०७	१६	विद्यारहितस्यापि	विद्यारहितोपि
२०८	१८	धिर्मह्यं	धिर्मह्यं

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
२०८	१९	मायुर्ध्यं	मायुर्ध्यं
२०९	२३	पुरंधि	पुरंधिः
२१०	१०	करो	रहो
२१०	१६	विधर्वेव	विधर्वेव
२१३	२	दिधियोः	दिधियोः
२१४	३०	नो विवाहित	जो विवाहित
२१५	२०	विदथेषु	विदथेषु
२१५	२१	के शान्	कैशान्
२१६	१९	कर्त्तृ	कर्त्तृ
२१७	१९	सत्कयाओं	सत्क्रियाओं
२१९	२६	भूषित पुरुषार्थि-करणं	भूषणं पुरुषार्थी करणं च
२२०	१७	सुहव	सुहव
२२१	१८	मनुष्योंको	मनुष्योंका
२२३	४	राष्ट्र	राष्ट्रं
२२४	१७	मोदध्वमेवं	मोदयध्वमेवं
२२५	३०	जं भारद्वाजं	जंभवति भारद्वाजं
२२५	३१	तानाह	तानह
२२६	५	कं० ६ । ७ ।	कं० ६ । ९ ।
२२८	१३	भौरव्यं	भौव्यं
२३०	३१	प्रबन्धे	प्रबन्धेन
२३४	२२	हो	ही
२३६	२	सन्यास	संन्यास
२३७	१	चार्य्येति	चार्य्येति
२३७	५	ब्रह्मचर्य्यण	ब्रह्मचर्य्येण
२३७	६	ब्रह्मचर्य्येण	ब्रह्मचर्य्येण
२३७	६	ब्रह्मचर्य्येण	ब्रह्मचर्य्येण
२३९	१०	स्वाहा	स्वाहा
२३९	१३	पह्नया	पह्नया
२४१	३३	ब्रह्मचर्य्यो	ब्रह्मचार्य्यो
२४१	३४	सादयन्स	सादन्स
२४३	५	चर्य्यं चरन्ति	चर्य्यं चरन्ति

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
२४५	७	तदभिप्रान्	तदुभिप्रान्
२४६	१४	देशांतरं प्रापय- तीति	देशान्तरं वहति प्रापयतीति
२४७	३२	और	०
२४८	२०	सूर्य्यो	सूर्य्यौ
२४८	२२	दवा	देवा
२५०	११	सर्वे	सर्वेभ्य
२५३	१९	जितना	जितनाकि
२५३	१९	होता है	हो
२५५	२०	प्रकार	पकार
२५५	२९	सः आर्धधातु ४	सः ॥ ४ ॥
२५५	२९	देवैर्यो	देव्यै
२५७	२०	समानाः	संपानाः
२५९	१३	जो पितर हैं	पितर हैं
२५९	२७	शक्तिः	शक्तिः
२५९	२०	मंतु	मंत्रु
२५९	३०	हुव न्तु	हुवन्तु
२६०	२०	भाशनं	प्राशनं
२६१	१८	और उपदेश	और अपने उ- पदेशसे
२६२	२९	देखने	श्रुनने
२६३	६	करनेके	करने
२६३	७	धोग्य	हारे
२६३	२२	वेत्य	वेत्थ
२६४	१९	मनुष्य	मनुष्य
२६४	२७	पदार्थो	पदार्थौ
२६५	१४	पितम्	पितम्
२६६	८	शुधध्वम्	शुन्धध्वम्
२६७	३	उपनिषद्	उपनिषद्धका
२६७	१४	इच्छित	वांछित
२६९	७	संसारका	संसारके
२६९	९	प्रतिपदित	प्रतिपादित
७३	८	कूलतया	कूलतया

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
२७९	३	द्यौर्न	द्यौर्न
२८०	२०	जलके	जलका
२८१	६	आसीत्स	आसीत्स
२८२	२७	का मूलसे	को मूलसे
२८३	१७	पुनर्मूमे	पुनर्मूमौ
२८४	१६	घनजलं	घनजालं
२८४	२७	(विश्वकृणा त्रिवि- धसादनछेदने- न वज्रेण	वज्रेण (विश्वकृ- णा) छिन्ना- निस्कन्धांसीव
२८५	१४	शत्रू	शत्रु
२८५	२१	द्वादुनि	द्वादुनि
२८६	४	दीव	दीर्घं
२८६	१३	पूतिदुर्गन्धो	पूतिर्दुर्गन्धो
२८६	१४	मिस्राव	मिसृस्राव
२८७	२५	प्रजापति	प्रजाति
२८८	८	जिश्रति-	वदति
२८८	२८	मत्वारोपेन	मत्वाऽऽरोपेन
२८९	८	देत्तदपि	देषोऽपि
२९१	७	ऽन्यासा	ऽन्यासां
२९१	१३	सकर्न	सकलं
२९१	१९	द्विसेः	द्विसेः
२९१	२०	कथा	०
२९२	४	गयातीर्थो	गयादितीर्थो
२९४	३	इत्यनन	इत्यनेन
२९४	११	एवाख्य	एवाख्यं
२९४	१०	पूर्वोक्तेपु	पूर्वोक्तेषु
२९४	१४	खड्गे येषां	खड्गो येषां
२९४	३०	चात्राचार्य	चात्राचार्य
२९६	१०	लोकंवाने	लोकंवो
२९६	२८	श्राद्धा	श्रद्धा
२९८	३	नेत्रोंसे	नेत्रोंसे
२९८	१२	जीवांके	जिवोंके
२९८	१६	जलकां	जलकी

पृष्ठ०	पं०	अशु०	शु०
२९९	९	संशयका	संशयकी
२९९	२९	नाम	०
३००	५	वरीवर्त्तते	वरीवृज्यते
३०१	५	रायस्पोषेण	रायस्पोषेण
३०२	५	तवरे	सवरे
३०२	१२	पूजन	पूजा
३०२	२२	न महलो	न् हमलो
३०५	२८	भगवान्	भगवन्
३०६	३०	सकें	सकें
३०८	२८	(अनाथाः)	(अ आयवाः)
३१०	२	शुद्धाय	शुद्धाय

अथ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकाविषयसूचीपत्रम् ।

पृष्ठसे	पृष्ठतक	विषयाः	
१	९	ईश्वरप्रार्थनाविषयः ।	१
९	२६	वेदोत्पत्तिवि० ।	२
२७	४१	वेदानां नित्यत्वविचार-वि० ।	३
४१	८०	वेदविषयविचारवि० अस्मद्व्ययभूतविषयाः	४
४१	४६	विज्ञानकाण्डवि० ।	५
४६	८०	कर्मकाण्डे मुख्यतया यज्ञवि० ।	६
५६	७१	देवतविषयः ।	७
७५	८०	मोक्षमूलरविषयकखण्डन-विषयः ।	८
८१	८८	वेदसंज्ञाविचारवि० ।	९
८८	९२	ब्रह्मविद्यावि० ।	१०
९२	११५	वेदोक्तधर्मवि० ।	११
११५	१३६	सृष्टिविद्यावि० ।	१२
११८	१३४	सहस्रशीर्षेत्यारभ्य पु-रुषसूक्तव्याख्यावि० ।	१३
१३६	१३९	द्यविद्यादिलोकभ्रमण-वि० ।	१४
१३९	१४२	धारणाकर्षणविषयः ।	१५
१४३	१४४	प्रकाश्यप्रकाशकवि० ।	१६
१४५	१४८	गणितविद्यावि० ।	१७
१४८	१५५	प्रार्थनायाचनात्मसमर्पण-वि० ।	१८
१५५	१८१	उपासनाविधानवि० ।	१९
१८१	१८८	मुक्तिविषयः ।	२०
१८९	१९८	नौविमानादिविद्या-वि० ।	२१
१९९	२००	तारविद्यावि० ।	२२
२००	२०१	वैद्यकशास्त्रमूलवि० ।	२३
२०१	२०७	पुनर्जन्मविषयः ।	२४
२०८	२१०	विवाहवि० ।	२५
२१०	२१३	नियोगवि० ।	२६
२१३	२१७	राजप्रजाधर्मवि० ।	२७
२१७	२२०	वर्णाश्रमवि० ।	२८

पृष्ठसे—पृष्ठतक	विषयाः	
२३८—२३८	ब्रह्मचर्य्याश्रमवि० ।	२९
२३९—२४०	गृहाश्रमविषयः ।	३०
२४१—२४२	वानप्रस्थाश्रमवि० ।	३१
२४३—२४४	संन्यासाश्रमवि० ।	३२
२४५—२७५	पंचमहायज्ञविषयः ।	३३
२४५—२५०	अग्निहोत्रविषयः ।	३४
२५१—२६६	पितृयज्ञवि० ।	३५
२६७—२७१	बलिवैश्वदेववि० ।	३६
२७१—२७२	अतिथियज्ञविषयः ।	३७
२७२—३०८	ग्रंथप्रामाण्यप्रामाण्यवि० ।	३८
२७२—२७७	उत्तमनिकृष्टग्रंथगणनावि० ।	३९
२७८—२८०	प्रजापतिहुहिद्रोः कथावि० ।	४०
२८१—२८२	गोतमाऽहल्ययोः कथावि० ।	४१
२८२—२८६	इन्द्रवृत्रासुरकथावि० ।	४२
२८७—२९०	देवासुरसंग्रामकथावि० ।	४३
२९१—२९९	कश्यपगवाद्रितीर्थैकथावि० ।	४४
३००—३०३	मूर्त्तिपूजानिषेधवि० ।	४५
३०४—३०८	नवग्रहसंज्ञार्थवि० ।	४६
३०९—३१२	अधिकारानधिकारवि० ।	४७
३१३—३१९	पठनपाठनवि० ।	४८
३२०—३२५	भाष्यकरणशंकासमाधानवि० ।	४९
३२३—३३७	महीधरकृतभाष्यखण्डनसप्रकथयोर्वर्णनवि० ।	५०
३३९—३४१	प्रतिज्ञाविषयः ।	५१
३४२—३५१	प्रश्नोत्तरविषयः ।	५२
३५२——	वैदिकप्रयोगनियमवि० ।	५३
३५३—३५४	स्वरव्यवस्थाविषयः ।	५४
३५५—३५९	व्याकरणनियमविषयः ।	५५
३७०—३७२	अलंकारभेदवि० ।	५६
३७३—३७९	ग्रंथसंकेतवि० ।	५७

गुरु विरजानन्द दण्डी
सद्धर्म पुस्तकालय
पं. परिडत वंशीधर ...
[redacted] महिला प.
173